# पूरे-अधूरे

मूल बंगला उपन्यास "पूर्ण-अपूर्ण" का हिन्दी अनुवाद
अनुवादक : विमल मिश्र

मूल्य : पचास रुपये (50.00)

संस्करण : 1985 
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
PUREY-ADHUREY (Novel), by Bimal Kar

# पूरे-अधूरे

विमल कर



राजपाल एण्ड सन्ज़

माथे के ऊपर कजरारे मेघ का एक वृहत् खंड है, दोनों ओर निविड़ जंगल है, और अन्धकार फन काढ़े सांप की भांति इतनी देर तक जैसे अवनी को खदेड़ता हुआ लिए जा रहा था। बहुत देर से वह इस असहाय व उद्वेगजनक अवस्था से भाग जाने की कोशिश कर रहा था, पर भाग नहीं पा रहा था। दोनों ओर की स्थिर, निस्तब्ध वृक्ष-लताओं से भरी पहाड़ी भूमि, घने अन्धकार और स्याह मेघ-खंड ने उसे घेर लिया है। अवनी को लग रहा था, इस रास्ते की दूरी शायद अब वह तय नहीं कर पाएगा, कहीं रुक जाने को बाध्य होगा।

हठात्, एक अर्धवृत्ताकार खतरनाक मोड़ पार करके लकड़ी के पुल के पास गाड़ी के आते ही लगा मानो उसके चारों ओर से जैसे कुछ हटता जा रहा हो। और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ा तो वह आकांक्षित लम्बी ढलान मिल गई। मसरिया का पहाड़ी जंगल अब जाकर खत्म हुआ है। अब रास्ता क्रमशः नीचे उतर जाएगा। अवनी को अनुभव हुआ कि उसके माथे के ऊपर वह कुंडली मारा हुआ मेघ भी अब नहीं है। संध्या का अन्धकार अब दुःसह नहीं है; हवा और भी थोड़ी-सी प्रबल हो गई है। इतनी देर तक जो जंगल उसे लगातार दोनों ओर से निगलने की ओर जो कजरारा मेघ-खंड उसे आत्मसात् करने की कोशिश कर रहा था वह पीछे हटता जा रहा है। वन-भूमि अब उतनी निविड़ नहीं है, क्रमशः पतली होती जा रही है। भयभीत और विपन्न अवनी ने इतनी देर बाद राहत की सांस ली।

तीसरे पहर, अवनी जब शहर के अस्पताल से बाहर निकला था तब वर्षा की बौछार आई थी। वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों और अल्हड़ झकोरे से उसकी गाड़ी भीग गई थी, अवनी भी पूरे तौर पर सूखा न रह सका था। उसकी जीप के किरमिच बेकार हो गए, हवा में फड़फड़ उड़ने लगे। गाड़ी का पिछला हिस्सा भीग गया तीसरे पहर की ही वर्षा में। उसी वर्षा की बौछार में मील भर की दूरी तय करते-करते तीसरा पहर ढलने को आया, वर्षा थम गई। आकाश साफ नहीं हुआ। कहीं जरा काला, कहीं धूसर, तो कहीं ईषत् रक्ताभ मेघ था। अवनी ने यह सब खयाल करके नहीं देखा था, फिर भी जैसे नजर आ गया था। आकाश व मेघ से उसकी आंखों का सम्पर्क टूटा हुआ था, वह उदासीन बना हुआ था, फिर भी मन-ही-मन क्रमशः किसी एक विषण्णता से बोझिल हो उठा था। हीरालाल की बात उसके मन पर किसी स्थायी छाया की तरह छाई हुई थी। बेचारा हीरालाल! अभी भी वह अस्पताल के बिस्तर पर दिखाई पड़ता है, दोनों ओर परदे गिरा दिए गए हैं, ऑक्सीजन चल रही है, शायद शाम या रात को अथवा कल सवेरे आखिरी तौर पर जरा-सा ऑक्सीजन लेकर वह चल बसेगा, उसका बिस्तर सूना हो जाएगा। पर कहां जाएगा हीरालाल? आकाश में? वह आकाश में नहीं जाएगा। दो पैरों वाला जीव न मेघ है, न हवा, न धूलिकण ही कि उस आकाश में उसे स्थान मिलेगा। फिर भी अवनी ने उदास आंखों से अन्तिम वर्षा के अपराह्न की विक्षिप्त मेघ-माला देखी थी।

आवाज हो रही है—मानो कोई अवनी के पीछे-पीछे छाती पीटते-पीटते चल रहा हो। असह्य लगने की वजह से गाड़ी रोकी अवनी ने। शहर की ओर की बस के उसकी बगल से होकर विपरीत दिशा में चले जाने पर उसने घड़ी देखी, लगभग साढ़े छः बजे हैं। अभी भी बहुत दूर है, पन्द्रह मील से भी ज्यादा। गाड़ी के इंजन में कहीं एक बेढब-सी आवाज हो रही है। अवनी उतरा, इंजन देखा। ठीक समझ में नहीं आया। एक टार्च साथ चाहिए थी, साधारणतः साथ में रहती है। पर आज जल्दी से अस्पताल जाते समय टार्च की बात खयाल में ही नहीं आई। वापस आकर गाड़ी में सवार होने के पहले अवनी ने पीछे का किरमिच बांधने की कोशिश की, फिर सवार होकर सिगरेट सुलगाई। कैसा एक अवसाद आया हुआ है, हो सकता है, यह अवसाद भाग-दौड़ करने के कारण आया हो। हो सकता है, मन के भार के चलते भी आया हो। लगभग आधी सिगरेट चुपचाप बैठे-बैठे ही खत्म करके गाड़ी फिर से स्टार्ट की, स्टार्ट करके दाहिनी ओर का रास्ता पकड़ा। मील भर आगे जाते ही मलरिया का जंगल शुरू होगा। रास्ता सावधानी से तय करना ही रीति है। जंगल की ओर वर्षा हुई है या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया। बस भीगी हुई थी, वह ठीक कहां वर्षा में भीगी थी कौन जाने, जंगल में पानी बरसा हो, तो वहीं सावधानी से रास्ता तय करना होगा।

सावधान होने-न-होने से क्या खास कुछ आता-जाता है! हीरालाल कभी भी लापरवाह नहीं था। हर काम वह सोच-समझकर किया करता था। ठंडे दिमाग का आदमी जैसा होता है। इस इलाके में वह आज चार वर्षों से ओवरहेड इलेक्ट्रिक लाइन लगाने की देख-रेख कर रहा था। जरीब-नक्शा, घाट-बाट, जंगल-पहाड़ सब कुछ उसका जाना हुआ था, कागज-पेंसिल देने पर आंखें मूंदकर वह नक्शा बनाकर यह बता देता था कि कहां क्या है। हालांकि उस हीरालाल ने एक मामूली-से ट्रक को अपने हाथों से रास्ते के किनारे हटाकर रखते समय न जाने कैसे कलवर्ट के किनारे उसे लुढ़का दिया, ढालू रास्ते में गाड़ी माल-असबाब समेत उलट गई, हीरालाल घायल हुआ। पहले लगा था, उसकी चोट गम्भीर नहीं है, शरीर के बाहर चोट लगने और लहू बहने का कोई खास चिह्न भी नहीं था। वह बेहोश हो गया था। अस्पताल ले जाने के बाद मालूम हुआ कि सिर में गहरी चोट लगी है, रक्तस्राव हो रहा है भीतर। आज को मिलाकर दो दिन हुए वह वैसी ही बेहोशी की हालत में है। आशा-भरोसा अब नहीं रहा। रत्ती भर भी नहीं।

आखिर क्यों ऐसा होता है? क्यों?



अवनी ने एकाएक अनुभव किया कि वह मलरिया के जंगल में घुस पड़ा है, शाम हो गई है, और उसके सिर के ऊपर भयंकर काले मेघ का एक खंड है उस धनिहे मेघ का पुंज क्रमशः धुएं की भांति कुंडली मारकर आकाश को ढक लेना चाहता है। जंगल के ऊपर से होकर जैसे सरकता हुआ चला जा रहा हो वह मेघ! क्रोध, तिक्तता, आक्रोश तमाम कुछ ने जैसे अचानक अवनी को कैसा बेपरवाह बना डाला। पत्थर की तरह सख्त होकर शायद किसी के विरुद्ध खड़ा होना चाहता है, अन्धा, हिंस्र, दृढ़ होकर। गियर बदल लिया। ऐक्सिलेटर पर दबाव बढ़ाने लगा, स्टियरिंग पकड़ी सख्त मुट्ठी से। उसके बाद मन-ही-मन किसी अदृश्य शत्रु से जैसे घृणा के साथ कुछ कहा।

उस समय, आते समय शहर के अन्तिम छोर पर सेंट जोसेफ स्कूल के सामने उसकी गाड़ी कैसी मन्थर हो गई थी। शायद अवनी थोड़ी देर के लिए रुक गया था। स्कूल कम्पाउंड का एक ओर सुनसान-सा है, क्लासरूम के दरवाजे-खिड़कियां बन्द हैं, दूसरी ओर बहुत बड़ा मैदान और तालाब है, तालाब से लगा हुआ हॉस्टल है। घंटा बज रहा था हॉस्टल में, कुछेक बच्चे तालाब से ऊपर आकर तरबतर भीगे बदन भाग रहे थे; खेल का मैदान छोड़कर भीगी हरी घास के ऊपर से होकर कीचड़-लगे कई लड़के भी हॉस्टल वापस जा रहे थे। अवनी उन्हें देखते-देखते हीरालाल की बात सोच रहा था। हीरालाल बचपन में उस स्कूल में पढ़ा था। एक बार इस रास्ते से होकर जाते समय हीरालाल ने उसकी बगल में बैठकर स्कूल का घर-मकान, मैदान, तालाब आदि दिखाते-दिखाते अवनी को अपने बचपन की कहानी सुनाई थी। तालाब में तैरना सीखते समय हीरालाल एक बार डूबते-डूबते कैसे बच गया था, यह कहानी सुनाकर हीरालाल ने बताया था; 'मगर दो साल बाद मैं जूनियर ग्रुप में स्विमिंग चैम्पियन हुआ था।' सीनियर ग्रुप में भी हीरालाल ने तैराकी में मैडल पाया था।

स्कूल के तालाब पर बादलों-भरे दिन के अन्धकार की छाया पड़ गई थी; अवनी को दूर से पानी दिखाई नहीं पड़ रहा था, तो भी उसे लगा, सेंट जोसेफ स्कूल के तालाब को किसी तरह से हीरालाल की बात यदि बताई जा सकती, तो अवनी अवश्य बताता।

स्कूल को पार करके आते ही अवनी ने कैसा एक आक्रोश अनुभव किया। शायद बहुत देर से क्रमशः कोई क्षोभ उसके मन में जमा हो रहा था, बादल छाने की तरह कोई उमस और भार। जीवन ऐसा ही है, उसके रहने-न-रहने का कोई नियम नहीं है, स्थिरता भी नहीं है। अकारण, निष्प्रयोजन रहता है, फिर अकारण ही चला जाता है। रखना चाहने से ही तो आदमी उसे रख नहीं सकता। हीरालाल बलिष्ठ युवक था, मात्र पैंतीस वर्ष उम्र थी, उद्योगी था, परिश्रमी था, प्रसन्न स्वभाव का था, काम-काज गजब का समझता था, देवी-देवताओं में भक्ति थी, न गांजा-शराब पीता था, न बुरी संगत में पड़ा था, घूस लेने में उसके विवेक को चोट पहुंचती थी—। इन सब साधारण सद्गुणों की रक्षा करता हुआ शायद वह सोचा करता था कि जीवन की बही में कुछ जमा कर रहा है। हालांकि उस जीवन के हिसाब के पन्नों को कितने अनायास और सहज तरीके से न जाने किसने 'धत्' कहकर टुकड़े-टुकड़े करके हवा में उड़ा दिया। डेढ़ मन से अधिक वज़न और पांच फुट आठ इंच की कद-काठी वाला, तैराक हीरालाल मिश्र मजबूत हाथ और स्थिर उद्देश्य लेकर भी एक अन्य तालाब की थोड़ी-सी दूरी तय करके ही रुक गया। आखिर क्यों ?

न जाने कब तीसरा पहर ढल गया था और रोशनी मिट जाने की वजह से अंधेरा जमा हो रहा था। गाड़ी बहुत दूर तक आ गई थी। उसकी बगल और उसके सामने से होकर और भी कितनी गाड़ियां चली गईं। अवनी ने लक्ष्य किया, अन्य-मनस्कता में ही उसने पता नहीं कब अपने अनजाने में ही गाड़ी की हेड लाइट जला दी थी। बादलों-भरी ठंडी हवा आ रही है सरसराती हुई; गाड़ी के पिछले हिस्से का किरमिच हवा के थपेड़ों से उड़-उड़कर पछाड़ खाकर गिर रहा है। कैसी एक

आवाज हो रही है—मानो कोई अवनी के पीछे-पीछे छाती पीटते-पीटते चल रहा हो। असह्य लगने की वजह से गाड़ी रोकी अवनी ने। शहर की ओर की बस के उसकी बगल से होकर विपरीत दिशा में चले जाने पर उसने घड़ी देखी, लगभग साढ़े छः बजे हैं। अभी भी बहुत दूर है, पन्द्रह मील से भी ज्यादा। गाड़ी के इंजन में कहीं एक बेढब-सी आवाज हो रही है। अवनी उतरा, इंजन देखा। ठीक समझ में नहीं आया। एक टार्च लानी चाहिए थी, साधारणतः साथ में रहती है। पर आज जल्दी से अस्पताल जाते समय टार्च की बात खयाल में ही नहीं आई। वापस आकर गाड़ी में सवार होने के पहले अवनी ने पीछे का किरमिच बांधने की कोशिश की, फिर सवार होकर सिगरेट सुलगाई। कैसा एक अवसाद आया हुआ है, हो सकता है, यह अवसाद भाग-दौड़ करने के कारण आया हो। हो सकता है, मन के भार के चलते भी आया हो। लगभग आधी सिगरेट चुपचाप बैठे-बैठे ही खत्म करके गाड़ी फिर से स्टार्ट की, स्टार्ट करके दाहिनी ओर का रास्ता पकड़ा। मील भर आगे जाते ही मलरिया का जंगल शुरू होगा। रास्ता सावधानी से तय करना ही रीति है। जंगल की ओर वर्षा हुई है या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया। बस भीगी हुई थी, वह ठीक कहां वर्षा में भीगी थी कौन जाने, जंगल में पानी बरसा हो, तो बड़ी सावधानी से रास्ता तय करना होगा।

सावधान होने-न-होने से क्या खास कुछ आता-जाता है! हीरालाल कभी भी लापरवाह नहीं था। हर काम वह सोच-समझकर किया करता था। ठंडे दिमाग का आदमी जैसा होता है। इस इलाके में वह आज चार वर्षों से ओवरहेड इलेक्ट्रिक लाइन लगाने की देख-रेख कर रहा था। जरीब-नक्शा, बाट-घाट, जंगल-पहाड़ सब कुछ उसका जाना हुआ था, कागज-पेंसिल देने पर आंखें मूंदकर वह नक्शा बनाकर यह बता देता था कि कहां क्या है। हालांकि उस हीरालाल ने एक मामूली-से ट्रक को अपने हाथों से रास्ते के किनारे हटाकर रखते समय न जाने कैसे कलवर्ट के किनारे उसे लुढ़का दिया, ढालू रास्ते में गाड़ी माल-असबाब समेत उलट गई, हीरालाल घायल हुआ। पहले लगा था, उसकी चोट गम्भीर नहीं है, शरीर के बाहर चोट लगने और खून बहने का कोई खास चिह्न भी नहीं था। वह बेहोश हो गया था। अस्पताल ले जाने के बाद मालूम हुआ कि सिर में गहरी चोट लगी है, रक्तस्राव हो रहा है भीतर। आज को मिलाकर दो दिन हुए वह वैसी ही बेहोशी की हालत में है। आशा-भरोसा अब नहीं रहा। रत्ती भर भी नहीं।

आखिर क्यों ऐसा होता है? क्यों?

०

अवनी ने एकाएक अनुभव किया कि वह मलरिया के जंगल में घुस पड़ा है, शाम हो गई है, और उसके सिर के ऊपर भयंकर काले मेघ का एक खंड है उस पनिहे मेघ का पुंज क्रमशः धुएं की भांति कुंडली मारकर आकाश को ढक लेना चाहता है। जंगल के ऊपर से होकर जैसे तैरता हुआ चला जा रहा हो वह मेघ! क्रोध, तिक्तता, आक्रोश तमाम कुछ ने जैसे अचानक अवनी को कैसा बेपरवाह बना डाला। पत्थर की तरह सख्त होकर शायद किसी के विरुद्ध खड़ा होना चाहता है, अन्धा, हिंस्र, दृढ़ होकर। गियर बदल लिया। ऐक्सिलेटर पर दबाव बढ़ाने लगा, स्टियरिंग पकड़ी सख्त मुट्ठी से। उसके बाद मन-ही-मन किसी अदृश्य शत्रु से जैसे घृणा के साथ कुछ कहा।

"क्या हुआ था उसे ? एकाएक ?" सुरेश्वर ने शान्त स्वर में पूछा।

"ऐक्सिडेंट—" अवनी बोला। खूब संक्षेप में हीरालाल की दुर्घटना का विवरण दिया, अन्त में बोला, "क्या कहेंगे इसे आप ? भाग्य या ईश्वर का विधान ?"

अवनी के कंठ-स्वर में एक अद्भुत तिक्तता थी। यह तिक्तता उसकी पहले की भावुकता नहीं है, न भय ही है। किन्तु इस तिक्तता में मानो सुरेश्वर-जैसे व्यक्ति के प्रति कोई उपहास व वितृष्णा भी है।

सुरेश्वर मौन रहा, अवनी की ओर न ताककर वह बाहर देख रहा है। निर्जन स्तब्ध मैदान, छोटी-छोटी झाड़ियां, एक-दो पलाश या इमली के पेड़, पानी जमा हो गया है कहीं, झींगुर की झीं-झीं और मेंढकों का टर्र-टर्र सुनाई पड़ रहा है, जल-कण-घुली-मिली दुर्बल चांदनी है, ताकते-ताकते सुरेश्वर ने मृदु आवाज़ में कहा, "आपसे एक बात कहता हूं, किसी साधक व्यक्ति ने ही कहा है। कहा है : जिसे हम खोते हैं वह हमारे अन्तःकरण में कहीं लेटा-सोया हुआ है—ऐसा सोच लेना ही अच्छा है। उसे पुकार कर जगाने की कोशिश करना बेकार है। हम रोते-धोते हैं, मगर उससे वह जगता नहीं है। हो-हल्ला करने से कुछ मिलता नहीं है, सिर्फ यह प्रमाणित होता है कि प्रकृति के अलंघ्य नियम की बात हम कुछ नहीं जानते, जानकर भी समझते नहीं हैं।"

अवनी ने रंचमात्र आकर्षण बोध नहीं किया इस बात पर। यह तो मामूली बात है। सांत्वना पाने की कोशिश है। किन्तु सुरेश्वर के कहने की मुद्रा व कंठ-स्वर से उसने अनुभव किया कि वह विचलित हुआ है, तो भी उसने अपने आपको बड़ा संयत रखा है। सुरेश्वर से ठीक इस क्षण अवनी को घृणा हो रही थी। ये लोग सिर्फ घाव के ऊपर बैंडेज बांधकर घाव को ओझल किए रखते हैं, रोगी को देखने देना नहीं चाहते हैं। अवनी ने विरक्त होकर उपहास के स्वर में कहा, "हां,—सभी कुछ प्रकृति का अलंघ्य नियम है।" कहकर एकाएक गाड़ी को झट्ट से पानी-भरे गड्ढे से बचाने के लिए दाहिनी ओर मोड़ लिया। पहिया गड्ढे में पड़े, इसके पहले ही गाड़ी मैदान में चढ़ गई। हैमन्ती हिल उठी। उसने अवनी का कंधा पकड़ लिया है। अवनी ने गाड़ी मैदान से फिर रास्ते पर उतारी और कहा, "गाड़ी गड्ढे में पड़ती, तो हम लोग उलट जाते। शायद हीरालाल की तरह हममें से कोई घायल होता, अस्पताल में मरता। प्रकृति के उस अलंघ्य नियम को आप किस रूप में लेते ?"

सुरेश्वर के कपाल में मामूली-सी चोट लगी थी। उस पर हाथ फेर लिया। बोला, "पता नहीं। अभी यह नहीं बता सकूंगा।" शान्त, सरल रूप में उसने कहा, जैसे अवनी से इस विषय को लेकर बहस करने की इच्छा उसकी नहीं हो। अन्त में कुछ सोचकर, बहुत कुछ जैसे स्वगतोक्ति की भांति, बहुत कुछ जैसे कविता पाठ करने की तरह बोला, "आकाश व धरती मनुष्य की अरथी है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे शव-शय्या के साज हैं, नक्षत्र मेरे बदन पर बिखेरे हुए फूल हैं। तमाम जीव मेरी शव-यात्रा के साथी हैं। मृत्यु के पास सभी मुझे ढोए लिए जा रहे हैं।"

अवनी कैसा अन्यमनस्क हुआ। सुनने में अच्छा लगा, इसलिए, या कि कठोर व निर्मम कोई चीज एकाएक आज किसी अन्य रूप में दिखाई पड़ी, इसलिए !

आवाज़ हो रही है—मानो कोई अवनी के पीछे-पीछे छाती पीटते-पीटते चल रहा हो। असह्य लगने की वजह से गाड़ी रोकी अवनी ने। शहर की ओर की बस के उसकी बगल से होकर विपरीत दिशा में चले जाने पर उसने घड़ी देखी, लगभग साढ़े छः बजे हैं। अभी भी बहुत दूर है, पन्द्रह मील से भी ज्यादा। गाड़ी के इंजन में कहीं एक बेढब-सी आवाज़ हो रही है। अवनी उतरा, इंजन देखा। ठीक समझ में नहीं आया। एक टार्च साथी चाहिए थी, साधारणतः साथ में रहती है। पर आज जल्दी से अस्पताल जाते समय टार्च की बात ख़याल में ही नहीं आई। वापस आकर गाड़ी में सवार होने के पहले अवनी ने पीछे का किरमिच बांधने की कोशिश की, फिर सवार होकर सिगरेट सुलगाई। कैसा एक अवसाद आया हुआ है, हो सकता है, यह अवसाद भाग-दौड़ करने के कारण आया हो। हो सकता है, मन के भार के चलते भी आया हो। लगभग आधी सिगरेट चुपचाप बैठे-बैठे ही ख़त्म करके गाड़ी फिर से स्टार्ट की, स्टार्ट करके दाहिनी ओर का रास्ता पकड़ा। मील भर आगे जाते ही मसरिया का जंगल शुरू होगा। रास्ता सावधानी से तय करना ही रीति है। जंगल की ओर वर्षा हुई है या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया। बस भीगी हुई थी, वह ठीक कहां वर्षा में भीगी थी कौन जाने, जंगल में पानी बरसा हो, तो बड़ी सावधानी से रास्ता तय करना होगा।

सावधान होने-न-होने से क्या खास कुछ आता-जाता है ! हीरालाल कभी भी लापरवाह नहीं था। हर काम वह सोच-समझकर किया करता था। ठंडे दिमाग का आदमी जैसा होता है। इस इलाके में वह आज चार वर्षों से ओवरहेड इलेक्ट्रिक लाइन लगाने की देख-रेख कर रहा था। जरीब-नक्शा, बाट-घाट, जंगल-पहाड़ सब कुछ उसका जाना हुआ था, कागज़-पेंसिल देने पर आंखें मूंदकर नक्शा बनाकर वह बता देता था कि कहां क्या है। हालांकि उस हीरालाल ने एक मामूली-सी ट्रक को अपने हाथों से रास्ते के किनारे हटाकर रखते समय न जाने कैसे कलवर्ट के किनारे उसे लुढ़का दिया, ढालू रास्ते में गाड़ी माल-असबाब समेत उलट गई, हीरालाल घायल हुआ। पहले लगा था, उसकी चोट गम्भीर नहीं है, शरीर के बाहर चोट लगने और लहू बहने का कोई खास चिह्न भी नहीं था। वह बेहोश हो गया था। अस्पताल ले जाने के बाद मालूम हुआ कि सिर में गहरी चोट लगी है, रक्तस्राव हो रहा है भीतर। आज को मिलाकर दो दिन हुए वह वैसी ही बेहोशी की हालत में है। आशा-भरोसा अब नहीं रहा। रत्ती भर भी नहीं।

आखिर क्यों ऐसा होता है ? क्यों ?

3

अवनी ने एकाएक अनुभव किया कि वह मसरिया के जंगल में घुस पड़ा है, शाम हो गई है, और उसके सिर के ऊपर भयंकर काले मेघ का एक खंड है उस पनिहे मेघ का पुंज क्रमशः धुएं की भांति कुण्डली मारकर आकाश को ढक लेना चाहता है। जंगल के ऊपर से होकर जैसे तैरता हुआ चला जा रहा हो वह मेघ ! क्षोभ, तिक्तता, आक्रोश तमाम कुछ ने जैसे अचानक अवनी को कैसा बेपरवाह बना डाला। पत्थर की तरह सख्त होकर शायद किसी के विरुद्ध खड़ा होना चाहता है, अन्धा, हिंस्र, दृढ़ होकर। गियर बदल लिया। ऐक्सिलेटर पर दबाव लगा, स्टियरिंग पकड़ी सख्त मुट्ठी से। उसके बाद मन-ही-मन किसी से जैसे घृणा के साथ कुछ कहा।

धारदार तलवार की तरह रोशनी का लम्बा फोकस जंगल और अंधेरे को चीरकर रास्ता दिखा दे रहा था, अपनी सावधानी से पेड़ों की कतारों को बचाकर रास्ते के बीच में से होकर, ऊबड़-खाबड़ पर ध्यान रखता हुआ हर भद्दे खतरनाक मोड़ को अत्यन्त सतर्कता के साथ पार करता जा रहा था। हठधर्मी करके वह कभी भी रास्ते के किनारे नहीं हट रहा था। दोनों ही किनारों में वृक्षलता-कीर्ण गहरी खाइयों ने अन्धकार में फन्दा डाल रखा है, असतर्क होने पर अवनी उस फंदे में फंस जाएगा। सम्भवतः तीसरे पहर पानी बरसा है जंगल में, कोलतार का काला रास्ता अभी भी भीगा हुआ है, गाड़ी की रोशनी में किसी लम्बे सरीसृप के फिसलन-भरे शरीर की भांति वह भद्दा-सा दृश्य दीख रहा था। रास्ते के दोनों किनारे दीर्घकाय प्राचीन वृक्ष हैं। अवनी जानता है, असावधान होने पर इस रास्ते में गाड़ी का पहिया फिसल सकता है, और फिसलकर गाड़ी सीधे पेड़ से टकरकार प्रचंड धक्का खा सकती है। उसकी वैसी कोई स्पृहा नहीं है। लक्ष्य को स्थिर, तीक्ष्ण रखकर, शरीर के अंगों को अस्वाभाविक कठिन बनाकर, दक्षता के साथ वह रास्ता तयकर रहा था।

जाते-जाते न जाने कब अवनी ने अनुभव किया, उसके चारों ओर की स्तब्धता भयावह हो उठी है। गाड़ी के इंजन की आवाज़ छोड़कर कहीं भी किसी प्रकार की आवाज़ नहीं हो रही है, उस एकरस यांत्रिक आवाज़ के भी लंबे समय तक गूंजते रहने की वजह से न जाने कब कान उसके आदी हो गए हैं, वह स्वतंत्र रूप से अब सुनाई नहीं पड़ती है। इस निरालोक सुनसान जगत् की निःशब्दता ने एक अवर्णनीय प्राणहीनता पैदा की है। अवनी ने एकाएक कैसा आतंक अनुभव किया।

उसके बाद सहसा उसकी दृढ़ता टूटी, जिस अवज्ञा और आक्रोश से वह एक अज्ञात शत्रु के साथ युद्ध में उतरा-सा लगा—वह अवज्ञा अभी उसकी हंसी उड़ा रही है। कपाल पर पसीना चुहचुहा उठा, मेरुदंड थोड़ा-सा झुक गया। दुविधा व सन्देहवश उसे लगा, गाड़ी की रोशनी क्रमशः निष्प्रभ होती जा रही है, और वह जैसे किसी गुफा के बीच में आकर अटक गया हो। किसी भी क्षण यह रोशनी खत्म हो जा सकती है, किसी भी क्षण यह सर्वग्रासी अन्धकार व अखंड स्तब्धता उस पर आक्रमण करेगी। अवनी ने भयभीत होकर अकारण गाड़ी के हार्न पर हाथ रखा, एक तीव्र तीक्ष्ण आवाज सद्यःजात शिशु की भांति जैसे इस उद्वेग के बीच चिल्ला उठी।···अवनी ने बहुत देर तक फिर हार्न बन्द नहीं किया—बन्द करने का उसे साहस नहीं हुआ, नितान्त अन्तरंग साथी की तरह उसे अनुभव करते-करते एक समय एक अर्धवृत्ताकार मोड़ को पार करके लकड़ी के पुल के पास आया, तो अनुभव किया जैसे कुछ उसके चारों ओर से हटता जा रहा हो। और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ा, तो वह समझ पाया कि मखरिया के जंगल और उस कजरारे मेघ की सीमा को पार करके वह चला आया है।

राहत की सांस ली अवनी ने। कपाल, गाल-गले का पसीना पोंछा। फिर इत्मीनान से सिगरेट सुलगाई।

●

अभी वह कोई दुश्चिन्ता अनुभव नहीं कर रहा है। सातेक मील की दूरी अभी भी उसे तय करनी है, और रास्ता अधिकांश समय ऐसा ही निर्जन व जनपद-

हीन है। फिर भी अवनी ने रत्तीभर घबराहट महसूस नहीं की। क्योंकि इसके बाद रास्ता अच्छा है, पहाड़-जंगल नहीं है, झुरमुट-झाड़ियां हैं, बाट-घाट है, या कहीं रेतीले कगार-सा टीला है। बड़ी-बड़ी चट्टानें यहां-वहां दिखाई पड़ेंगी। यहां, अवनी को मालूम आया नया सरकारी रिज़र्व फॉरेस्ट तैयार हो रहा है, ढेरों पेड़-पौधे लगाए गए हैं, उन्हें कांटेदार तारों से घेरकर रखा गया है। नज़दीक ही नदी है।

दूर पर ओट से एक प्रकाश की रेखा मानो हाथों के बल चलकर, उछलकर ऊपर आई। वह प्रकाश ऊंचा-नीचा होता हुआ नाचते-नाचते सामने आगे बढ़ता आ रहा था, उसके बाद तेज़ हुआ। अवनी रास्ते के बीच से धीरे-धीरे हटने लगा। गाड़ी आ रही है। देखते-देखते नज़दीक आ गई। कभी अवनी ने, तो कभी आई हुई गाड़ी के चालक ने तेज़ प्रकाश को बुझा और जलाकर एक दूसरे को जैसे देख लिया, उसके बाद प्रकाश की किरण को मद्धिम करके दोनों एक दूसरे की बगल से होकर चले गए। पल भर में ही अवनी समझ पाया, चली जानेवाली गाड़ी बड़ी और भारी है, कुछेक लोग हैं अन्दर।

वे लोग शहर जा रहे हैं। पहुंचने में रात हो जाएगी। एकाएक अवनी कैसे निर्बोध की तरह कुंठित हंसी हंसा। जानेवालों को मसारिया के पहाड़-जंगल को भेद करके ही जाना होगा, हमेशा ही उस रास्ते से गाड़ी जाया करती है, तो भी आज अवनी पता नहीं क्यों इतना भयभीत व त्रस्त हो उठा।

दरअसल आज उसे जैसे कुछ हुआ था। पर क्या हुआ था? मन भारी हुआ था? हीरालाल की मृत्यु की चिन्ता ने उसे भावुक बना डाला था? वह घायल हुआ है? विरक्त व वीतश्रद्ध है? मृत्यु की चिन्ता ने क्या उसे गुप्त रूप से भय-भीत उद्भ्रान्त बना डाला था?

चाहे किसी भी कारण हो, अवनी तब अतिरिक्त चंचल व विभ्रान्त हो गया था। उसका संपूर्ण हृदय बोझिल व विषण्ण था। उसने बच्चों की तरह क्षुब्ध होकर मृत्यु के प्रति आक्रोश अनुभव किया था, और पागलों की तरह मृत्यु को अपना विरोधी मानकर उससे लड़ने की कोशिश कर रहा था। इन सब के घुलने-मिलने से उसके स्वाभाविक बोध को इतने अस्वाभाविक भय का सामना करना पड़ा था। उसका अपना एकाकीपन, असहायता, आघात, क्रोध, विभ्रान्ति आदि मसारिया के निर्जन, निस्तब्ध जंगली परिवेश व प्राकृतिक दुर्दिन में अत्यन्त प्रखर हो उठी थी।

अवनी ने सोचा, श्मशान में जैसा सामयिक वैराग्य उत्पन्न होता है मन में, सावन के बादलों को देखकर मन जैसा क्षणिक उदास होता है—यह भी कुछ वैसा ही है! स्वाभाविक, हालांकि अर्थहीन। अवनी ने हीरालाल की अप्रत्याशित मृत्यु के लिए वेदना अनुभव की, तो भी अभी वह वैसा उत्पीड़न महसूस नहीं कर रहा था। संसार में ऐसा होता है, हजारों बार ऐसा हो रहा है। क्यों हो रहा है, यह प्रश्न अप्रासंगिक है। जीवन के अनेक प्रश्नों का उत्तर नहीं होता। सान्त्वना के लिए स्वीकार कर लो, हीरालाल की मृत्यु दुर्दैवपूर्ण है, दुर्भाग्यपूर्ण है।

बच्चों की तरह अवनी ने एक सख्त घूंट निगला। बाएं हाथ से जेब से रूमाल निकालकर मुंह पोंछा।

बिखरे हुए रूई के पतले रेशों जैसे कुछ बादल हैं आकाश में, धीरे-धीरे कोमल चांदनी खिल उठी। यह चांदनी ओस की तरह भीगी और महीन रंग की है। अंधकार में प्रान्तर क्रमशः कैसी पुंज-की-पुंज छाया की तरह स्पष्ट हुए। पतली रेखाओं से आंके हुए चित्र की तरह निकट के दो-एक सुनसान गांव भी दिखाई पड़ रहे थे। कहीं जुगनुओं की भांति प्रकाश का बिन्दु जल रहा है।

अवनी ने अनुभव किया, उसके मन में अभी उद्वेग का लेशमात्र अवशिष्ट नहीं है। जैसे उसने किसी कठिन गणित का उत्तर आखिरकार मिला लिया हो, और उत्तर मिलाकर राहत महसूस कर रहा हो। एक विपण्णता अवश्य रह जा रही है। रहे। रहते-रहते किसी दिन यह भी चली जाएगी।

महीन व आर्द्र चांदनी में, शिथिल मुद्रा में गाड़ी चलाते-चलाते अवनी और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ आया। सामने एक बस्ती है, टिमटिमाती हुई बत्तियां जल रही हैं, खपरैल घर हैं, शिव-मंदिर भी नजर आ रहा है। अब मात्र दो मील दूर है।

मोड़ के समीप आने पर अवनी को नजर आया, एक लाल रंग की बस रास्ते के किनारे से लगकर खड़ी है। लोगों का एक दल नीचे रास्ते पर बेतरतीबी से घूम-फिर रहा है। पास में एक दुकान है, लालटेन जल रही है। न जाने कौन ऊंची आवाज में किसी को पुकार रहा था।

प्रायः निकट आने पर अवनी को नजर आया, धोती-कुर्त्ता पहने एक व्यक्ति रास्ते के लगभग बीच में आकर खड़ा हो गया है और थोड़ा-सा झुककर उसकी गाड़ी की ओर निहार रहा है। अवनी ने हॉर्न बजाया। वह आदमी अहमक की तरह रास्ता रोककर क्यों खड़ा है ?

बगल से होकर जाते-जाते अवनी रुका। उस आदमी ने हाथ उठाया है, रुकने को कह रहा है।

गाड़ी के बगल में आते ही अवनी पहचान गया उस आदमी को। सुरेश्वर है। नजदीक आकर मुंह बाहर निकालने पर अवनी को भी पहचाना सुरेश्वर ने। "अरे, आप ?"

"क्या बात है ?" अवनी बोला।

"और क्या, बस खराब हो गई है।"

अवनी समझ पाया। ऐसा दृश्य देखने की आदत उसे है।

"मैं जरा विपन्न हो गया हूं—" सुरेश्वर ने परेशानी-भरे कण्ठ से कहा, "बस कब ठीक होगी, कुछ समझ में नहीं आ रहा है; कोशिश कर रहे हैं वे लोग, तो भी…"

"कहां गए थे आप ?"

"स्टेशन। शाम की गाड़ी से एक महिला आई है। उसे लाने गया था।"

अवनी ने सुरेश्वर का मुंह लक्ष्य करने की कोशिश की। अवनी को देखकर, तो सुरेश्वर के मन में थोड़ी-सी आशा का संचार हुआ है। अवनी बोला, "कहां जाना है आपको ? अपने आश्रम में ?" उपेक्षा और कौतुक के स्वर में आश्रम शब्द का उच्चारण करने की कोशिश की अवनी ने।

सुरेश्वर बोला, "ज्यादा दूर नहीं, नजदीक ही, मील भर से थोड़ा ज्यादा। अकेला होता तो मैं पैदल चला जाता। उस लड़की के होते मैं मुसीबत में पड़ गया

हूँ, साथ में कुछ माल-असबाब भी है।"

अवनी विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। सुरेश्वर को उसके मकान में पहुँचा देने की अवनी की जिम्मेदारी नहीं है। इसके अलावा इतनी दूर [illegible] बाहर जाने और वापस आने में वह थकान महसूस कर रहा है। फिर भी, एक [illegible] महिला की बात सोची, तो अवनी को सुरेश्वर के अनुरोध को टाल जाने की [illegible] नहीं मिली। उसने अपनी विरक्ति भी प्रकट नहीं की, बिल्कुल [illegible] से सिर्फ बोला, "तो फिर आइए,...पर जरा जल्दी।"

सुरेश्वर और नहीं रुका, बस की ओर चला गया।

अवनी ने चुपचाप बैठकर सिगरेट सुलगाई। सिगरेट सुलगाकर [illegible] बस की ओर ताकता रहा। [illegible] नहीं है, फिर भी [illegible] साथ कुछ। बस का ड्राइवर इंजन का ढक्कन खोलकर भीतर [illegible] रहा है, हाथ में लालटेन लिए उसकी बगल में एक कुली खड़ा है। [illegible] एक दम बस से उतर कर, इधर-उधर खड़ा होकर [illegible] रहा है, कोई [illegible] रहा है, दुकान के सामने खड़ा होकर कोई-कोई [illegible] रहा है। बस के खराब होकर रास्ते में रुक जाने की वजह से कहीं कोई [illegible] है, [illegible] अभी [illegible], नहीं लग रहा है।

अवनी को नजर आया, बस के पीछे की ओर एक लड़की आकर खड़ी हो गई। शायद इतनी देर तक बस में ही बैठी हुई थी, सुरेश्वर के कहे अनुसार नीचे उतर आई है। [illegible] यह लड़की दिखाई नहीं पड़ी। अनुमान लगाया गया।

कौतूहल अनुभव किया अवनी ने। वह युवा [illegible] ही नहीं [illegible] है। सुरेश्वर ने कहा था, 'महिला'; अवनी को धारणा हुई थी, युवा [illegible]। बाद में सुरेश्वर ने कहा था 'लड़की'; अवनी ने तब [illegible] नहीं किया था, [illegible] ठीक इस प्रकार की किसी लड़की की बात [illegible] नहीं [illegible] थी। तो क्या यह सुरेश्वर की कोई रिश्तेदार है? इस [illegible] में [illegible] 'महिला' से लड़की को ही क्या वह [illegible]?

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

है, देख लीजिएगा तब बैठिएगा।" कहकर उसने आगे से चढ़ने का इन्तज़ाम कर दिया।

सुरेश्वर बोला, "हेम, तुम चढ़ो। सावधानी से। यह लो, टॉर्च जलाकर एक बार देख लो।"

हेम झुककर, टॉर्च जलाकर गाड़ी पर चढ़ रही थी। अवनी उसे बहुत कुछ स्पष्ट रूप से देख पाया। हेम जब आ रही थी, पास आकर गाड़ी के सामने कुछेक क्षण के लिए खड़ी थी, तो अवनी सही तौर पर कुछ अनुमान नहीं लगा सका था। हेम युवती है, लम्बी डील-डौल वाली है, उसकी साज-सज्जा शहरी है, बस, इतना ही समझ सका था। अभी, हेम जब टॉर्च जलाकर अवनी से सटकर, झुककर, गाड़ी का पिछला हिस्सा देख रही है, कहां बैठेगी, यह सोच रही है—तब अवनी ने पल भर के लिए जितना देखा, उससे विस्मित हुआ। न जाने किस चीज ने अवनी को आकर्षित किया—फूलों की तीव्र गन्ध का एक झोंका सहसा अन्यमनस्क पथचारी को जैसे आकर्षित करता है, बहुत कुछ वैसे ही।

हेम पीछे जाकर बैठी।

अवनी ने सुरेश्वर को पुकारा, "आप आगे आइए।" फिर मुड़ी हुई सीट को सीधा कर दिया। सुरेश्वर सवार हो गया।

गाड़ी स्टॉर्ट करते-करते अवनी बोला, "मैं तो रास्ता पहचानता नहीं, बता दीजिएगा।"

सुरेश्वर बोला, "आगे जाकर दाहिनी ओर जाने वाले रास्ते से चलिएगा।"

बस खराब हो गई थी, ठीक तिराहे के एक मोड़ पर। शायद और भी थोड़ा पहले ही वह बिगड़ गई थी। सबने मिलकर ठेल-ठालकर उसे बिलकुल मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। अवनी ने इस विषय में खास कोई आग्रह नहीं किया, गाड़ी घुमायी।

सुरेश्वर कुंठा के साथ बोला, "मैं आपको तकलीफ दे रहा हूं।···स्टेशन से चलने के बाद से ही बस में गड़बड़ी हो रही थी।"

"यही तो आखिरी बस है?"

"हां। यही हमारी ओर जानेवाली आखिरी बात है···आप क्या टाउन गए थे?"

अवनी ने 'हां' कहा। यह रास्ता पक्का नहीं है, चौड़ा भी नहीं है। पथरीला रास्ता है। अवनी ने सुना है, इस रास्ते की लम्बाई बहुत ही कम है, ज्यादा-से-ज्यादा डेढ़-एक मील लम्बा है यह रास्ता। सारे दिन में मात्र दो-तीन बसें स्टेशन, टाउन और फूलगीर की ओर जाते समय इस रास्ते का चक्कर लगाकर फिर लौट जाती हैं। अर्थात् जो बस जाती है उसे फिर थोड़ी ही देर बाद इस रास्ते से लौटना पड़ता है।

गाड़ी बहुत उछल रही थी। पिछली सीट पर हिचकोले खाकर हेम एक विचित्र-सी आवाज़ कर उठी। सुरेश्वर ने गरदन घुमाकर अंधेरे में हेम को लक्ष्य करके कहा, "कुछ-न-कुछ पकड़े रहो। दवाओं का बक्सा अलग है न?"

"उसे ऊपर रख दिया गया है," हेम बोली। हेम के गले का स्वर गंभीर है, भरा-भरा-सा है।

सुरेश्वर को जैसे एकाएक कुछ खयाल हो आया। सरल, सरस आवाज़ में

अवनी से बोला।

"इस नई लड़की से आपका परिचय करा दूं। उसका नाम है हैमन्ती, हम उसे हेम कहते हैं। पर कोई-कोई उसे हैम भी कहता है। आंख की डॉक्टरी पास की है उसने। मैं उसे यहां ले आया।" कहकर सुरेश्वर ने गरदन घुमाकर हैमन्ती की ओर देखते हुए कहा, "हेम, ये हमारे खास मित्र हैं, अवनी बाबू—अवनीनाथ मित्रा यहीं रहते हैं। कन्स्ट्रक्शन की देख-भाल करना उनका काम है, इंजीनियर हैं।"

परिचय हुआ; मगर परिचितों में से कोई किसी का मुंह नहीं देख सका। स्वभावतः ही सौजन्य सुलभ बातचीत भी नहीं हुई। हैमन्ती ने सिर्फ़ गला साफ़ करने की थोड़ी-सी आवाज़ की। अवनी की समझ में नहीं आया कि सुरेश्वर ने उसे मित्र के रूप में परिचित क्यों कराया! वह सुरेश्वर का मित्र नहीं है, परिचित मात्र है; और यह परिचय भी कुछ ऐसा नहीं है जिससे सुरेश्वर उसे पसन्द कर सकता हो। क्या सुरेश्वर लाभ उठा रहा है, इसलिए अवनी की आवभगत करने की कोशिश कर रहा है? या कि यह निरी शराफ़त है! अवनी कुछ समझ नहीं पाया। सुरेश्वर का बहुत कुछ समझ में नहीं आता है। जैसे अभी तक यह समझ में नहीं आया कि हैमन्ती सुरेश्वर की रिश्तेदार है या नहीं। यह जो उसकी पूर्व-परिचित है, और सुरेश्वर की ही खातिर यहां आई है, यह तो समझ में आता है। किन्तु वह स्वेच्छा से आई है, या सुरेश्वर उसे लाया है, और दोनों में क्या रिश्ता है? यह समझ में नहीं आता है।

वर्षा से इधर का रास्ता बिलकुल बरबाद हो गया है। भारी बसों के चलते रहने की वजह से कच्चे रास्ते के दोनों किनारों की हालत नालों-जैसी हो गई है; बीच-बीच में गड्ढे हैं, पानी जमा हो गया है। उछल-उछलकर डगमगाती हुई जीप जा रही थी। जाते-जाते एक बार एक ओर झुककर उलट आने-जैसी हुई। हैमन्ती ने डगमगाहट न संभाल पाने की वजह से चौंक उठने जैसी आवाज़ की, फौरन उसके हाथ ने अंधेरे में अवनी की पीठ के पीछे आकर किसी चीज़ को धर दबोचा। अपने कंधे के पास अवनी हैमन्ती का हाथ अनुभव कर पाया। हैमन्ती उसकी सीट का ऊपरी हिस्सा पकड़े हुए है।

सुरेश्वर बोला, "इधर दोपहर में बहुत पानी बरसा है। उधर कैसा देखा आपने?"

"उधर तीसरे पहर पानी बरसा है, फिर बरस रहा है शायद।"

"ऐसे आंधी पानी में आप टाउन भागे? काम नहीं हो रहा है क्या?"

अवनी ने तुरन्त जवाब नहीं दिया, बाद में बोला, "आप हमारे हीरालाल को पहचानते थे?"

सुरेश्वर ने एक क्षण सोचा, "हीरालाल—! ओ, हां—पहचानता था।"

"वह मर जाएगा।"

सुरेश्वर मुंह फेरकर अवनी की ओर ताकता रहा।

अवनी ने थोड़ी देर तक मानो ज़ोर देकर हीरालाल की बात भूल जा[illegible]ने की कोशिश की थी: वह ज़ोर किसी सिद्धान्त अथवा साहस के बल पर नहीं दिय[illegible] था; चूंकि वह चिन्ता उसे पीड़ित व दुःखित कर रही थी, भयभीत व उद्[illegible]त कर रही थी,—इसलिए अवनी ने कुछ साधारण सामयिक सांत्वना का [illegible] लेकर दूर हट जाने की कोशिश की थी। अभी दोबारा उसने वेदना व अनुभ[illegible]।

"क्या हुआ था उसे ? एकाएक ?" सुरेश्वर ने शान्त स्वर में पूछा।

"ऐक्सिडेंट—" अवनी बोला। खूब संक्षेप में हीरालाल की दुर्घटना का विवरण दिया, अन्त में बोला, "क्या कहेंगे इसे आप ? भाग्य या ईश्वर का विधान ?"

अवनी के कंठ-स्वर में एक अद्भुत तिक्तता थी। यह तिक्तता उसकी पहले की भावुकता नहीं है, न भय ही है। किन्तु इस तिक्तता में मानो सुरेश्वर-जैसे व्यक्ति के प्रति कोई उपहास व वितृष्णा भी है।

सुरेश्वर मौन रहा, अवनी की ओर न ताककर वह बाहर देख रहा है। निर्जन स्तब्ध मैदान, छोटी-छोटी झाड़ियां, एक-दो पलाश या इमली के पेड़, पानी जमा हो गया है कहीं, झींगुर की झीं-झीं और मेंढकों का टर्र-टर्र सुनाई पड़ रहा है, जल-कण-घुली-मिली दुर्बल चांदनी है, ताकते-ताकते सुरेश्वर ने मृदु आवाज़ में कहा, "आपसे एक बात कहता हूं, किसी साधक व्यक्ति ने ही कहा है। कहा है : जिसे हम खोते हैं वह हमारे अन्तःकरण में कहीं लेटा-सोया हुआ है—ऐसा सोच लेना ही अच्छा है। उसे पुकार कर जगाने की कोशिश करना बेकार है। हम रोते-धोते हैं, मगर उससे वह जगता नहीं है। हो-हल्ला करने से कुछ मिलता नहीं है, सिर्फ यह प्रमाणित होता है कि प्रकृति के अलंघ्य नियम की बात हम कुछ नहीं जानते, जानकर भी समझते नहीं हैं।"

अवनी ने रंचमात्र आकर्षण बोध नहीं किया इस बात पर। यह तो मामूली बात है। सांत्वना पाने की कोशिश है। किन्तु सुरेश्वर के कहने की मुद्रा व कंठ-स्वर से उसने अनुभव किया कि वह विचलित हुआ है, तो भी उसने अपने आपको बड़ा संयत रखा है। सुरेश्वर से ठीक इस क्षण अवनी को घृणा हो रही थी। ये लोग सिर्फ घाव के ऊपर बैंडेज बांधकर घाव को ओझल किए रखते हैं, रोगी को देखने देना नहीं चाहते हैं। अवनी ने विरक्त होकर उपहास के स्वर में कहा, "हां,—सभी कुछ प्रकृति का अलंघ्य नियम है।" कहकर एकाएक गाड़ी को झट्से पानी-भरे गड्ढे से बचाने के लिए दाहिनी ओर मोड़ लिया। पहिया गड्ढे में पड़े, इसके पहले ही गाड़ी मैदान में चढ़ गई। हैमन्ती हिल उठी। उसने अवनी का कंधा पकड़ लिया है। अवनी ने गाड़ी मैदान से फिर रास्ते पर उतारी और कहा, "गाड़ी गड्ढे में पड़ती, तो हम लोग उलट जाते। शायद हीरालाल की तरह हममें से कोई घायल होता, अस्पताल में मरता। प्रकृति के उस अलंघ्य नियम को आप किस रूप में लेते ?"

सुरेश्वर के कपाल में मामूली-सी चोट लगी थी। उस पर हाथ फेर लिया। बोला, "पता नहीं। अभी यह नहीं बता सकूंगा।" शान्त, सरल रूप में उसने कहा, जैसे अवनी से इस विषय को लेकर बहस करने की इच्छा उसकी नहीं हो। अन्त में कुछ सोचकर, बहुत कुछ जैसे स्वगतोक्ति की भांति, बहुत कुछ जैसे कविता पाठ करने की तरह बोला, "आकाश व धरती मनुष्य की अरथी है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे शव-शय्या के साज हैं, नक्षत्र मेरे बदन पर बिखेरे हुए फूल हैं। तमाम जीव मेरी शव-यात्रा के साथी हैं। मृत्यु के पास सभी मुझे ढोए लिए जा रहे हैं।"

अवनी कैसा अन्यमनस्क हुआ। सुनने में अच्छा लगा, इसलिए, या कि कठोर व निर्मम कोई चीज़ एकाएक आज किसी अन्य रूप में दिखाई पड़ी, इसलिए !

"यह कविता है क्या ?" अवनी ने पूछा।

"नहीं, यह कविता नहीं है, लेकिन कविता भी हो सकती थी। आप यह न सोचें कि यह मेरा कथन है। एक प्राचीन चीनी दार्शनिक ने ऐसा कहा था।" सुरेश्वर ने धीरे-धीरे जवाब दिया। थोड़ी देर रुका, फिर बोला, "संसार की तमाम चीजों को लेकर ज्यादती की जा सकती है। जन्म को लेकर, मृत्यु को लेकर, प्यार को लेकर, धूर्तता को लेकर—तमाम कुछ को लेकर। ज्यादती अगर करनी ही हो—तो निकृष्ट ज्यादती क्यों की जाए ? बुरा नाटक लिखने से क्या फायदा ?"

अवनी कोई जवाब नहीं दे सका। हो सकता है, वह तब भी सब कुछ अच्छी तरह से नहीं समझ पाया था।

तब तक सुरेश्वर के आश्रम में चले आए थे वे लोग। सुरेश्वर ने आश्रम की बत्ती दिखाकर कहा, "वही मेरा निवास है। आप तो पहले कभी नहीं आए थे। आज भी बड़े असमय में मैं आपको खींच लाया।"

अवनी ने हंसकर कहा, "क्या नाम है आपके आश्रम का ?···अंधों को प्रकाश दो ?"

गाड़ी को आश्रम के अन्दर घुमाकर ब्रेक लगाने के बाद अवनी ने फिर कंधे के ऊपर हैमन्ती के हाथ का स्पर्श पाया। जैसे अंधेरे में हैमन्ती कंधे का सहारा लिए बिना उठ नहीं पा रही हो।

## दो

सवेरे नींद टूटने के पहले अवनी हीरालाल को सपने में देख रहा था। नींद टूट जाने पर उसने कुछेक क्षणों तक हीरालाल को ढूंढा, जैसे भीड़ में हीरालाल कहीं अदृश्य हो गया हो, अभी लौट आएगा। पर हीरालाल नहीं आया; प्रतीक्षा करते-करते थक जाने पर हताश होकर घूमने-भटकने की तरह धीरे-धीरे आंखें खोलीं अवनी ने। सुबह हो गई है, वह बिस्तर पर है, मसहरी की ओट से भी यह समझ में आ जाता है कि बाहर बादल छाए हुए हैं, कमरे के अन्दर रोशनी मद्धिम पड़ गई है, सिर के ऊपर पंखा घूम रहा है आवाज करता हुआ।

बिस्तर छोड़कर उठने का अवनी का मन नहीं हुआ। लेटे-लेटे ही जंभाई ली। कैसे अवसाद से भरा हुआ है सब कुछ। बीच-बीच में एक प्रकार का अद्भुत अवसाद का अनुभव करता है अवनी। यह अवसन्नता न तो मद्यपानजनित है, न क्लान्तिवश ही है। कोई चीज उसके शरीर व मन को एक ऐसी अवस्था में खींच लाती है जब, वह हर विषय में अनासक्ति का अनुभव करता है। उसकी इंद्रियां तब किसी भी काम में कोई उत्साह अनुभव नहीं करती हैं। इस अवस्था में अवनी एक ऐसी निर्विशेष अवहेलना-विरक्ति और उपेक्षा में डूबा रहता है कि वह जड़वत् प्रतीत होता है।

आज अवनी एक अन्य प्रकार का गंभीर अवसाद अनुभव कर रहा था। अवहेलना, उपेक्षा या विरक्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि उदासीनता से

है। मानो कल किसी लाश को कंधा देने और जलाने के बाद वह अतीव क्लान्त हो गया था, और दुःख-भार में सो गया था, आज अभी नींद टूटने पर जाग उठा, तो कैसी एक शून्यता अनुभव कर रहा है।

और भी थोड़ी देर अवनी चुपचाप लेटा रहा। हीरालाल की वात सोची। हीरालाल की वात सोचते समय कल शाम व रात की बात भी उसे याद हो आई। नैसर्गिक चित्र के विविध दृश्यों की तरह उसकी आंखों में मखरिया का जंगल, अस्फुट चांदनी, सुरेश्वर, हैमन्ती धुंधली होकर तिर रही थी। अन्त में अवनी दीर्घ श्वास छोड़कर मुंह के सामने से मसहरी हटाकर उठ पड़ा।

वाहर वहुत घने वादल नहीं हैं, पानी-जैसे हल्के रंग के हैं। खिड़कियों के कांच के पल्ले पूरी तौर पर खुले हुए नहीं हैं, कांच के पल्लों पर जल-कण हैं, वाहर वर्षा की झींसी झड़ रही है, दूर स्टेशन पर इंजन की सीटी वजी, वादल छाए रहने की वजह से कौवा कांव-कांव कर रहा है कहीं, वाहर नौकर-चाकर की आवाज़ सुनाई पड़ी।

अवनी ने चारपाई के नीचे से चप्पल ढूंढ़कर पैरों में डाल ली। गुसलखाने में जाने के पहले कमरे का दरवाज़ा खोला और नौकर को आवाज़ लगाकर चाय लाने के लिए कहा।

थोड़ी-ही देर वाद लौटा अवनी। तव तक महिन्दर ने मसहरी उठाकर, विस्तर साफ कर दिया था, और कमरे की खिड़कियों के कांच के पल्लों को एक-एक करके खोल रहा था। अवनी ने अन्यमनस्क भाव से ही देखा, हवा में मैदे के चूरे की तरह वर्षा की झींसी वेतरतीवी से उड़ रही है।

चाय ले आया नन्द। खिड़की के नज़दीक तिपाई पर चाय उतारकर रखी, रखकर चला जा रहा था कि अवनी ने उसे पंखा वन्द करके जाने के लिए कहा।

दूसरे दिन इतनी देर तक अवनी सवेरे के नित्य कर्मों में से वहुत कुछ निवटा लेता था, वह इस समय आफिस जाने के लिए भी मोटे तौर पर तैयार हो सकता था। पर आज उसका किसी भी काम में मन नहीं लग रहा था। पॉट से चाय उड़ेल ली अवनी ने, फिर थोड़ी-सी चीनी मिलायी। वाहर वही एक ही ढंग की वर्षा हो रही है।

इस साल इधर पानी ज्यादा वरस रहा है। पिछले साल इतना पानी नहीं वरसा था। फिर भी अव वरसात खत्म होनेवाली है; वरसात के मध्य में अवनी वाकायदा विरक्त हो उठा था। पिछले तीन महीने से काम-काज लगभग कुछ भी नहीं हुआ है। होने का उपाय नहीं था। प्रायः रोज मूसलाधार वर्षा हुआ करती थी। वर्षा शुरू होती तो रुकने का नाम नहीं लेती थी, कैसी एकरस क्लान्तिपूर्ण भद्दी वर्षा होती थी! वाट-घाट पानी से भर गया था, नदी-नालों में वाढ़ आ गई थी, जंगल में काम करना असम्भव था। तिस पर कुली-मजदूरों की कमी थी, रास्ते वन्द हो गए थे, माल-असवाव भी भेजे नहीं जा सकते थे। जनपद छोड़कर किसी भी जंगल में कुली-मजदूरों के तम्बू डाले गए हों, एकाएक देखा जाता। आंधी-पानी में तम्बू उड़ गए; चावल-दाल वह गया पानी में, माल-मत्ता तहस-नहस हुआ। वस, काम वन्द करके वैठा रहना पड़ता था। वीमारी-वीमारी, सांप विच्छू, भालू-वालू तो हैं ही। इतने प्रकार के वाधा-विघनों के होने से इस समय काम चलता है मंथर गति से। इस वार तो काम और भी मन्थर गति से हो रहा

है। यह इलाका पहाड़, जंगल, नदी-नालों से भरा हुआ है, इनके बीच में से होकर रास्ता साफ करके खंभे गाड़-गाड़कर ओवरहेड इलेक्ट्रिक लाइन खींच ले जाना समय सापेक्ष है।

मात्र दो वर्ष हुए अवनी यहां आया है। पहले-पहल तमाम काम ही उसे कुछ अजीब-से लगे थे। पुराने जमाने के कुछ कुदाल, गैंते, साबल, कुल्हाड़े, रस्सी-डोरियां और कुछ देहाती कुली-मजदूर-जवान किस्म के दो चार पंजाबी, खाकी हाफपैंट पहने एक सुपरवाइजर बाबू। सभी मिलकर जो कुछ कर रहे हैं, उसे असम्भव को सम्भव करना कहा जाए, तो भी अन्याय नहीं होगा। हीरालाल के कन्धे पर दुनिया भर का बोझ था। फिर भी आश्चर्य है, उसे पुराने जमाने के सम्पद् को लेकर भी देखते-देखते काम बहुत आगे बढ़ गया।

अवनी खुद ठीक इस काम के लिए उपयुक्त आदमी नहीं है। पहले उसने कागज-पत्र का काम किया था, इसी में उसकी ज्यादा जानकारी थी। एक विदेशी इंजीनियरिंग फर्म के औजार-जंतर बिठाने के काम में वह डिजाइन बनाया करता था। वह घाट-घाट का पानी नहीं पीता था। उस काम में आठेक साल बिताकर, एकाएक सब-कुछ छोड़-छाड़कर यहां चला आया। उसके आने के पीछे अनेक प्रत्यक्ष व परोक्ष कारण थे। मोटे तौर पर कारण यह था कि उसे अब अच्छा नहीं लगता था, अपने धंधे या पेशे से वह विरक्त हो उठा था, ऊपरवालों के साथ तू-तू मैं-मैं, सहकर्मियों के साथ मनोमालिन्य दिन-पर-दिन बढ़ रहा [redacted]। असंतोष और खिन्नता, ग्लानि और क्षोभ के बढ़ते-बढ़ते क्रमशः एक असह्य अवस्था हुई।

घर में भी मानसिक तृप्ति या आराम नाम की कोई चीज नहीं थी। ललिता के साथ उसका सम्बन्ध टूटने की अन्तिम सीमा तक पहुंच चुका था। बाहरी तौर पर वे लोग पति-पत्नी थे, तो भी अन्दर में दोनों एक-दूसरे से विरक्त और बलान्त हो गए थे। दोनों एक-दूसरे से घृणा किया करते थे। उनका दाम्पत्य सम्बन्ध पैरों के पास बिखरे कांच के टूटे बरतनों का-सा लगता था, जो टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरे पड़े हैं, जिनके धारदार किनारे चमक रहे हैं, जिन पर पैर रखने से ही क्षत-विक्षत हुए बिना उपाय नहीं है। वह तिक्तता सन्तान में भी फैलती जा रही थी। अवनी को यह काम्य नहीं था। ललिता कानून-अदालत की शरण लेने की पक्ष-पाती थी, अवनी भी अनिच्छुक नहीं था। सौभाग्य से एक भले आदमी की शर्त के मुताबिक समझौता हो जाने की वजह से फिलहाल वे एक-दूसरे से अलग हो सके। पत्नी को मुक्ति देकर अवनी दूर हट आया। ललिता ने बेटी को अपने पास रख लिया। भरण-पोषण के रुपयों से वह किसी भी तरह हाथ धोना नहीं चाहती थी।

चाय का प्याला खत्म हो गया था। अवनी ने सिगरेट सुलगाई। उसके बाद और भी एक प्याला चाय उड़ेल ली।

यहां नौकरी पाने में उसे समय नहीं लगा था। चूंकि वह बाहर भागना चाहता था—कोई-न-कोई नौकरी मिलने से ही चलेगा—इसी मन से अवनी नौकरी ढूंढ़ रहा था, इसलिए बारीकी से कुछ देखे बिना ही यहां दरखास्त दी थी। कई दिनों के बाद ही जवाब आया। अवनी हिचकिचाया नहीं। चला आया। यह नौकरी अर्ध-सरकारी कहना भी सकती है। जिम्मेदारी उतनी नहीं है। व्यवहा-रिक काम भी नहीं करना पड़ता है। सिर्फ देख-रेख और चिट्ठी-पत्री लिखने का काम करना पड़ता है। बिना झंझट का काम है। ऊपरवाले के नाम पर सिर पर

जो हैं वे उनका आफिस दूसरी जगह है, साल में दो-चार वार उनसे मुंह-दर-मुंह मुलाकात होती है। वे बिलकुल निकम्मे हैं, लेकिन आदमी अच्छे हैं। अवनी को इस काम में एक मात्र असुविधा यह है कि प्रायः ही उसे काम-काज देखने यहां-वहां जाना पड़ता है। थोड़ी-सी भाग-दौड़ करनी पड़ती है। इसकी उसे चिन्ता नहीं। सुविधा की तुलना में असुविधा प्रायः कुछ भी नहीं है। उसे रहने के लिए मकान मिला है, अलाउंस है। वेतन अवश्य वहुत अधिक नहीं है। पर अवनी को इससे कोई क्षोभ नहीं है।

दूसरा प्याला चाय खत्म करके अवनी उठा। फुहार रुक गई है। वादल कभी खूब पतले हो जाते हैं, तो कभी फिर गहरा जाते हैं। हवा वहुत है। लग रहा है, दिन चढ़ने पर अथवा दोपहर तक वादल छंट जाएंगे।

थोड़ा दिन चढ़ने पर अवनी जब ऑफिस जाने के लिए तैयार होकर घर के वरामदे पर निकल आया, तो वह थोड़ा-सा तरोताजा दीख रहा था। सद्यः दाढ़ी वनाया हुआ मुंह, सिर के वाल थोड़े-से भीगे हुए हैं, वदन पर हल्के रंग का वुश-कोट है, उसने धुला-धुलाया ट्राउजर पहन रखा है, हाथ में है वाटरप्रूफ। वर्षा नहीं हो रही थी, रास्ता भीगा हुआ है, पेड़ों के पत्तों पर पानी जमा हो गया है; वाग के वीच में से होकर जाते समय अवनी ने देखा, कदम्ब के पेड़ के नीचे खड़ा होकर महिन्दर अंडे खरीद रहा है। लकड़ी का फाटक खोलकर अवनी रास्ते पर आया।

अवनी को देखने पर उसकी उम्र का ठीक-ठीक अन्दाजा लगाना मुश्किल है। लगता है उसकी उम्र पैंतालीस साल के करीव होगी। लेकिन उसकी उम्र चालीस से कुछ ज्यादा है। कद में वहुत लम्वा है, अंग-प्रत्यंग लम्वे हैं, मुंह लम्वा और सख्त है, कपाल ऊंचा है, नाक लम्वी है, आंखें गंभीर वनाकर विठाई हुई हैं। गला भी थोड़ा-सा लम्वा है। वय-जन्य चर्वी का आधिक्य नहीं है शरीर में, जितनी है उतनी नहीं रहती, तो भी वह अशोभनीय नहीं दीखता। लगता है, अवनी वरावर ही छरहरे गठन का था, मजवूत था। पीठ थोड़ी-सी झुकी रहती है; कन्धा उतना भरा हुआ नहीं होने की वजह से ही शायद ऐसा दीखता है। अवनी के सिर के वाल पतले, घुंघराले और भूरे हैं। वदन का रंग सांवला-सा है।

पहली नजर में अवनी कठोर व गंभीर प्रकृति का-सा लगता है। सम्भवतः अपनी आंखों की दृष्टि के चलते। उसकी आंखों में अस्वाभाविक कुछ है, यह समझ में नहीं आता है, फिर भी लगता है, अवहेलना और उपेक्षा की आंखों से ही सव कुछ देखना जैसे उसकी आदत हो। नम्रता या सौजन्य, कौतूहल या उत्साह सहसा उसकी दृष्टि में दिखाई नहीं पड़ता है। हालांकि अवनी से मिल-जुल सकने पर यह समझ में आता है कि उसकी हल्के काले रंग की आंखों की पुतलियों और ईषत् पीले रंग की आंखों की जमीन में कैसी एक ममता भरी हुई है। यहां तक कि किसी-किसी समय वे आंखें और उनकी उज्ज्वल दृष्टि अवनी के किसी सुतीव्र आवेग को भी प्रकट करती हैं। वह जो कभी-कभी असहाय वालक की तरह विक्षुब्ध कातर हो सकता है—फिर मन हल्का रहने पर ऊंची आवाज़ में हंस सकता है, धाराप्रवाह वोल सकता है, ताश खेल सकता है—यह वहुतों को मालूम नहीं है। जिन्हें मालूम है वे लोग सोचते हैं, अवनी मज़ेदार आदमी है, कमाल का व्यक्ति है। जिन्हें मालूम नहीं है वे लोग अवनी को भला आदमी नहीं समझते हैं, वे लोग सोचते हैं, यह अहंकारी, असभ्य और निम्न कोटि का है। इन दो वर्षों

में यहां उसकी नेकनामी और बदनामी—दोनों ही कुछ-कुछ हुई हैं। बड़ाई की है उन लोगों ने जो कमोबेश अवनी के अंतरंग हो सके हैं, और बदनाम किया है उन लोगों ने जो उसके घनिष्ठ नहीं हो सके हैं। नेकनामी अथवा बदनामी के प्रति अभी तक खास कोई मोह नहीं जनमा है अवनी में।

●

आफिस के नजदीक पहुंचा तो अवनी की भेंट बिजली बाबू से हुई। साइकिल पर सवार होकर बिजली बाबू कहीं जा रहे थे, उतर पड़े। वे यहां की बस सर्विस के मैनेजर हैं। प्राय: प्रौढ़ हैं, फिर भी शौक नहीं छोड़ा है उन्होंने। सिचड़ी बालों में अलबर्टी ढंग से मांग निकालते हैं आंखों पर सुनहले फ्रेम का चश्मा है, धोती की दोनों लांगें पीछे खुसी हुई हैं, सफेद कमीज पहने हैं, कमीज के दोनों ओर चेस्ट पॉकेट हैं। ठिगने-से गोल-मटोल आदमी हैं, चमकता रहा है बदन का रंग। उंगलियों में तीनेक अगूठियां हैं। वे पान बहुत खाते हैं। घर में दो पत्नियां हैं, बाहर भी वे नारी-सहवास किया करते हैं, ऐसा लोगों का विश्वास है। बिजली बाबू की धारणा है मर्दों को अपनी सेहत टिकाकर रखना हो, तो इसके लिए सिर्फ कर्मठ होना ही काफी नहीं है, बल्कि पीने और मौज-मस्ती लूटने की जरूरत है। 'जो कुछ मिले हाथ बढ़ाने से, कर लो उसका भोग, रखो न कुछ भी बाकी, वरना बाद में हाथ तुम भी मिलोगे कभी मिट्टी में।' उन्होंने हिन्दी में अनूदित उमर खैयाम की रुबाइयों को जी भरकर कंठस्थ किया है, सुविधानुसार उनमें से दो-चार पंक्तियां गुनगुनाकर जीवन सम्बन्धी अपनी धारणा निष्कपट समझा देते हैं। अवनी से बिजली बाबू की एक प्रकार की मित्रता है। बिजली बाबू अपनी बस के ड्राइवर से बीच-बीच में कभी शहर, तो कभी किसी और बड़ी जगह से अवनी के लिए शराब वगैरह मंगवा दिया करते हैं, अवनी के बुलाने पर उसके साथ बैठकर पीते हैं, जवाबी खातिरदारी में भी आना-कानी नहीं करते हैं।

बिजली बाबू साइकिल से उतरकर बोले, "आपको कल रात नौ बजे के लगभग लौटते देखा। कहां गए थे आप? टाउन?"

"नहीं, मैं अस्पताल गया था।"

"ओ! हां-हां-हां—वह छोकरा···। कैसा है वह?"

"अच्छा नहीं है, बहुत ही खराब है।"

"कोई आशा नहीं है?"

"कहां भला!"

बिजली बाबू दो पल अवनी की ओर ताकते रहे। मनोयोग के साथ किसी चीज को लक्ष्य करते समय उनकी नाक थोड़ी-सी सिकुड़ जाती है, लगता है, वे सिर्फ आंखों से देख नहीं रहे हैं,—बल्कि गन्ध भी सूंघ रहे हैं। नीच प्राणियों की तरह बिजली बाबू घ्राण शक्ति से जैसे बहुत कुछ समझते हों। उन्होंने साइकिल के हैंडल से लटकते छाते की मूठ पर अकारण हाथ फेरा। उसके बाद कपाल दिखाने की मुद्रा बनाते हुए बोले, "इसे कहते हैं नियति।···कहा है न, नियति टाले नहीं टलती···। यहां मिसिर मा'ब, आदमी की एक नहीं चलती, कोई जोरा-जोरी नहीं चलती।"

अवनी कुछ नहीं बोला। दूसरी ओर ताकता रहा।

"इस दुनिया का यही खेल है—" बिजली बाबू ने अब की बार हंसने की

कोशिश की, "माथे के ऊपर एक साला प्यादा बैठा हुआ है, ठीक समय पर सम्मन पकड़ा देगा और खींच कर कचहरी ले जाएगा। इसीलिए तो कहता हूं, जब तक हो भई, खा-पीकर, मौज-मस्ती लूटकर गुजार दो। चार्वाक ऋषि-विषि ने कहा है, यावत् जीवेम सुखम् जीवेत्—। सही कहा है।"

अवनी को एकाएक इस समय सुरेश्वर की बात याद हो आई है। न जाने क्या कहा था कल सुरेश्वर ने···? धरती और आकाश मेरी अरथी है···चन्द्रमा, सूर्य, तारे···

बिजली बाबू ने तब तक अपनी जेब से सिगरेट निकालकर आगे बढ़ा दी थी। "लीजिए—एक कड़ी सिगरेट पीजिए।"

अवनी ने अन्यमनस्क भाव से ही सिगरेट ली। बिजली बाबू अपने सिगरेट-केस में मिक्सचर वाली सिगरेट बनाकर रखते हैं, बन्धु-बान्धवों को देना पड़ता है, इसलिए बनाने का वक्त जाया नहीं करते हैं।

दोनों ने ही सिगरेट सुलगाई। अवनी बोला, "आपकी बस तो, सा'ब प्रायः ही देखता हू, रास्ते में खराब होकर खड़ी रहती है। कल लौटती बार एक झमेला हो गया था। सुरेश्वर बाबू एक लड़की को ले जा रहे थे, रास्ते में अटक गए थे। मैंने उन्हें फिर पहुंचा दिया।"

"यह मैंने आज सवेरे सुना। भला बस का क्या दोष है, कहिए, दुधारू गाय ठहरी, उसे सभी दुह रहे हैं—मालिक से शुरू करके क्लिनर तक—सभी मुए थोड़ा-थोड़ा हिस्सा मार रहे हैं, मैं भी मारता हूं—संयुक्त उत्तरदायित्व का काम है, ऐसा काम कहीं सफल होता है! यह लांग ट्रिप, प्रॉपर मैंटेनेंस करना पड़े, तो कितना खर्च होता है, सोचिए तो सही। यह तो थिगलियां लगाकर चलाना है। वैसा ही होगा। मेरा भला क्या!···तो कल हमारे महाराज जी को आपने पार लगाया।" बिजली बाबू की आंखों में कैसा कौतूहल व हंसी उभरी।

अवनी बोला, "उस जगह का न जाने क्या नाम है?"

"उस जगह का नाम गुरुडिया है।"

"रात को ठीक समझ में नहीं आया, लेकिन देखा, बहुत सारे कमरे-वमरे बनवाए हैं उन्होंने।"

"हां, ठाठ से बनवाए हैं—। आप शायद उधर पहले नहीं गए थे? दिन रहते जाइएगा एक दिन, देखिएगा। सुरेश महाराज, समझे मित्तिर सा'ब, बड़े काम के आदमी हैं। तीन-चार वर्षों तक हाथ धोकर पीछे पड़े थे, अब जाकर मोटे तौर पर खड़ा कर डाला है।"

"उन्हें आप सुरेश महाराज, महाराज जी—यह सब क्यों कहते हैं?" अवनी ने जरा मुस्कराकर कहा। उसके कहने में कोई खास कौतूहल नहीं था, रहने की बात नहीं है, बिजली बाबू बराबर ही उसी तरह से बातें किया करते हैं, और पहले भी दो-चार बार अवनी ने उनसे परिहास करते हुए पूछी थी यह बात।

पहले की ही तरह इस बार भी बिजली बाबू ने हंस-हंसकर जवाब दिया, "कहूंगा नहीं! भले ही गेरुआ न पहनते हों, तो भी सुरेश महाराज संन्यासी आदमी हैं। कपटी योगी नहीं, कर्म योगी हैं···। गीता-वीता पढ़ी है क्या आपने मित्तिर सा'ब? मैंने तो नहीं पढ़ी है, घर में एक है, हिन्दू का लड़का ठहरा, मरते समय सिरहाने रखनी होगी न!" बिजली बाबू अपनी मसखरी में मग्न होकर हंसे।

हंसी रुकी, तो एकाएक बोले, "सुरेश महाराज कल आए थे, मेरे बस-ऑफिस में पधारे थे दो पल के लिए। बोले, न जाने किसे उतारने आए हैं। देखा तो, एक बड़ी कद्दावर लड़की को लेकर बस पर चढ़े, मालमत्ता समेत।···पर सुना कुछ ? यह लड़की कौन है ?"

"आंख की डॉक्टर है।"

"तो औरतें भी आंख की डॉक्टर होती हैं ?"

"क्यों नहीं होंगी ?"

"सो तो सही बात है। मर्दों की आंखों को औरतें ही अच्छी तरह समझती हैं ···औरतों की आंखों का भी औरतें अच्छी तरह अन्दाजा लगाती हैं। पर मैं तो देखता हूं···। हां, तो जो आई वह क्या है, सधवा या कुंआरी ?"

"पता नहीं।"

"सुरेश-महाराज की कोई लगती है क्या ?"

"जान-पहचान की है।"

"अपनी कोई नहीं है ?"

"कुछ समझ में नहीं आया !"

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही। दोनों ही शायद मन-ही-मन उस लड़की को देख रहे थे। अवनी ने एकाएक जाने की जल्दी अनुभव की। बोला, "तो चलता हूं···।"

बिजली बाबू भी जाने के लिए व्यस्त हो गए। "देखो हरकत, मैंने आपको लेट करवा दिया। अच्छा तो, मिस्टर सा'ब, चलता हूं। मुझे एक बार गोपीमोहन के पास जाना है।···शाम को भेंट-मुलाकात होगी।"

बिजली बाबू की साइकिल सामने से हट गई, तो अवनी ने आफिस की ओर कदम बढ़ाए।

थोड़ी दूर आगे जाते ही अवनी का ऑफिस है। देखने पर ऑफिस-सा नहीं लगता है, कोई बन्द हो जानेवाला छोटा-मोटा कारखाना जैसा दीखता है बहुत कुछ वैसी ही शक्ल है। कुछ कटीली झाड़ियों के बाड़े हैं, उनसे लगी बहुत बड़ी जगह को जालीदार तारों से घेर दिया गया है, बीच-बीच में यहां-वहां एक-एक छोटे-मोटे ईंट के रंग के गहरे लाल घर हैं, उन पर टाइल्स के छाजन हैं। खुली जगह में तरह-तरह की चीजें बिखरी हुई हैं—लोहे के खंभे, शाल के खंभे, हरेक तरह के तार, केबल का एक पहिया, टूटे बक्से, चीनी मिट्टी के इनसुलेटर, दो-एक टूटे-फूटे ट्रक, सब एक जमाने के भी। और कितनी विचित्र वस्तुएं हैं। उन्हीं के बीच कहीं कनेर के पेड़, और केवड़े के फूलों के झुरमुट हैं। एक बहुत बड़ा हर्रे का पेड़ है एक ओर—उसी से सटा हुआ कुआं है। यह मकान किराए पर लिया हुआ है—यह समझने में कठिनाई नहीं होती है।

अवनी किसी ओर देखे बिना सीधे ऑफिस में चला गया। अभी यहां कुली-मजदूरों के या भीड़ के रहने का कोई कारण नहीं है। ऑफिस के कुछेक नौकर-चाकर सिरानी हैं। मोटे तौर पर यह जगह शान्त है। वर्षा के पानी से जैसे कीचड़ हो गया है। वैसे ही घास भी काफी उग गई है। सभी कुछ भीगा-भीगा-सा दीख रहा था।

अपने कमरे में जाकर अवनी कुर्सी पर बैठा। बेयरे ने मेज-कुर्सी पोंछकर साफ कर रखा है, खिड़कियां भी खुली हुई हैं। सामने की ही दीवार पर तरह-तरह

के ब्लू-प्रिंट टंगे हुए हैं, एक बड़ी-बड़ी तारीखों वाला कैलेंडर भी लटक रहा है।

अवनी ने कुर्सी पर बैठकर, हाथ बढ़ाकर घंटी का बटन दबाया। बेयरा आया। सुबह की डाक से आई चिट्ठियों को किरानी को दे देने को कहा। चिट्ठी-पत्रियों को देखने की उसकी इच्छा नहीं हो रही है।

अनमना होकर बैठा रहा अवनी। खिड़की से कभी आकाश देखा, तो कभी जामुन का पेड़। मुंह फेरते ही दीवार पर टंगे नक्शों पर नजर पड़ जाती थी। बिजली बाबू से मुलाकात होने के बाद न जाने क्यों उसे सुरेश्वर की ही बात याद आ रही है—शायद हैमन्ती के कारण बिजली बाबू की तरह उसे भी असीम कौतूहल है उस लड़की के बारे में। वह कौन है, क्यों यहां आई। सुरेश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है हैमन्ती का ?

सुरेश्वर के आश्रम से आते समय सुरेश्वर ने कहा था आज सवेरे किसी जरूरी काम से उसे शहर जाना है, आंधी-पानी न होने पर वह जाएगा, और शहर जाने पर हीरालाल की खोज लेगा। तो क्या सुरेश्वर शहर गया है ? या कि, कल अवनी ने रास्ते के विपन्न आदमी को घर पहुंचा दिया था। इसलिए वह सुरेश्वर की भद्रता थी, उसने झूठा दिलासा दिया था।

वह चाहे और जो भी हो, अवनी उसे फालतू और दगा देने वाला व्यक्ति नहीं समझ सकता है। आज के दिनों में कैसे एक अधेड़, शिक्षित, विवेकशील पुरुष आश्रम खोलकर बैठ सकता है, अवनी के दिमाग में भले ही यह न घुसे, तो भी सुरेश्वर पर इस सब मामले में बिलकुल अविश्वास नहीं किया जा सकता है। हो सकता है, सुरेश्वर सचमुच ही शहर गया हो।

कल उस हालत में भी अवनी बड़ा अवाक् हुआ था। कहां का कौन गुरुडिया—जहां आने-जाने का अच्छा रास्ता नहीं है, जहां जंगल और पहाड़ी गांव-गंवई हैं वहां सुरेश्वर ने आज तीन-चार वर्षों से धीरे-धीरे सचमुच ही एक 'अन्धाश्रम' बनवा डाला। सुरेश्वर और हैमन्ती को उतार कर लौटते समय भला कितना देखा जा सकता था, —फिर भी उसी बीच जितना देखा था अवनी ने, उससे वह अवाक् हुआ था। सुरेश्वर काम का आदमी है, कम-से-कम ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सुरेश्वर धूनी रमाकर वहां बाबा जी होकर बैठा हुआ है।

इसी सुरेश्वर ने, साल भर पहले—एक बार अवनी से कुछ मदद के लिए अनुरोध किया था। अवनी जितनी और जो मदद दे सकता है, उतनी ही और वही मदद दे। पर अवनी ने उसका अनुरोध सीधे ठुकरा दिया था और कहा था, 'क्षमा कीजिएगा, वह सब मैं नहीं देता।' शायद इस तरह से ठुकराये बिना भी अवनी कुछ दे सकता था, जैसा कि अन्यान्य जगहों पर दिया करता है, भद्रता-वश या दया करके। पर सुरेश्वर के मांगने पर अवनी ने जान-बूझकर ही उसके मुंह पर 'नहीं' कही थी। कारण इस प्रकार के आदमी को वह आघात पहुंचाना चाहता था।

आखिर सुरेश्वर किस प्रकार का आदमी है ?

"आश्रम-वाश्रम में मेरा कोई इंटरेस्ट नहीं है। मैं उस सब पर विश्वास नहीं करता। अन्धों के वास्ते कुछ करने के लिए जरूरत है अस्पताल की। जरूरत है डॉक्टर की। क्या आप डॉक्टर हैं ? आप अस्पताल खोलेंगे जंगल में ?"

"मेरा तो कोई सम्बल नहीं है। कोशिश कर रहा हूं। धीरे-धीरे जितना कर

सकता हूं, करूंगा।"

"सम्बल जब नहीं है, तो आश्रम क्यों बनवा रहे हैं ?"

"इस आशा से कि आप लोगों की मदद मिलेगी।"

"तो फिर बनवाइए। लेकिन अफसोस है, मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकूंगा।"

आश्चर्य है, अपमानित होने के बावजूद न तो उसने गुस्सा किया, न कटु बात कही, बल्कि पहले की ही तरह सरल भाव से मुंह पर मुस्कान बिखेरता रहा, अवनी की दी हुई चाय पी, तरह-तरह की दूसरी बातें कीं। उसके बाद नमस्कार करके चला गया। हालांकि, अवनी प्रायः निःसन्दिग्ध है कि इस अपमान ने सुरेश्वर को भीतर से विचलित किया था, पर ऊपर से उसने उसे प्रकट नहीं किया था।

इसके बाद भी कई बार दोनों की एकाएक ही मुलाकात हुई थी। सुरेश्वर ने प्रसन्न मुंह से बात की थी, गपशप की थी, अपने आश्रम में आने का निमंत्रण दिया था। पर अवनी ही न जाने कैसा थोड़ा-सा संकुचित हुआ था, मगर आखिरकार परवाह नहीं की थी।

असल में सुरेश्वर-जैसे लोगों के ऊपर अवनी को परम वितृष्णा थी। व्यक्तिगत रूप से सुरेश्वर चाहे जो भी हो, ये लोग एक गुट हैं, सामाजिक दृष्टि से निर्धारित सम्प्रदाय हैं, सुरेश्वर को उससे अलग नहीं किया जा सकता है। डरपोक की तरह ये लोग जीवन की तमाम यन्त्रणाओं की बगल से होकर भाग गए हैं—धर्म के नाम पर, सेवा के नाम पर, मुक्ति के नाम पर। ऐसा नहीं कि भाग कर ये लोग साफ सुथरे हो गए हैं। संसार के तमाम प्रकार के स्वार्थों, नीचता, आकांक्षाओं, मोहों आदि का लालन-पालन कर रहे हैं। लेकिन यह कपट क्यों ? यह झूठ क्यों ?

साधारण लोगों की तरह न तो उन्हें परिश्रम करना पड़ता है, न रोज-रोज ग्लानि सहनी पड़ती है, न उन्हें कहीं कोई गरज है, न कोई जिम्मेदारी है, न माता-पिता, पत्नी-पुत्र, परिजन आदि के लिए उन्हें कोई चिन्ता है, न उद्वेग है; जो कठोर समस्याएं साधारण लोगों को सदा नोचती-खसोटती हैं, उनका गला घर दबोचती हैं, उनकी आयु निःशेष कर डालती हैं, तुम लोग उन समस्याओं से दूर भाग गए हो। हालांकि उन बेचारों की श्रद्धा के चन्दे पर तुम लोग ठाठ से जिन्दा हो, आश्रम का निर्माण कर रहे हो, मठ बनवा रहे हो, मन्दिर बनवा रहे हो—और भक्तों शिष्यों से घिर कर धर्म-ज्ञान बांट रहे हो। अपमंण्य, स्वार्थी, दगाबाज हैं सब।

अवनी प्रायः निःसन्दिग्ध था, सुरेश्वर कुछ भी नहीं करेगा, न कर सकेगा। ज्यादा से ज्यादा अपना एक अखाड़ा तैयार करेगा, किसी को धर-पकड़कर एक मन्दिर भी बनवाएगा शायद। उसके बाद शंख, घंटा-घड़ियाल बजवाकर, भक्तों का जमघट लगवाकर, छोटा-मोटा महापुरुष बनकर अधिष्ठित होगा।

हालांकि सुरेश्वर भद्र, शिक्षित और बुद्धिमान है। अवनी यह समझ नहीं पाता है कि कैसे उसका प्रायः समवयस्क एक आदमी आज के दिनों में इस तरह से अपने-आपको ठग सकता है। इस जंगल में क्या उसके 'अन्धाश्रम' खोलने की जगह है ? यदि तुम्हारा उद्देश्य महान ही रहा हो—तो क्यों तुम खुद अच्छे आंख के डॉक्टर नहीं हुए ? क्यों तुम शहर-बाजार, जनपद में अपना चेम्बर खोलकर

नहीं बैठे ? क्यों तुम किसी अस्पताल से सम्बद्ध नहीं रहे ?

तुम धर्म-प्राण हो, ईश्वर में विश्वास करने वाले हो। अवनी का उसमें कोई आग्रह नहीं है। उत्साह भी नहीं है। बल्कि उपेक्षा है। मनुष्य को जो-जो पसन्द है वह उस पर विश्वास कर सकता है, वह चाहे तो भूत-प्रेत, दूसरे जन्म, दीनों पर दया करनेवाले अवतार आदि पर विश्वास कर सकता है—इसमें किसी को कुछ कहना नहीं है। अवनी इस सब की परवाह नहीं करता है। वह कुछ और बातों पर विश्वास करता है, बिजली बाबू की फिर दूसरी धारणा है।

किन्तु अवनी यह समझ नहीं पाया कि सुरेश्वर वास्तव में ही कैसे गुरुडिया के जंगल में 'अन्धाश्रम' का निर्माण कर सका ! भले ही कुछ न हो—पर देखने पर अवाक् होने लायक थोड़ा-बहुत जरूर है। आखिर यह कैसे किया उसने ?

भला कैसे हैमन्ती-जैसी लड़की को सुरेश्वर यहां खींच लाया ? हैमन्ती ही भला क्यों आई ? तो क्या सुरेश्वर उसे बहकाकर लाया है ? बहाकर लाया है ? जैसे खुद बहकर आया है—वैसे ही क्या बहाकर लाया है हैमन्ती को ? या कि सुरेश्वर से प्यार करती है, इसलिए आई है वह ? प्या…र ?

क्या सम्बन्ध है दोनों में, कुछ भी समझ में नहीं आता है। अवनी को सुरेश्वर रहस्यमय पुरुष-सा लग रहा था। उसके आश्रम में युवती के आने का परिणाम क्या होगा, यह भी समझ में नहीं आ रहा था।

और भी थोड़ा-सा दिन चढ़ा, तो पोस्ट-ऑफिस के फोन की मार्फत अवनी के पास खबर आई कि हीरालाल का कल रात देहान्त हो गया है।

सुरेश्वर ने शहर से फोन किया था।

## तीन

एक समय इस जगह का कोई नाम ही नहीं था, गुरुडिया था और भी थोड़ी दूर पर। सुरेश्वर का अन्धाश्रम बनते समय गुरुडिया जैसे कदम बढ़ाकर यहां तक भी चला आया। तब गुरुडिया कहने से गांव समझा जाता था, अब समझा जाता है 'अन्धाश्रम'। तब ठीक इस इलाके में कोई बस्ती नहीं थी, जंगल और मैदान पड़ा हुआ था; सर्दियों में शाल के जंगल में लकड़ियां काटने आया करते थे लकड़हारे, लकड़ियां काटने की आवाज और बैलगाड़ियों के आने-जाने से सुबह-दोपहरी मुखरित हुआ करती थी। युद्ध के अन्तिम चरण में इधर के जंगल-झाड़ कुछ साफ हुए थे, कच्चे रास्ते भी थोड़े-बहुत बने थे। सही विवरण कोई नहीं जानता है, लेकिन कुछ बैरक बने थे, कांटेदार तारों का बाड़ा भी लगाया गया था। कोई कहता था कि यहां गोरखे सिपाहियों की चांदमारी हुई थी, कोई इसे कैदियों का मैदान कहता था। सम्भवतः युद्ध के अन्तिम चरण में कुछ होने का उपक्रम हुआ था यहां, पर युद्ध रुक जाने की वजह से सब कुछ बन्द हो गया। जितना कुछ हुआ था उसे छोड़कर चले गए वे लोग। उसके बाद लम्बे अरसे तक बैरक के कच्चे मकान पड़े ही हुए थे, देहात के लोग क्रमशः ईंटें-लकड़ियां निकालकर ले गए थे, बाकी

आंधी-पानी, धूप-बारिश में जमींदोज हो गया था।

देख-भालकर सुरेश्वर ने इसी जगह को पसन्द किया था। कारण, उसकी सामर्थ्य परिमित थी। अपने थोड़े-से धन और दूसरों की कृपा पर जहां आदमी निर्भर रहता है वहां इससे ज्यादा कोई प्रत्याशा नहीं की जा सकती। नाममात्र मूल्य पर बहुत बड़ी जमीन मिली यहां सुरेश्वर को, कच्चा रास्ता मिला, मोटे तौर पर आस-पास साफ-सुथरा है और थोड़ी दूर पर एक गांव मिला। टूटे-फूटे घरों के कुछ अवशेष हैं, यह भी भला बुरा क्या है!

सोचकर देखा जाए, तो सुरेश्वर ने जगह मोटे तौर पर अच्छी ही पसन्द की थी। यहां का प्राकृतिक परिवेश कमाल का है। छोटा नागपुर के पहाड़ी इलाके की प्रकृति जैसी हो सकती है। अपरिमित वन-सम्पदा है। शाल, पलाश और महुए के पेड़ों का जैसे अन्त नहीं हो, असंख्य हर्रे और अर्जुन के पेड़ हैं; थोड़ानीम और बरगद के पेड़ हैं। ऊंचा-नीचा प्रान्तर है, कहीं वह अनुर्वर भूमि लहरों के फन की तरह माथा उठाए खड़ी है, कहीं नीचे झुक गई है, मिट्टी कड़ी, कंकरीली और पथरीली है, हवा में नमी नहीं है, सूखी है, वनगन्ध से पूर्ण है। गुरडिया का कच्चा रास्ता पकड़कर थोड़ी ही दूर आगे जाने पर सरकारी पक्का रास्ता है। इस रास्ते से तीन तरफ जाया जा सकता है, दक्षिण और मध्य बिहार का बहुत बड़ा हिस्सा इस रास्ते के जाल पर फैला हुआ है। गुरडिया से रेल स्टेशन भी कोई बहुत ज्यादा दूर नहीं है, व्यापारी लोग हर दम आया-जाया करते हैं।

सुरेश्वर ने जो चाहा था—सुनसान, शान्त परिवेश, आस-पास में देहात, पहुंच के अन्दर हाट-बाट, सम्पर्क की सुविधा—यहां मोटे तौर पर वह सभी कुछ उसे मिला था।

आश्रम तैयार करने के पहले सुरेश्वर कहां था, यह यहां का कोई नहीं जानता है। वह बहुत घूमा है, यह अवश्य समझ में आ जाता था। आज प्रायः चार वर्षों से सुरेश्वर यहां है। पहले पहल वह शहर की तरफ रहता था, उसके बाद आया स्टेशन के पास। शहर में उसके तरह-तरह के सम्पर्क थे। ईसाई मिश-नरियों के साथ, सेवा संघ के कर्मचारियों के बीच भी उसका मेल-जोल था।

स्टेशन की ओर जब चला आया सुरेश्वर, तभी से वह जैसे कुछ ढूंढ़ रहा था। पहले-पहल कुछ समझ में नहीं आता था कि सुरेश्वर क्या ढूंढ़ रहा है। लगता था, अधिकांश बंगाली इधर आने पर जैसा करते हैं—घर-मकान, जमीन-जायदाद, बाग-बगीचा सुरेश्वर भी वही करेगा, और बराबर के लिए रह जाएगा। क्रमशः यह समझ में आया कि सुरेश्वर जगह-जमीन ढूंढ़ रहा है कुछ दूसरे उद्देश्य से। अन्धों-दुखियों के लिए कुछ बनवाएगा। पर क्या बनवाएगा? अस्पताल? या आश्रम?

मन-ही-मन जो कुछ सोचा करता था सुरेश्वर दूसरों के आगे उसे प्रकट नहीं करता था। जो कुछ थोड़ा-सा प्रकट करता था उससे स्पष्ट कुछ समझ में नहीं आता था। अन्धों के लिए उसके इतना विचलित होने का कारण क्या है, वह क्या करना चाहता है यह कभी भी उसने विस्तार से नहीं बताया था। पहला उसका व्यक्तिगत मामला था, दूसरे के बारे में उसकी धारणा थी कि जो कुछ उसने नहीं किया है, जो सिर्फ उसकी इच्छा है उसे विस्तार से कहने में अपनी कल्पना-शक्ति का परिचय दिया जा सकता है, इससे ज्यादा और कुछ नहीं हो सकता है। सुरेश्वर

बेकार का सपना देखना और उसका विवरण सुनाकर किसी को चौंकाना पसन्द नहीं करता था।

शुरू से ही उसे संशय था। तरह-तरह की दुविधाएं भी थीं। बहुत दिनों तक उसने अनिश्चियता अनुभव की थी। अपने काम की सफलता के बारे में वह इस संशय-बोध के कारण चिन्तित था, तो भी वह हताश नहीं होता था।

अपने धन व सामर्थ्य के अनुसार सुरेश्वर ने अपने अन्धाश्रम की नींव डाली। 'अन्धाश्रम' नाम उसने नहीं रखा था, लोगों के कहने से यह नाम पड़ गया है। देहात के लोग अभी भी इसे 'दवाखाना' कहते हैं।

गुरुडिया आकर पहले-पहल अपना सिर छिपाने के लिए एक छप्पर डाल लिया था सुरेश्वर ने, और एक छोटी-सी झोपड़ी बनाई थी बगल में ही, वही था आंख का अस्पताल। शहर से सप्ताह में एक दिन बस पर सवार होकर एक मद्रासी ईसाई आया करते थे, वृद्धप्राय मोमेन साहब। मिशनरी-अस्पताल में आंख की डॉक्टरी की थी उन्होंने लम्बे अरसे तक। तब उन्होंने अवकाश प्राप्त किया था। फिर भी दु:खियों-अनाथों की यथासाध्य सहायता किया करते थे। हाट लगने के दिन देहात से आते-जाते समय ग्रामीण लोग सुरेश्वर के आंख के अस्पताल में अपनी आंखें दिखा लिया करते थे। एक समय सुरेश्वर को साइकिल पर सवार होकर गांवों में घूम-घूमकर अपने आंख के अस्पताल के बारे में लोगों को बताना पड़ा था। इस अंचल में आंख की बीमारी कम नहीं है। बच्चे-कच्चों से शुरू करके जवान मजदूर तक भी तरह-तरह की आंख की बीमारियों से पीड़ित हैं।

आश्रम की नींव पड़ी थी इसी तरह से अति दीन शक्ल लेकर। क्रमश: वह शक्ल बदलती जा रही है। अभी भी ऐसा कुछ नहीं हुआ है जिसे देखकर विमूढ़ या हतबुद्धि होना पड़े, नितान्त साधारण एक सीधा-सादा आकार ले सका है। तो भी यहां—जंगल-झाड़ और देहात में—जहां कोई भी घटना नहीं घटती है, प्राकृतिक नियम से सिर्फ पेड़-पौधे बढ़ते हैं और जैविक नियम से लोग जनमते और मरते हैं—साधारण जो कुछ घटा, जितना घटा उसी से बहुत-से लोग विस्मित होते हैं, हो सकता है, मुग्ध भी होते हों। सुरेश्वर का 'अन्धाश्रम' बहुत कुछ वैसी ही विस्मयकारी घटना है।

'अन्धाश्रम' की सारी बातें हैमन्ती को मालूम नहीं थीं, कुछ-कुछ सुना था उसने, चिट्ठी-पत्रियों से भी उसे पता चला था। गुरुडिया आकर देख रही थी सब कुछ।

"कैसा देख रही हो ?" सुरेश्वर ने दूसरे ही दिन पूछा था हैमन्ती से।

"बड़ा सुन्दर है।" हैमन्ती ने तब भी खास कुछ नहीं देखा था।

"यह जगह तो सुन्दर है ही।···हमारा इन्तजाम तुम्हें कैसा लगता है ?"

"भला मैं कितना समझती हूं। अच्छा ही लग रहा है।"

"और तुम्हारा अस्पताल कैसा है ?"

"सभी कुछ तो है। कोई खास दिक्कत नहीं होगी।"

"पहले पहल जब यह बना था, तब एक झोपड़ी और टीन की कुर्सियां थीं। हाट लगने के दिन मोमेन साहब आया करते थे। हाथ में एक सूटकेस लिए हुए, औजार-जंतर ढोकर लाते थे।"

"अब तो बहुत कुछ हो गया है।"

"साहब ने खुद ही आधी चीजें दी थीं, बाकी चीजें खरीदनी पड़ी थीं।... पिछले साल साहब का देहान्त हो गया है। अभी जो आते हैं उन्हें तरह-तरह की दिक्कतें हैं। जोन्स-जी साहब ने अपनी पसन्द के मुताबिक यह अस्पताल बनवाया था।"

"वे काम के आदमी थे।"

"वे निष्ठावान व्यक्ति थे। दया, धर्म और प्रेम—तीनों गुणों में वे सच्चे ईसाई थे।" सुरेश्वर ने श्रद्धा के साथ कहा, बीस वर्षों तक उन्होंने सिर्फ इधर के मिशन अस्पतालों में दीन-दुखियों की आँखें देखी थीं। वे कहा करते थे: ईसा मसीह ने अन्धे को उसकी दृष्टि-शक्ति लौटा दी थी, और हम पापी, लोगों को दृष्टि-हीन किया करते हैं।"

हैमन्ती खामोश रही।

सुरेश्वर ने बाद में पूछा था, "कैसा लग रहा है तुम्हें?"

"अच्छा।"

"रह सकोगी?"

हैमन्ती ने आँखें उठाकर ताका, देखा सुरेश्वर को, थोड़ा-सा माथा झुकाया, "रह सकूँगी।" उसके बाद से, आज कई दिनों से हैमन्ती नये वातावरण के अनुसार अपने आपको ढाल लेने की कोशिश कर रही है।

●

नींद के मारे दोनों आँखें बन्द होती जा रही थीं। बस का हॉर्न बार-बार बजा, तो पलकें खोलीं हैमन्ती ने, फिर तुरन्त आँखें बन्द कीं। तन्द्रा की खुमारी में कई पल गुजरे, उसके बाद अधमुँदी आँखों से खिड़की की ओर ताका उसने, थोड़ी दूर पर जामुन के पेड़ के नीचे बस आकर रुकी है, लोग-बाग उस पर चढ़ रहे हैं, इसी दम फिर हॉर्न बजाकर बस चली जाएगी। बिस्तर पर लेटे हैमन्ती कुछ भी नहीं देख पा रही थी, मगर सभी कुछ समझ पा रही थी। आज आठ-दस दिनों में मोटे तौर पर यहाँ का सभी कुछ उसे मालूम हो चुका है। यह बस दोपहर की है, अभी लगभग तीन बज रहे हैं, अथवा बज चुके हैं।

कई बार आखिरी हॉर्न बजाकर बस चली गई। हैमन्ती ने आलस्य से डूबकर जमाई ली, आँखों की दृष्टि अभी भी साफ नहीं है, निंदासी आँखें थोड़ी-सी छलछलायी हुई हैं।

हैमन्ती इसी तरह से और थोड़ी देर तक लेटी रही, फिर आँखें पोंछकर बिस्तर पर उठ बैठी। लम्बी-सी जंभाई ली। दोपहरी में वह सोना नहीं चाहती है, फिर भी यहाँ इतने सन्नाटे और निर्जनता से लेटे-लेटे कागज-पत्र, किताब आदि पढ़ते-पढ़ते न जाने कब दोनों आँखें मुँद जाती हैं। सो जाने पर रात को फिर नींद आने का नाम नहीं लेती है। यहाँ रात को जगा रहना कैसा लगता है! हैमन्ती को डर लगता है। लगता है, अखिल विश्व में कहीं कोई नहीं है, एक भी आदमी नहीं है, सिर्फ वह अकेली है; चारों ओर की अवर्णनीय स्तब्धता उसकी चेतना को इतनी नगण्य, हेय तथा तात्पर्यहीन बना देती है कि हैमन्ती एक आतंक-सा अनुभव करके मृतप्राय बनी रहती है।

ऐसा दो दिनों तक हुआ था। उसके बाद से हैमन्ती दोपहर में सोना नहीं चाहती है। यहाँ तक कि तनिक ज्यादा देर तक तन्द्रा की खुमारी में लेटी रहती

है, तो भी शाम से वह कैसी परेशानी-सी महसूस करती है, रात की बात सोचकर उसे घबराहट होती है। शायद यह सब कुछ भी नहीं है, और दो दिन बाद सभी कुछ की आदत पड़ जाएगी। बिल्कुल नयी जगह है, पुराने अभ्यस्त जीवन के साथ कहीं कोई मेल नहीं है, न कोई सादृश्य है, इस तरह से पहले वह और कभी भी नहीं रही थी—इसीलिए नया-नया ऐसा लगता है। बाद में अभ्यस्त होने पर ऐसा नहीं लगेगा।

हैमन्ती बिस्तर से उतरी। खिड़की पर खड़े होने पर जामुन के पेड़ के निकट वाला स्थान दिखाई पड़ता है। वह स्थान अभी निर्जन है, वहां कोई नहीं है। दोपहर में वहां एक-एक करके लोग जमा होते हैं, पांच-सात-दस कोई निश्चित संख्या नहीं। गांव-गंवई से लोग आते हैं; यहां जो लोग आंख दिखाने आते हैं वे लोग भी बस आने के समय पर उस स्थान पर वापस जाकर गाड़ी का इन्तजार करते हैं। बस के चले आने पर सब सूना हो जाता है—जामुन के पेड़ के निकट वाला स्थान निर्जन हो जाता है।

फिर बस आएगी एक बार, शाम तक आएगी और जाएगी। उसी बस से हैमन्ती और सुरेश्वर आए थे। उन लोगों को आने में असुविधा हुई थी क्योंकि बस खराब होकर रास्ते में रुक गई थी। अवनी बाबू ने जीप से उन लोगों को पहुंचा दिया था। उनकी बातचीत कैसी तो है!

बगल की ओर की खिड़की से हटकर हैमन्ती बिस्तर की तरफ वाली खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई। खिड़की को नीचे से आधा ढककर नया परदा टांगा है उसने। हाथ के पास कुछ नहीं था, अधपुरानी साड़ी से परदा बनाया गया है। यहां कहीं भी परदा नहीं है, सब कुछ सूना है, खुला हुआ है। बस, अस्पताल के कमरों में हा परदे दिखाई पड़ते हैं। हैमन्ती कैसी परेशानी महसूस कर रही थी, नजदीक में कोई रहे न रहे—फिर भी उतनी-सी आड़ न रहने पर उसे चैन नहीं मिल रहा था।

खिड़की के पास खड़ी होकर खोई-खोई आंखों से हैमन्ती सामने देखती रही। वर्षा के पानी से मैदान की घास बड़ी-बड़ी और हरी हो गई है। मुलायम जाजिम की तरह आस-पास बिछी हुई है। तीसरे पहर की साफ धूप में मैदान पर एक बहुत फीका पीला सा रंग फैल गया है। यहां-वहां पेड़-पौधे हैं, एक बहुत बड़ा शिरीष का पेड़ है, अस्पताल के निकट एक जोड़ा अर्जुन के पेड़ हैं। यहां से अस्पताल का आधा हिस्सा दिखाई पड़ता है, बाकी हिस्सा पेड़ों की ओट में है।

अन्यमनस्क भाव से हैमन्ती उंगलियों से अपने बालों को संवारकर समूची पीठ पर फैलाने लगी। बाल प्रायः सूखने को आए हैं। आवाज करती हुई फिर जरा-सी जंभाई ली उसने। अस्पताल के सामने से होकर पतली-सी छाया तिर गई, बादलों के टुकड़े तैरते जा रहे हैं, नीचे से होकर। वर्षा शायद खत्म होने को आई।

मुंह-आंख धोने के लिए हैमन्ती कमरे से निकलकर बाहर आई। उसके कमरे से लगा हुआ कच्चा बरामदा है, बगल में ही गुसलखाना है। उसके कमरे से सटा हुआ मालिनी का कमरा है, मालिनी के कमरे के दरवाजे खिड़कियां चौपट खुले हुए हैं; मालिनी पश्चिम के मैदान में सूखे कपड़े लत्ते उठा रही है, उठाकर छाती के पास इकट्ठा कर रही है।

गुसलखाने से लौटकर हैमन्ती भीगे मुंह-आंख से बरामदे में खड़ी रही। यहां से समूचा इलाका ही मोटे तौर पर नजर आता है। जगह कोई कम नहीं है—हैमन्ती जमीन का हिसाब नहीं समझती है, सुरेश्वर से सुना है कि लगभग पांचेक बीघा है। सारी जमीन अभी भी नहीं घेरी गई है, कुछ घेरी गई है, कुछ छोड़ दी गई है भविष्य के लिए। शाल की लकड़ी के खम्भों और तारों से बाड़ा लगाया गया है, कहीं-कहीं जंगली कंटीली लताएं घनी होकर बाड़े पर चढ़ गई हैं। पूरब, पश्चिम और दक्षिण—तीन तरफ मकान बने हैं। इन्हें ठीक पक्का मकान नहीं कहा जा सकता। फिर कच्चा मकान भी नहीं कहा जा सकता। ईंटों की दीवारें हैं, मात्र एक मिट्टी का घर है, छाजन टाइल या खपड़े के हैं। सिर्फ अस्पताल का छाजन ऐसबेस्टस का है। कुल मिलाकर छोटे-बड़े पांचेक लम्बे-लम्बे दालान हैं। सफेद जामुन या कटहल की लकड़ी के दरवाजे खिड़कियां हैं।

पूरब की ओर सुरेश्वर का घर है। मिट्टी का घर है, खपड़ैं का छाजन है, सामने लताओं की जाफरी है। एक समय, सुरेश्वर ने जब पहले-पहल यहां आकर आश्रय के लिए घर बनाया था तब लकड़ी-तिनकों और कमचियों से बाड़ा लगाया था, लताएं लगाई थीं। दिन-पर-दिन लताओं के बढ़ने की वजह से सामने का हिस्सा जाफरी की तरह ओझल हो गया है, बाड़ा काफी दिन पहले टूट गया है। वहां कुछ फूलों के पेड़ हैं—अड़हुल, कनेर, बेला, संध्या आदि के। जूही के पेड़ के डाल-पत्ते घर के छाजन तक पहुंच गए हैं। सुरेश्वर के घर के एक ओर सीमेंट से बांधी हुई एक छोटी-सी वेदी है।

मुफस्सल के स्कूल जैसे कई लम्बे-लम्बे दालान थोड़ी-थोड़ी दूर पर पूरब, पश्चिम और दक्षिण में फैले हुए हैं। थोड़ी-सी ऊंची ईंट की दीवारें हैं, खपड़े अथवा टाइल के छाजन हैं, बड़ी-बड़ी खिड़कियां और दरवाजे हैं। कहीं किसी प्रकार का बाहुल्य नहीं है, नितान्त जितना जरूरी है उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। दालानों के सामने कहीं कनेर का झुरमुट है, कहीं केवड़े के फूलों का पेड़ है, कहीं हरसिंगार, कठचम्पा और रंगन के फूलों के पेड़ हैं। और ढेर सारी हरी घास है।

पश्चिम के दालान में जो लोग रहते हैं उनमें से कई पूरे तौर पर अन्धे हैं। नजदीक के एक कमरे में वे लोग हाथ का काम करते हैं। पिछवाड़े में बाग है। पूरब और दक्षिण के कोने में जो दालान है वह उतना बड़ा नहीं है, छोटा-सा ही है; वहां पांच-सात रोगी हैं, बच्चे-कच्चे ही ज्यादा हैं। उन्हीं की बगल में दो-तीन महिला रोगी हैं।

दक्षिण के छोटे से दालान में हैमन्ती और मालिनी रहती हैं। कई देहाती नौकर-चाकर रहते हैं थोड़ी दूर पर।

पानी के लिए दो कुएं हैं। बहुत ही नजदीक नदी का एक पतला-सा सोता है; बहुत-से लोग वहां जाया करते हैं; अभी वर्षा के अन्त में पानी बढ़ जाने की वजह से वह पतला-सोता छोटी-मोटी नदी-सा लगता है।

यहां आकर हैमन्ती को अच्छा ही लग रहा था। सुबह काम-धाम में बीत जाती है, दोपहरी एकान्त, आलस्य और विश्राम में कटती है, तीसरा पहर भी बुरा नहीं गुजरता है—कभी वह घूमती-फिरती, कभी सुरेश्वर के साथ बातचीत करती है, गप करती है; कभी उसकी साथी होती है मालिनी। शाम होने के साथ-साथ सारे दिन का उत्साह फीका पड़ने लगता है। तब वह और मन नहीं लगा

सकती है, यहां बड़ा निर्जन, सुनसान और सूना-सा लगता है सब कुछ। रात जितनी गहराती है वह उतनी ही परेशानी-सी महसूस करती है, घबराहट जमा होती रहती है, अन्त में डर-सा लगता है।

सभी कुछ आदत है। और कई दिन गुजर जाएं, तब हैमन्ती इस निर्जनता, निस्तब्धता, लालटेन की टिमटिमाती रोशनी और बाहर के निविड़ अन्धकार में न रोशनी अनुभव करेगी, न डरेगी।

हैमन्ती मैदान में उतर आई। नरम घास में उसके पैरों की चप्पल छिपी हुई है, बड़ी-बड़ी घास की फुनगियां टखने तक ऊंची हैं, घास इतनी नरम और कोमल है कि उस पर चलते समय थोड़े-से पानी पर चलने-सा प्रतीत होता है।

थोड़ी दूर आगे जाकर हैमन्ती रुकी। मालिनी आ रही है।

मालिनी जल्दी-जल्दी चलती है, देखने पर लगता है, भागी-भागी चल रही है। चलते समय उसका तमाम शरीर हिलता है। थोड़ी दूर पर से देखने पर मालिनी अच्छी दीख रही थी। रंग काला है, तो भी मालिनी का गठन अच्छा है, मझोला कद, रसीला मुंह-आंख। मालिनी हंसते-हंसते आ रही थी। उसके झक-झकाते सफेद दांत, बिखरे घने बाल और पहनी हुई सफेद साड़ी धूप की आभा में मानो और भी देखने लायक हो उठी थी। छाती के पास कपड़े-लत्ते इकट्ठा करके वह कुछ इस तरह से भागी-भागी आ रही है कि लग रहा है, जैसे कुछ चुराकर भाग रही हो। हैमन्ती को हंसी आई।

समीप आकर मालिनी बोली, "आप जाएंगी ?"

हैमन्ती आंखों में आंखें डाले रही, "कहां ?"

"मेरे घर।"

मालिनी का घर रेलवे स्टेशन के निकट है। घर में मां है, छोटा भाई है, बहन है।

"तो तुम घर जा रही हो ?"

मालिनी ने सिर हिलाया, होंठों पर मुस्कान बिखरी हुई है। कपाल और गाल पर पसीना चुहचुहा आया है।

"पर जाओगी कैसे ?"

"बस से।"

"मगर बस तो चली गई है।" हैमन्ती ने अचरज में पड़कर कहा।

जो बस गई वह क्या स्टेशन जाने वाली थी ? धत्...वह तो शहर जानेवाली थी। इतना सिखाकर भी मालिनी जैसे इस नई नवेली को कुछ याद नहीं रखवा सकी। कच्चा रास्ता पैदल तय करके मोड़ पर पहुंचने पर वहां स्टेशन जानेवाली बस अभी मिल जाएगी—हेम दीदी यह भी भूल गई हैं। कब कौन-सी बस मिलती है, जल्दी-जल्दी इसका एक विवरण फिर याद दिलाते हुए मालिनी ने कहा, "तीन बजे वाली बस शहर जाती है, और चार बजे वाली बस जाती है स्टेशन, लट्ठा के मोड़ पर जाकर बस पकड़नी होगी। आप जाएंगी ?"

हैमन्ती ने हां-ना कुछ नहीं कहा। सुरेश्वर से कहना होगा, मील भर से अधिक पैदल चलना है, इतना समय कहां है ! उसके बाद वापस आने वाली बस पता नहीं कब लौटेगी ?

"तुम लौटोगी नहीं आज ?" हैमन्ती ने पूछा। मालिनी के न रहने पर उसे

अकेले रहना होगा। दोनों एक कमरे में नहीं रहती हैं, तो भी वे लोग अगल-बगल रहती हैं, रात को यह एक बड़ी राहत है हैमन्ती के लिए। मालिनी के न लौटने पर हैमन्ती आखिर रहेगी कैसे ?

"हां, मैं आज ही लौटूंगी।"

हैमन्ती की दुश्चिन्ता दूर हुई। बोली, "आज अब समय कहां है ! किसी दूसरे दिन जाऊंगी।"

मालिनी बोली, "आज ही चलिए। चार बजे बस आती नहीं है, आने का समय चार बजे है, पर आते-आते साढ़े चार बज जाते हैं। अभी बहुत समय है।"

जाने को हैमन्ती का जी चाह रहा था, हालांकि भाग-दौड़ करके जाना होगा, इसलिए उसे जैसे भरोसा नहीं हो रहा था। उसे कुछ खरीदारी करने की जरूरत भी थी। लगाने के तेल की शीशी हाथ से गिरकर टूट गई है, जितना-सा तेल बचा था उससे ही कई दिन किसी तरह से काम चला है। नहाने का साबुन खत्म होने को आया। दरवाजे के परदे के लिए थोड़ा-सा कपड़ा खरीदना पड़ेगा। इस प्रकार की सारी फुटकर चीजों की खरीदारी करनी है। सुरेश्वर से कहने से वह ये चीजें मंगवा देगा, मगर हैमन्ती उससे कहना नहीं चाहती है। संकोच अनुभव करती है। मालिनी उसे जो चाय बनाकर पिलाती है वह चाय हैमन्ती को अच्छी नहीं लगती है। थोड़ी-सी अच्छी चाय लानी होगी। कुछ बिस्कुट लाने हैं।

हैमन्ती अपनी सुख-सुविधा की बात सुरेश्वर से नहीं कह सकती है। कहे, तो, हो सकता है कि सब कुछ हो, मगर क्या सोचेगा सुरेश्वर ! उसके लिए जरूरत से ज्यादा खर्च करने से सुरेश्वर आपत्ति नहीं करेगा, लेकिन मन-ही-मन हंसेगा। तेल, साबुन, चाय आदि जैसी कई तुच्छ चीजों के लिए इतना मचलना।

हैमन्ती ने मालिनी की ओर देखा। मालिनी से भी यह सब मंगवाया जा सकता है। लेकिन मालिनी के पास क्या इतना समय होगा ? वह क्या पसन्द लायक सब कुछ ला सकेगी ?

मालिनी को जल्दी थी। मालिनी चंचल हो उठी और बोली, "आपको कितनी चिन्ता है ! चलिए। देर होती जा रही है।"

जाने का मन हैमन्ती का था। आने के दिन स्टेशन की प्रायः कोई भी चीज उसने नहीं देखी थी; बस में आकर बैठी थी, सीधे चली आई थी, उसी बीच देखा था, बाजार-दुकानें हैं स्टेशन में, लोग-बाग हैं, बत्तियां जिन्हें देखने की हैमन्ती को आदत है, जिनके बीच वह इतने दिनों तक रही है। यहां आने के बाद से लेकर अब तक उसने यह सब फिर नहीं देखा है ! देहाती रोगियों के चेहरों को छोड़कर उसने दूसरा नया चेहरा नहीं देखा है।

मालिनी ने चलना शुरू किया था, हैमन्ती भी उसकी बगलगीर होकर चलने लगी। बोली, "आज अब नहीं जाऊंगी। कल-परसों जाऊंगी। मुझे कुछ खरीदारी करनी है।"

मालिनी मुस्कराती हुई बोली, "अकेले ?"

"तुम भी जाओगी।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी—।"

"क्यों ?"

"रोज-रोज घर जाने पर भैया गुस्सा करेंगे।" मालिनी सुरेश्वर को भैया कहती है।

हैमन्ती ने मालिनी को देखा। मालिनी के चेहरे पर किसी प्रकार का क्षोभ नहीं है।

"आज भैया ने रुपया दिया है। मैं मां को दे आऊंगी।···मेरा भाई, मैंने बताया है न आपको, बिजली-ऑफिस में नौकरी करता है, छोटी-सी नौकरी है, रुपया न मिलने पर मां को तकलीफ होती है।"

मालिनी को यहां रुपया मिलता है, हैमन्ती यह नहीं जानती थी। पर यह रुपया उसे वेतन के रूप में मिलता है या मदद के रूप में ? हैमन्ती ने पूछना चाहा तो भी उसने कुछ पूछा नहीं।

कमरे के पास आकर मालिनी बोली, "इसके बाद जब मुझे रुपया मिलेगा, तो मैं आपको अपने साथ ले जाऊंगी। आप मुझे एक साड़ी खरीद दीजिएगा। मिल की साड़ी नहीं, अच्छी-सी साड़ी।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली, सिर एक ओर झुकाकर हामी भरी।

मालिनी की बात से किसी-किसी समय वह अन्यमनस्क हो जाती है। मालिनी बच्ची नहीं है, सूझ बूझ-हीन भी नहीं है, लेकिन बहुत सरल और भोली-भाली है। बाईसेक साल की है, पढ़ना-लिखना भी बिलकुल नहीं जानती है, ऐसी बात नहीं, फिर भी कभी-कभी अबोध जैसी बात करती है।

साड़ी खरीदने की बात कोई खास महत्वपूर्ण नहीं थी, किन्तु उसकी बात के स्वर में न जाने कहां बच्चों-का-सा जरा-सा क्षोभ था। इसके पहले एक दिन मालिनी ने कहा था : 'आप कितने लोगों को चिट्ठियां लिखा करती हैं हेम दीदी, मुझे एक लिफाफा दीजिएगा—मैं एक अपने आदमी को चिट्ठी लिखूंगी।'

हैमन्ती अपने कमरे में आई। मालिनी को देखने पर कुछ समझ में नहीं आता है लेकिन उसके साथ मिलने-जुलने पर यह समझ में आता है कि यहां उसे पूरे तौर पर मानसिक शान्ति नहीं है, न जाने कहां उसे एक अभाव का बोध होता है। यह अभाव, ऊपर से देखने पर लगेगा, कई तुच्छ वास्तविक चीजों के लिए है, जो सहजलभ्य हैं, हालांकि उसे नहीं मिलती हैं; और भीतर निगाह डालने पर लगेगा कि मालिनी का अभाव कहीं और है। सुरेश्वर के 'अन्धाश्रम' में वह कितने प्रकार के काम करती है, इन कामों से उसका मुंह नहीं लटकता है, बल्कि ज्यादातर समय वह मुस्कराती-सी दिखती है, हालांकि यह सन्देह होता है कि मन-ही-मन मालिनी कोई दुःख लिए हुए है। पर क्या दुःख है उसे ?

और एक दिन मालिनी ने पूछा था : 'आप यहां क्यों आईं हेम दीदी ?'

हैमन्ती ने इस प्रकार के प्रश्न से परेशानी महसूस की थी, सीधे कोई जवाब नहीं दिया था, टरकाने के लिए एक जवाब दिया था। किन्तु वह अन्यमनस्क हो गई थी।

मालिनी कमरे में आई। उसने जल्दी से कपड़े बदल लिए हैं, ढीला जूड़ा बांधा है, हाथ में चाय का प्याला है। बोली, "तो मैं चलती हूं हेम दीदी, शाम की बस से लौटूंगी।···आपके लिए सांची पान लेती आऊंगी, हमारे वहां एक आदमी जो पान लगाता है, देखिएगा···" मालिनी चली गई।

थोड़ी ही देर बाद हैमन्ती ने खिड़की से देखा, मालिनी जैसे भागते-भागते जा

रही हो, उसने मिल की सफेद साड़ी पहन रखी है, बदन में सफेद ब्लाउज है, पैरों में पुरानी चप्पल है, एक हाथ में एक छाता है। जूड़े के निचले भाग में लाल फीता बंधा हुआ है।

देखते-देखते मालिनी बहुत दूर चली गई है। हैमन्ती का मन कैसा भारी होने को आया एकाएक।

तीसरा पहर ढल गया था। हैमन्ती और दिनों की तरह आश्रम के बाहर आकर जामुन के पेड़ की बगल से होकर कच्चा रास्ता पकड़कर टहल रही थी। आकाश साफ है, रुई के हल्के पतले रेशे की तरह छिन्न बादल का एकाध टुकड़ा तिरता हुआ जा रहा है, धूप खत्म हो गई है, दूर टीले के ऊपर थोड़ा-सा अन्तिम प्रकाश है, ठंडी हवा बह रही थी, पुरवैया पंछियों का झुण्ड पेड़ों को नापता हुआ चला जा रहा है।

कच्चा रास्ता पकड़कर थोड़ी दूर तक पैदल चलने के बाद हैमन्ती जरा-सी रुकी। साइकिल से न जाने कौन आ रहा है। दूर से पहचान में नहीं आया। नजदीक आने पर हैमन्ती पहचान सकी, शिवनन्दन जी हैं। शिवनन्दन जी सुरेश्वर के परिचित हैं, उन्होंने आश्रम के बच्चों को दस्तकारी सिखाई है—बेंत का काम, गमछा बुनना, बांस की छोटी-छोटी चीजें, खिलौने आदि बनाना। चीजों की खरीद-बिक्री का इन्तजाम वे ही करते हैं। जाते-जाते शिवनन्दन जी ने साइकिल से बिना उतरे ही सम्बोधित करते हुए कहा, "इधर कहां जा रही हैं हैमन्ती, शाम होने को आई।"

उनकी बात सुनी, तो भी हैमन्ती अन्यमनस्क भाव से चल रही थी। और भी थोड़ी दूर आगे आकर हैमन्ती हठात् रुकी। प्रकाश इतना म्लान होता जा रहा है कि दूर की चीजें अब नजर नहीं आती हैं, झुटपुटे में सब कुछ एकाकार बना हुआ है। सन्ध्या की कालिमा अनजाने में शून्य के रंग को धूसर व अंधेरा बना दे रही है।

हैमन्ती ने आकाश की ओर देखा, बाद में नजरें झुकाकर सामने की ओर देखा। अब दूर की कोई भी चीज उसे दिखाई नहीं पड़ी।

और सहसा, मालिनी का वह प्रश्न, अभी इस निर्जन में, निःसंग अवस्था में, उसे याद आया 'आप यहां क्यों आई हैं हेम दीदी ?'

हैमन्ती कुछ देर तक बुत बनी खड़ी रही। वह क्यों आई है ? क्यों ?

जैसे दूर का कुछ अब दिखाई नहीं पड़ रहा था, हैमन्ती भी मानो उसी तरह से कुछ देखने की कोशिश करके भी विफल होकर कुछ सोच नहीं पा रही थी। वह क्यों आई है ? किसके पास ? किस प्रत्याशा से ?

भयभीत मनुष्य की भांति हैमन्ती हठात् लौटने लगी, जल्दी-जल्दी।

## चार

सुरेश्वर बाग के कुछेक पेड़-पौधों को साफ करके मिट्टी-सने हाथों सहित खड़ा था, हैमन्ती आई।

"आओ—" सुरेश्वर ने सहज, सरल अभ्यर्थना की।

बाग ही देख रहा था सुरेश्वर, देखते-देखते उंगली से एक जगह दिखाई, "सोचता हूं, वहां की मिट्टी जरा खोद लूं और कुछ मौसमी फूलों के बीज बिखेर दूं। जाड़ा आ रहा है—बहुत फूल खिलेंगे।"

हैमन्ती ने बाग की ओर ताका। यह कोई सजाया हुआ बाग नहीं है, यहां-वहां पेड़-पौधे उग आए हैं। सुरेश्वर जो बाग को लेकर उतनी माथा-पच्ची करता है, यह समझ में नहीं आता है। हैमन्ती ने आंखें उठाकर सुरेश्वर को कई पल देखा, फिर दूसरी ओर दृष्टि घुमाई : मौसमी फूलों के बीज बिखेरने की बात हैमन्ती के कानों को बच्चों-जैसी लगी थी।

बात करनी चाहिए, इसीलिए जैसे हैमन्ती बोली, "जाड़ा आने में अभी बहुत देरी है।"

सुरेश्वर ने धीरे से सिर हिलाया, फिर होंठों पर मुस्कान बिखेरता हुआ बोला, "नहीं हेम, यह तुम्हारा कलकत्ता नहीं है। यहां देखते-देखते जाड़ा आ जाएगा। पूजा के ठीक बाद ही।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली।

सुरेश्वर ने अपने दोनों हाथों को रगड़-रगड़कर सूखी मिट्टी झाड़ते-झाड़ते कहा, "यहां की वर्षा जैसी खराब लगती है, जाड़ा फिर वैसा ही सुन्दर लगता है···। तुम तो हो न, देख ही लोगी।···चलो, बरामदे में चलकर बैठें।"

कई कदम आगे बढ़ने पर सीढ़ी है, छोटी-छोटी पांच-छः सीढ़ियां। सीढ़ियां चढ़कर सुरेश्वर बोला, "तुम बैठो, मैं हाथ धोकर आता हूं।"

हैमन्ती बैठी नहीं, खड़ी रही।

वर्षा खत्म हो गई है, यह अच्छी तरह समझ में आता है। आज चार-पांच दिन हुए वर्षा नहीं हो रही है। शरत् की वर्षा की तरह आई-गई एकाध बौछार हुई है वह कुछ भी नहीं है। आकाश का रंग बदल गया है, आकाश धुला-पुंछा हलका नीला है। धूप बहुत साफ और झकझकाती-सी है। तीसरा पहर भी मानो देखते-देखते खत्म होता जा रहा है।

हैमन्ती ने नजरें उठाईं। आकाश के नीचे जितनी धूसर रोशनी है वह क्रमशः कालेपन में विलीन होती जा रही थी, और कालेपन में विलीन होकर पलकों की भांति आकाश के फलक को ढक दे रही थी। तारे निकल रहे हैं। स्निग्ध अल्हड़ हवा पा रही थी हैमन्ती।

सुरेश्वर आया। "तुम ने तो कहा था कि तुम आज स्टेशन की ओर टहलने जाओगी। गई नहीं ?"

"आज जा नहीं सकी। कल-परसों किसी दिन जाऊंगी।"

सुरेश्वर ने बेंत की कुर्सी हैमन्ती की ओर बढ़ा दी, "बैठो।" खुद निवार की कुर्सी खींच ली। बैठा।

हैमन्ती ने बैठते-बैठते कहा, "आज मां की एक और चिट्ठी मिली है।"

"क्या लिखा है उन्होंने ?"

"वही, कैसी हूं, कैसा लग रहा है—"

"चाचीजी की धारणा है कि हम लोग जंगल-झाड़ में हैं, बाघ-भालुओं के बीच" सुरेश्वर ने मुस्कराते हुए कहा। "मुझे कितनी बार सावधान किया है उन्होंने।"

"फिर चिट्ठी दी है मां ने ?" हैमन्ती ने सुरेश्वर की आंखों की ओर देखा। मां अब क्या लिख डालेगी कौन जाने !

"नहीं-नहीं, मैं पहले की ही चिट्ठी की बात कह रहा हूं।"

हैमन्ती ने आंखें फेर लीं। हैमन्ती के यहां आने से मां को बहुत आपत्ति थी। मां ने यह सब पहले से ही नहीं चाहा था। डॉक्टरी पढ़ने, उसके बाद आंख की डॉक्टरी पढ़ने को लेकर समय बरबाद करने, यहां आने आदि किसी भी विषय में मां की इच्छा नहीं थी। क्या होगा ? यह जो तुम पढ़ती ही चली जा रही हो, इससे क्या होगा तुम्हारा ?

मां की अनिच्छा के बावजूद हैमन्ती का सब कुछ होता जा रहा था; यहां आते समय भी वह मां की असहमति से आई थी।

सुरेश्वर ने पहले के ही प्रसंग में कहा, "हम लोगों को बहुत-सा अहेतुक भय रहता है।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली। मन-ही-मन सोचा, जो कह रहा है, हो सकता है वैसा भी हो।

सुरेश्वर के कमरे में चलने-फिरने, यह-वह हटाकर रखने और पैरों की आहट सुनाई पड़ रही थी। घर का काम कर रहा था भरतू।

सुरेश्वर बोला, "तुमने मेरी मां को नहीं देखा था, हेम। मेरी मां को बराबर यह डर लगा रहता था कि मैं जरूर एक दिन तिमंजिले की छत से गिर जाऊंगा। मां के हुक्म से तिमंजिले की छत के दरवाजे में ताला लगा रहता था।"

सुरेश्वर की मां को हैमन्ती ने नहीं देखा था। देखने की बात भी नहीं थी। कहानियां सुनी हैं तरह-तरह की। शायद थोड़ी-सी पागल-सी थीं वे, बाद में सचमुच पागल हो गई थीं।

हैमन्ती बोली, "सभी डरों का एक कारण होता है।"

सुरेश्वर ने हैमन्ती को लक्ष्य किया। बोला, "होता है। डर की धारणा से डर लगता है। जंगल-झाड़ में बाघ रहता है, इसी धारणा से आदमी को जंगल में डर लगता है। लेकिन हरदम तो यह सच नहीं होता है। मैं यहां जब से हूं, मैंने तो बाघ-भालू कुछ भी नहीं देखा है। सियार-बियार अवश्य देखा है।" सुरेश्वर अन्तिम बात पर हंसा।

भरतू ने लालटेन ला दी। बाहर हरदम दो-एक कुतिया और छोटी पोरी-चेंगी दिखाई पड़ती रहती है। भरतू ने तिपाई खींचकर लालटेन रखी और फिर चला गया।

सुरेश्वर ने नरम आवाज में कहा, "बचपन में छत पर चढ़ना मुझे बहुत अच्छा लगता था। गांव के मकान की छत बहुत बड़ी थी, झंझरीदार ऊंची मुंडेर थी। मुंडेर प्रायः मेरी ऊंचाई के बराबर थी। एक ओर था नदी का चरागाह, सामने थी अमराई और दूर पर था रथ-यात्रा के मेले का मैदान। छत पर चढ़ने पर लगता, न जाने किसने मुझे इतनी देर तक रोक रखा था, मुझे मुक्ति मिल गई है। पंजों के बल उचक कर मैं नदी और रथ-यात्रा के मेले का मैदान देखा करता था, पैर दुखने लगते, तो बैठे-बैठे झंझरी से ताकता रहता था। एक दिन मैं मुंडेर पर से थोड़ा-सा झुककर कुछ देख रहा था, न जाने किसने देख लिया

था। उस समय जो मैं पकड़ा गया, तो मां फिर मुझे अकेले छत पर चढ़ने नहीं देती थी।"

"डर के मारे।" हेमन्ती बोली; वह कुछ इस तरह से बोली जिससे लगा कि सुरेश्वर की मां का डर अकारण नहीं था।

"छत पर मैं भाग-दौड़ नहीं किया करता था, मुंडेर पर चढ़ने की भी मेरी मजाल नहीं थी। तो भी मां को कितना डर था!" सुरेश्वर तनिक मुस्कराया। दो क्षण चुप रहा, फिर बोला, "मेरी एक मौसी थी—वीनू मौसी, वह मेरी मां की देख-भाल किया करती थी, वीनू मौसी ने मुझे 'कपालकुंडला' की कहानी सुनाई थी; मुझे कैसा एक डर था, उस नदी के चरागाह से होकर कापालिक रोज आया-जाया करता था। एक बार एक साधु बाबा को नदी में देखकर डर और भी बढ़ गया था।"

सुरेश्वर के बचपन की बात हेमन्ती ने जितनी सुनी है उससे सुरेश्वर के साथ उसे कैसी सहानुभूति थी; उसकी मां बीमार थीं, गड़बड़ दिमाग वाली थीं, पिता जैसे रोबीले थे, वैसे ही दुर्जन थे। धन था, अत्याचार भी करते थे। पत्नी के साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं रखते थे। सुरेश्वर की मां के जीते-जी ही उन्होंने एक अन्य स्त्री को पत्नी के रूप में रखा था। यह उपपत्नी रहती थी कलकत्ता में। काम-काज के सिलसिले में सुरेश्वर के पिता को अक्सर कलकत्ता में आकर रहना पड़ता था। डेरा था, इन्तजाम भी था। उस स्त्री के एक लड़का हुआ था। सुरेश्वर के पिता के मरने के बाद सम्पत्ति का दावा करके मुकदमे का डर दिखाया था उन लोगों ने। सुरेश्वर ने मुकदमा नहीं चलाया था, उनकी मांग पूरी कर दी थी।

हेमन्ती ने यह सब कुछ अपनी मां से सुना है। उसकी मां की धारणा है कि सुरेश्वर ने शुरू से लेकर आखिर तक बेवकूफी की है। सम्पत्ति का हिस्सा देने की कोई जरूरत नहीं थी। कानून सुरेश्वर के पक्ष में था।

हेमन्ती अन्यमनस्क हो गई थी, सतर्क हुई।

सुरेश्वर ने बात की। "मेरी मां को एक और अजीब डर था, जानती हो? मेरी मां कहीं टंगी हुई रस्सी नहीं देख सकती थी। रस्सी देखने से ही मां को न जाने क्या हो जाता था, हो-हल्ला मचाती हुई वह सिर पर आसमान उठा लेती थी। मां सोचती थी, हाथ के सामने रस्सी रहने से ही मां शायद कुछ कर बैठेगी।··· हालांकि मां···" सुरेश्वर कहना चाहकर भी रुक गया। उसके बाद बात घुमा ली और बोला, "तुम चाची जी को लिख दो कि यहां सचमुच ही बाघ-भालुओं का डर नहीं है।"

बात का प्रसंग बदलकर बात करना हेमन्ती को अच्छा नहीं लगता है। यहां सियार है या भेड़िया, इसे लेकर माथापच्ची करने की इच्छा भी अभी उसकी नहीं है। चिट्ठी में मां ने एक बात लिखी है—वह क्या उसे बता दे? यह बताना नहीं है, मां ने जो जानना चाहा है घुमाकर हेमन्ती भी जैसे वह जान लेना चाहती है। हालांकि सुरेश्वर से यह बात कही नहीं जा सकती है।

सुरेश्वर हेमन्ती की ओर निहार रहा था। न जाने क्या देख रहा था। लालटेन की रोशनी अभी उतनी नहीं उभर उठी है, अंधेरा थोड़ा हल्का सा है।

"तुम्हारे चेहरे के साथ चाची जी के चेहरे का बहुत मेल है।" सुरेश्वर ने कहा।

यह सुरेश्वर ने क्यों कहा, हैमन्ती समझ नहीं पाई। माँ के उसके चेहरे का जो मेल है वह दब रहा है, और कहीं मेल नहीं है।

"माँ और मुझमें फर्क भी बहुत है" हैमन्ती ने एकाएक कहा, कहकर हँसने की कोशिश की।

सुरेश्वर ने अस्वीकार भी नहीं किया, गरदन एक ओर झुकाकर जवाब दिया, "सो तो रहेगा ही।" सुरेश्वर भी हँसा।

हैमन्ती ने हाथ बढ़ाकर लालटेन को थोड़ा-सा हटाकर रखा। किरासन तेल की गंध अभी भी उसकी नाक में लगती है। बोली, "यहाँ किसी दिन रोशनी नहीं होगी न ?"

"किस चीज की रोशनी ?" सुरेश्वर अन्यमनस्क हो गया था। बात का खयाल नहीं किया था।

"बिजली की।"

"तुम्हें बहुत दिक्कत हो रही है !"

"तो क्या मेरी ही सुविधा के लिए लाइट लगेगी !···मैं तो यों ही पूछ रही हूँ। यहाँ बिजली लगने की आशा नहीं है, न ?"

"अभी तो नहीं है। दो-चार साल के अन्दर भी बिजली नहीं लगेगी। उसके बाद अगर हो···।"

हैमन्ती इतनी दूर की बात नहीं सोच सकी। तमाम चीजें ही क्या, पाँच-सात दस वर्ष के बाद की शक्ल लेकर सोची जा सकती हैं। इस तरह से उसने बहुत सोचा है, और नहीं सोचेगी।

सुरेश्वर बोला, "पाँच जगहों से चुनकर मुझे दिन चलाना पड़ता है, बिजली लगवाने का पैसा कहाँ है, हेम।"

हैमन्ती का जी चाहा, कहे, 'किसी ने तुमसे चुनने को नहीं कहा है, तुम खुद ही हाथ फैलाकर चुनने आए हो।'

"कमी नाम की चीज···" सुरेश्वर तनिक मुस्कराता हुआ बोला, "डर जैसी है, जितना सोचोगी, उतनी बढ़ेगी।"।

इस प्रकार की अर्थहीन बात हैमन्ती को पसन्द नहीं आई। मजाक के स्वर में बोली, "तो फिर क्या, आदमी को कुछ भी महसूस नहीं करना चाहिए, भूख लगने पर भी नहीं, अँधेरे में रहने पर भी नहीं, हरगिज नहीं ?"

"मैंने ऐसी ज्यादती की बात नहीं कही है। जितना मिल जाने पर मोटे तौर पर मेरी जरूरतें पूरी होती हैं, उससे ज्यादा चाहने से ही मुश्किल होती है।"

"मोटे तौर पर ही भला कितने लोगों की जरूरतें पूरी होती हैं !···सभी कमी तो रोटी-कपड़े की कमी नहीं है—" हैमन्ती बोली। याद हो आया। मालिनी को किस चीज की कमी है यह कौन बता सकता है ! मैं कौन-सी कमी महसूस करती हूँ, यह तुम कैसे समझोगे ?

सुरेश्वर ने सिर हिलाया धीरे से। क्या सोच रहा था कौन जाने। थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। उसके बाद बोला, "गृहस्थी सुख-भरी नहीं होती है हेम, दुनिया भी निरापद नहीं है। दुःख भरी दुनिया में हमारा जन्म हुआ है, कमी महसूस तो होगी ही।···मुझे लगता है, हम बहुत-सी चीजों को ढिंढोरा पीट कर मांगते हैं, जैसे वे फरार हो गई हों, उन्हें कोतवाली में पकड़कर ला देना होगा।"

हैमन्ती की समझ में कुछ नहीं आया बोली, "दुनिया में सभी सुख चाहते हैं।"

"सो तो चाहेंगे ही।"

"तो फिर ?"

"सुख की कोई शक्ल नहीं होती है। सभी इसे अपने-अपने अनुसार गढ़ लेते हैं।"

"भला सभी उसे कहां गढ़ पाते हैं ?"

"गढ़े बिना उपाय नहीं है।"

हैमन्ती ने पल भर के लिए सुरेश्वर की ओर ताका। निस्पृहता सुरेश्वर के चरित्र में थोड़ी-सी नई है। पहले भी थी, लेकिन इस तरह से नहीं थी। हालांकि दुनिया के तमाम मामलों में सुरेश्वर की ऐसी निस्पृहता तो अभी भी नहीं है। सिर्फ...

सुरेश्वर ने अपने से ही कहा, "तुम यहां आई हो, मेरे लिए यह बहुत बड़ा लाभ है। मैं जरा स्वार्थी की तरह बात कर रहा हूं। अगर यहां रहना तुम्हें अच्छा न लगे, तो मैं तुम्हें जबरन रोके रखूंगा! तुम्हें अगर हम न पाएं, तो उपाय क्या है, कहो। हमारे हाथ में तो सब कुछ नहीं रहता है—हाथ के बाहर भी तो रहता है।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली। न जाने कहां उसने अनुभव किया, सुरेश्वर के लिए आज उसका मूल्य आश्रम की डॉक्टर के रूप में है। तो क्या इससे ज्यादा, इससे परे सुरेश्वर कुछ नहीं सोचता है ?

कोई-कोई आदमी है जो बहुत कुछ आईना-जैसा है, ऐसे लोगों का अपना कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। सुरेश्वर बहुत समय हैमन्ती को वैसा ही लगता है। उसके सामने खड़ा होने पर सिर्फ अपना प्रतिबिम्ब नजर आता है। कभी-कभी हैमन्ती ने अधैर्य होकर उस आईने पर बेवकूफ की तरह रोशनी डालकर उसका भीतरी हिस्सा देखना चाहा है, तो देखा है कि डाली गई रोशनी की कौंध ही वापस आ रही है। सुरेश्वर क्या अब एक ऐसा सुन्दर दिखने वाला आईना बना रहेगा।

हैमन्ती ने विरक्ति अनुभव की। सुरेश्वर उसके लिए यदि बिलकुल ही अपरिचित होता, तो दूसरी बात थी। 'पर तुम न तो अपरिचित ही हो न अनजाने ही' मन-ही-मन हैमन्ती बोली 'एक समय मैंने तुम्हारा बहुत कुछ देखा था। तब तुम आईना नहीं थे।'

हैमन्ती ने कहा, "क्या पता, मुझे इतना अच्छा नहीं लगता है।"

"क्या ?" सुरेश्वर ने मुंह फेरकर ताका।

हैमन्ती ने सीधे कोई जवाब नहीं दिया बोली, "सभी आदमी अपनी बात सोचते हैं।"

"दूसरे की बात भी सोचते हैं।" सुरेश्वर ने शान्त पर एक हंसी भरी आवाज में जवाब दिया।

"मगर अपनी चिन्ता के बाद ही।"

सुरेश्वर ने फिर कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद बोला, "सही बात है।"

हैमन्ती का अकारण बात बढ़ाने का मन नहीं हुआ। और भी थोड़ी देर तक

चुपचाप बैठी रही। उसके बाद बोली, "तो मैं चलती हूं।"

"जाओगी क्यों, और थोड़ी देर बैठो।"

"मां को चिट्ठी लिखनी है जाकर, सवेरे समय नहीं मिलेगा।"

"कल हाट लगने का दिन है, तुम्हारी मेहनत बढ़ेगी।"

"उनकी बातचीत मैं समझ नहीं पाती—क्या जो कहते हैं।"

"सुगन बाबू से कहना, वे तुम्हें समझा देंगे।"

"वे ही तो समझा दिया करते हैं।"

सुगन बाबू कम्पाउंडर किस्म आदमी ठहरे। अस्पताल के लगभग सभी काम-धाम की देख-भाल करते हैं। यहां नहीं रहते हैं। साइकिल से आते-जाते हैं।

हेमन्ती उठकर खड़ी हो गई। सुरेश्वर भी उठा। हेमन्ती आरती करने जा रही थी। सुरेश्वर उसे थोड़ी दूर तक पहुंचा देगा, पहुंचाकर लौटेगा, अथवा चहल-कदमी करता हुआ टहलेगा मैदान में। ऐसा सौजन्य अकारण है।

नीचे उतरी हेमन्ती, सुरेश्वर भी उतर आया पीछे।

चलते-चलते सुरेश्वर बोला "कल सवेरे मैं टाउन जाऊंगा। सुना है, एक सरकारी ग्रांट मिलेगा। देखूं…।"

आदत के मुताबिक हेमन्ती को थोड़ी दूर तक पहुंचाकर सुरेश्वर रुका पर हेमन्ती और नहीं रुकी, आगे बढ़ गई। पीछे की ओर ताकने की इच्छा भी उसकी नहीं थी, जान-बूझकर उसने तेज चलने की कोशिश की। उसके मन में विकलता का पछतावा अथवा ग्लानि-जैसी विरक्ति जमा हो रही थी।

ऐसा ही हो रहा है प्रायः। यहां आने के बाद से हेमन्ती बीच-बीच में अत्यन्त उदास व विमर्ष हो जाया करती है। यहां उसे रंच मात्र अच्छा नहीं लग रहा था; न सुख है, न तृप्ति है, न चैन ही है। अपने ही ऊपर वह असन्तुष्ट और विरक्त होती जा रही थी।

कुछ भी लक्ष्य किए बिना धुन में आकर थोड़ी दूर तक पैदल आई, तो हेमन्ती रुकी। सामने अस्पताल की नजरें उठाकर देखा, देखकर वितृष्णा अनुभव की। अपने साथ इस अस्पताल का किसी प्रकार का सम्बन्ध है, ऐसा भी उसे नहीं लगा।

कुछेक क्षण खड़ी रहकर हेमन्ती ने दूसरी तरफ मुंह फेरा, उसके बाद सोचने लगी। मां ने जानना चाहा है कि इसके बाद हेमन्ती क्या करेगी? स्पष्ट रूप में तो मां ने ठीक ऐसा नहीं कहा है, लेकिन मां के कहने का वैसा ही मतलब निकलता है। 'तुमने बराबर ही अपनी राय से काम किया, मेरी कोई बात नहीं मानी। अभी भी यदि तुम अपना भला-बुरा नहीं समझोगी तो फिर कब समझोगी। तुम बहुत बड़ी हो गई हो, तुम्हारा इस तरह से बहते फिरना मुझे और पसन्द नहीं।'

मां की चिट्ठी की और भी कोई-कोई बात याद आने की वजह से हेमन्ती ने अतिरिक्त असन्तोष अनुभव किया। सुरेश्वर न तो शिशु है, न मूर्ख। हेमन्ती क्यों यहां आई है, सुरेश्वर यह नहीं समझता है, ऐसी भी बात नहीं है। यह आश्रम कहा जाए, आदर्श कहा जाए, इसका भला-बुरा जो कुछ हो, वह सुरेश्वर का है। अन्धों-दु खियों की सेवा के लिए हेमन्ती यहां नहीं आई है। डॉक्टरी उसका पेशा, जीवन नहीं। इस पेशे की खातिर हेमन्ती को सिरदर्द नहीं था, अभी भी नहीं। यदि वह पेशे की खातिर कातर होती तो यहां इस जंगल में नहीं आती, कमर

में रहती; उससे कमाई होती तो होती, नहीं होती, तो भी वह मर नहीं जाती।

सुरेश्वर सब कुछ समझता है। समझता है, इसीलिए अपनी जरूरत पूरी करने के लिए हैमन्ती को यहां लाया है। हालांकि कितना निस्पृह होकर कह सका, हैमन्ती को यदि यहां अच्छा नहीं लगे तो वह चली जाए, सुरेश्वर उसे नहीं रोकेगा।

आदमी कितना बदल जाता है। आज के सुरेश्वर को देखने पर हैमन्ती का वह अति परिचित सुरेश्वर तो भला पहचान में ही नहीं आता है।

हैमन्ती ने आंखें उठाईं, घर के सामने आकर खड़ी हो गई है। मालिनी बरामदे में बैठकर अपने मन से गाना गा रही है, शाम को बीच-बीच में वह इस तरह से गाना गाती है। मालिनी की आवाज़ बेढंगी है, मगर मीठी है। सिर्फ गाने का सुर हैमन्ती के कानों में पहुंचा, पर वह क्या गा रही है, यह उसकी समझ में नहीं आया, न सुनने का आग्रह ही उसने अनुभव किया। मुंह उठाकर आकाश की ओर ताका हैमन्ती ने, तारों-भरा आकाश मानो आंख की पुतली जैसा काला हो।

ठंडी हवा में थोड़ी देर तक खड़ी रही हैमन्ती। मालिनी का गाना रुका, न जाने क्या कहा उसने, हैमन्ती अन्यमनस्कता के कारण सुन नहीं पाई। अंधेरे में कहीं कुछ उड़ गया, कोई पंछी है, वह बरामदे में चढ़ गई।

मालिनी ने थोड़ी दूर से कहा, "आंधी-पानी के दिन में, अंधेरे में मैदान में इतना मत घूमिए हेम दीदी।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया।

कमरे के दरवाज़े में सांकल लगी हुई थी, उसे खोलकर अन्दर आई हैमन्ती। लालटेन जल रही है टिमटिमाती हुई; सभी कुछ अस्पष्ट है। खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई, उसके बाद बिस्तर पर जाकर बैठी, अन्त में निढाल होकर बिस्तर की बगल में पैर रखकर लेट गई।

सुरेश्वर ऐसा नहीं था। बहुत बड़ी मात्रा में परिवर्तन हुआ है। स्वाभाविक परिवर्तन नहीं, अस्वाभाविक परिवर्तन हुआ है। हैमन्ती ने इतनी कल्पना नहीं की थी, इतना सोचा भी नहीं था। आज सुरेश्वर को देखने या उसके निकट बैठने पर हैमन्ती को ही सन्देह होता है, उस आदमी ने एक समय दिन-रात 'हेम-हेम' किया था या नहीं। तब लगता था हेम को छोड़कर सुरेश्वर कुछ सोच नहीं सकता है।

हैमन्ती के कलेजे के अन्दर सब कुछ जैसे धीरे-धीरे सुन्न होता जा रहा था, और एक अद्भुत शून्यता पैदा हो रही थी। यह शून्यता इतनी अधिक मात्रा में अपनी है कि एकमात्र अस्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है, बस, न कहा जा सकता है, न कल्पना की जा सकती है।

किशोरावस्था से हैमन्ती सुरेश्वर को देखती आ रही है। तब सुरेश्वर की उम्र कम थी, तमाम शक्ल-सूरत में एक अत्यन्त स्वच्छ, निर्मल सौन्दर्य मानो जगा रहता था, उसे देखना अच्छा लगता था, मन प्रसन्न होता था। सुरेश्वर के चरित्र में कहीं एक ऐसी मिठास थी, जो सभी को आकर्षित करती थी, आनन्द देती थी। मामा मजाक करके कहा करते थे, 'छोकरा सुर असुर नहीं, एकदम सुरासुर है।'

सुरेश्वर पूरे तौर पर सुपुरुष नहीं था। लेकिन सुदर्शन था। उसकी मां असाधारण सुन्दरी थी। मां का वह रूप सुरेश्वर ने नहीं पाया था, मुंह का सौंदर्य-मात्र पाया था। जैसे उसकी मां ने जान-बूझकर सन्तान को अपना सब कुछ देना

नहीं चाहा था, देती तो सुरेश्वर का अमंगल होता। पिता की तरह ही सांवला रंग पाया था उसने, पिता की तरह ही वह कद में थोड़ा-सा नाटा था, दोहरा बदन था। पुरुष होने के कारण सुरेश्वर के मुंह पर सौंदर्य था, पर लावण्य नहीं था। लावण्य होता तो वह लड़की-सा भी लग सकता था। जुड़ी भवें, दो रसीली आंखें, ज़रा-सी नीली पुतलियां, कोमल, निविड़ दृष्टि, दो निरालिस होंठ। सुरेश्वर तब जवान था। सुरेश्वर के सामने आने पर हैमन्ती को लगता, खुली खिड़की से जैसे उजाला और हवा-भरी एक सुबह भीतर आई हो।

वह सुरेश्वर देखते-देखते उम्र की बाहरी चंचलता दूर कर उठा। हैमन्ती भी किशोरावस्था पार कर चुकी थी। सुरेश्वर के साथ उसका जो पारिवारिक सम्बन्ध था वह नज़दीकी रिश्तेदार का नहीं था; हैमन्ती की मां दूर के रिश्ते में सुरेश्वर की मां की बहन लगती थी। सम्पर्क भी कोई खास नहीं था अन्त में। रहने की बात भी नहीं थी। हैमन्ती वगैरह थीं कलकत्ता में, सुरेश्वर की मां थीं गांव के मकान में।

इसके अलावा वह तब तक गुज़र भी चुकी थीं। मां से सुना है हैमन्ती ने, सुरेश्वर की मां की मृत्यु शायद स्वाभाविक नहीं थी। सुरेश्वर की उम्र जब तीस साल की थी तब उसके पिता भी चल बसे। हैमन्ती के कलकत्ता के मकान में सुरेश्वर का आना-जाना तभी से बढ़ा था, उसके पहले कॉलेज में पढ़ते समय सुरेश्वर हैमन्ती के घर कई वर्षों तक नियमित आता जाता रहा था, तो भी बीच में कई वर्ष सुरेश्वर उतना नहीं आया था, तब वह कलकत्ता में नहीं रहता था। कहा जाए तो हैमन्ती ने पहले-पहल किशोरावस्था में कुछ दिनों तक सुरेश्वर को घर में आते-जाते देखा था। उसके बाद देखा पांचेक साल बाद, जब वह किशोरावस्था को पारकर जवानी की दहलीज़ पर कदम रखकर खड़ी हुई थी। पहले का मिलना वैसा यदि नहीं भी हो, तो विराम के बाद नए सिरे से सुरेश्वर से मिलना हठात् मानो कुछ आविष्कार-सा था। तब क्या हुआ था आज अब उसे याद नहीं कर पाती है हैमन्ती, सिर्फ याद आता है—अपने शरीर की छाया जैसे हरदम की साथी है, सुरेश्वर की कल्पना भी उसी प्रकार चेतना-अवचेतना के बीच हमेशा विराजती थी।

उसके बाद जो कुछ घटा वह जैसे वज्रपात था। न कहीं कोई बादल था, न आभास था, ज्वर ग्रस्त होकर तकलीफ और दर्द को लेकर सोई हैमन्ती की एकाएक एक दिन आधी रात को नींद उचट गई, तो बैठकर खांसते-खांसते उसने रक्तपित्त की भांति लहू उगला। उसके बाद थोड़ा-थोड़ा लहू उगलती रही। डॉक्टर ने मुंह लटकाया। मामा बेचारे भय और चिन्ता के मारे नीले पड़ गए। मां हर दम बिस्तर की बगल में बैठी रहतीं। सुरेश्वर था, उसने दौड़-धूप शुरू की।

तीन-चार सप्ताह तक सभी चिन्ता में बैठे रहे। क्या हुआ है, यह ठीक-ठीक कहने का साहस जैसे किसी में भी नहीं था। अन्त में समझ में आया कि बीमारी राजरोग है। बड़ा भाई चाय-बागान में नौकरी करता था, ब्याह किया था चवनिया मेम से। मनीआर्डर से दो-एक सौ रुपये भेजकर उसने अपना कर्तव्य समाप्त किया। दूसरा भाई छोटा था, स्कूल में पढ़ता था। मामा की ही कमाई से गृहस्थी चलती थी। ब्याह-शादी नहीं किया था मामा ने। किन्तु उनकी कमाई इतनी थी कि डॉक्टरों के परामर्श के अनुसार राजचिकित्सा हो सकती।

उस समय जो कुछ करने को था सुरेश्वर ने ही किया था। वल; भरोसा, आशा के नाम पर वह था वारह आना। पहले घर में सामयिक चिकित्सा कराई गई, उसके वाद डेढ़ साल तक वाहर के अस्पताल में, फिर घर में और अन्त में कुछ दिनों तक घाटशिला में रखकर चिकित्सा कराई गई, तव जाकर हैमन्ती को मुक्ति मिली।

इस वीमारी ने हैमन्ती को दो चीजें दी थीं : एक सुरेश्वर के प्रति असीम कृतज्ञता व प्रेम; दूसरी, उसने यह अनुभव किया था कि दुनिया की और पांच साधारण लड़कियों की तरह कर्मठ न हो पाने पर अपने हीनता-वोध को वह दूर नहीं कर सकेगी।

सुरेश्वर ने कहा, डॉक्टरी पढ़ने के लिए। एक समय हैमन्ती की वह साध थी। पढ़ने की वात उठी, तो मां ने आपत्ति की। मामा ने भी सन्देह किया—शरीर साथ देगा या नहीं। जिस डॉक्टर ने हैमन्ती की सामयिक चिकित्सा की थी, उसने कहा, तुम खूव पढ़ सकोगी। नहीं पढ़ोगी, तो आत्मविश्वास खोओगी, पढ़ोगी तो सफलता तुम्हारे कदम चूमेगी। इसके अलावा तुम्हारी तवियत तो विलकुल ठीक हो गई है, तुम पूरी स्वस्थ हो गई हो।

हैमन्ती ने जीवन वापस पाकर फिर से उसे मुर्दा वनाना नहीं चाहा था; डॉक्टरी पढ़ना भी नहीं चाहा था, दूसरा कुछ होता, तो अच्छा होता। सुरेश्वर के आग्रह पर वह मेडिकल कॉलेज में भर्ती हुई। मानो सुरेश्वर की मनोकामना या शौक पूरा करने में ही वह अनुगृहीत होगी।

वीमारी के दो-ढाई वर्षों में हैमन्ती ने जिस सुरेश्वर को देखा था वह सुरेश्वर हैमन्ती के नजदीकी रिश्तेदार से भी अधिक था। सुरेश्वर के जीवन ने जैसे उसके जीने-मरने के ऊपर निर्भर किया था। हेम ने ज़िंदा रहकर सुरेश्वर को जिंदा रखा था, सुरेश्वर भी हेम का आयु-दीप वनकर रहा था।

'हेम, तुम हमेशा जीने की व्याकुलता लेकर जीना; व्याकुलता के विना कोई नहीं जी सकता।'··· 'हेम, मन में कभी सन्देह मत लाना—सन्देह करके कोई जी नहीं सकता।' सुरेश्वर यह सव कहा करता था, चिट्ठियों में लिखता था। भागा-भागा देखने जाता अस्पताल में अशेष कष्ट उठाकर, कहता : 'धत्'··· 'एक रात जागना क्या मुश्किल है! तुम्हें देखने आता हूं, तो नींद-वींद आंखों से दस हाथ दूर रहती है। वाह, वहुत इम्प्रूव किया है तुमने। मार्वेलस!'

घाटशिला में घर लेकर रहते समय मां थी, और था सुरेश्वर। जाड़े की सुवह में सुरेश्वर हैमन्ती को गरम कपड़े से सतर्कता व सावधानी से ढक लेता और टहलने जाता। दोपहर में ग्रामोफोन वजाकर सुनाता, कहानी की किताव पढ़ता, तीसरे पहर फिर उसे टहलाने ले जाता, शाम को कितने प्रकार की गपशप करता। यह साहचर्य और साथ इतना अन्तरंग व उष्ण था कि हैमन्ती को लगता, उसके वस्त्रों में, अंग-अंग में, हृदय में और त्वचा में भी हर पल जैसे सुरेश्वर का स्पर्श हो।

हैमन्ती जव वीमार नहीं थी, राहु-मुक्त थी, जीवन के स्वाद का उपयोग करती हुई प्रतिपल सुखी थी, भार-मुक्त थी, निश्चिन्त थी, मेडिकल कॉलेज में भर्ती हुई थी तव भी सुरेश्वर को देखकर यह समझ में नहीं आता था कि उसकी तरफ से हैमन्ती के प्रति कोई उपेक्षा है।

हैमन्ती जब डॉक्टरी की आधी पढ़ाई पढ़ चुकी थी, तो सुरेश्वर ने कलकत्ता छोड़ा। कहा, 'जरा घूम आता हूं।' दो-एक महीने के बाद लौटा, उसके बाद फिर बाहर गया, कहा : 'कुछ-न-कुछ करने की सोचता हूं, देखूं। कलकत्ता अब अच्छा नहीं लगता है।' तभी से सुरेश्वर कैसा तो था। आता था, फिर चला जाता था। नौकरी-चाकरी में उसकी किसी भी दिन कोई दिलचस्पी नहीं थी। कभी यह करता, तो कभी वह।

सुरेश्वर कलकत्ता छोड़कर गायब होता, तो दो-चार-छः महीने फिर नहीं आता, मगर सम्पर्क नहीं तोड़ता। चिट्ठी-पत्री लिखता। पर हैमन्ती यह पसन्द नहीं करती। सुरेश्वर का आंखों से ओझल होना पहले-पहल उसे दुःखित व चिंतित करता। पर बाद में वह इसकी आदी हो गई। पढ़ाई लगभग खत्म होने को आई थी, छोड़ देने को भी जी नहीं चाहता था, हालांकि जिसके लिए वह इतने आग्रह से पढ़ती थी, उसी के निकट न रहने की वजह से मन खिन्न रहता।

डॉक्टरी पास करने के बाद सुरेश्वर ने फिर उसे आंख की डॉक्टरी पढ़ लेने को लिखा। खुद भी आया था एक बार। हैमन्ती की ओर इच्छा नहीं थी। किन्तु सुरेश्वर के अनुरोध व इच्छा का सम्मान किए बिना भी वह नहीं रह सकी। तब तक सुरेश्वर गुरुडिया में आकर बैठ गया था। हैमन्ती की उसे जरूरत थी।

हैमन्ती ने सोचा था, उसने सुरेश्वर की तमाम इच्छाएं पूरी की हैं, सुरेश्वर भी उसकी इच्छा पूरी करेगा। न जाने क्यों, आजकल उसमें दुविधा आई थी, लगता, वह सुरेश्वर जो उसे मृत्यु से जीवन में लौटा लाया है एक स्वाद-हीन, विवर्ण और मुंह पर मक्खियां बैठने वाले जगत् में—जैसे कहीं परे हटता जा रहा हो। हैमन्ती को यह सहन नहीं होता। मां समझ गई थी कि यह सुरेश्वर को अब अकारण निकट खींचने की कोशिश है। हैमन्ती ने नहीं समझा था, समझने को राजी भी नहीं हुई थी। एक तरह से बेपरवाह होकर, और थोड़ी-सी आशा लेकर ही हैमन्ती आई थी यहां। आकर देखा है सुरेश्वर दूसरा आदमी है।

अपने जीवन के लिए हैमन्ती सुरेश्वर की इतनी अधिक कृतज्ञ है कि कभी भी उसे उसने वेदना देना नहीं चाहा था। अभी भी नहीं चाहती है। सुरेश्वर को आघात पहुंचाने पर या उसका परित्याग करने पर सुरेश्वर तो सहन कर लेगा, किन्तु हैमन्ती की मर्यादा नहीं रहेगी। सुरेश्वर उसे तमाम दृष्टि से छोटी और हीन नहीं बना सकता है। यदि ऐसा हो कि सुरेश्वर उसके प्रति करुणा के कारण आया हो, यदि ऐसा भी हो कि सुरेश्वर ने जो सहायता हैमन्ती की की थी आज उसका प्रतिदान मांग रहा हो मन-ही-मन, तो भी हैमन्ती सुरेश्वर को इस मर्यादा की प्रतिद्वन्द्विता में जीतने नहीं देगी। तुम महानुभाव हो, उदार हो; और मैं स्वार्थी हूं, ऋणी हूं, ठग हूं, यह घमंड जैसे तुम्हारा न रहे।

हैमन्ती ने लेटे-लेटे अनुभव किया, हवा के प्रबल झोंके से उसकी खिड़की का परदा फूल उठा है, आवाज हो रही है, जैसे एकाएक परदा फट जाएगा और रुकी हुई हवा कमरे में घुसकर सब कुछ तहस-नहस कर देगी।

## पांच

रास्ते में खड़ी न रहकर हैमन्ती अकेले ही धीरे-धीरे पैदल जा रही थी। उसके हाथ में कोई मामूली चीजें हैं, वाकी सभी कुछ मालिनी के पास है। घर से निकलकर थोड़ी दूर आते ही मालिनी को न जाने क्या हुआ, अप्रतिभ रूप से वोली : "मुझे एक वार घर जाना होगा, हेम दीदी; आप टहलते-टहलते आगे वढ़िए, मैं आ रही हूं।"

आस-पास देखते-देखते हैमन्ती आगे वढ़ती जा रही थी। अच्छा लग रहा है आंखों को। पत्थरों से वांधा हुआ रास्ता, दोनों किनारे वहुत दूर-दूर पर लकड़ी के खम्भों के ऊपर विजली के तार ताने गए हैं, पेड़-पौधे भी कम नहीं हैं, रास्ते के दोनों ओर ही दूर-दूर पर मकान हैं, हवादार वाग-वगीचे हैं, वहुत नफीस मकान विलकुल सूने हैं—फाटक वन्द हैं; तरह-तरह के नाम हैं। छोटे-मोटे मकानों में लोग-वाग हैं।

यह मुहल्ला वहुत ही अच्छा है, मालिनी का घर अवश्य थोड़ा पीछे है, सदर रास्ते से चार-पांच मकानों के पीछे। एक समय मालिनी के पिता ने जव घर वनवाया था तव शायद यहां लोग नहीं आते थे, उसके वाद हड़वड़ाकर कितने पैसे वाले लोग आ गए, मकान वनवाए, उन्हें खाली छोड़ गए, छुट्टियों में आने-जाने लगे। 'किसे पता था, कहिए हेम दीदी कि सियारराजा के इतनी वड़ी दुम निकलेगी।...फिर भी गनीमत थी कि पिता जी ने यह सिर छिपाने की जगह वनाई थी, वरना हम लोग रास्ते पर खड़े होते।' वात ठीक ही कही है मालिनी ने; दो झोपड़ियां, काई-जमी चिपचिपी दीवार और टाइल का छाजन ही क्यों न हो—फिर भी तो वेचारी का सिर छिपाने का आश्रय है। यह आश्रय उन लोगों के लिए कितना महत्वपूर्ण है, यह वे ही लोग समझते।

रास्ता अच्छा है, मगर वहुत धूल उड़ती है। छोटे-छोटे अल्हड़ ववंडरों से वीच-वीच में धूल उड़ रही थी। हैमन्ती ने नाक-मुंह पर रूमाल नहीं रखा। न जाने क्यों धूल की गन्ध उसे अच्छी ही लग रही थी। नफीस मकानों के फाटकों पर माधवी-लता है, जूही है तथा और भी कितनी लताएं हैं। एक मकान के गेट के दोनों ओर यूक्लिप्टस के पेड़ हैं। छरहरे से, सीधे ऊपर चले गए हैं। हैमन्ती ने दोनों पेड़ों के तनों और फुनगियों को देखते समय आकाश देखा। गजव के लाल वादल का एक टुकड़ा है, वत्तख जैसी वनावट है। मानो पंख समेटे तिरते-तिरते चला जा रहा हो।

हैमन्ती और भी कुछेक पग आगे वढ़ आई, तो एकाएक नजर आया, उसके वहुत नजदीक, मुंह-दर-मुंह एक आदमी है, वह उसकी ओर ताकता हुआ ही आगे वढ़ता आ रहा है। परिचित है याकि परिचित नहीं है, न जाने कहां देखा है—आंखें और स्मृति अकस्मात् धुंधली होकर फिर साफ होने को आई, तो तुरन्त हैमन्ती ठिठककर खड़ी हो गई। विपरीत दिशा का आदमी भी मुंह के सामने है।

ईषत् विमूढ़ता और परेशानी मानो दोनों ने ही अनुभव की।

"आप !" अवनी ने विस्मित होकर कहा।

हैमन्ती की विमूढ़ता तव भी पूरे तौर पर दूर नहीं हुई थी। आगा-पीछा-सा किया। "ओ तो आप हैं !"

"आप इधर कहां ?" अवनी स्थिर दृष्टि से ताकता रहा।

"एक लड़की के साथ आई थी—" हैमन्ती ने गरदन घुमाकर पीछे की तरफ, दूर की ओर इशारा किया, उसके बाद मुस्कराती-सी बोली, "जरा काम से वह घर गई है, अभी तुरन्त आएगी।···पर आप यहां ?"

अवनी ने हाथ बढ़ाकर रास्ते की बगल में स्थित एक मकान दिखाया, बोला, "वह रहा मेरा मकान। मैं ऑफिस से लौट रहा हूं।"

हैमन्ती ने मुंह फेरकर वह मकान देखा। बिलकुल उसकी दाहिनी बगल में है। आगे छोटा-सा बाग है, उसी के बाद मकान है, बरामदा दिखाई पड़ रहा है।

हैमन्ती क्या कहे, यह तय नहीं कर पाई, तो साधारण परिचय करने के स्वर में बोली, "इधर बहुत अच्छे-अच्छे मकान दिखाई पड़ते हैं।"

"सो तो दिखाई पड़ेंगे ही। कुछ पैसे वाले लोग हैं, उन्होंने मकान बनवा रखे हैं, वे यहां रहते नहीं हैं, छुट्टियों में आया करते हैं।···लेकिन, इधर का ऐरिस्टोक्रेट मुहल्ला उधर है, कलकत्ता-पटना के धनी व्यक्तियों की जात है···" अवनी ने होंठों पर मुस्कान बिखेरी। कुछ सोचकर मद्धम आवाज में अवनी ने फिर कहा, "लेकिन मैं मकान का मालिक नहीं हूं, किरायेदार हूं।"

हैमन्ती कुछ बोली नहीं, मुस्कराई।

अवनी ने थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की, फिर बोला, "कैसी लग रही है यह नई जगह ?"

देखा हैमन्ती ने, अवनी अपलक दृष्टि से निहार रहा है, वह दृष्टि कौतूहल-भरी है, या कौतुक-भरी, ठीक से समझ में नहीं आता है। "बुरी नहीं है।"

"बाहर से आकर पहले-पहल अच्छी ही लगती है—"

"हां, पर बड़ी सुनसान-सी है। लगभग जंगल ही है।"

"आप लोगों का आश्रम अब तो अच्छा ही चल रहा है !" अवनी मजाक कर रहा है या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया।

"बस चल रहा है—" हैमन्ती सकंकोच थोड़ी-सी मुस्कराई, "पर कहां, आप तो फिर आए नहीं ?"

अवनी कुछ कहने जा रहा था, संयत हुआ, बोला, "आऊंगा किसी दिन। सुरेश्वर बाबू का निमन्त्रण है।"

हैमन्ती ने पीछे की ओर ताका। मालिनी अभी भी नजर नहीं आती है। क्या कर रही है कौन जाने।

अवनी ने लक्ष्य किया, हैमन्ती थोड़ी-सी अधीर हो उठी है। बोला, "मेरे घर में बैठिएगा थोड़ी देर ?"

"नहीं-नहीं, रहने दीजिए; और किसी दिन बैठूंगी।···टहलना मुझे अच्छा लग रहा है।"

इस तरह से रास्ते में भला कितनी देर तक खड़ा रहा जा सकता है। अवनी बोला, "तो फिर चलिए मैं आपको थोड़ी दूर तक पहुंचा दूं।"

"रहने दीजिए न···आप ऑफिस से लौट रहे हैं, फिर अभी तकलीफ करके···" हैमन्ती ने आपत्ति की।

"क्या तकलीफ होगी भला, चलिए, धीरे-धीरे चलें—तब तक आपकी सहेली आ जाएगी।" चलते-चलते फिर बोला, "कौन आई है साथ—?"

"एक लड़की है, वहीं रहती है, उसका घर है यहां।"

अवनी वैसी किसी लड़की को ख्याल नहीं कर सका। तो क्या सुरेश्वर का एक नारी-आश्रम भी है ? अवनी ने मन-ही-मन कौतुक बोध किया।

हैमन्ती ने हठात् पूछा, "आप यहां बहुत दिनों से हैं ?"

"नहीं, यही कोई दो साल से हूं।"

"तब तो आप थोड़े ही दिनों से हैं।···कैसा लगता है आपको !"

"बुरा नहीं, ठीक ही लगता है।"

हैमन्ती ने मुंह फेरकर अवनी को लक्ष्य करने की कोशिश की। अन्त में बोली, "इधर बुरा नहीं है; लोग-बाग हैं, बाजार-हाट है, बिजली है,—शहर-शहर-सा लगता है। हमारे उधर बिलकुल सन्नाटा है। कलकत्ता से आकर लगता है, मैं पानी में गिर पड़ी हूं !" हैमन्ती मुस्कराई।

अवनी ने हैमन्ती को देखना चाहा। इस रोशनी में हैमन्ती की आंखें उतनी नजर नहीं आती हैं। अवनी बोला, "कलकत्ता में आप कहां रहती थीं ?"

"भवानीपुर में।···तो क्या आप भी कलकत्ता में···"

"हां, मैं कलकत्ता में बादुड़ बागान में (चमगादड़ बाग) में रहता था।" अवनी एकाएक हंसा, उसके बाद बोला, "लगभग चमगादड़ों की ही तरह।"

हैमन्ती की समझ में कुछ नहीं आया, मगर अवनी की हंसी कानों को प्रिय लगी। बिना कुछ समझे ही हैमन्ती ने होंठों पर कैसी मुस्कान बिखेरी।

अवनी चुपचाप और भी कई कदम आगे बढ़ आया, तो बोला, "आपकी डॉक्टरी कैसी चल रही है ?"

इस बार हैमन्ती हंस पड़ी। अवनी ने कुछ इस ढंग से बात कही है कि लगता है, मानो हैमन्ती अभी तुरन्त एक डिस्पेंसरी खोलकर बैठी हो। हैमन्ती बोली, "अभी भी मेरा हाथ सधा नहीं है।"

अवनी शायद समझ पाया, समझ पाया, तो धीमी आवाज में हंसा।

हैमन्ती बड़ी सप्रतिभ हो उठी थी। बोली, "डाक्टरों और वकीलों की कैसी चलती है, यह शायद बीमारों और मुवक्किलों से पूछना चाहिए। मेरी तो चलती नहीं है।"

भागते-भागते मालिनी आ गई है तब तक। आकर अवनी को देखकर बुद्धू बन गई हो जैसे।

हैमन्ती बोली, "इतनी देर लगाई तुमने !"

मालिनी बुत बनी खड़ी रही, कुछ नहीं बोली। अवनी ने मालिनी को देखा। देखा हुआ चेहरा है।

"बस मिलेगी न ?" हैमन्ती ने पूछा।

सिर एक ओर झुकाकर मालिनी ने बताया, "हां,—मिल जाएगी।"

अवनी ने कलाई-घड़ी देखी, "अभी भी पन्द्रहेक मिनट हैं। जल्दी से जाइए—बस मिल जाएगी। अच्छा—"

हैमन्ती चंचल हो उठी। अवनी की ओर पल भर देखा, "तो आइएगा किसी दिन।"

अवनी माथा एक ओर झुकाकर मुस्कराया। "अच्छी बात है आऊंगा किसी दिन।"

मालिनी आगे बढ़ आई, तो सविस्मय पूछा, "उन्हें आप पहचानती हैं, हेम दीदी ?"

हैमन्ती ने मालिनी का मुंह लक्ष्य किया, "हां, उन्हीं की गाड़ी से हम लोग उस दिन आए थे क्यों ?"

मालिनी यह जानती है कि हेम दीदी पहली बार, जिस दिन आई थीं गाड़ी से ही आई थीं। बस खराब हो जाने की कहानी भी उसने सुनी है। मगर वह यह नहीं जानती थी कि अवनी की ही गाड़ी में हेम दीदी आई थीं। वह नजदीक नहीं थी, न अवनी को ही देखा था।

मालिनी बोली, "मेरा भाई उनके ऑफिस में नौकरी करता है।"

"ओ !" हैमन्ती की समझ में आया।

मालिनी थोड़ी दूर आगे बढ़ आई, तो कहे या न कहे, यही विचार करती हुई फिर बोली, "लेकिन वे आदमी अच्छे नहीं हैं।"

हैमन्ती ने मुंह फेरा।

"बहुत शराब-वराब पीते हैं..." मालिनी बोली।

मालिनी का मुंह देख रही थी हैमन्ती, मानो उसकी आंखें पूछ रही थीं : कैसे जाना तुमने ?

मालिनी ने धीमी आवाज में कहा, "घर में अकेले रहते हैं।"

मालिनी के स्वर में एक ऐसा इंगित था जो कानों का बुरा लगता है। हैमन्ती ने हठात् कैसी विरक्ति बोध की। मालिनी के ऊपर असन्तुष्ट हुई।

हैमन्ती उसे फटकारती हुई-सी बोली, "परनिंदा करने की जरूरत नहीं, अभी, चलो—।" मालिनी चुप हो गई।



शाम के बाद बिजली बाबू आए। यह समय उनके लिए साइकिल लेकर घूमने-फिरने लायक समय नहीं है। जिस दिन भी आते हैं पैदल आते हैं, पैदल ही लौटते हैं।

हाथ में कागज में लपेटी हुई एक चीज है, देखने पर लगता है, वे कोई चीज खरीदकर लौट रहे हैं। बाग को पार करके बरामदे में चढ़ने के पहले बिजली बाबू ने सीढ़ी की बगल के बेले के झुरमुट से कुछेक बेले के फूल तोड़ लिए, तोड़कर फूलों की महक सूंघते-सूंघते बरामदे में आकर पुकारा—"मित्तिर साब।"

अवनी बाहर निकल आया। "अरे, आप, आइए-आइए—।"

बिजली बाबू ने दाहिने हाथ की मुट्ठी से बेले के फूल दिखाए। "आपके बाग के बेले के फूलों की महक तो गजब की है। मित्तिर साब। मिट्टी में कुछ डालते हैं क्या ?" बिजली बाबू इंगितपूर्ण हंसी हंसे। "जाते समय और भी कई लेता जाऊंगा। मेरी दूसरी घरवाली को मला सुका-छिपाकर ही सही बालों में दो-चार बेले के फूल खोंसने का शौक अभी भी है।"

अवनी हंस पड़ा। "लेते जाइएगा—आप पूरा बेले का पौधा ही उखाड़कर ले जा सकते हैं।"

बिजली बाबू मजेदार मुंह बनाकर सिर हिलाते-हिलाते बोले, "मेरे घर की मिट्टी इतनी सरस नहीं है, समझे मित्तिर साहब, रसीली मिट्टी के दो-चार फूल ही अच्छे हैं।"

सने लगा अवनी। विजली वावू भी हंसे।

वनी वोला, "चलिए वैठें।"

बीच के कमरे से होकर वगल के एक कमरे में आया अवनी। छोटा-सा र कमरा; दो तरफ खिड़कियां हैं। वत्ती जल रही थी। वैठने के लिए तीनेक -नीची कुर्सियां हैं एक ओर एक काले रंग की वांहदार कुर्सी है। एक गोल र टेवुल है। एक तरफ एक लकड़ी की छोटी-सी अलमारी है, वेंत के वुक-केस कुछ कितावें वेतरतीवी से रखी हुई हैं। दीवार पर एक कैलेंडर है।

कमरे में माल असवाव जो कुछ है वह मामूली सा है, तो भी इस कमरे के ए काफी है। अवनी का यह वैठने का कमरा है। इसी कमरे में वैठकर अवनी या-विया करता है।

विजली वावू वैठे। हाथ के पैकेट का कागज खोला, एक तौलिया है, तौलिये में लिपटी हुई नई वोतल उन्होंने अवनी की ओर वढ़ा दी। "गया से मंगवाई हैं… ये सव चीजें, समझे मित्तिर सा'व, कभी-कभार इधर दो-एक मिलती हैं। मगर वहुत ज्यादा दाम लेते हैं साले लोग।"

अवनी ने देखा। ह्विस्की है; डिम्पल स्कॉच। वोला, "अच्छी चीज है।"

"वढ़िया किस्म की है।"

"वैठिए, सोडा है शायद, देखता हूं—" अवनी चला गया।

विजली वावू ने सिगरेट सुलगाकर इधर-उधर ताका। एक किताव पड़ी हुई थी, उसे उठा लिया, देखा, फिर रख दिया। इलस्ट्रेटेड वीकली के पन्ने उलटने लगे, विज्ञापन की लड़कियों की तस्वीरें देखीं वारीकी से। फिर चश्मा उतारकर पोंछ लिया।

पीते-पीते विजली वावू वोले, "अरे आपको तो असली खवर देना ही भूल गया हूं मित्तिर सा'व।…आज किसके दर्शन हुए, वताइए तो?"

"किसके—?" अवनी ने सप्रश्न दृष्टि से ताका।

"उस आंख की डॉक्टरनी के…। इधर आई थी। लौट रही थी। वस पर चढ़ी।"

"मुझसे भेंट हुई थी।" अवनी वोला।

"अच्छा, ऐसी वात है! कहां देखा आपने?" विजली वावू ने उत्साह अनुभव किया।

"रास्ते में घर के पास ही।…मैं ऑफिस से लौट रहा था, भेंट हो गई।… इधर की एक लड़की के साथ आई थी।"

"मालिनी!…अरे, वह तो प्रणव-कुटीर की वगल से होकर जो गलियारा-सा रास्ता नीचे चला गया है उसमें रहती है; शशधर वांडुज्ये की वेटी है। वाप कव का मर चुका है। उसका भाई तो आपके ऑफिस में काम करता है।"

"कौन?"

"कन्हैया। अच्छा न जाने क्या नाम है…अनादि-वनादि होगा।"

अवनी पहचान गया।

विजली वावू ने कहा, "वह सुरेश महाराज के आश्रम में रहती है आजकल।" कहकर जरा रुके, फिर अवनी की ओर ताकते हुए वोले, "आपसे एक वार मैंने कहा था मित्तिर सा'व, एक लड़की देता हूं, रखिए—रसोई-वसोई वनाएगी, घ

द्वार देखेगी'''पर आप तो राजी ही नहीं हुए। रखते, तो आपको आराम ही मिलता। उस लड़की की बात सोचकर ही मैंने कहा था।"

अवनी ने बिजली बाबू की आंखें और मुंह देखा।

बिजली बाबू अप्रतिभ नहीं हुए, बोले, "वह सब लड़की, देखते-देखते बरसात के केले का पेड़ हो उठी है।" बिजली बाबू की आंखों की पुतलियां चमक उठीं। "फेमिनिन जेंडर पर उतनी रुचि क्यों नहीं है मिस्तिर सा'ब ?"

अवनी ने कौतुक अनुभव किया। बिजली बाबू बराबर ही उस ढंग से बातें करते हैं। बीच-बीच में बात पूछते भी हैं। अवनी के मामले में उनमें न जाने कहां एक प्रकार का कौतूहल और अविश्वास है। बिजली बाबू को अवनी ने अपना पारिवारिक परिचय कुछ इस ढंग से दिया था ताकि बिजली बाबू कोई भी चीज भली-भांति समझ न सकें।

अवनी ने गिलास खत्म किया। फिर मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ बोला, "आपको कैसा लगता है ?"

"पांच तरह का सन्देह होता है—"

"जैसे कि !" अवनी ने सिगरेट सुलगाई।

बिजली बाबू ने सिर नीचा किए हुए, अभ्यस्त हाथ से दोनों के गिलास में माप के अनुसार ह्विस्की उड़ेली। फिर सोडा मिलाते-मिलाते बोले, "कहीं कोई ब्रेक डाउन है क्या ?"

अवनी हंसा। पर ज़ोर से नहीं।

"आपको बीमारी-बीमारी भी होने की बात नहीं है।" बिजली बाबू ने आमलेट का एक टुकड़ा और कुछेक अदरख के छोटे-छोटे टुकड़े मुंह में डाले, डालकर चबाने लगे। बिजली बाबू की धारणा है कि अंडे से उत्तेजना बढ़ती है।

अवनी ने लम्बा सा कश लगाया।

बिजली बाबू बोले, "बहुत से लोग शुद्धाचारी रहना पसन्द करते हैं, मैं साधु-संन्यासियों की बात कह रहा हूं। वे लोग, मिस्तिर सा'ब, ब्रह्मचारी हैं, मुझे तो सभी गरमियां पाप सी प्रतीत होती हैं।'''अरे मूरख पाप किस बात का ? पाप तू ने देखा कहां दुनिया में नपुंसक होकर पैदा हुआ हूं क्या'''। कहोगे यह लालसा है। जरूर यह लालसा है'''। सखी, देह की लालसा को पाप समझने वाले यह क्या भूल जाते हैं कि यह लालसा बनाई है खुद भगवान् ने।"

बिजली बाबू ने उमर खैयाम की रुबाइया गुनगुनाना शुरू किया है। लालसा पाप है या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता ! लेकिन अवनी ने सोचा, लालसा भी आखिरकार रहती है कहां ? सोचते समय पेय की उतनी सहूलियत से चुस्की न ले पाया, तो उसने कैसी परेशानी-सी महसूस की।

"मनुष्य की इन्द्रियां क्या सन्दूक में रखने की चीज हैं मिस्तिर सा'ब ?" बिजली बाबू ने एक बड़ी-सी चुस्की ली। चुस्की लेकर सिगरेट सुलगाई, फिर दियासलाई की तीली से कान को सुरसुराते-सुरसुराते बोले, "मूरख हैं, साले सब-के-सब मूरख हैं। मैं बेवकूफ नहीं हूं, गधे का बच्चा नहीं हूं। मूरख लोग ही इस दुनिया का मर्म नहीं समझते हैं। मेरा तो स्ट्रेट कहना है, जब तक जिन्दा रहूंगा, मैं साला राजाओं की तरह रहूंगा। आंखें बन्द होने पर कौन किसका है—हमारे आने-जाने की कौन खोज लेगा ? सागर में बूंद की तरह विलीन हो जाएंगे सब।"

विजली वावू के मुंह का भाव धीरे-धीरे वदलता जा रहा है; गोरे मुंह की चमड़ी पर थोड़ी लाली-सी छा गई है, कपाल पर पसीने की कुछेक वूंदें हैं, आंखों में थोड़ी-सी खुमारी छा गई है। चश्मा उन्होंने उतार डाला है।

अवनी ने हंसकर कहा, "ड्रिंक फॉर वन्स डेड, यू शैल नेवर रिटर्न..."

"ऊं...। हां-हां...नेवर रिटर्न।" माथा झटकारा विजली वावू ने, "वचपन में आपने यह कविता नहीं पढ़ी थी—समय चला जाता है नदी की धारा की तरह, जो यह नहीं समझता उसे धिक्कार है सौ वार धिक्कार है। आपका समय चला जा रहा है...'ग्रोइंग ओल्ड'...अन्तिम समय में अफसोस होगा, मित्तिर सा'व।"

"आपको कोई अफसोस नहीं है?"

"वैसे तो नहीं है," विजली वावू ने हाथ उठाकर हिलाया, "मगर एक प्राइवेट अफसोस अवश्य है: मेरे दाएं-वाएं खाली घड़े हैं।" अंगूठे से विजली वावू ने अपना दायां-वायां दिखाया।

अवनी ठीक समझ नहीं सका, देखता रहा। जीभ के स्वाद के लिए कुछेक तले आलू मुंह में डाले।

विजली वावू ने हाथ वढ़ाकर दियासलाई उठा ली, पलकें अधमुंदी करके हंसे, "मैं अपनी वहुओं के वारे में कह रहा हूं। मेरी दोनों ही वहुएं वांझ हैं। पुत्रार्थे क्रियते भार्या। मेरी भार्याओं से कुछ भी तो नहीं हुआ।"

अवनी विजली वावू को देख रहा था, समझ में नहीं आता है उतना, तो भी सन्देह होता है कि विजली वावू के मन में एक गहरा क्षोभ है। सहसा अवनी की आंखों के सामने कुमकुम का चेहरा तिर उठा। रिवन वंधे घने वाल, आगे के दांत गिर गए थे। वह तो अव और भी वड़ी हो गई होगी—दांत निकल आए होंगे अव तक।

विजली वावू ने पूछा, "आपको भगवान-वगवान में विश्वास है, मित्तिर सा'व?"

अवनी ने मानो कुमकुम को टप-से डूव जाते देखा। विजली वावू ने फिर सिगरेट सुलगाई।

"दो-एक जगहों में—" विजली वावू ने कहा, "जो मारता है—वह भगवान साला ही मारता है।"

अवनी जरा-सा मुस्कराया, मुस्कराकर अपने गिलास का वाकी पेय खत्म किया।

थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। वाहर की खिड़की से हवा आ रही है, सि के ऊपर पंखा चल रहा है, फिर भी गरमी लग रही थी। अवनी वावू ने मुंह पोंछा, चश्मा पहना फिर। अवनी की आंखों के नीचे का हिस्सा जैसे ईषत् स्फुरित हो ग हो। डेले थोड़े लाल-से हैं। पसीना चुहचुहा आया है चेहरे पर।

अवनी उठकर गया और पंखा वढ़ा दिया। पंखा वढ़ाकर अन्दर चला गय थोड़ी देर वाद वापस आया फिर। विजली वावू आंखें वन्द किए गुनगुनाते किसी पुराने हिन्दी गाने का सुर अलापने की कोशिश कर रहे थे। वापस अ अवनी ने फिर दोनों के लिए गिलास तैयार किए।

विजली वावू वोले, "वातों-वातों में मैं असली वात ही भूलता जा र

मित्तिर सा'ब। वह जो लड़की है,—आंख की डॉक्टर—उसका मामला क्या है?"

"कैसा मामला?"

"यहां आ धमकी है न। वह सुरेश्वर-महाराज की रिश्तेदार है क्या?"

"मैंने पूछा नहीं है।"

"क्या नाम है उसका?"

"हैमन्ती।"

"उपाधि क्या है?"

"पता नहीं, मैंने पूछा नहीं है।"

"कहां से आई है?"

"कलकत्ता से।"

बिजली बाबू कुछेक क्षण चुप रहे, फिर अन्त में बोले, "थोड़ी-सी बड़ी हो गई है—, पर चेहरा-मोहरा है।···ब्याह-शादी किया है, ऐसा तो नहीं लगा।"

अवनी ने सिर हिलाया, "पता नहीं। शायद नहीं। मगर ब्याह करने पर भी आजकल बहुत-सी लड़कियां मांग में सिन्दूर नहीं डालती हैं। ब्राह्म हो सकती है, ईसाई हो सकती है। इनमें भी बहुतेरी लड़कियां सिन्दूर नहीं पहनती हैं।" अवनी ने परिहास करते हुए कहा।

"सुरेश-महाराज पक्के हिन्दू हैं।" बिजली बाबू ने मानो मन-ही-मन हिसाब किया, "नहीं, महाराज जी की पत्नी होती, तो सिन्दूर रहता।"

अवनी ने सिगरेट सुलगाई। फिर उठ कर बैठा और विपरीत दिशा की खिड़की की तरफ निहारता रहा, बाहर अमरूद के पेड़ की डाल हिल रही है अंधेरे में, बरामदे के प्रकाश की मृदु आभा में डाल के कुछेक पत्ते साड़ी के आंचल-जैसे मग रहे हैं।

बिजली बाबू ने कहा, "सुना है कि आजकल आश्रम-वाश्रम बनाने के लिए एक मां की जरूरत पड़ती है। तो क्या सुरेश-महाराज ने मां का आयात किया···?"

अवनी ने कोई जवाब नहीं दिया।

उत्तर की प्रतीक्षा करके अन्त में बिजली बाबू ने फिर कहा, "नहीं, मित्तिर साब, हमारे महाराज जी तो वह सब साधना-बाधना भी नहीं करते हैं। मा का आयात ही भला क्यों करेंगे?"

अवनी ने अबकी बार बात की, "हो सकता है, सेवा-टहल करने आई हो। आपके सुरेश-महाराज की भक्त है।"

"भक्त लोग ही सब कुछ छार-खार कर देते हैं। पर यह तो और भी ज्यादा है—भक्ति है···। भला आप-जैसे आदमी कितने मिलते हैं, जो फेमिनिन जेंडर को बाद देकर चलते हैं।"

अवनी हंस पड़ा। "आपके सुरेश महाराज क्या औरत पर लट्टू होंगे?"

"लट्टू होना तो नहीं चाहिए।···लेकिन वह देवी कैसी कि देवता सेल्फ कंट्रोल कर सकें? यह तो मेरा कहा हुआ नहीं है, शास्त्र में ही देखिए—वैसे भोले-भाले पागल शिव भी उमा को देखकर रीझ गए थे। देवी में ही सृष्टि है—देवी में ही प्रलय है। कुछ कहा नहीं जा सकता है, यह देवी सुरेश-महाराज की आंखें खोल दे सकती है, फिर उन्हें अन्धा भी बना दे सकती है।"

अवनी ने कुर्सी की पुश्त पर माथा टिकाकर पलकें मूंद लीं। सिर भारी होता जा रहा है। बिजली बाबू की बात पर हंसने की कोशिश की, पर हंस नहीं सका।

रात हो गई है। बिजली बाबू अभी-अभी चले गए। जाते समय न उन्हें बेले के फूल की बात याद रही, न अवनी को ही। फाटक तक बिजली बाबू को पहुंचाकर अवनी लौटा।

आज जरा अधिक मात्रा में पी ली है अवनी ने, आंखों से साफ-साफ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था उसे, पेड़-पौधे धुंधले-से दिखाई पड़ रहे थे, बरामदे की रोशनी कम मालूम पड़ रही थी, अभ्यस्त रास्ते पर लड़खड़ाता हुआ सीढ़ी की ओर आगे बढ़ता जा रहा था वह। ठंडी हवा में थोड़ा-सा रुका, पैरों में जोर महसूस नहीं हो रहा है, हाथ जैसे कांप रहे हों। सिगरेट के टोटे को अनावश्यक जोर से फेंक दिया। स्टेशन की तरफ से एक भारी आवाज़ तिरती हुई आ रही है—मालगाड़ी चली जा रही है, अपना निश्वास-प्रश्वास उसे हठात् कैसा कष्टकर लगा। सिर उठाकर आकाश देखने अथवा मुंह ऊपर करके निर्मल हवा खींचने का मन किया, अवनी ने सिर उठाना चाहा, तो बेहद भारी और चकराता-सा लगने की वजह से सिर नहीं उठाया। पलकें मुंदती जा रही थीं।

सीढ़ी के पास आया, तो सहसा उसे लगा, न जाने किसने पुकारा। रुका अवनी। धीरे-धीरे पीछे मुड़ा। साफ-साफ कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है; बहुत थोड़ी-सी रोशनी है सामने, उसके बाद अंधेरा है। कुछ देर तक रुका रहा अवनी, इन्तजार किया। नहीं, कोई नहीं है।

सीढ़ियां चढ़कर बरामदे में पहुंचा, तो एकाएक उसे लगा, उसका परिचित स्वर है। न जाने किसका है, किसका है—? ललिता का है। अवनी तुरन्त फिर घूमकर खड़ा हो गया। यथासम्भव चमकीली आंखों से ताका। नहीं, कोई नहीं है।

अवनी इस बार हंसा। जोर से नहीं, मृदु आवाज़ में मानो अपने आपको सुनाया। एक अजीब कल्पना आई दिमाग में; कभी-कभी शायद दूर पर किसी नाते-रिश्तेदार के मरने पर एकाएक उसकी पुकार सुनाई पड़ती है। तो यह प्रिमोनिशन है? टेलीपैथी है? तो क्या ललिता चल बसी एकाएक?···नॉनसेंस! ह्विस्की अच्छी ही थी। मनीआर्डर से ललिता अभी भी उसकी रिश्तेदार है।

कमरे में घुसते समय अवनी मानो सहसा अपनी बगल में बिजली बाबू को अनुभव कर पा रहा हो—थोड़ा-सा मुंह फेरा। बिजली बाबू उसके मुंह की बगल में मुंह लगाकर जैसे चले जा रहे हों। सारे मुंह पर एक हंसी है।

वह हंसी अच्छी नहीं लगी अवनी को। बिजली बाबू का मुंह हंसी से फूलता जा रहा है क्रमशः, बेलून की तरह बढ़ रहा है, आखिरकार फट जाएगा।

विरक्त होकर अवनी ने मुंह फेर लिया।

कान की बगल में बिजली बाबू ने मानो फुसफुसाकर कहा, वह कौन है?

कौन होगी भला, ललिता है। अवनी ने किसी तरफ नहीं देखा।

बिजली बाबू का मुंह मानो फटने ही वाला हो: फेमिनिन जेंडर का मजा क्या है, जानते हैं, वह क्या है, यह समझ में नहीं आता है, कब किसे देख रहे हैं—क्या सोच रहे हैं···

अवनी कमरे में चला आया। बिजली बाबू की हंसी पिचकारी के रंग की

तरह जैसे उसकी चेतना में कहीं बिसर गई हो।

बिस्तर पर आकर बैठा अवनी। बैठा और बिजली बाबू से ही मानो मन-ही मन कहा :

ललिता को आपने देखा नहीं है बिजली बाबू, उसके शरीर से उंगली छुलाने पर एक समय मेरा तमाम कुछ जल जाता था। पके हुए बड़े अंगूर-जैसा शरीर था, नाखून की खरोंच लगने पर जैसे रस चू पड़ता। ललिता के वास्ते मैं पागल हो गया था। उससे ब्याह करने के बाद, पहले भी तीन-चार वर्ष, ललिता का मैंने राक्षसों की तरह भोग किया था।···तब, मेरी धारणा थी कि मैं उसे प्यार करता था।···हालांकि, बाद में मेरा उसके प्रति आकर्षण खत्म हो गया, धीरे-धीरे प्यार भी नहीं रहा। प्यासे की प्यास मिट जाने पर जैसा होता है। तब ललिता को अच्छा नहीं लगता था, अकारण, अनावश्यक लगता था। मुझे भी ललिता की जरूरत नहीं थी। भोग-लिप्सा मर जाने पर भोग्यवस्तु का न भोग किया जा सकता है, न उपभोग ही। मेरी भोग-लिप्सा मर गई थी।

## छह

अवनी सपने में ललिता को देख रहा था।

देख रहा था : वे लोग बिस्तर पर लेटे हुए हैं, ललिता छत की ओर मुंह किए चित लेटी हुई है, और ललिता की ओर करवट लेकर अपने तकिए पर कोहनी रखे थोड़ा-सा ऊंचा होकर अवनी लेटा हुआ है। ललिता की आंखें खुली हुई हैं, होंठ खुले हुए हैं, दो सफेद चमचमाते दांत निकले हुए हैं, गले में कंठी-जैसा हार है। अवनी अपना दाहिना हाथ धीरे से ललिता के मुंह के पास लाया, फिर उसके गालों और होंठों पर उंगलियां फेरीं, उसके बाद पलकों को—अन्त में दाहिने पंजे और तालू से ललिता का मुंह ढक दिया अवनी ने, फिर ललिता के उरोजों पर मुंह उतारा। ललिता का हाथ अवनी के माथे के बालों पर आकर पड़ा है। उभरे हुए उरोज हैं ललिता के, अवनी ने परिपूर्ण युवती-देह को चूमा और दंशन किया। ललिता उसे उत्फुल्ल कर रही थी, सता रही थी। उसके बाद सहसा वह अवनी के आलिंगन से मुक्ति के लिए उठ बैठी। दूसरे क्षण ललिता फिर बिस्तर पर दिखाई नहीं पड़ी, अवनी बहुत जल्दी उसे ढूंढने के लिए कमरे के बाहर आया, अपने कमरे से दूसरे कमरे में आया, चमगादड़-बाग (बादुड़ बागान) के मकान के सोने के कमरे में, ललिता जैसे अभी-अभी इस कमरे से चली गई हो—उसके उतारे हुए कपड़े-लत्ते बिस्तर व फर्श पर लोट रहे थे; अवनी पल भर में दूसरे कमरे में चला गया। गुसलखाने में अविरल पानी गिर रहा है, गिर रहा है··· : खिड़कियों में जाल *का परदा है, दरवाजे में जाल का परदा है, दीवार पर कहीं थोड़ी-सी रोशनी है।* ललिता माथे के ऊपर शावर खोलकर खड़ी है, नंगी, परों-सी तिरछी नरम पीठ, कमर थोड़ी-सी भारी है, सद्य सिक्त कुंभ-जैसा नितंब, पानी की धारा से जांघें और पिंडलियां अस्पष्ट बनी हुई हैं। अवनी आगे बढ़ गया, ललिता के पीछे, फिर उसका कंधा पकड़कर उसे घुमाया और अपने मुंह-दर-मुंह किया और सहसा अनुभव

किया कि वह भी नंगा है। माथे के ऊपर गुसलखाने का फव्वारा है, जल-धारा के बीच खड़ा होकर उसने देखा; जलज प्राणियों की तरह उनके वदन पर काई जमती जा रही है और काई जम जाने की वजह से हरा काला हो गया सब कुछ। ललिता ने धक्का मारकर उसे गिरा देना चाहा, पर वह भी वैसा नहीं कर सकी; अवनी ने हाथ बढ़ाकर ललिता को हटा देना चाहा, पर वह भी वैसा नहीं कर सका, आखिर सिर के ऊपर वाले फव्वारे के पानी की धार एकाएक कैसी धागे-सी हो गई और एक बहुत बड़ा जाल बुन गया। मजबूत काला जाल। किसी मछुए ने एक विशाल जाल डालकर मानो उन्हें फंसा लिया हो, उस जाल में सेवार-लगे, काई-जमे दो जलज प्राणियों की तरह वे लोग कैद हैं। अवनी ने पागलों की तरह इस जाल को काटकर भाग जाने की कोशिश करनी चाही, तो देखा, ललिता भी दांतों से जाल कुतरने की कोशिश कर रही है। उसके बाद दोनों की जी-जान से जाल फाड़कर भाग जाने की कोशिश…

नींद टूट गई अवनी की। नींद टूट जाने के बाद ही उसे लगा कि वह जाल फाड़कर भाग सका है, राहत की सांस लेकर उसने पलकें खोलीं, पलकें खोलते ही विस्तर की मसहरी का जाल देखा, वह हवा से थोड़ा-सा कांप रहा था; अवनी भयभीत व त्रस्त होकर तेजी से भागने के लिए उठ बैठा और उसने खींचकर मुंह के सामने से मसहरी हटा डाली। इतने जोर से उसने हाथ से मसहरी खींचकर हटाई कि मसहरी थोड़ी-सी फट गई। तब तक उसकी नींद की खुमारी और भ्रम टूट चुका था। फिर भी एक बार अवनी ने विस्तर के बीच ताका, नहीं,—कोई नहीं है।

मुंह के सामने से मसहरी हटाकर अवनी कुछ देर तक बैठा रहा, उसके शरीर का थोड़ा-सा हिस्सा मसहरी के अन्दर, और बाकी हिस्सा बाहर है। गले और मुंह पर पसीना चुहचुहा आया है। दुःस्वप्न देखने के बाद मनुष्य जिस प्रकार अपना भय और विमर्षभाव सहन कर लेता है, अवनी उसी प्रकार अपना आतंक व विह्वलता दूर कर रहा था।

अन्त में उठा, विस्तर छोड़कर आगे बढ़ गया और बत्ती जलाई। प्यास के मारे होंठ और गला सूखा हुआ है। अवनी ने पानी पिया, पानी पीकर गुसलखाने गया। वापस आकर घड़ी देखी, पिछली रात है, चार बज गए हैं। उसने सिगरेट सुलगाई। पता नहीं क्या सोचकर बत्ती बुझाई और खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया।

अभी सर्वत्र सुनसान-सा है। बाहर अंधेरा है। ठंडी हवा का झोंका रह-रहकर आ रहा है। अंधेरे में बाग के पेड़-पौधे घनी छाया-से दिखलाई पड़ते हैं। आकाश काला है, कई तारे अभी भी नजर आते हैं।

सिगरेट का धुआं अवनी के स्नायुओं को शान्त व स्वाभाविक कर रहा था। सपने की उत्तेजना समाप्त हो चुकी है। हालांकि उसकी अन्यमनस्कता व विमर्षता बढ़ रही थी।

कुछ देर तक खिड़की के सामने खड़ा रहा अवनी, सिगरेट खत्म की, उसके बाद विस्तर पर वापस आकर लेट गया।

इस तरह का सपना उसने पहले कभी नहीं देखा था। ललिता को कभी-कभी वह अभी भी सपने में देखता है, किन्तु किसी दिन इस तरह से नहीं देखा था। यह

सपना, अवनी को लगा, अजीब है, डरावना है। सपने में ललिता का साहचर्य-सुख अथवा रमण-प्रिया हेतु जो हर्षोत्फुल्ल भाव है उसे वह अनुभव कर रहा था या नहीं, इस विषय में सन्देह होता है। निदिष्ट व स्थायी दृश्य की भांति अवनी सिर्फ उस वीभत्स जाल को देख पा रहा था : काला, मजबूत, कठिन, उस जाल के अन्दर किसी आदिम जलज जीव जैसे दो नंगे नर-नारियों के सर्वांग में सेवार और काई जमी हुई है। न जाने क्यों इस सपने में कहीं अवनी अपने अतीत को ढूंढ़ रहा था।

ललिता के विषय में अवनी आजकल साधारणतः कुछ सोचना नहीं चाहता है, अच्छा नहीं लगता है सोचना। उसे नहीं लगता कि अब उस विषय में और कुछ सोचने को हो सकता है। अकारण मन-ही-मन एक पुरानी विरक्तिपूर्ण स्मृति को बढ़ा-चढ़ाकर देखने से लाभ ही क्या है! अभी भी जो अवनी ललिता की बात सोचना चाह रहा था, ऐसी बात नहीं, हालांकि इस अजीब सपने के रहस्य व विचित्रता से वह इतना विह्वल व तन्मय हो गया था कि ललिता की बात सोचे बिना वह रह नहीं पा रहा था।

ललिता के साथ साधारण ढंग से ही परिचय हुआ था। कमलेश ने परिचय करा दिया था रास्ते में। एक समय कमलेश अवनी का सहपाठी मित्र था। बीच-बीच में वह अवनी के पास अड्डा मारने और गपशप करने आता था। कमलेश विनोदी मिजाज का लड़का था, नौकरी करता था अच्छी जगह पर, चौरंगी मुहल्ले में किसी दिन बीयर-वीयर पीने आता था। एक दिन अवनी से लिंड्से स्ट्रीट के पास मुलाकात हुई कमलेश की। साथ में थी ललिता। परिचय करा दिया कमलेश ने।

अवनी पहली ही मुलाकात में आकर्षित हो गया था। ललिता के प्रति आकर्षण अनुभव करना किसी भी पुरुष के लिए स्वाभाविक था। देहज सौंदर्य—जो पहले-पहल पुरुष की आंखों को आकर्षित करता है—ललिता के शरीर में अति मात्रा में था। उस प्रखर व प्रलोभक रूप पर अवनी आकृष्ट हुआ। ललिता का मुंह था उतराना-सा, थोड़ा छोटा-सा, कपाल चौड़ा था, गाल की चमड़ियां थीं पतली, फूली हुई नाक जरा-सी मोटी थी, होंठ मोटे थे। होंठों पर अंडे के पीले भाग की सी रसीली लसलसाहट थी। ललिता की आंखें थीं बड़ी-बड़ी, घनी मोटी भवें थीं, पलकें मोटी थीं। दृष्टि में कटाक्ष व काम-भाव था। उसके मुंह-आंख में कहीं एक प्रकार की मादकता रहने की वजह से ललिता आंखें बन्द करके इठलाती हुई बात-चीत करती थी, बादाम के दाने जैसे दांत दिखाकर हंसती थी। उसके कंधे और गला सुन्दर था; पीठ भरी हुई थी, स्तन परिपूर्ण व दृढ़ थे; गुरु नितम्ब और सुडौल जांघें थीं।

अवनी ने पहली ही मुलाकात में ललिता को अपने चित्त की चंचलता समझने दी थी। ललिता ने भी समझा था।

परिचय बहुत ही थोड़े समय में घनिष्ठता में बदल गया। अवनी ने उस समय जैसा व्यवहार किया था उससे लगता था कि अपने मन व दृष्टि को उसने एक ही जगह पर निबद्ध रखा था। मात्र एक वस्तु की कामना करने पर जिस तरह से मनुष्य और सब कुछ भूल जाता है—अवनी ने उसी तरह से अन्य किसी विषय में रत्तीमात्र आग्रह प्रकट किए बिना ललिता में ही अपना मन लगाए—

कमलेश ने एक दिन कहा : "क्यों रे, तू तो बिलकुल होशोहवास खो बैठा है।"

होशोहवास खोने जैसा ही दीख रहा था तब। अवनी एकमात्र ऑफिस में छोड़कर कहीं भी कभी अकेला दिखाई नहीं पड़ता था। वह हमेशा ही ललिता को साथ रखता था या ललिता का साथ दिया करता था। कमलेश मसखरी करके चाहे कुछ भी कहे, पर अवनी दिग्भ्रमित अथवा पागल नहीं हुआ था, उसने ललिता को एक वलय की भांति चारों ओर से धीरे-धीरे घेर लिया था। चतुर की नाईं उसने यह काम नहीं किया था, आवेग और इच्छा सहित किया था। ललिता के प्रति उसका आकर्षण अति तीव्र व हार्दिक होने के कारण वह सतर्क और संयत नहीं हुआ था, होने की कोशिश भी नहीं की थी। जरूरत नहीं थी। कमलेश ने बाद में फिर एक दिन कहा :

"जरा-सा सावधान हो जाओ।"

"क्यों ?"

"मैं जहां तक जानता हूं, उसके और भी कुछ बन्धु-बान्धव हैं।"

"इससे मेरा क्या ?"

"ज्यादा साधु मठ उजाड़।"

"तू एक ही साधु का मठ देख, बाकी के बारे में मत सोच।"

"तू तो बहुत सीरियस है। प्रेम में पड़ गया है क्या।"

"वह सब प्रेम-वेम मैं नहीं समझता भाई, अच्छा लगता है, बस, दैट्स आल।"

"तो तू उससे ब्याह करेगा ?"

"लोग तो यही करते हैं।"

ललिता से परिचय होने के डेढ़ेक साल के अन्दर ही अवनी ने उससे ब्याह कर डाला। ललिता अच्छी तरह से कुछ होश कर पाई थी कि नहीं, कौन जाने। अवनी ने वैसा मौका सम्भवतः नहीं दिया था। यदि ऐसा मान लिया जाए कि ललिता अवनी की मृगया की वस्तु थी, तो अवनी ने अपने शिकार को झिझकने, हट जाने अथवा भाग जाने नहीं दिया था; निशाने की रत्तीभर भूल-चूक किये बिना स्थिर दृष्टि रखकर उसने लक्ष्य भेद किया था। अवनी की इस सफलता की जड़ में सबसे अधिक थी उसकी इच्छा की तीव्रता, उसका अनमनीय दृढ़ पौरुष। उसकी बेझिझक आकांक्षा और स्पर्धापूर्ण आक्रमण के सामने ललिता असहाय हो गई थी।

ललिता बुद्धू या अनभिज्ञ थी, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है। अपनी कीमत वह जानती थी। सांसारिक लाभ-हानि का हिसाब उसने मन-ही-मन भली भांति लगा रखा था। भविष्य के बारे में भी उसकी मोटे तौर पर एक धारणा थी। लेकिन ललिता ने किसी-किसी जगह पर अपने हिसाब में गलती कर डाली थी। अवनी को उसने सही रूप में नहीं समझा था। सोचा था, उसे लाभ छोड़कर हानि नहीं होगी। अवनी को आम तौर पर नापसन्द करने का कोई कारण नहीं था—ऐसा कोई स्थूल कारण ललिता को ढूंढ़े नहीं मिला था जिससे वह अवनी को ठुकरा सकती थी। सम्भवतः ललिता ने अपने शारीरिक लक्षणों के लिए मन-ही-मन जो कीमत स्थिर कर रखी थी, अवनी ने पहले से ही उससे ज्यादा कीमत

ललिता को दी थी; दूसरा इतनी कीमत देता या नहीं, ललिता यह नहीं जानती थी; प्राप्ति के आधिक्य से वह सन्तुष्ट व लोभी हो गई थी। इसके अलावा, ललिता अवनी की प्रबल आकांक्षा के आगे आत्मरक्षा नहीं कर सकी थी, इसकी जरूरत भी उसने महसूस नहीं की थी तब। इन सबके बावजूद ललिता ने अवनी को शादी के रूप में, मर्द के रूप में पसन्द ही किया था।

ब्याह के बाद बादुड़ बागान के मकान में वे लोग कुछेक महीने तक मानो हवा में तिरे हुए थे। चारों ओर तब सुखी छिटक रही थी, सिर्फ सुख-ही-सुख था। तड़के नींद से उठने पर लगता, उनके हाथ में किसी ने जैसे सुख का एक बड़ा-सा नोट पकड़ा दिया हो, और कहा हो : 'जाओ, इसे खर्च करो।' उन दोनों ने दिन भर उस नोट को भुनाकर खर्च किया था और रात को बिस्तर पर लेटकर देखा था कि यह तब भी बहुत-सा बचा रह गया है। जो बचा रह जाता उसे खर्च करने में उन लोगों ने कंजूसी नहीं की थी; कारण, सवेरे नींद से उठकर आंख मलते ही फिर उन्हें एक 'सुख का नोट' मिल जाने वाला था। इतना सुख—लेटने, बैठने, बात करने, घूमने आदि में—कहां था यह जैसे उन्हें मालूम नहीं था। अवनी को भी लगता, वह आशातीत तृप्ति में है; हो सकता है, उसने इतनी प्रत्याशा भी नहीं की थी।

विवाह व दाम्पत्य जीवन के पहले कई महीने वे लोग मानो एक बवंडर के बीच थे, कहीं स्थिरता या शान्त भाव नहीं था। उन्होंने न तो कुछ विचार किया था, न इत्मीनान से एक-दूसरे को देखा था। बल्कि बवंडर में पड़कर चक्कर खाया था। हो सकता है, ऐसा होना स्वाभाविक था। सद्यःप्राप्त नये खिलौने को हाथ में पाकर बच्चे जैसे सब कुछ भूल जाते हैं और खेल में मन लगाते हैं—यह भी बहुत कुछ वैसा ही था। यहां तक कि नया खिलौना मिलने पर शिशु भी जैसे बहुत समय मन-ही-मन समझौता करके एक दूसरे को खिलौना लेकर खेलने का मौका देते हैं, अवनी व ललिता भी एक दूसरे को वैसा ही मौका दिया करते थे।

साल भर बाद ही देखा गया कि सुख का स्वाद फीका होता जा रहा है। तड़के नींद से उठकर बैठते ही अब मुट्ठियों में न तो सुख का नोट दूना जाता है और न ही दुःख का।

कुमकुम तब भी नहीं हुई थी, लेकिन भीतर-ही-भीतर हो रही थी। कुमकुम के बोझ से ललिता बोझिल हो गई थी। उसकी इच्छा नहीं थी कि इतनी जल्दी बच्चा हो। अवनी को लगा था, अगर गर्भ रह गया हो, तो इसे लेकर ललिता को ऐसी अशान्ति मन-ही-मन पाल कर नहीं रखनी चाहिए। पहली सन्तान के लिए अवनी को कैसी उत्सुकता व कौतूहल था। ललिता को वैसी कोई उत्सुकता व कौतूहल नहीं था। लेकिन इसे लेकर मामूली-सी तू-तू मैं-मैं हुई थी, तो भी बड़े पैमाने पर कोई झगड़ा-टंटा नहीं हुआ था। जितनी अशान्ति थी उसे भूला जा सकता था।

कुमकुम हुई। कुमकुम के जन्म के बाद ललिता का वह क्षोभ कम हो गया। न जाने कैसे उसने परिस्थिति के अनुकूल अपने आपको ढाल लिया। बल्कि अवनी और ललिता के सम्बन्ध में जो दरार पड़ गई थी उसकी सामयिक भाव से मरम्मत हो गई।

उसके बाद क्रमशः बादुड़ बागान के मकान में अशान्ति दिखा...

स्पष्ट रूप से कुछ समझ में नहीं आता था पहले-पहल, कुछ पकड़ में नहीं आता था—मगर धुआं, धूल, गंदगी आदि के उड़कर आने से जिस तरह से घर के कोने में, दीवारों पर गन्दगी इकट्ठी होती है जाले पड़ते हैं उसी तरह से परिवार में मलिनता जमा होने लगी। रह-रहकर वह एकाएक नज़र आ जाती थी।

अवनी कोशिश करता उस सब मलिनता से आंखें फेर लेने की। आंखें फेर कर वह ललिता की ओर ताकता। ललिता की देह के प्रति उसे तब भी प्रबल आसक्ति थी। कुमकुम के होने के बाद ललिता का शरीर टूट नहीं गया था, जो थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ था उससे ललिता के प्रति वितृष्णा जागने का कोई कारण नहीं था। बल्कि अवनी की आंखों को यह परिवर्तन अच्छा ही लगता था।

पत्नी के साथ अपने सम्बन्ध को वह और कहीं जब उतना पकड़कर रख नहीं पा रहा था, तब भी शय्या पर वह यह सम्बन्ध पकड़कर रखने की कोशिश कर रहा था। ललिता इस मामले में कैसी उत्साह-हीन और निश्चेष्ट होती जाने लगी। उसके बाद एक समय वह अवनी के पास से मानो दूर हट गई।

एक समय जिस घर में दिन-रात नटखट शिशु की किलकारी की तरह सुख का अनुभव किया जा सकता था, अब वहां सुख मर गया था। उसकी चूं तक सुनाई नहीं पड़ती थी, वह चला गया है, यह समझ में आता था, इसीलिए लगता था, जैसे सब कुछ सूना-सूना-सा हो। दुःख, अब सिर्फ दुःख का ही अनुभव किया जा सकता था।

नजरें हटाये रखकर अवनी ने जो कुछ नहीं देखा था, देखना नहीं चाहा था—अब उसे देखने के लिए बाध्य होने लगा। दीवार पर, कोने में, छत पर, छेद-छाद में इतनी मलिनता जमा हो गयी थी कि अब सब कुछ अस्वाभाविक और बदरंग दिखाई पड़ता था। धूल की मोटी परत, मैले चिथड़े-से जाले, मरे कीड़े-मकोड़ों के जमा हो जाने पर जैसा दिखाई पड़ता है बहुत कुछ वैसा ही दिखाई पड़ता था। ललिता को भी यह गंदगी दिखाई पड़ रही थी।

सांसारिक कलह, अशान्ति, वितृष्णा आदि तभी से उनके चारों ओर फट पड़ी।

ललिता के शरीर की भांति उसके चरित्र में भी कुछ स्थूलता थी। अवनी सही रूप से उस स्थूलता से पहले परिचित नहीं हो सका था; अब हो रहा था। अवनी के अपने चरित्र में भी जो कठोरता व असहिष्णुता थी वह भी प्रकट होने लगी।

ललिता कहती : अवनी ने उसे मांस की दर से खरीदा है।

अवनी जवाब देता : फूलों के बाजार में बिकने लायक ललिता का कुछ भी नहीं है।

विरक्ति और वितृष्णा के बीच वे लोग एक-दूसरे को नये सिरे से पहचानने लगे। अवनी समझ पाया, ललिता का स्वभाव अत्यन्त गंदा है, वह ओछी है, स्वार्थी है, हिसाबी है, दायित्व हीन है, विलासी है। ललिता भी समझ पाई, अवनी हृदय-हीन है, घमंडी है, कठोर है, कामुक है, उद्धत है। दोनों एक-दूसरे की हजारों प्रकार की त्रुटियां ढूंढ़ निकालकर जैसे सुखी हो रहे थे; अथवा अपने आपको सांत्वना दे पा रहे थे।

एक-दूसरे को नाखूनों से नोंचने की प्रवृत्ति और हिंसा बढ़ती जा रही थी।

सवेरे नींद से उठते ही किसी-न-किसी तुच्छतम विषय को लेकर तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती। उसके बाद उस धुएं में आग दिखाई देती।

हो सकता है, सवेरे नींद से उठकर अवनी ने चाय के प्याले में मुंह लगाया, तो देखा कि चाय का स्वाद अत्यन्त कड़आ है और चाय ठंडी होकर पानी-सी हो गई है। विरक्त मुंह से अवनी ने कहा, "क्या हुआ है यह? चाय है या चिरायते का पानी"

ललिता ने जवाब दिया, "जो कुछ हुआ है हुआ है—उससे ज्यादा कुछ नहीं होगा।"

"कुछ नहीं होगा—इसका मतलब? एक प्याला चाय देकर तुम मेरा सिर मोल ले रही हो क्या?"

"तो क्या तुमने दो जून दो कौर भात देकर मुझे खरीद रखा है?"

"दो जून दो मुट्ठी भात देकर जिन्हें खरीदा जा सकता है तुम उन-जैसी भी नहीं हो। उन-जैसी होती, तो तुम्हें शर्म तो होती।"

"भला तुम्हें ही कितनी शर्म है! गले तक शराब पीकर रात के बारह बजे घर लौटते हो और कुत्ते की तरह मेरा बदन चाटने आते हो, और भोर में नींद टूटने पर आंखें दिखाते हो।"

अवनी ने गुस्से में आकर चाय के प्याले को प्राणपण से फेंका दरवाजे की ओर। प्याला चकनाचूर हो गया। कुमकुम बगल के कमरे से भागी आई, और बाप और मां को अवाक् होकर देखने लगी।

अकारण, मामूली कारण से या कभी जान-बूझकर ही झगड़ा किया करती थी ललिता। अवनी कम-से-कम ऐसा ही सोचता था। फिर ललिता सोचती, सारा-का-सारा दोष अवनी का ही है। अवनी को ललिता में शिक्षा, रुचि, शालीनता, कर्तव्य-ज्ञान और परिवार के प्रति आकर्षण ढूंढ़े नहीं मिलता। कुमकुम को वह छुटपन से ही बरबाद कर रही है, उसका स्वभाव बिगाड़े दे रही है।

ललिता सोचती, अवनी ने उसे ठगा है; चतुराई करके—कौशल से ललिता को अपने घर-संसार में लाकर रोक रखा है! उसकी स्वाधीनता और पसन्द नाम की कोई चीज अब नहीं रही।

ललिता की स्थिर धारणा हो गई थी कि अवनी ने उससे दगाबाजी की है। पर किस प्रकार की दगाबाजी की है, यह वह उतना नहीं समझती थी; लेकिन उसे लगता कि ऐसा जीवन उसने नहीं चाहा था, और पांच लड़कियों की तरह घर द्वार, पति, लड़की यह सब लेकर उसे दिन बिताना होगा, यह सोचने में ही उसे बुरा लगता, घृणा होती। अवनी ने उसे उस एकरसता में उलझा डाला है। इसके अलावा, अवनी, ललिता को लगता, उसे प्यार नहीं करता है, न उसे उसके प्रति ममता है, न वह उसे इज्जत ही देता है। सिर्फ बिस्तर पर लेकर सोने के लिए उससे ब्याह किया था। वह चतुर और कामुक है।

"तुम्हारा आकर्षण तो सिर्फ एक ही जगह है। मौज-मस्ती लूटने के लिए जब जरूरत पड़ती है, जितनी जरूरत पड़ती है लूटते हो।" ललिता कहती।

"और तुम्हारा कितनी जगह आकर्षण है"—अवनी व्यंग्य करता हुआ जवाब देता।

"नहीं, मुझे कहीं कोई आकर्षण नहीं है। क्यों रहेगा आखिर। मैं ——

सब चाहा था ?"

"तुम ठीक कहती हो, तुमने यह सब नहीं चाहा था। पर तुमने क्या चाहा था, यह अब मेरी समझ में आ रहा है।"

"क्या चाहा था मैंने, जरा सुनूं तो सही ?"

"तुमने दो दिन यहां, तो दो दिन वहां बिताना चाहा था, तुमने चाहा था मजा लूटना। जिसके पास जब तक लूटा जाए।"

"खूब कहा तुमने, बता सकते हो, तुम्हारे पास मैंने कितना मजा लूटा !" ललिता उपहास करती हुई कहती।

दरअसल अवनी व ललिता के स्वभाव में काफी फर्क था। उन लोगों ने यह नहीं सोचा था कि अपनी-अपनी प्रकृति व चरित्र के बारे में कल्पना करके वे एक-दूसरे के कितने निकट हो सकेंगे। एकमात्र शय्या ही उनका मिलन-स्थल था, अन्यत्र वे लोग विच्छिन्न व स्वतंत्र रहते थे। अनुभव, समझौता, सहिष्णुता और स्वार्थ-त्याग होने पर वे लोग एक-दूसरे के विपरीत स्वभाव को भी सहन कर सकते थे, सहन करके एक-दूसरे को क्रमशः बदल और सम्बन्ध को घनिष्ठ और एकात्म कर सकते थे—वैसा समझौता, सहिष्णुता इत्यादि कुछ भी उनमें नहीं था।

अवनी अवसाद बोध करने लगा। ललिता भी छुटकारा पाने के लिए बेताब हो उठी। उसे भी लगने लगा, अवनी से अपना दामन छुड़ा सके, तो वह जैसे जी उठे। अवनी लक्ष्य करता, ललिता बाहर-ही-बाहर घूमती फिरती है, और अपने पुराने बन्धु-बान्धवों से मिल-जुलकर बहुत रात गए घर लौटती है, अवनी की ओर निगाह नहीं फेरती है। गृहस्थी के खर्च का पैसा पानी की तरह बहाती है, बरबाद करती है और फिर मांगती है। न उसे संकोच है न लज्जा !

अवनी की एकमात्र कमजोरी थी—कुमकुम। कुमकुम को उसकी मां के हाथ से बचाने की कोशिश अवनी ने की थी। पर ललिता ने वैसा होने नहीं दिया। बल्कि उसने कुमकुम को अवनी का विरोधी बना दिया। बाप से घृणा करना, नापसन्द करना, अवज्ञा करना कैसे सिखाया ललिता ने, कौन जाने, लेकिन कुमकुम अपनी मां-जैसी हो गई। उतनी छोटी-सी लड़की की आंखों में अवनी ने जो विषपूर्ण दृष्टि देखी थी उससे लगा था कि दुनिया में उसके जैसा पक्का शैतान जैसे दूसरा नहीं हो।

ललिता कुमकुम को बिलकुल बिगाड़े दे रही थी। उसे सैकड़ों प्रकार की नीचता सिखा रही थी। अवनी को लग रहा था, ललिता उसे कमजोर जगह पर चोट पहुंचाकर आनन्द पाना चाह रही है।

एक दिन ललिता ने कहा, "इस तरह से मैं नहीं रहूंगी।"

"किस तरह से ?"

"तुम्हारे साथ कोई औरत रह नहीं सकती है।"

"और कोई तुम्हें पालना चाह रहा है क्या ?"

"शरीफ होने का सबक जो तुम्हें नहीं मिला है, यह तो मुझे मालूम है।"

"तुम्हारे परिवार के लोग-बाग क्या शरीफ हैं ?"

"वे तुमसे अधिक शरीफ हैं ?"

"सो तो दिखाई ही पड़ रहा है।...बाप कुत्ता ब्रीड करवा कर पैसा लेता है, बेटा नाच के दल में लड़की सप्लाई करता है, एक बहन तो..."

"तुम्हारे मां-बाप भी देवता के अवतार नहीं हैं। ये सब बा
बदन की गंध जब छिपा नहीं सकोगे, तो दूसरे को दोष देने से स
मैंने तय किया है—तुम्हारे यहां मैं नहीं रहूंगी।"

"तो किसके साथ रहोगी?"

"जरूरत पड़ेगी, तो किसी के भी साथ रहूंगी।"

"तो क्या आजकल बीच-बीच में वहां जाकर रहती हो?"

"मैं तुमसे डाईवोर्स लूंगी।"

"ले लो।"

"तुम राजी हो?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं।—मैं बाद में सोचकर देखूंगा।"

"मगर कुमकुम मेरे पास रहेगी।"

"कुमकुम मेरी बेटी है। तुम्हारे पास मैं उसे नहीं रहने दूंगा।"

अच्छा नहीं लगता था, सहन नहीं होता था। सभी विषयों में उसमें असीम क्लान्ति जमा हो रही थी। अनाग्रह बढ़ रहा था। लगता था वह बिमार हो गया है। अवसन्नता व क्लांत बोध कर रहा है। न जाने कैसी एकरसता, अर्थहीनता के बीच वह जिन्दा है, उद्देश्य-विहीन जीवन है, न कहीं कोई स्वाद है न सुख।

एक दिन शराब पीते-पीते कमलेश ने कहा, "तू तो बहुत सीक हो गया है।"

"तू मेरा शरीर देखकर कह रहा है?"

"नहीं, तेरा मुंह-आंख देखकर, तेरी बात-चीत सुनकर—।"

"मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है···"

"सफरिंग फ्रॉम बोरडम!"

"पता नहीं।···मैं बीच-बीच में सोचता हू: आग अब बुझती जा रही है।"

"आग? काहे की आग?"

"चूल्हे की।···चालीस साल उम्र हो गई है, समझा। आज के दिनों में चालीस साल तक जिन्दा रहना बहुत डिफिकल्ट है।···मुझ-जैसे बॉस्टर्ड की धूनी भला कब तक रमेगी!"

"मैं समझ पा रहा हूं, तू अब खिसक पड़।"

आखिरकार अवनी सचमुच ही चला आया। ललिता को भी छोड़ दिया, बेटी को भी। लेकिन अवनी की समझ में नहीं आ रहा था कि जाल के बाहर आकर भी उसने ऐसा सपना क्यों देखा?

## सात

नदी की ओर आज टहलने निकली थी हैमन्ती। साथ में है मानिनी। नदी में अभी भी वर्षा का पानी है। यहां-वहां चट्टानें हैं, स्रोत में कहीं इसीलिए

सा भंवर है; पानी में बहाव है, कलकल शब्द है, नहीं तो, इस चट्टानों और गोल-गोल पत्थरों से भरी शीर्ण जल-धारा को नदी नहीं कहा जा सकता है। बीच-बीच में मालिनी को लेकर हैमन्ती इधर टहलने आती है। यह नदी उसे अच्छी लगती हो, ऐसी बात नहीं, तो भी वह आती है। आश्रम से निकलने पर जाने के, बस, दो ही रास्ते हैं, या तो उत्तर की ओर जाया जा सकता है, नहीं तो दक्षिण की ओर; उत्तर की ओर कच्चा रास्ता पकड़कर सीधे जाने पर बस-रास्ते का लट्ठा मोड़ मिलता है, और दक्षिण की ओर थोड़ी दूर तक चलने पर यह नदी मिलती है, और नदी पार करते ही गुरुडिया गांव मिलता है। आश्रम के अन्दर घूमना फिरना, या रोज कच्ची सड़क पकड़कर उत्तर की ओर आगे बढ़ना अच्छा नहीं लगता है, इसीलिए वह नदी की ओर आया करती है। नदी की ओर आने की भी रोज इच्छा नहीं होती है। फिर भी इधर आने पर, नदी के किनारे चट्टान पर बैठने पर लगता है— यहां थोड़ी-सी चंचलता है, मृदु है, तो भी आवाज नाम की कोई चीज तो है, उत्तर की ओर तो जैसे कुछ हिलता ही नहीं हो; वही रास्ता, वही मैदान, पेड़ और आकाश —तमाम कुछ स्थिर है; कल जैसा था आज भी वैसा ही है, आगामी कल भी वैसा ही रहेगा।

इधर, नदी की ओर दिन रहते घूमने आने पर दो-चार आदमी भी दिखाई पड़ते हैं, गांव के आदमी; नदी के इस पार साग-सब्जी अथवा धान के खेतों में काम-धाम निबटाकर नदी पार करके घर लौटते हुए, साइकिल के पीछे खाली टोकरियां बांधे दो एक-व्यापारी भी गांव लौटते हैं। नदी के सब से कम पानी वाले स्थान से होकर चट्टानों पर पैर रखते हुए बालू और टखने तक पानी को पार करके वे लोग जब चले जाते हैं, तो मालिनी कहती है, "पानी और भी कम हो जाए, तो मैं आपको एक दिन गांव में घुमाने ले जाऊंगी, हेम दीदी; वहां एक लड़की है, बिलकुल बच्ची है, क्या खूबसूरत और गुलगोथनी-सी है, देखते ही उसे दुलारने को जी चाहेगा। बेचारी बिलकुल ही अन्धी है। हमारे यहां पहले बहुत बार आई है। शायद उसकी आंखें अब अच्छी नहीं होंगी। इतनी तकलीफ होती है।"···मालिनी उस गांव की ओर भी कई तरह की खबरें रखती है: कहां एक महादेव का मन्दिर है, किस समय छठ पर्व होता है, यहां तक कि एक अजीब-सा बेर का पेड़ है, जिसमें सिर्फ सफेद बेर फलते हैं—ऐसी ही अनगिनत खबरें।

मालिनी यहां आती है, तो हरदम चट्टान पर बैठती है, जब तक बैठी रहती है, नदी के पानी में पांव डुबोती है। कहती है, उसके हाथ-पैर में शायद बहुत जलन होती है। हैमन्ती नजदीक ही एक चट्टान चुनकर बैठती है अवश्य, लेकिन पानी में कभी भी पांव नहीं डुबोती, न हाथ ही डालती है। हो सकता है, वैसा करने को उसका जी चाहता हो, किन्तु मालिनी के सामने चंचलता प्रकट करने में उसे संकोच होता है, मानो उसे इस उम्र में इस प्रकार का बचपना करने में हिचक होती हो।

भोली-भाली और सरल है इसीलिए मालिनी बात जरा ज्यादा करती है। उसकी बातचीत कभी-कभी बिलकुल बेवकूफों की-सी लगती है, कभी-कभी लगता है, वह हैमन्ती की सहेली जैसी होती जा रही है, उसे क्या बोलना चाहिए या क्या नहीं बोलना चाहिए, वह यह समझ नहीं सकती है। हैमन्ती के परिवार के बारे में वह तरह-तरह की बातें पूछा करती है, यह आग्रह औरताना कौतूहल है;

कलकत्ता की कहानी, हैमन्ती के डाक्टरी पढ़ने-लिखने की कहानी सुनने का भी उसे बच्चों-जैसा आग्रह है। फिलहाल हैमन्ती सहय कर रही थी, मालिनी का और भी एक विषय में अस्वाभाविक कौतूहल दिखाई पड़ा है, स्पष्ट करके या साहस बटोर करके कभी भी वह उसे पूछ नहीं सकती है, किन्तु बहुत समय उसका वह कौतूहल दबे ढंग से प्रकट हो जाता है, उसकी दृष्टि अनेक बार उसे व्यक्त करती है। सुरेश्वर और हैमन्ती के रिश्ते में एक रहस्य की गन्ध मालिनी को मिली है।

मालिनी को हैमन्ती पसन्द ही करती है, फिर भी मालिनी को वह अपने बराबर दर्जे की नहीं समझ सकती है। बल्कि मालिनी की उम्र व अन्याय विषयों की बातें सोचने पर लगता है कि उसे इतना मिलने-जुलने का मौका देना शायद प्रश्रय देना है। फिर, हैमन्ती कभी-कभी सोचती है, मालिनी और उसमें कोई खास फर्क नहीं है, उसने पढ़ना-लिखना सीखा है, डॉक्टर बनी है, मालिनी ने पढ़ना-लिखना विशेष कुछ नहीं सीखा है, उम्र में वह बड़ी है, मालिनी कुछ छोटी है, हैमन्ती की शहरी शिक्षा-दीक्षा है, मालिनी की शिक्षा-दीक्षा वैसी नहीं है, भला यह भी कोई फर्क है! मालिनी उसकी दासी नहीं है, वह भले परिवार की लड़की है, आज उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, हैमन्ती की आर्थिक स्थिति एक समय क्या कोई खास अच्छी थी! हैमन्ती की बीमारी के समय सुरेश्वर की आर्थिक सहायता की क्या उसे जरूरत नहीं पड़ी थी? तो फिर! ग़रीब कहकर मालिनी को अवहेलना की आंखों या छोटी आंखों से देखने में हैमन्ती झिझकती थी। मालिनी उसकी जैसी डॉक्टर नहीं है, इसलिए, या वह शहरी नहीं है इसलिए भी उसे अपने से नीचा समझने में उसे बुरा लगता था। फिर भी पूरे तौर पर मालिनी को अपने समान वह समझ नहीं सकती थी।

सहेली के रूप में, और बहुत कुछ जैसे दूर के रिश्तेदार की तरह हैमन्ती ने मालिनी को स्वीकार किया था। दो बातें करने, गपशप करने और मन हल्का करके हंसने के लिए मालिनी को छोड़कर उसकी और कोई सहेली नहीं है। इसके अलावा औरत होने की वजह से ही शायद स्वभाववश वे लोग एक दूसरे की घनिष्ठ हो उठी थीं, हैमन्ती उतनी स्वतन्त्र व अलग रह नहीं पा रही थी। अपने इस प्रकार के मनोभाव को ही हैमन्ती बीच-बीच में प्रश्रय देना समझती थी। ऐसा समझते ही वह विरक्त होती। फिर समय पर उसकी विरक्ति दूर हो जाती और कैसी झिझक जागती।

नदी के किनारे चट्टान पर बैठकर बातें करते-करते तीसरा पहर ढल गया। वर्षा जा चुकी है, शरत्काल आ गया है। हैमन्ती कभी भी शरत् काल कलकत्ता में उतना नहीं देख पाई थी, मगर बीमारी के वक्त उसने वीरभूम के बाट-घाट में शरत् काल देखा था, स्मृति बनकर अभी भी वह जिंदा है। यहां वैसा शरत् नहीं है, काश के फूल नजर नहीं आते न धान के खेतों में हवा में लोटती है, हंसी-रुलाई जैसी धूप वर्षा से भीगे पेड़-पौधे और घास-पात कहा हैं! फिर भी यहां भी शरत्-काल आया है। आकाश में, बादलों में, धूप में, वन्य प्रान्तों में यहां तक कि धान के खेतों में भी वह नजर नहीं आता है। यह शरत् सजल स्निग्ध नहीं, शुष्क स्निग्ध है। बड़ी जल्दी यहां सब कुछ सूख जाता है। लम्बी वर्षा के तमाम निशान यहां बहुत जल्दी सूखते जा रहे थे, मानो नया नाटक शुरू होने के पहले कोई अपने निपुण हाथों से जल्दी से पुराने नाटक का सब कुछ पोंछकर नए के लिए

सजा दे रहा था।

दिन ढलता जा रहा था। पंछियों का एक झुंड नदी को पार करके उस पार चला गया। गोधूलि की भांति आकाश कहीं-कहीं रक्ताभ है।

हैमन्ती उठी। मालिनी की इच्छा थी और भी थोड़ी देर बैठने की। आज वह हैमन्ती से तरह-तरह की मजेदार कहानियां सुन रही थी। बातों-बातों में हैमन्ती की डॉक्टरी पढ़ने की चर्चा छिड़ी थी : पहले पहल मुर्दों की गन्ध कैसी लगती थी हैमन्ती को, उसे क्या-क्या करना पड़ता था।

मालिनी ने पानी से अपने पैर बहुत पहले ही ऊपर कर लिए थे, उठते समय नदी के पानी से मुंह धोया, कुल्ला किया, उसके बाद आंचल से हाथ पोंछकर उठ पड़ी।

चलते-चलते मालिनी बोली, "आदमी के मर जाने के बाद उसकी आत्मा स्वर्ग कैसे जाती है हेमदीदी ?"

हैमन्ती की पढ़ी हुई विद्या में आत्मा के स्वर्ग जाने की कोई जानकारी नहीं थी; हैमन्ती ने कौतुक-भरी आंखों से इस सरल लड़की के मुंह की ओर ताका, अपने चेहरे पर मुस्कान बिखेरी।

"यह तो मुझे नहीं मालूम।"

मालिनी शायद इस जवाब से खुश नहीं हुई; उसका मनभावन जवाब यह नहीं था। बोली, "यहां स्टेशन के पास एक बार एक सिनेमा आया था, 'सावित्री सत्यवान' फिल्म मैंने देखी थी। हिन्दी फ़िल्म थी। सत्यवान के मर जाने के बाद यमराज ने उसकी आत्मा ली, जानती है हेमदीदी। इस्स···क्या तकलीफ हो रही थी, मगर बहुत अच्छा दिखाया गया था। यमराज ने अपनी गदा जैसी चीज कंधे से उतारकर सत्यवान की छाती के पास रखी, और फौरन सत्यवान के शरीर से दूसरा छाया जैसा सत्यवान बाहर निकल आया; यमराज जितना अपना दंड उठाता था वह छाया-जैसा सत्यवान का शरीर उतना ही छोटा होता जाता था, और छोटा होते-होते ज्योति-सा हो गया, अविकल एक गेंद की तरह। यमराज के अपना दंड कंधे पर रखने के बाद वह ज्योति विलीन हो गई, फिर दिखाई नहीं पड़ी।···"

हैमन्ती की समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे। वह चुप रही।

मालिनी बोली, "आत्मा उसी तरह से चली जाती है। न ?"

"सिनेमा में उसी तरह से दिखाया जाता है।"

"नहीं हेम दीदी" मालिनी ने माथा हिलाकर प्रतिवाद किया। "मेरे पिता जी का जब देहान्त हुआ था, तो मैंने उनके सिरहाने दीवार पर गोल-सी रोशनी देखी थी, ठीक जैसे किसी ने रोशनी डाली हो दीवार पर। उसके बाद मैं रो-धो रही थी न, सो और कुछ नहीं देखा था।"

हैमन्ती का जी चाहा कि कहे, वह तुम्हारी नजरों की भूल थी, मन की भूल थी, किन्तु कहने में तकलीफ हुई। मालिनी ने यदि अपने पिता की आत्मा को प्रकाश-सा होकर विलीन हो जाते देखा हो, तो देखे—अभी इस क्षण उसका भ्रम तोड़ने की कोशिश करने पर वह व्यथित होगी।

हैमन्ती चुपचाप चलने लगी। बगल में है मालिनी।

मालिनी बहुत देर तक चुप नहीं रह सकती है। फिर बोली, "हमारी आत्मा

कहां रहती है हेम दीदी ? छाती के बीचोबीच ?"

हैमन्ती ने मुंह फेरकर मालिनी को देखा। बोली, "मैं नहीं जानती।" कहकर ही न जाने क्या सोचकर फिर बोली, "यह सब बातें तुम अपने भैया से पूछना।"

सुरेश्वर से आत्मा के बारे में पूछने लायक हिम्मत मालिनी की नहीं है। मालिनी ने कहा, "नहीं, भई, भैया से कौन पूछे।"

"डर लगता है ?"

"डर नहीं लगेगा भला ! वे कितना कुछ जानते हैं, मैं ठहरी गैर, मैं क्या यह सब बात उनसे पूछ सकती हूं !"

"पूछकर तो देखो न, आखिर वे तुम्हें खा तो नहीं जाएंगे !"

मालिनी को रत्ती भर उत्साह नहीं मिला। "आप ही पूछियेगा, और पूछकर मुझे बताइएगा।"

हैमन्ती हंसी। "अच्छा, तो मैं ही पूछूंगी।"

थोड़ी देर तक चुप्पी छायी रही। मालिनी फिर बोली, "हेम दीदी, बहुत-से लोग कहते हैं—भैया पूजा-पाठ नहीं करते हैं, भैया हिन्दू नहीं हैं, ईसाई-हिन्दू हैं।"

हैमन्ती जितनी अचरज में पड़ी, उतना ही उसे मजा आया। "भला यह ईसाई-हिन्दू क्या होता है ?"

"कौन जाने ! मैं यह सब नहीं समझती लेकिन है।"

"कहां है ?"

मालिनी को यह भी मालूम नहीं है। "मैंने नहीं देखा है। मगर भैया हिन्दू क्यों नहीं हैं, यह बताइए तो हेम दीदी। भैया गीता पढ़ते हैं, और क्या सुन्दर पढ़ते हैं—मैंने तो सुना है भैया के कमरे के बाहर वह जो वेदी है, वहां बैठकर वे ध्यान करते हैं, मैंने देखा है।···भैया के कमरे में रामायण और महाभारत भी है।"

हैमन्ती को हंसी आ रही थी, पर हंसने पर मालिनी परेशान होगी, इसीलिए वह हंस नहीं रही थी। लेकिन सुरेश्वर अपने कमरे के सामने वेदी पर बैठकर ध्यान करता है, यह उसे मालूम नहीं था। बोली, "तो तुम्हारे भैया कब ध्यान करते हैं ? खूब तड़के ?"

"मुंह अंधेरे भी मैंने उन्हें ध्यान करते देखा है, और शाम को भी !"

"वे मंत्र पढ़ते हैं ?"

"नहीं, वे चुप रहते हैं।··मैं किसी दिन उनके नजदीक नहीं गई हूं, जाना उचित नहीं है।"

हैमन्ती ने एकाएक कहा, "तो हो सकता है, वे चुपचाप बैठे ही रहते हों।"

"नहीं-नहीं—" मालिनी ने जोर-जोर से सिर हिलाया, "उस तरह से कोई बैठा नहीं रहता है।"

हैमन्ती ने फिर कुछ नहीं कहा।

बात करते-करते आश्रम के निकट पहुंचकर मालिनी ने एकाएक पूछा, "आप तो जैसे कुछ विश्वास नहीं करती हो हेम दीदी। आप देवी-देवता को नहीं मानती हैं ?"

हैमन्ती ने जवाब देना चाहा, तो कैसी दुविधा में पड़ी। वह कह सकती थी, नहीं—मैं देवी-देवता को नहीं मानती। मगर उसका ऐसा कहना झूठ होता। अगर कहती है हां—, तो वह भी सच नहीं होगा। देवी-देवता पर विश्वास करती है वह, पर वह पूजा-पाठ, उपवास आदि नहीं करती है : फिर दुर्गा-पूजा में वह प्रतिमा दर्शन करती है उन्हें प्रणाम करती है, मंदिर जाने पर भी माथा नवाती है, प्रसाद खाती है। विपद व दुःख में भगवान को स्मरण करती है। कॉलेज में पढ़ते समय उसने कितने बन्धु-बान्धवों को देखा था ठीक इसी तरह से देव-मन्दिर को देखकर प्रणाम करते. पुष्पांजलि देते। यहां तक कि अपने कॉलेज के दो बड़े सर्जनों को भी उसने छुरी पकड़ने के पहले एक बार मौन होकर पल भर के लिए आंखें बन्द करके ईश्वर को स्मरण करते देखा था। हो सकता है, यह संस्कार हो; बचपन से देख-देखकर, सुन-सुनकर ऐसा हो गया है। आचार पालन करने या संस्कार मानने के अलावा और कुछ भी नहीं है। फिर भी हैमन्ती कम-से-कम यह नहीं कह सकती है कि मैं देवी-देवता को नहीं मानती। अपने जीवन की विकट विपत्ति के समय वह क्या भगवान की बात नहीं सोचती थी ? प्रार्थना नहीं करती थी ? बीमारी के समय उसके पास और तो कोई नहीं था, जो कुछ कहना था उसे भगवान से ही कहा करती थी।

हैमन्ती को न जाने क्यों लगा कि वह ज्यादातर लोगों की तरह आचार व संस्कार वश देवी-देवता को मानती है, फिर बहुतों की तरह वह यह भी जानती है कि इसका सभी कुछ झूठा है। अपने समाज, परिवार और नाते-रिश्तेदारों ने उसे कुछ चीजों पर विश्वास करना, भक्ति करना सिखाया है; और बुद्धि व अभिज्ञता ने उसे अनेक विषयों पर विश्वास न करने की शिक्षा दी है। मालिनी ने जब उससे आत्मा के बारे में कहा कि देह से ज्योति की तरह आत्मा निकल जाती है तब हैमन्ती अनायास हंस पड़ी। क्योंकि वह जानती है कि ऐसा नहीं होता है, ऐसा होना असम्भव है। हालांकि वह हंसकर यह क्यों नहीं कह सकती है कि देवी-देवता भला क्या होता है ! वह सब लोग दिखाया करते हैं, समझाया करते हैं। मैं नहीं मानती। न जाने कहां उसमें एक दुर्बोध्य विश्वास रह गया है।

अपनी दुर्बलता और दुविधा को हैमन्ती ने छिपाना नहीं चाहा। बोली, "हम हिन्दू हैं, मालिनी; हमारे धर्म में देवी-देवता पर लोग विश्वास करते हैं। मैं भी करती हूं !···इसके अलावा इस सबको लेकर मैंने कभी सोचा नहीं है। सच-झूठ मैं नहीं जानती।"

मालिनी न जाने क्यों खुश हुई। बोली, "हेम दीदी, मेरे पिताजी कहा करते थे : सोये हुए आदमी के घर में ही चोर सेंध लगाता है, और भाव में डूबे हुए आदमी के घर में ही भगवान दिखाई देते हैं।" कहकर मालिनी ने कैसी भाव की खुमारी में गुनगुनाकर हिन्दी भजन की एक कड़ी गाई।



आश्रम के पास आते ही थोड़ी दूर पर खड़ी एक जीप नजर आई। आस-पास कोई नहीं है।

हैमन्ती कुछ अन्दाजा लगाए, इससे पहले ही मालिनी बोली, "कौन आया ?"

बहुत दूर से भी हैमन्ती को लगा कि उस गाड़ी को पहचान सकी है। अन्दाजा लगाया, अवनी बाबू आये होंगे।

मानिनी जल्दी-जल्दी चलने लगी, कौन आया है, यह जानने के लिए वह बच्चों की तरह व्यग्र है। हैमन्ती पीछे रह गई।

अवनी की बात याद आते ही मानिनी को वे बातें उसे याद हो आयीं: बहुत शराब-वराब पीते हैं, अकेले रहते हैं। मानिनी बिलकुल एक गजट है। हैमन्ती को हंसी आयी! ···पर वे आज यहां क्यों आये? घूमने? सुरेश्वर ने उन्हें आने को कहा था। तो इसीलिए वे आये हैं क्या? हैमन्ती ने भी तो उन्हें आमन्त्रित किया था।

जीप देखकर मानिनी वापस आ रही थी। रोगियों के कमरे की ओर बरामदे में एक टांग में बैंडेज बांधे एक बच्चा खड़ा है, बगल में पीछे मुड़कर पता नहीं दूसरा कौन खड़ा है। अन्ध-कुटीर की तरफ कुछेक लोग मैदान में गोलाकार होकर बैठे हुए हैं। नौकर-चाकर भी नजर आ रहे थे। वापस आते समय मानिनी ने चिल्लाकर पता नहीं किससे क्या पूछा। वापस आयी, तो बोली, "कौन बाबू आए हुए हैं?"

"अवनी बाबू हैं शायद—" हैमन्ती बोली।

मानिनी ने नजरें उठाकर हैमन्ती का मुंह देखा, दो पल, उसके बाद अपनी बेवकूफी के लिए मानो अफसोस करती हुई बोली, "हाय राम! ठीक समझा है आपने हेम दीदी, इस गाड़ी को मैंने देखा है अपने यहां।"

अपने कमरे की ओर कदम बढ़ाये हैमन्ती ने; मानिनी भी डग भरने लगी।

"हेम दीदी—"

"ऊं—"

"एक बात कहूं, गुस्सा तो नहीं करोगी?"

"कौन-सी बात?" हैमन्ती को सन्देह हुआ कि मानिनी और भी कोई नई खबर सुनाना चाहती है।

मानिनी ने कहा, "उनसे तो आपकी जान-पहचान है,—उनसे जरा मेरे भाई के बारे में कहिएगा, मेरा भाई बिलकुल निठल्ला है, कोई सामर्थ्य नहीं है। कहने-सुनने से, पैरवी करने से नौकरी और जरा अच्छी हो सकती थी, तनख्वाह भी बढ़ती।"

हैमन्ती ने कोई जवाब न दिया। मानिनी की बात में एक ऐसा कातर अनुरोध था कि हैमन्ती को दुःख ही हुआ। उस दिन मानिनी की बात सुनकर लगा था—कि शराब पीने और इतने बड़े मकान में अकेले रहने वाले के बारे में जितना भय है उतनी ही वितृष्णा है, हो सकता है, घृणा भी हो। पर अभी मानिनी की बात सुनकर लगता है कि अवनी भले ही पियें और अकेले रहें, पर मानिनी का उससे कुछ आना-जाना नहीं है; जाने चाहे जितनी वितृष्णा, भय और घृणा हो, तो भी वह जानती है कि वे चाहें, तो मानिनी के भाई को तार दे सकते हैं। यह विश्वास भी, हैमन्ती को न जाने क्यों एकाएक लगा, कुछ अजीब-सा है, यह तो जरूरत भर का विश्वास है।

मानिनी को इन्तजार करते देखा, तो हैमन्ती ने कहा, "भला उनसे मेरी कितनी जान-पहचान है? चट-से क्या यह सब बातें कही जा सकती हैं। बल्कि तुम उनसे कहने के लिए कहो।"

"किनसे?"

"अपने भैया से।···उन्हीं से उनकी ज्यादा जान-पहचान है।"

मालिनी ने माथा हिलाया, "नहीं-नहीं, भैया से मैं यह सब बात कह सकती क्या ! न जाने आप कैसी हैं हेम दीदी !"

मालिनी के लिए कैसी सहानुभूति बोध की हैमन्ती ने, बोली, "अच्छा देखूं।"

दरवाजे की कुंडी खोलकर हैमन्ती अपने कमरे में घुसी, और मालिनी अपने मरे में चली गई।

अंधेरे में कई पल खड़ी रही हैमन्ती। मालिनी मुंह-हाथ धोएगी, दीया-बत्ती रेगी, लालटेन जलाएगी; तब तक इन्तजार करना पड़ेगा हैमन्ती को।

अवनी बाबू आकर सुरेश्वर के पास बैठे हुए हैं, गपशप कर रहे हैं। उसे या वहां जाना चाहिए ? शराफत निभाने के लिए एक बार जाना जरूरी है। स दिन उस हालत में उन्होंने पहुंचा दिया, फिर रास्ते में जिस दिन भेंट हुई स दिन रुककर बात-चीत की, थोड़ी दूर तक पहुंचा दिया, हैमन्ती ने उनसे ाश्रम में आने का अनुरोध किया। इसके बाद वे आज जब आश्रम में आये हुए हैं ो उनसे मुलाकात न करना क्या अच्छा लगेगा ! मुलाकात न करना भलमन-ाहत नहीं होगी। फिर सुरेश्वर के वहां जाकर भेंट करना भी कैसा है !

सुरेश्वर से वे क्या गपशप कर रहे हैं, यह भी जानने का कौतूहल हुआ ्मन्ती को। पहले ही दिन, जीप में आते समय, उन दोनों की बात-चीत सुनकर ्मन्ती समझ पायी थी कि वे दोनों ही दो प्रकार के आदमी हैं, उनमें कहीं कोई ेल है, ऐसा नहीं लगता। इस आश्रम के बारे में अवनी की कोई आस्था नहीं ं, बल्कि सुरेश्वर और इस आश्रम के बारे में उसका मनोभाव उपहास भरा है, ह समझ में आता है। हैमन्ती ने अवनी के उस व्यंग्य को भांप लिया था।···दो विपरीत प्रकृति के आदमी मुंह-दर-मुंह बैठकर क्या गपशप कर रहे हैं, यह सुनने ी एक अजीब इच्छा हुई हैमन्ती को।

मालिनी लैम्प दे गई।

हैमन्ती ने गुसलखाने में जाने के लिए पग बढ़ाते हुए कहा, "मुझे पानी पिलाना मालिनी, मैं आ रही हूं।"

मुंह-हाथ धोकर वापस आई, तो हैमन्ती ने साड़ी को जरा तरतीब से पहन लिया, मुंह पोंछा सफाई से, हलके से पावडर फेर लिया, बालों में तनिक कंघी की, ानी पिया। उसके बाद कमरे से बाहर आकर कुंडी चढ़ा दी।

मालिनी बाहर निकल आई थी, पूछा, "कहां जा रही हैं, हेम दीदी ?"

"उस घर में; जाऊं, एक बार भेंट कर आऊं।"

हैमन्ती मैदान में उतरी। तब तक अंधेरा हो गया था। अंधेरे में ही समझ में ाया कि चांद निकल रहा है।

## आठ

सुरेश्वर के घर के बरामदे में वे लोग बैठे हुए हैं, लालटेन जल रही है, छोटी-ी चौकी के ऊपर चाय के प्याले हैं। हैमन्ती को देखा, तो अवनी सौजन्य प्रकट

करता हुआ अवनी कुर्सी ठेलकर मोटा-सा उठ खड़ा हुआ, बोला, "बैठिए।"

हैमन्ती ने ठीक से नमस्कार नहीं किया, सिर नीचा करके जैसे अपनी तरफ से शराफत जाहिर की; फिर परिचय की स्निग्ध हंसी हंसती हुई बोली, "आप बैठिए।"

सुरेश्वर अगल-बगल ताकता हुआ हैमन्ती के बैठने की जगह ढूंढ़ रहा था, हैमन्ती ने एक लकड़ी की कुर्सी खींच ली। बैठी। अवनी भी बैठ गया।

सुरेश्वर बोला, "किधर टहलने गई थी?"

"नदी की ओर," हैमन्ती ने मृदु आवाज में जवाब दिया।

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही। सुरेश्वर और अवनी किस विषय पर बातें कर रहे थे, हैमन्ती ने उनकी आवाज सुनी थी, अभी हैमन्ती के आने की वजह से वे लोग चुप हो गए हैं। अवनी की ओर ताका हैमन्ती ने, "आपको आए कितनी देर हुई?"

"बहुत देर हुई। घंटा भर से भी ज्यादा।"

"सब कुछ देखा आपने···" हैमन्ती ने मुंह पर मुस्कान बिखेरते हुए कहा।

"मोटे तौर पर।"

"कैसा लगा?"

अवनी ने कैसी परेशानी-सी महसूस करते हुए सुरेश्वर की ओर ताका। सुरेश्वर मानो हंस रहा था।

सुरेश्वर ने कहा, "उन्होंने खास कुछ नहीं देखा है हेम। मुझसे खड़े होकर गप करते समय उन्होंने थोड़ी-सी चहलकदमी की।"

अवनी ने संकोच अनुभव करते हुए कहा, "नहीं, ठीक ऐसी बात नहीं, अभी भला मैं क्या देखूंगा—! बाद में फिर किसी दिन आऊंगा।"

हैमन्ती को लगा, आश्रम देखने का उत्साह अवनी को नहीं है। भला क्या देखेगा वह? कई घर, कुछेक अन्धे और अस्पताल? यह सब देखने का आग्रह भला किसी में होता है!

अवनी झिझक और परेशानी दूर करने लिए अवनी ने मजाक के स्वर में इस बार कहा, "हम मजूर-मिस्त्री आदमी ठहरे, मैं यह सब नहीं समझता।···" अवनी ने लगभग हैमन्ती की ही ओर ताककर यह कहा, उसके बाद सुरेश्वर की तरफ ताका, "लेकिन आप सा'ब, काम के आदमी हैं। हमारे बिजली बाबू कहते हैं कि आप कर्मयोगी व्यक्ति हैं।" कहकर जोर-जोर से हंसा वह।

सुरेश्वर नीरव हंसा। हैमन्ती के होठों पर भी हंसी कौंध गई।

अवनी ने जेब से पैकेट निकालकर सिगरेट सुलगाई। लम्बा-सा कश लगाकर घूंट निगला। बाद में सुरेश्वर को लक्ष्य करके कहा, "देखता हूं, आप बड़ी सुख-शान्ति से हैं।···आजकल सुख-चैन मिलना भाग्य की बात है।"

अवनी ने मजाक किया था कि वास्तव में ही कोई क्षोभ जताया, कुछ समझ में नहीं आया। हैमन्ती ने पलकों से अवनी की ओर देखा। सुरेश्वर की यदि अवनी ने खिल्ली ही उड़ाई हो, तो उसने अच्छा ही किया है। हैमन्ती ने न जाने कहां तृप्ति बोध की। जी चाहा, अवनी से कहे—उनके जैसा हो जाने पर कोई आंच ही बदन को नहीं लगती है, लगती है, तो भी फफोले नहीं पड़ते हैं—निश्चिन्त रहा जा सकता है।

सुरेश्वर शान्त रूप से मुस्कराता-सा ही बोला। "बस जी रहा हूं किसी तरह से, सुख की कोशिश में···।" 'सुख की कोशिश' शब्द पर जोर दिया गया था।

अवनी ने सुरेश्वर की बात ध्यान नहीं सुनी थी, तो भी उसके कानों में बात पहुंची थी। हैमन्ती ने भी सुना था। अवनी ने बिना कुछ सोचे ही चुहलबाजी के बहाने कहा, "मजे से तो हैं, फिर कोशिश में हूं, ऐसा क्यों कह रहे हैं!"

सुरेश्वर ने कहा, "आपने शायद उस पंछी की कहानी नहीं सुनी है?"

पंछियों की कहानी सुनने लायक बच्चा अवनी नहीं है। अनाग्रह के स्वर में बोला, "नहीं।"

"इस संसार में एक पेड़ है, उस पर दो पंछी रहते हैं···" सुरेश्वर बोला, "एक पंछी रहता है पेड़ की फुनगी पर, दूसरा नीचे—पेड़ की डाल पर बैठकर फल खाता है। मेरा जितना सुख है वह नीचे की डाल पर बैठा हुआ है, मैं ऊपर चढ़ नहीं सकता हूं।"

अवनी ने सुरेश्वर को देखा। हैमन्ती भी लक्ष्य कर रही थी। सुरेश्वर पहेलियां भी बुझा सकता है, मगर अवनी को लगा कि वह कुछ समझाने की कोशिश कर रहा है।

"ये तो सा'ब दार्शनिक बातें हैं," अवनी ने हंसकर कहा, "मेरे मोटे दिमाग में ये बातें नहीं घुसेंगी।"

सुरेश्वर ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। एकाएक जैसे वह अन्यमनस्क हो गया हो। थोड़ी देर बाद हैमन्ती की ओर ताका एक बार, उसके बाद अवनी से कहा, "हेम उस दिन कह रही थी···संसार से सभी सुख चाहते हैं, दुःख पाने के लिए दुनिया में भला कौन जीना चाहता है। फिर भी दुःख भरी दुनिया में दुःख है। सुख भी है। लेकिन सुख की बात सोचने पर न जाने कहां सन्देह होता है। मैं देखता हूं, सुख वैसा ही है; एक ही पेड़ पर दो पंछी हैं, एक है ऊपर, और दूसरा है नीचे। हममें से ज्यादातर लोगों का सुख नीचे की डाल पर है···"

"नीचे तो कुछ मिलता है, ऊपर तो कुछ नहीं है।" अवनी ने आसानी से कहा।

"पर मुझे तो ऐसा नहीं लगता है," सुरेश्वर ने जवाब दिया, "ऊपर चढ़ने पर, हो सकता है, और भी बड़ा कुछ मिले।"

"क्या मिलता है? भगवान?"

"नहीं, आनन्द।"

"कैसा आनन्द?" अवनी चुटकी लेता हुआ हंसा।

"सो तो मैं नहीं जानता। पर जिन्हें मिला है उन्होंने कहा है कि तमाम संकीर्ण वेदनाओं से मुक्त है यह आनन्द।"

"किन लोगों ने क्या कहा है, इससे क्या आता-जाता है। वे लोग झूठ कह सकते हैं, चकमा दे सकते हैं।" अवनी ने उपहास करते हुए कहा। "क्या मिल रहा है उसका हिसाब न करके क्या मिलेगा उसका हिसाब करना मूर्खता है। उन सब सुन्दर-सुन्दर बातों पर मैं विश्वास नहीं करता।"

सुरेश्वर उत्तेजित नहीं हुआ। स्वाभाविक लहजे में बोला, "आप क्या सोचते हैं कि आज का हिसाब ही सब कुछ है?"

"ऐसा न सोचने का तो कोई कारण नहीं है।"

सुरेश्वर ने फिर कुछ नहीं कहा। जैसे इस विषय को लेकर बहस करने की अभिरुचि या इच्छा उसकी नहीं हो, न जरूरत ही है। सामने की ओर ताकता हुआ बैठा रहा।

हैमन्ती भी बाग की तरफ ताकती हुई बैठी थी। चांदनी और भी साफ होकर खिल उठी है, पेड़-पौधों पर चांदनी छिटकी हुई है। हालांकि हैमन्ती को उतना सुख नहीं मिल रहा था। न जाने कहां एक अद्भुत विषण्णता है।

अवनी ने हाथ की सिगरेट फेंक दी। सुरेश्वर से तू-तू मैं मैं करने के बाद ही सहसा उसे ललिता की बात याद हो आई। क्यों? ललिता से उसे जो कुछ मिला था वह स्थाई नहीं हुआ इसलिए, या कि उस दिन उसके हिसाब में गड़बड़ हो गई थी, गलती हो गई थी।

अच्छा नहीं लगा अवनी को। ये सब बातें सोचना उसे अच्छा नहीं लगता है। उतना देखने पर आदमी को इस क्षण जो कुछ मिलता है उसमें से बहुत कुछ का हिसाब ही तय तो वह नहीं कर पाएगा। सुख का भी नहीं, दुःख का भी नहीं। हीरालाल मर रहा है इस खबर से वह उस दिन जितना विचलित हुआ था, आज अब वह उतना विचलित नहीं है। तो फिर उसका दुःख-शोक क्या पानी के हिसाब से मापा जाएगा।

सुरेश्वर ने प्रसंग बदलकर कहा, "आपका काम कितनी दूर तक आगे बढ़ा?"

"बस, चल रहा है," अवनी ने अन्यमनस्क भाव से जवाब दिया।

"न जाने कौन उस दिन कह रहा था कि इधर का काम लगभग खत्म हो चुका है।"

"कहां खत्म हुआ है, अभी बहुत बाकी है।" अवनी बोला, उसके बाद कुछ याद आने की वजह से हंसकर कहा, "जो काम इन लोगों ने हाथ में लिया है, वह अशेष है।"

सुरेश्वर हंसा। हैमन्ती हंसी नहीं, मुंह फेरा।

अवनी ने परिहास करते हुए कहा, "काम खत्म हो जाने पर मुझे बेकार होना पड़ेगा। तब आप लोगों का शरणापन्न होऊंगा।" कहकर हैमन्ती की ओर ताका।

हैमन्ती ने कौतुक-भरा मुंह देखा अवनी का। चाहे किसी भी कारण से हो, थोड़ी देर पहले वातावरण कैसा गंभीर होता जा रहा था, पर अब बड़ा हल्का होता जा रहा है। होंठों पर मुस्कान बिखेरी हैमन्ती ने।

सुरेश्वर ने मुस्कराकर कहा, "हमारे यहां तो अन्धे आते हैं, आप तो अन्धे नहीं हैं।"

"नहीं, मैं तो अन्धा नहीं हूं, मगर अन्धा होने में कितनी देर लगेगी!"

यह कहने के बाद अवनी ने न जाने क्यों थोड़ा-सा सन्देह अनुभव किया। सुरेश्वर की ओर से मुंह फेरकर हैमन्ती की तरफ ताका। मानो कई पल उसके, कैसी एक रहस्यमय अनुभूति में गुजरे।

"इधर क्या अन्धे-अन्धे ज्यादा हैं?" अवनी ने हठात् पूछा।

"पूरे तौर पर जिसे अन्धा कहते हैं वह, हो सकता है, उतना न हो, लेकिन आंख का रोग ज्यादा है।"

"क्यों?"

"गैर-हिफाजत, गरीबी और लापरवाही के चलते···। आप इन लोगों के गांव-वांव गए हैं कभी ?"

"नहीं ?"

"जिस तरह से ये लोग रहते हैं वह स्वास्थ्यकर नहीं है ! ···"

सुरेश्वर ने अस्वास्थ्यकर वातावरण का एक साधारण उदाहरण समझाते समय बताया, कि इधर के सभी लोग जलावन के लिए लकड़ी-तिनकों का इस्तेमाल करते हैं। लकड़ी का गन्दा धुंआ पंछियों के दरवे जैसे छोटे से खपरैल घरों में कितना घुसता है यह वे लोग नहीं देखते हैं। चार-छः महीने के बच्चे से लेकर लड़के-लड़कियां सभी वह धुआं खाते हैं रोज। आंखों के हक में यह बुरा है।··· इनके बच्चे-कच्चे सवेरे नींद से उठकर आंखों में पानी तक नहीं डालते हैं।···ये सभी कुछ साधारण स्वास्थ्य की रक्षा की बातें हैं। ये लोग यह नहीं जानते और न ही इसकी परवाह करते हैं। आंखों में मामूली-सा कुछ होता है तो उसे घरेलू इलाज करके और भी बढ़ा डालते हैं।···

अवनी ने अन्यमनस्क भाव से थोड़ा-सा सुना; पर कोई उत्साह का अनुभव नहीं किया।

थोड़ा समय नीरवता में बीता। अवनी ने सिगरेट का टुकड़ा बुझाकर फेंक दिया। देखते-देखते चांदनी इधर बरामदे पर आ गई है।

सुरेश्वर बोला, "जरा बैठिए, मैं आ रहा हूं।"

सुरेश्वर कमरे में गया। हैमन्ती चांदनी की ओर ताकती हुई बैठी है, अवनी भी सामने की तरफ ताकता रहा।

कुछ देर तक किसी ने कोई बात नहीं की। अन्त में अवनी ने ही बात की। हंसी-भरे स्वर में पूछा, "आपका आवास कौन-सा है ?"

"भीतर घुसते ही दाहिनी ओर है; छोटा-सा घर है।"

"जाते समय देखूंगा।···ओ, अच्छा···आपसे एक बात पूछता हूं—डॉक्टर्स ओपिनियन—मेरा आजकल बीच-बीच में सिर दुखता है···। मेरी आंखें खराब हो रही हैं क्या ?"

हैमन्ती ने अवनी की आंखों में आंखें डालीं। चेहरा देखकर समझ में नहीं आता है कि वह हंसी-दिल्लगी कर रहा है या सचमुच ही कुछ जानना चाह रहा है। हैमन्ती ने लगभग पेशेवर-के-से स्वर में कहा, "तो क्या आपकी आंखें खराब हैं ?"

"नहीं; देखने में तो कोई दिक्कत नहीं होती है।"

"पढ़ने में ? पढ़ने-लिखने के काम-धाम करने में ?"

"नहीं, उसमें भी कोई दिक्कत नहीं होती।"

"तब तो कुछ नहीं हुआ है," हैमन्ती ने कहा। कहकर ही सोचा : ज्यादा शराब वराब पीने के कारण भी ऐसा हो सकता है शायद। अवनी के बारे में उसने न जाने क्यों थोड़ी-सी विरक्ति बोध की अभी।

"कुछ न होना ही अच्छा है," अवनी हंसा, "चारों ओर इतने प्रकार के अन्धों को देखता हूं, तो डर लगता है।"

बात सुनने में तो सीधी-सादी है, किन्तु अवनी ने कुछ इस ढंग से कहा कि हैमन्ती को सन्देह हुआ कि इस बात में दूसरा अर्थ है ताना है। क्या समझाना

चाहता है अवनी, हैमन्ती ने यह जानना चाहा और जानने की आशा मे अवनी को लक्ष्य किया।

अवनी अपलक हैमन्ती को देख रहा था। दृष्टि अस्वाभाविक थी : लग रहा था, अवनी जैसे हैमन्ती में कुछ ढूंढ रहा हो, या कुछ कह रहा हो। हैमन्ती ने नजरें हटा ली।

अवनी ने धीमे स्वर मे कहा, "आप दोनों ही बहुत डिवोटेड हैं ?"

हैमन्ती को लगा, अवनी ने 'दोनो' शब्द जान-बूझकर जोर देकर कहा, विशेषार्थ में जैसे। आखिर क्या समझाना चाहा उसने ? तो क्या सुरेश्वर के साथ हैमन्ती का एक युगल-सम्बन्ध उसने गढ़ लिया है ! न जाने क्यो अवनी की यह धारणा उसे अच्छी नही लगी।

हैमन्ती बोली, "मैं नही, वे !"

"और आप ?"

"मैं···मैंने सोचकर नहीं देखा है।"

सुरेश्वर लौट आया।

सुरेश्वर के वापस आकर बैठते-न-बैठते युगल बाबू दिखाई पड़े। वे बाग में से होकर आए। साथ मे कुछ बही-खाते हैं। उन्होने सीढ़ी पर कदम रखा।

हैमन्ती हक्की-बक्की हो गई। तो क्या युगल बाबू आज घर नही लौटे हैं। अवश्य उन्होने यह कहा था कि आज बहुत काम है, आश्रम के ऑफिस का काम है, हिसाब-किताब का झंझट है। हैमन्ती समझी, काम के बोझ से आज वे अपने घर नही लौट सके यही रह गए हैं।

युगल बाबू ने बरामदे में चढ़कर अवनी को दो पल देखा। सुरेश्वर से उन्हे काम है, हालाकि अभी बही-खाता खोलकर वे बैठ सकेंगे या नहीं, इस विषय मे उन्हें सन्देह हुआ जैसे।

सुरेश्वर ने भी थोड़ी-सी परेशानी महसूस करते हुए अवनी की ओर देखा।

युगल बाबू ने कहा कि वे क्या थोडी देर बाद घूमकर आएगे ?

सुरेश्वर कुछ बोले, इसके पहले ही अवनी ने कहा, "आप लोग शायद काम पर बैठेंगे ?"

सुरेश्वर ने सिर हिलाया, "हां—कुछ ऑफिस सम्बन्धी जरूरी काम है।··· आप···"

"आप मेरे लिए परेशान मत होइए। काम के आदमी को बेकार के काम में मैं अटका नही रखूंगा। तो मैं आज चलता हूं।"

"जाएंगे ! अभी भी उतनी रात नही हुई है। शाम है···"

"आपके आश्रम मे जरा टहलूं···। वे तो हैं।" हैमन्ती को इशारे से दिखा दिया अवनी ने।

सुरेश्वर ने हैमन्ती की ओर ताका। "हेम, तुम्हारी तो शाम कटती नही है। *उनसे तुम गपशप करो, मैं काम खत्म कर डालूं।"*

अवनी उठ पड़ा।

सुरेश्वर भी उठकर खड़ा हो गया। बोला, "मैं दो दिनों के अन्दर ही आपकी ओर जाऊंगा तो मिलूंगा आपसे। आप और किसी दिन आइए। यहीं दो कौर खाइएगा···। आइयेगा। आपसे बहुत गपशप करनी है। दार्शनिक बातो के अलावा

भी गपशप होती है। मैं खुद भी दर्शन का कोई खास भक्त नहीं हूं।" सुरेश्वर सुन्दर ढंग से हंसा।

अवनी भी हंसा; बोला, "आऊंगा।"

सुरेश्वर ने हैमन्ती की ओर ताका, हैमन्ती उठकर खड़ी हो गई है। बोला, "हेम, अवनी बाबू को और एक बार चाय-वाय पिलाना। मेरे यहां उन्होंने चाय बहुत पहले पी है।"

अवनी सीढ़ियां उतरने लगा, पीछे है सुरेश्वर, आखिर में है हैमन्ती।

सीढ़ियां उतर कर अवनी ने कहा, "आपका यह मकान ज्यादा दिनों तक नहीं टिकेगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि सीलन लग गई है···।"

"अभी तुरन्त वर्षा खत्म हुई है न, इसीलिए सीलन है।"

"गारे के साथ कुछ मिला देते, तो ऐसा नहीं होता।"

"कुछेक साल बीत जाएं, उसके बाद देखूंगा।"

सुरेश्वर ने थोड़ी दूर तक पहुंचाकर विदा ली।

चांदनी से नहाए मैदान से होकर चलते-चलते अवनी ने कहा, "सुरेश्वर बाबू ने अपने आपको बिलकुल यहां के अनुकूल ढाल लिया है।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। मुंह नीचा किए मौन होकर चलने लगी।

अवनी ने फिर कहा, "मुझे कई चीजें जानने का कौतूहल होता है। अगर आप बुरा न मानें तो मैं एक बात पूछूं।"

हैमन्ती ने मुंह उठाकर देखा। आखिर किस विषय में कौतूहल है अवनी को? सुरेश्वर के बारे में कुछ जाना चाहते हैं, या उसके स्वयं के विषय में?

अवनी बोला, "मैंने उनके मुंह से सुना है कि एक समय वे कलकत्ता में रहते थे।"

हैमन्ती ने खूब धीरे-धीरे सिर हिलाया। "हां, रहते थे।"

"वहां वे क्या करते थे?" अवनी ने पूछा।

"खास कुछ नहीं करते थे।" हैमन्ती ने बताया।

"रुपए-पैसे थे शायद।"

"कुछ तो थे।"

"उनके कोई नाते-रिश्तेदार नहीं हैं?"

"नहीं, मां गुजरीं पहले, बाद में पिता जी।"

"मुझसे इस मामले में उनका मेल नहीं हुआ। मेरी मां का देहान्त बाद में हुआ था।" अवनी ने यह कैसे अकरुण भाव से कहा। हैमन्ती की समझ में कुछ नहीं आया।

कई कदम चलकर अवनी ने फिर कहा, "वे क्या आपके रिश्तेदार हैं?"

नजरें उठाकर पलभर के लिए देखा हैमन्ती ने, फिर नजरें झुका लीं। "वे हमारे पारिवारिक मित्र हैं। मेरी मां से उनकी मां की दूर के रिश्ते की एक आत्मीयता थी।"

अवनी गरदन फिरा कर हैमन्ती को देख रहा था। "आपकी मां···"

"हैं। पिता जी चल बसे थे मेरे बचपन में। मेरे बड़े भाई हैं, वे चाय-बागान

में नौकरी करते हैं, छोटा भाई है, वह नौकरी-चाकरी करता है। एक मामा हैं।" हैमन्ती को न जाने क्यों यह पारिवारिक बात बताना अच्छा नहीं लग रहा था।

अवनी कुछ कहने जा रहा था, उसके पहले ही हैमन्ती बोली, "इधर चलिए —वह जो मकान दिखाई पड रहा है, वही मैं रहती हूं।"

घर के नजदीक आकर दुविधा का अनुभव किया हैमन्ती ने। उसका बस एक कमरा है, बिस्तर, कपड़े-लत्ते, पोथी-किताबों से शुरू करके तमाम कुछ उसी कमरे में हैं, उतने से स्थान में ही वह सोती-बैठती है, आराम करती है। अपने एकान्त और गोपनीयता के नाम पर जो कुछ है, सभी वहां है। इस सामान्य परिचित पुरुष को अपने कमरे में ले जाकर बिठाने में हैमन्ती में संकोच और कुंठा जागी। इसके अलावा इस आश्रम की स्वाभाविक दीनता का स्पर्श उसके कमरे में भी है। अवनी अपनी आंखों से उसका एकान्त रहन-सहन देख जाए, हैमन्ती को इसमें आपत्ति है। हालांकि वह उसे बिठाए कहां ? बाहर ? तंग बरामदे में ? अवनी यदि बुरा माने तो ? यदि सोचे, वह कैसी भद्रता है ? तो उसे बाहर बिठा कर रखे ? उसे सुरेश्वर पर गुस्सा आया। युगल बाबू को जरा घूमकर आने को कहने में कोई हर्ज नहीं था, अथवा सुरेश्वर युगल बाबू को लेकर कमरे में जाकर काम कर सकता था। तुम्हें तो कमरे की कमी नहीं है, दो कमरे हैं, मेरा तो बस एक ही है।

मालिनी रोज की भांति बरामदे में बैठी हुई है। चांदनी से बरामदा भरा हुआ है। - हैमन्ती और अवनी को आते देखा तो मालिनी झटपट उठकर खड़ी हो गई।

समीप आकर हैमन्ती बोली, "आइए, बरामदे में बैठें, कमाल की चांदनी है···हवा भी है।" बरामदे में चढ़कर मालिनी से बैठने के लिए कुछ लाने को बोली, उसके बाद खुद भी कुंडी खोलकर कुछ लाने के लिए कमरे में घुसी।

हैमन्ती को एक बेंत की कुर्सी मिली अपने कमरे में, मालिनी ने एक मूढ़ा ला दिया। अवनी को बेंत की कुर्सी बढ़ाते हुए हैमन्ती ने कहा, "बैठिए।···मालिनी, थोड़ी-सी चाय बनाओ तो अच्छी तरह से।"

अवनी ने बैठते-बैठते हंसकर कहा, "यह लडकी आपकी असिस्टेंट है क्या ?"

"नहीं; मगर यहां रहते उसे साल भर से भी ज्यादा हो गया है। वैसे कुछ काम-काज करती है, और रोगियों की देख-भाल करती है थोड़ी-सी।"

"वह नर्स है ?"

"नहीं, वह नर्स नहीं है; लेकिन नर्स का काम उसने थोड़ा-सा हाथों-हाथ सीख लिया है।" हैमन्ती बेंत के मूढ़े पर बैठी। "उसका भाई आपके आफिस में नौकरी करता है।"

"हां, सुना है मैंने। बिजली बाबू उस दिन बता रहे थे।"

हैमन्ती ने सोचा, मालिनी का आवेदन अभी वह बताए या नहीं। बताना उचित होगा क्या ? बल्कि मालिनी चाय लेकर आए, तो मालिनी से ही कहा जाएगी।

कुछेक क्षणों तक किसी ने फिर बात नहीं की। अवनी ने एक सिगरेट सुलगाई।

हैमन्ती चांदनी की ओर ताकती हुई नीरव बैठी रही।

अवनी ने अन्त में कहा, "यहां आपका समय कैसे कटता है ?"

हैमन्ती ने थोड़ी देर तक कोई जवाब नहीं दिया, मानो उसका अपरिमित समय जो कैसे भद्दे एकान्त और शून्यता में गुजरता है इसे फिर मन-ही-मन अनुभव करके आह भरी, उसके बाद बोली, "समय बिताना ही मुश्किल है।···सवेरे से लेकर ज्यादा से ज्यादा बारह बजे तक रोगियों को देखती हूं; उसके बाद फिर करने को कुछ नहीं रहता है। बस, अकेले रहती हूं। वह मालिनी ही मेरी बात करने वाली सहेली है।"

अवनी का मन किया कि कहे, क्यों—और यह सुरेश्वर ! सुरेश्वर आपका साथी नहीं है ? पर मुंह से बोला, "सुरेश्वर बाबू तो हैं।···"

हैमन्ती ने कनखियों से अवनी को देखा। बोली, "वे काम-धाम में व्यस्त रहते हैं—" कहकर रुकी कुछेक क्षणों तक, उसके बाद होंठों पर मुस्कान बिखेरती हुई बोली, "उनके पास बैठे रहने पर आश्रम की बातें बहुत ज्यादा सुननी पड़ती हैं।"

अवनी ने मुंह फेरकर हैमन्ती को लक्ष्य किया, बोला, "इस आश्रम के ऊपर आपकी अटल भक्ति तो नहीं देखता हूं।" कहकर हंसा अवनी।

"क्यों ! है तो।"

"नहीं—। उतना आकर्षण कहां है !"

हैमन्ती चुप। लगा, कहे—मुझे रत्ती भर आकर्षण नहीं है, मैं इन सब की परवाह नहीं करती, मुझे अच्छा नहीं लगता। यह आश्रम मेरा नहीं है।

आश्रम का प्रसंग हैमन्ती को अब अच्छा भी नहीं लगता है। इसके परे क्या कुछ नहीं है ! साधारण आदमी हूं मैं, साधारण बातें ही मेरे लिए अच्छी हैं। दूसरी चर्चा, और अन्य पांच बातें कर पाने पर वह खुश होगी।

हैमन्ती बोली, "आपको यहां क्या करना पड़ता है ! मैं आपके काम के बारे में पूछ रही हूं।"

"कुछ भी नहीं," अवनी ने हंसकर जवाब दिया। उसके बाद उसने अपने काम-काज की बात समझाकर बताई।

मालिनी चाय ले आई।

अवनी के हाथ में चाय का प्याला देते-देते हैमन्ती ने कहा, "आप मालिनी को नहीं पहचानते हैं ?···मालिनी बड़ी अच्छी लड़की है।···उसको कोई काम था आपसे। बताओ न मालिनी।"

मालिनी बुद्धू और गूंगी बनी खड़ी रही। हेम दीदी ने उसे बेहद शर्मिन्दा किया। वह मुंह नहीं उठा सकी।

हैमन्ती ने अपना चाय का प्याला लिया है। मालिनी की हालत देखकर हंस पड़ी, दुःख भी हुआ। अवनी भी देख रहा था मालिनी को।

आखिरकार हैमन्ती ने ही मालिनी का आवेदन बताया। मालिनी और खड़ी नहीं रह सकी, भाग गई।

अवनी ने संक्षेप में कहा, "देखूं, क्या कर सकता हूं।"

चाय पीते-पीते और भी कुछ फुटकल बातें हुईं, साधारण बातचीत। हैमन्ती हल्के मन से पारिवारिक बात, और कलकत्ता की बात बता रही थी। उसे अच्छा लग रहा था। उसके बाद न जाने किस बात पर उसके यहां आने के पहले दिन की

बात उठी। बोली, "उस दिन जब इस जंगल में आकर रास्ते में वस खराब हो गई, तो मैं डर गई थी।···किस्मत अच्छी थी कि आपसे मुलाकात हुई।"

अवनी बोला, "उसके थोड़ी देर पहले मैं डर गया था।"

"आप···! क्यों ?"

"क्या पता ! हो सकता है, मृत्यु-भय हो,···हो सकता है, और कुछ हो···।"

"मुझे लगा था, आप बहुत विचलित हो गए थे।"

"हां, मैं विचलित हो गया था।···हीरालाल बड़ा अच्छा था, गजब का लड़का था।···उसने ब्याह किया था, उसके बच्चा है। हालांकि बेचारे का जीवन किस तरह से बरबाद हुआ।···मिनिंगलेस !"

हैमन्ती ने अपने बगलगीर का मुंह देखा। संसार की साधारण वेदना से इस आदमी को दु:ख पहुंचता है, यह दु:ख बोध करता है, चंचल होता है। इसमें हाड़-मांस का अनुभव किया जा सकता है। पर सुरेश्वर ऐसा नहीं है; उसमें चंचलता नहीं है। वह निरुत्ताप है। तमाम कुछ जैसे बाहरी हो।

पता नहीं क्या जी में आया कि हैमन्ती एकाएक बोली, "आपका स्वभाव तो देखती हूं बहुत नरम है।"

अवनी मौन रहा।

थोड़ी देर बाद हैमन्ती ने फिर कहा, "मैं आंख की डॉक्टर हूं, फिर भी डाक्टर तो हूं, एक डॉक्टरी उपदेश दूं। वह यह कि मृत्यु-भय बड़ी बुरी चीज है, वह सब नहीं सोचिएगा, इससे मन कमजोर होता है।" हार्दिक भाव से, सुन्दर, गंभीर गले से हैमन्ती ने कहा, चेहरे पर मामूली-सी मुसकान है।

अवनी थोड़ी देर तक खामोश रहा, फिर बोला, "सुरेश्वर बाबू होते, तो दूसरी बात कहते···चन्द्रमा, सूर्य, तारे···कितनी बातें। बड़ी-बड़ी बातें सुनने में बहुतअच्छी लगती हैं। पर मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। तमाम मामलों में इतना दर्शन बघारने की क्या बात है।"

"वे थोड़े-से कुछ दूसरे प्रकार के हैं।" हैमन्ती बोली। "क्या पता, पर लोग ऐसा कहते हैं।···मैंने पहले तो ऐसा नहीं देखा था।"

"मगर वे अन्धाश्रम खोलने क्यों आए ?"

"पता नहीं।"

अवनी सविस्मय निहारता रहा। तो क्या हैमन्ती उसे यह बताना नहीं चाहती है ? हालांकि मुंह देखने से नहीं लगता है कि वह कुछ छिपा रही है। बल्कि अवनी को लगा, इस प्रश्न ने हैमन्ती को भी कैसी अन्यमनस्क और विमर्ष किया है।

अवनी चुप्पी साधे रहा, हैमन्ती भी नीरव रही। अवनी ने नजरें फेर लीं, मैदान में घासों पर चांदनी की कैसी पालिश लगी हुई है। दूर पर है जोप। आदमी का गला लगभग सुनाई नहीं पड़ रहा है, सन्नाटा है।

कुछ देर तक मैदान की ओर निहारकर बाद में अवनी ने नजरें फेरीं, और हैमन्ती की तरफ ताका। हैमन्ती न जाने कब जरा-सी तिरछी होकर बैठ गई थी और दूसरी तरफ निहार रही है। चांदनी में डूबी हुई है हैमन्ती। हठात् देखने पर मूर्ति-सी लगती है। स्थिर है, सम्पर्क-रहित है, मानो माया अथवा भ्रम

अवनी अलपक देख रहा था : हैमन्ती के मुंह की बनावट अण्डाकार है, छोट

ाल, उभरे हुए चिकने गाल, गड्ढेदार नरम ठोड़ी, नाक सीधी और लम्बी है। ों आंखें बड़ी-बड़ी हैं, लेकिन स्वाभाविक नहीं हैं, फटी-फटी पलकें पतली भवें ! ाद उम्र से, शायद किसी प्रकार की गंभीरता से उसकी दोनों आंखें शान्त हैं। दन, हाथ, पैर आदि में कहीं किसी प्रकार की विकृति नहीं है बल्कि वे सभी-के- ी स्वाभाविक और सुसमंजस हैं। हैमन्ती सुश्री और लावण्यपूर्ण है। उसके र का गोरा रंग, लगभग सफेद-सी साड़ी, एक साधारण ढीला जूड़ा आदि ऐसे : हैं कि जिनकी ओर अवनी अलपक निहारता रह सकता है।

हालांकि अवनी सम्मोहित की तरह निहार रहा था। वह न जाने क्या अनु- कर रहा था। ललिता को देखने के बाद उसने ऐसा कुछ अनुभव नहीं किया बल्कि उसका शरीर चंचल और इंद्रियां भूखी हो गई थीं। हैमन्ती को देखकर इंद्रियों में कहीं बिजली-सी उत्तेजना अथवा जलन अनुभव नहीं कर रहा है। कैसा विक्षिप्तमना हो गया है, कोई वेदना बोध कर रहा है, जो वेदना शायद ी रहती है। हठात् वह कैसा दुःखी व दीन-सा प्रतीत हुआ। अवनी ने अस्पष्ट से अनुभव किया कि उसका हृदय सहसा शिशु की भांति अभिमानी व कातर उठा है और कुछ मांग रहा है।

हैमन्ती ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर मुंह फेरा, तो अवनी की दोनों वेदनापूर्ण ोहित आंखें देख पाई।

## नौ

अचानक एक दिन आधी रात में आंधी-पानी उतरा। दूसरे दिन सारी सुबह ी आंधी, तो कभी पानी बरसता रहा, समूचे आकाश में सिर्फ बादल तिरते जा रहे थे, मानो एक ओर से कोई बादलों का फीता खोले दे रहा हो, और री ओर दूसरा कोई उसे लपेट रहा हो, तीसरे पहर शाल-गरगल के वन में : शायद नए सिरे से वर्षा का दौर उतरा। भटास-भरी हवा आ रही थी प्रति- ', रातभर बादल गरजे, बिजली चमकी और पानी पड़ा। लग रहा था, क्वार न्त में सावन की वर्षा उतरी। अगले दिन सवेरे आकाश साफ था, नभ-मंडल ा का समुद्र था, कहीं भी जैसे बादल का नामोनिशान तक नहीं था, धूप में ं जरा-सी खुमारी मिली जाड़े की।

आश्रम के कुछेक कमजोर पेड़ इस आंधी-पानी में उजड़े-से खड़े रहे, पेड़-पौधे -पत्तियां आदि रुंदे-कुचले हुए थे, पानी जमा हो गया था, पानी के ऊपर सिर ाए घास की फुनगियां हवा में कांप रही थीं।

न जाने कैसे इस दुर्दिन में सुरेश्वर का हाथ जरा-सा कट गया था, खिड़की कांच टूटकर बिस्तर पर बिखर गया था; उस पर दाहिने पैर के टखने में मोच जाने की वजह से चलना-फिरना कष्टकर हो गया था। दो-तीन दिनों तक ा-सा बीमार रहा सुरेश्वर।

उस दिन शाम को कमरे में नेवार की कुर्सी पर सुरेश्वर लेटा हुआ था, वनी ने अंध कुटीर के सामने के डाल-टूटे पेड़ से ढेर सारे शेफाली के फूल लाकर

कांच की रकाबी में रख दिए, बोली; "थोड़ा-सा चूना-हल्दी गरम कर दूं, लगाइएगा ?"

सुरेश्वर ने सिर हिलाया, कहा, "नहीं।" उसके बाद कुछ सोचकर बोला, "चूना-हल्दी नहीं, थोड़ी-सी चाय बनाकर पिला तो मालिनी, जुकाम-जुकाम-सा लग रहा है।" मालिनी को कभी-कभी सुरेश्वर लाड़ से 'तू-तू' कहता है।

थोड़ी ही देर बाद हैमन्ती आई। मालिनी चाय देकर चली गई।

"आओ हेम, मैं तुम्हारी ही बात सोच रहा था।" सुरेश्वर ने कहा हल्के गले से, चाय पीते-पीते।

हैमन्ती आमने-सामने बैठी। मालिनी उसे भी चाय दे गई है।

"तुम शायद कलकत्ता जा रही हो ?" सुरेश्वर ने पूछा।

हैमन्ती ने ताका मुंह देखा सुरेश्वर का। तो क्या मां ने सुरेश्वर को भी चिट्ठी लिखी है ? बोली, "मां ने आने को लिखा है।"

और मात्र सात दिन बाद पूजा है। कलकत्ता से मां ने जाने को लिखा है। मां नहीं लिखती, तो भी जाने की बात सोची थी हैमन्ती ने। यहां वह मन नहीं लगा पा रही है, न उसे अच्छा लग रहा है। कलकत्ता में कुछ दिन बिता आ सकती, तो अच्छा होता। अपने परिवार व नाते-रिश्तेदारों के बीच मन थोड़ा-सा हल्का होता है। हालांकि वह कैसे जाएगी, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। सुरेश्वर क्या अस्पताल बन्द रखने को राजी होगा ? खुद भी तो हा काटकर और पैर की नसें चढ़ाकर बैठा हुआ है। हेम ने यह बात अपने मन मे रखी थी, सोचा था, बाद में कहेगी। हो सकता है, आज ही कहती। पर सुरेश्व को तो उसके कहने के पहले ही यह मालूम हो गया है। तो क्या मां ने सुरेश्वर कुछ लिखा है !

"मां ने तुम्हें चिट्ठी लिखी है ?" हैमन्ती ने जानना चाहा।

"नहीं, मुझसे मालिनी कह रही थी।"

"ओ !"

मालिनी के ऊपर ईषत् विरक्ति अनुभव की हैमन्ती ने। मालिनी को बता की क्या पड़ी थी। बड़ी आई बताने वाली !

"मैं जाने की सोच रही थी," हैमन्ती बोली।

सुरेश्वर कुछ सोच रहा था, बोला, "कब जाओगी ?"

"देखूं, अभी भी कुछ तय नहीं किया है; षष्ठी के दिन जाने की सोच रही हूं

"तुमने चिट्ठी दी है चाची जी को ?"

"नहीं, दूंगी।"

"तो अस्पताल बिलकुल बन्द रखोगी ?"

सुरेश्वर ने कुछ इस ढंग से कहा, जैसे यह अस्पताल हैमन्ती का हो। उ सुनने में अच्छा नहीं लगा। किसका अस्पताल, कौन जो बन्द रख रहा है ! हैमन अप्रसन्न होकर मन-ही-मन बोली : तुम्हारा अस्पताल है, तुम्हीं जानो।

और जरा-सी सोचकर सुरेश्वर बोला, "इस समय इधर ये लोग मेले-ठेले जाया करते हैं, दशहरा मनाते हैं, अस्पताल में खास कोई आता नहीं है। तो अच बात है, तुम जाओ।"

हैमन्ती को लगा, सुरेश्वर ने जैसे उसकी छुट्टी मंजूर की। अवश्य छुट्टी

पहले उसने अपनी जरूरत का हिसाब लगाकर देख लिया। वह कलकत्ता जा
चाहती है, यह सोचने-विचारने का विषय नहीं है, रोगी-वोगी आ सकता है
नहीं, यही सुरेश्वर के सोचने-विचारने का विषय है।

हैमन्ती यहां नौकरी करने नहीं आई है, अपने परिश्रम का मूल्य वह नहीं ले
है। स्वेच्छा से वह आई है, जो कुछ वह कर रही है उसे स्वार्थ-रहित होकर क
रही है, दया के वशीभूत होकर कर रही है। अपनी इच्छा से ही वह जा सक
है, दूसरे किसी की भी इच्छा के ऊपर उसका आना-जाना निर्भर नहीं करता है
रोगी आएंगे या नहीं आएंगे, इसके ऊपर हैमन्ती का कलकत्ता जाना स्थिर होगा
आश्चर्य है!

हैमन्ती मन-ही-मन क्षुब्ध हुई, तो भी मुंह से वह कुछ नहीं बोली।

सुरेश्वर वोला, "जाने के पहले तुम अपने यहां के रोगियों को मुक्त नहीं क
सकोगी?"

फिर वही, 'अपने रोगी' वाली बात! सुरेश्वर की ये 'अपना अस्पताल' 'अप
रोगी' वाली बातें अच्छी नहीं लगती हैमन्ती को। ये लोग वास्तव में ही उस
कोई नहीं हैं। सुरेश्वर जैसे जान-बूझकर बार-बार उसे अस्पताल, रोगी औ
आश्रम के साथ जोड़ देना चाहता है। यहां मेरा कुछ नहीं है, उनमें से कोई मे
नहीं है—हैमन्ती के इस सरल मनोभाव को क्या सुरेश्वर नहीं समझता है, अथ
समझता है इसीलिए धीरे-धीरे बुद्धिमान की भांति हैमन्ती को इस आश्रम के सा
जोड़ देना चाह रहा है, वह सोच रहा है, हैमन्ती को इस तरह से दुर्बल किया
सकता है, मोह में डाला जा सकता है। संसार में अनेक मनुष्य इस तरह से रीझ
हैं, इस फंदे में फंसते हैं।

हैमन्ती ने हठात् एक प्रकार की जिद अनुभव की। सुरेश्वर उसे जहां धके
देना चाह रहा है वहां वह नहीं जाएगी, बाधा देगी। बोली, "कौन लोग हैं, मु
कुछ याद नहीं है।" उसे सभी कुछ याद था। जो लोग हैं उन्हें मुक्त कर देने में
कोई अड़चन नहीं है। बहुत समय ये लोग बहुत दूर से बहुत तकलीफ उठाक
आते हैं। दो-चार दिन बाद फिर घाव-फोड़ा-फुंसी आदि दिखाने आना संभव नह
इसीलिए इन्हें कई दिनों तक रोके रखा जाता है, वरना इन्हें रोक रखने का को
अर्थ नहीं है।

सुरेश्वर ने बड़े अचम्भे में पड़कर हैमन्ती को देखा बोला, "जिन्हें रोक रख
हो, उनकी बात तुम्हें याद नहीं रहती है।"

न तो यह तिरस्कार था, न भर्त्सना, फिर भी यह अच्छी तरह समझ में आय
कि सुरेश्वर हैमन्ती की दायित्वहीनता के चलते क्षुब्ध व विस्मित है।

हैमन्ती जितनी जिद प्रकट करना चाह रही थी, उतनी प्रकट नहीं कर सकी
बल्कि थोड़ी-सी परेशानी अनुभव की।

सुरेश्वर बोला, "तो लौटोगी कब?"

हैमन्ती का मन हुआ कि कहे, नहीं लौटूंगी; क्यों लौटूंगी? यहां क्या है?

पर हैमन्ती मौन रही। सुरेश्वर ने खुद ही कहा, "जाने के पहले रोगिय
में से जिन्हें मुक्त कर सको, कर दो। ये कई दिन अब नए रोगियों की भर्ती म
करना। वापस आकर…"

हैमन्ती ने कहा, "पर मैं कुछ दिनों के बाद लौटूंगी।"

"देर करोगी ?"

'नही, लेकिन मां अगर देर कराए तो—"

"तब तो मैं यहां बहुत दिक्कत में पड़ जाऊंगा।···पहले जो आते थे वे तो
आएंगे नही। रोगी आकर लौट जाएंगे।"

रोगियो के आकर लौट जाने पर सुरेश्वर को दुख होता है। मगर
किसी के लौट जाने पर उसे अखरता नही है।

विरक्ति व वितृष्णा बोध करके हैमन्ती ने कहा, "तो फिर मैं नहीं जाऊंगी

सुरेश्वर ने हैमन्ती के गले का स्वर सुनकर उसके मुंह के भाव को ध्या
लक्ष्य किया। मुस्कराता हुआ बोला, "तुम गुस्सा कर रही हो हेमा।"

हैमन्ती ने बात नही की, मन नही किया।

थोड़ी देर तक सुरेश्वर ने भी बात नही की, उसके बाद धीरे से बोला,
[illegible] मन नही

[illegible] उसके कहने
दुःख था, श्लेष भी था।

सुरेश्वर ने पहले हैमन्ती की ओर ताका बाद में खिड़की की ओर मुंह
निहारता रहा। हैमन्ती कमरे की अंधेरी दीवार की तरफ ताकती रही। सुरे
का यह कमरा छोटा-सा है, माल-असबाव थोड़ा-बहुत है, उसके पढ़ने-लिखने
काम-काज करने का कमरा है यह। पोथी-किताबें कागज, और दो-एक ज
चीजों से भरा हुआ है। मेज पर काच की रकाबी में शेफाली के फूल हैं, हवा
हल्की महक आई।

सुरेश्वर ने कहा, "हेम, तुम कैसी हो गई हो।"

यही पहली बार, यहां आने के बाद सुरेश्वर ने सीधे हैमन्ती से ऐसा कुछ
जो उन लोगों का व्यक्तिगत प्रसंग है। हैमन्ती ने मुंह फेरकर सुरेश्वर की
पल भर के लिए ताका, ताककर मुंह फेर लिया, बोली "मैं बदल गई हूं ?"

"शायद।"

"तुम भी तो।"

"हां, मैं बदल गया हू—। मेरे बदलाव की बात तुम नही जानती थी ?"

"नहीं।"

"नही ?"

"मैं कैसे जानती भला !"

"मैंने तो तुम्हें बहुत पहले ही बताया था।"

"मगर मैंने नही समझा था।···तुम्हारी सारी बातें समझूं, ऐसी सूझ-
मेरी नहीं है।"

सुरेश्वर ने बहुत देर तक जैसे हैमन्ती की ओर मुंह फेरकर एकटक कुछ देख
उसके बाद मृदु गले से बोला, "हो सकता है, मैं तुम्हें समझा नहीं सका या
रुका जरा सा, उसके बाद फिर बोला, "मगर मैं तुम्हें यहां दुख देने के लिए न
लाया हूं, हेम।"

"तुम्हारा सुख-दुःख बोध अलग है।"

"मैं किसी का भी दुःख देख नही सकता !"

सुरेश्वर की बात हैमन्ती ने सुनी, उसका अर्थ भी समझ सकी। सुरेश्वर का सुख-बोध वह नहीं समझती है। यह प्रसंग बहस करने लायक नहीं है, हैमन्ती की खास कोई इच्छा भी नहीं हुई।

सुरेश्वर ने बहुत देर तक फिर बात नहीं की। मौन रहा। हैमन्ती भी स्थिर और निश्चल होकर बैठी हुई है। बाहर कहीं एक कीड़ा बोल रहा था—चूं-चूं। कमरे के अंधेरे कोने में एक जुगनू आया है, जल रहा है, बुझ रहा है। दोनों की नीरवता के बीच कैसी एक कोने में एक विच्छिन्नता पैदा हो गई थी और क्रमशः वह एक दुस्तर व्यवधान—जैसी होती जा रही थी।

अन्त में सुरेश्वर ने ही बात की, "यहां तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है ?"

"नहीं।"

"तो तुम कलकत्ता लौट जाना चाहती हो ?"

"मैंने तो लौट जाने की बात नहीं कही है।"

"यहां अच्छा न लगने पर लौट जाने के अलावा और क्या करने को है ?"

हैमन्ती ने इस बार मुंह फेरकर सुरेश्वर को देखा। टेबुल-लाइट की मद्धिम रोशनी में जो मुंह हैमन्ती को दृष्टिगोचर हुआ उसके प्रति उसने आज अब ममता अनुभव नहीं की। वह निस्पृह मुंह उसे अत्यन्त स्वार्थी व निष्ठुर लगा।

"मैंने तो लौट जाने की बात अभी भी नहीं सोची है—"

हैमन्ती ने कहा, बेतरतीबी से।

"लेकिन तुम्हें अगर अच्छा न लगे—"

अच्छा लगने न लगने का प्रश्न अप्रासंगिक है। हैमन्ती ने संक्षेप में कहा, "रोज ही तो रोगियों को देखती हूं।"

"देखती तो हो, लेकिन दिल नहीं लगा पाती हो शायद।"

"अपने बूते भर जतन से मैं रोगियों को देखती हूं।"

"प्यार से नहीं देखती हो ?"

"डॉक्टरों के लिए जतन ही बड़ी चीज है, प्यार नहीं।"

"तुम कर्त्तव्य की बात कह रही हो।"

"उससे ज्यादे की मुझे जरूरत नहीं।···अपना काम मैं समझती हूं।"

सुरेश्वर ने फिर बात नहीं की। बात करना निरर्थक था।

दोनों ही फिर मौन होकर बैठे रहे। अंधेरी दीवार के कोने से वह जुगनू हैमन्ती के पांव की ओर उड़कर आया था, न जाने कहां खो गया है।

बैठे-बैठे थक गई, तो हैमन्ती उठी। "तुम्हारा हाथ कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"कल देखूंगी।···तो चलती हूं।" हैमन्ती चली जा रही थी।

सुरेश्वर ने कहा, "चाची जी को चिट्ठी लिख देना। कब जा रही हो, मुझे बताना।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। चली गई।



हैमन्ती के चले जाने पर सुरेश्वर बैठा रहा, उसी तरह से, शान्त स्थिर होकर। कुछ समय इसी तरह से बीता; भरतू कमरे में आया था, उसके पैरों की आहट सुनी सुरेश्वर ने; काम निबटा कर भरतू चला गया। जुकाम के चलते

आखें और कपाल थोड़ा-सा भारी महसूस हो रहा था सुरेश्वर को।

मन थोड़ा-सा विक्षिप्त हो गया था, धीरे-धीरे उसे शान्त व संयत कर डाला है सुरेश्वर ने, अभी बहुत कुछ शान्त भाव से ही सोचने की कोशिश कर रहा था, हेमन्ती को यहां लाना उचित हुआ है या नहीं!

हेम यहां न तो सुखी है, न सन्तुष्ट। आने के बाद पहले-पहल उसके मुंह-आंख पर कुछ विस्मय था, हो सकता है, कलकत्ता शहर से एकाएक इस निर्जन में आ धमकने का विस्मय था, हो सकता है, इस आश्रम का परिवेश, यहां का रहन-सहन उसके लिए अपरिचित व अनभ्यस्त था, इसलिए साधारण भाव से वह अचम्भा महसूस करती थी। कई दिनों में वह विस्मय दूर हो गया। उसके बाद से हेमन्ती अब प्रसन्न नहीं है। अभी उसकी बातचीत से यह भली-भांति समझ में आ जाता है कि हेम असन्तुष्ट है, नाराज है, तनाव से पीड़ित है। यहां वह निःसंग व एकाकी है।

ऐसा हो सकता है—सुरेश्वर ने पहले यह नहीं सोचा था, ऐसी बात नहीं; लेकिन उसने इतना नहीं सोचा था। उसने आशा की थी कि हेमन्ती के लिए अपने आपको क्रमशः इसके अनुकूल ढाल लेना सम्भव होगा।

आज कई वर्षों से हेमन्ती के साथ उसका कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था। चिट्ठी-पत्री ही ज्यादा हुआ करती थी, कभी कलकत्ता जाने पर भेंट-मुलाकात होती थी। हेम के घर में ही वह ठहरता था अवश्य, किन्तु उस सामयिक भेंट-मुलाकात में सुरेश्वर ने स्पष्ट करके कुछ नहीं समझा था। यह नहीं समझा था कि हेम का स्वभाव भी बदलता जा रहा है। डॉक्टरी पढ़ाई-लिखाई को लेकर हेम तब व्यस्त थी, उम्र का एक परिवर्तन भी साधारणतः होता है। हेम में वयसोचित परिवर्तन हुआ है, यह समझ में आता था यह समझ में आता था कि हेम पहले की तुलना में बहुत गंभीर, आत्मलीन व मितभाषी हो उठी है। सुरेश्वर अन्य परिवर्तन न देख पाया था, न समझ पाया था। हेम ने कभी भी स्पष्ट करके चिट्ठी-पत्रियों में भी यह नहीं समझाया था।

यहां आने के बाद से हेम को सुरेश्वर जैसे थोड़ा-थोड़ा करके नये सिरे से पहचान रहा हो। जो हेम सुरेश्वर की ज्यादा परिचित थी उस हेम में और आज की हेम में बहुत फर्क है। कमसिन या तरुणी हेम को ही सुरेश्वर गहराई से पहचानता था। उस अठारह-उन्नीस या बीस साल की उम्र की हेम में और आज की परिपक्व हेम में बहुत फर्क है।

सुरेश्वर अभी उस हेम को स्पष्ट रूप से देख पाता हो जैसे। उसे शायद अनुभव किया जा सकता है। कली चटककर फूल खिलने की तरह हेम तब खिलती जा रही थी। जीवन के चारों ओर चंचल हवा थी, उसका सब कुछ मानो हिलता था, वह सतत अधीर थी, उज्ज्वल, निर्मल, विभोर थी। सुरेश्वर को तब लगता था कि उसकी आंखों की पुतलियों में हेम का मुंह स्थिर बना हुआ है। हेम की बात सोचकर दिन का कितना समय जो गुजरता था, यह भी सुरेश्वर हिसाब लगा कर नहीं देखता था। एकाएक उस उम्र में हेम को उसके भाग्य ने एक गहरे दुःख व निराशा में डाल दिया। आज तो यह समझ में नहीं आता है, किन्तु उस दिन सुरेश्वर ने समझा था कि वह कैसी दुःसह यंत्रणा थी हेम की, एक बहुत बड़े अंधेरे कुएं में जैसे उसे डाल दिया हो। सुरेश्वर भी दिग्भ्रमित हो गया था, विषाद,

दुश्चिन्त और दु:ख के मारे उसकी हालत पागलों की-सी हो गई थी। मगर सुरेश्वर ने उस पागलपन को संभाल लिया था। दु:ख से उसका परिचय पहले ही हो चुका था, इसलिए शायद विह्वलता दूर करने में उसे समय नहीं लगा था। हेम को चंगी करने के लिए वह व्याकुल था।

उस समय सुरेश्वर ने नि:सन्देह यह जाना था कि हेम को वह प्यार करता है। जाना था कि हेम को न बचा पाने पर उसके चारों ओर जो शून्यता पैदा होगी वह बरदाश्त के परे होगी। वह सपना देखता—एक बहुत बड़े सूने मैदान में खपरैल कमरे में लोहे की चारपाई पर हेम अकेले लेटी हुई है; उसके चारों ओर मक्खियां भनभनाती हुई उड़ रही हैं, फर्श पर मक्खियों के मारे हेम अब दिखाई नहीं पड़ती है, चारपाई के नीचे गंदे कलाईदार भगोने में सुरेश्वर के नाम लिखे हुए मुड़े-तुड़े छोटे-छोटे रूमाल हैं, मानो हेम ने मुट्ठी खोल कर उन्हें एक-एक करके डाल दिया हो। सुरेश्वर हेम की चारपाई के सामने जाकर अपने दोनों हाथों से मक्खियां भगाने की कोशिश करते-करते असहाय होकर रो पड़ता था।

सुरेश्वर ने यही एक सपना कई बार देखा था, कभी वह पूरा-का-पूरा सपना देखता, तो कभी उसका एक अंश देखता। उसने अपने सपने की बात पूरे तौर पर हेम को नहीं बताई थी, तो भी एक बार उसने हेम से कहा था कि वह बेसिर-पैर का भद्दा-सा सपना देखा करता है।

"कैसा सपना ?" हेम ने पूछा था, अस्पताल की चारपाई पर लेटकर।

"फालतू सपना, भद्दा-सा !"

"यह कि मैं मर गई ?"

"धत्, भला तुम्हें क्यों मौत आएगी ?"

"तो फिर।"

"यह कि मैं मर गया।"

"तुम झूठ बोलते हो।"

"तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है···। सच कहता हूं।"

यह अविश्वसनीय है, ऐसा उस दिन सुरेश्वर को नहीं लगता था। हेम के मर जाने पर सुरेश्वर मुर्दा होकर ही रहता। हेम को जीने की आशा देते समय सुरेश्वर खुद को भी मानो आशा दिया करता था। वह जब हेम को भरोसा देता, साहस देता—तब खुद भी भरोसा व साहस पाता था।

हेम क्रमश: रोग-मुक्त होती जाने लगी। उस समय सुरेश्वर ने देखा, उस नरम उम्र में एकाएक गहरे दु:ख व निराशा में पड़ी हेम को ऐसी चीज का स्पर्श मिला है, जो चीज उसकी उम्र में आमतौर पर मिलती नहीं है। हेम ने उस विषाद के जगत् को देखा था जहां अकारण शोक, और बिना किसी भेद-भाव के आघात पाना पड़ता है। सुरेश्वर ने अपने जीवन में इस जगत् को और भी पहले देखा था, लगभग बचपन से ही वह इसे देखता आ रहा था। उसके मां-बाप, मां-बाप का सम्बन्ध, मां का डर, मा की दिमागी गड़बड़ी, बाप की चरित्रहीनता, निष्ठुरता, मां की आत्महत्या आदि—यह तमाम कुछ उसके उस विषाद के जगत् में शामिल था। यहां तक कि पिता की उपपत्नी व उस उपपत्नी की कोख से जन्मे पुत्र ने जब सम्पत्ति पर अपना हक जताकर मुकदमे का डर दिखाया था तब भी सुरेश्वर को इसी विषण्ण जगत् का एक और भी परिचय मिला था। सम्पत्ति अथवा धन के

लिए उसने कातरता अनुभव नहीं की थी, कातरता अनुभव की थी ग्लानि अनुभव करके, श्रद्धाहीनता से। पिता ने अपनी पत्नी की अश्रद्धा की थी। संतान को भी श्रद्धाहीन बना दिया था। अपनी दूसरी पत्नी और सन्तान को भी पिता ने मर्यादा नहीं दी थी, मलिनता दी थी सिर्फ। यह बात किसी को उसने नहीं बताई थी कि अपने पिता के दूसरे पुत्र के वास्ते उसने सहानुभूति व वेदना बोध की थी।

न जाने कैसे सुरेश्वर ने यह अनुभव किया कि उसके व्यक्तिगत विषाद के जगत् में और हेम के विषाद के जगत् में कहीं जैसे एक प्रकार की समानता है। वे एक-दूसरे को सहानुभूति दिखा सकते हैं। सुरेश्वर अपने जीवन में सहिष्णुता व सहानुभूति को फैलाना चाह रहा था; उसे लगा था कि हेम भी ममता व प्यार से पूर्ण होना चाहती है।

हेम के अस्पताल में हेम से कुछ छोटी—प्रायः हम उम्र कही जा सकती है—एक लड़की से हेम की दोस्ती हो गई थी। बिस्तर पर लेटे-लेटे वह लड़की चिथड़ों की गुड़िया तैयार किया करती, उससे मिलने जाने पर वह लगभग दीन की भांति सब से फटे-पुराने कपड़े के चिथड़े मांगा करती, सुई-धागे मांगती, रंग-बंग लाने को कहती। अस्पताल के हर बिस्तर पर उसके हाथ की विचित्र चिथड़े की गुड़िया दिखाई पड़ती। उसका नाते-रिश्तेदार नहीं था शायद, कोई नहीं आता था। एक दिन आधी रात में वह लड़की चल बसी, सवेरे देखा गया कि उसके बिस्तर पर एक बहुत बड़ी चिथड़े की गुड़िया है, धड़ है, माथा है—पर हाथ-पैर नहीं हैं।

उस लड़की की मृत्यु से हेम रोकर आकुल और दुःख से बेहाल हो गई थी। सुरेश्वर उस बार जब हेम से अस्पताल में मिलने गया, तो हेम ने सिर्फ अपनी सहेली की बात की थी और रोई थी।

हेम ने कहा था, "वह कहा करती थी कि चंगी हो जाने पर वह साफ चिथड़ों से गुड़िया बनाएगी।"

"क्यों, वह साफ चिथड़ों से गुड़िया बनाना क्यों चाहती थी ?"

"यहां सब बीमारी-चीमारी की छुअन है, ये सब गुड़िये तो बाहर नहीं जाने दिए जाते।"

"ओ !"

"साफ चिथड़ों से गुड़िया बनाने पर सभी उसे लेते।"

'तो वह गुड़िया बेचती ?'

"उसका तो कोई था नहीं, एकमात्र बड़ी बहन थी; वह बहुत गरीब थी।··· गुड़ियों की दुकान करती, तो बिक्री होती।"

"ओ !"

हेम चुप रही, उसके बाद एकाएक बोली, "जिन लोगों का कोई कहीं नहीं होता उन्हें कितनी तकलीफ होती है ! काश, भगवान अगर उसकी खातिर किसी को रखते···।"

सुरेश्वर ने माथा नीचा कर लिया था, वरना वह रो पड़ता उस दिन।

हेम ने अस्पताल में रहते समय ममता व प्यार जाना था।

उसके बाद हेम चंगी होकर लौट आई। सुरेश्वर ने हठात् कैसी एक मुक्ति अनुभव की, कैसा एक आनन्द अनुभव किया। वह आनन्द अवर्णनीय था। मानो खुद उसी ने पुनर्जन्म प्राप्त किया था। फिर वह हेम को लेकर घाटशिला गया था

साथ में थीं चाची जी। सारी सुबह, दोपहर, शाम, रात के आठ-नौ बजे तक उसकी बगल में हेम रहती। टहलने निकल कर किसी-किसी दिन हेम गुनगुनाकर सुख का गाना गा उठती। या किसी-किसी दिन कहती, "मुझे अब सब कुछ अच्छा लगता है, धूल-धक्कड़-भरा रास्ता, सुबह-शाम···"

"और मैं कैसा लगता हूं ?"

हेम कनखियों से देखती, उसके बाद कहती, "कैसे भी नहीं लगते हो।"

"कैसा भी नहीं लगता हूं ! सो क्या ! भला-बुरा कुछ-न-कुछ तो लगता ही होऊंगा !"

"क्या पता ! खुद को खुद कैसा लगेगा भला—" कहकर मुंह दबाकर हंसती।

सुरेश्वर अनुभव करता, हेम ने सुरेश्वर को अपने अंगीभूत कर लिया है, अपने अन्तर में घुला-मिला लिया है, वह अब अलग कुछ नहीं है, हेम में ही वह है।

हेम के नरम गाल पर गाल रखकर सुरेश्वर ने एक दिन कहा था, "हेम, बीमारी के बाद तुम और भी सुन्दर हो गई हो।···"

उसके बाद कलकत्ता वापस आकर सुरेश्वर एकाएक न जाने कैसा हो गया। जो उसके लिए निश्चित व सच था, प्यार था, सुन्दर था—अकस्मात् जैसे वहां दुविधा आई; लगा, यह प्यार बड़ा कष्टदायक है आखिर ऐसा क्यों हुआ ? सुरेश्वर ने मानो अपने आप से ही प्रश्न किया, क्यों ?

अचानक उसे गाड़ी का हॉर्न सुनाई पड़ा, और फौरन उसने समझा कि अवनी आया है।—अवनी इस बीच और भी कई बार आया था, मगर इतनी रात गए कभी भी नहीं आया था।—आखिर आज इतनी रात गए अवनी क्यों आया ? सुरेश्वर कुछ समझ या अनुमान नहीं कर पाया।

## दस

कलकत्ता की गाड़ी अभी-अभी छूट गई। हैमन्ती को चढ़ा देने के लिए आया सुरेश्वर ट्रेन छूट जाने पर प्लेट फार्म से होकर लौटने लगा। बगल में हैं बिजली बाबू।

बिजली बाबू से बस-स्टैंड पर मुलाकात हो गई थी, गाड़ी आने में तब और देर नहीं थी, बिजली बाबू ने सुरेश्वर वगैरह को माल-असबाब समेत स्टेशन पर भेज दिया, बुकिंग ऑफिस में घुसकर टिकट कटाया और बिलकुल गाड़ी के साथ-साथ प्लेटफॉर्म पर हाजिर हुए।

लौटती बार रेल के दो-एक छोटे बाबुओं से प्लेटफार्म पर जो लोग थे—सुरेश्वर ने खड़े-खड़े दो बातें कीं; सभी उसके जान-पहचान के हैं, भेंट होने पर दो पल खड़ा होकर बात करनी ही पड़ती है, खोज-खबर लेनी पड़ती है इसकी उसकी। सुरेश्वर के बारे में इन सभी में कैसी एक श्रद्धा का भाव है, हो सकता है, कौतूहल भी हो। विशेषत: आज हैमन्ती को चढ़ा देने आया, तो सुरेश्वर यह अनुभव कर सका।

ओवर ब्रिज न पार करके सुरेश्वर प्लेटफॉर्म के आखिरी छोर से उतरा और

लाइन पार करके ढलान से होकर रास्ते पर चढ़ा। टखने का दर्द अभी भी पूरे तौर पर ठीक नहीं हुआ है। आते समय ओवरब्रिज की सीढ़ियां चढ़ने की वजह से दर्द फिर मालूम पड़ रहा था; लौटते समय इसीलिए वह फिर सीढ़ियां नहीं चढ़ा।

रास्ते पर चढ़कर बिजली बाबू ने कहा, "दुर्गा-मन्दिर की ओर एक बार चलिएगा क्या ?"

दुर्गा-मन्दिर थोड़ी दूर पर है, तेज़ी से चलने पर भी बीसेक मिनट का रास्ता है। आने-जाने में थोड़ा-सा समय जाएगा, इतना चलने से फिर टखना दर्द करेगा या नहीं, यह भी सुरेश्वर समझ नहीं पाया। एक बार पोस्ट-ऑफिस भी जाने की जरूरत है। सुरेश्वर बोला, "मुझे जो एक बार पोस्ट-आफिस जाना होगा। रुपया निकालना है।"

"लौटती बार जाइएगा —" बिजली बाबू बोले, "अभी नौ भी नहीं बजे हैं। दस बजे के अन्दर जाने से ही चलता है।" बिजली बाबू ने समय की पाबन्दी की परवाह ही नहीं की।

सुरेश्वर ने कहा, "इतनी दूर चलूं या नहीं, यह सोच रहा हूं !"

"ज्यादा दर्द है ?"

"नहीं, कोई खास नहीं है। दर्द तो लगभग नहीं ही था, सीढ़ियां चढ़ते समय, हो सकता है, ठीक से पैर नहीं पड़ा था, कहीं, टीस रहा है।"

"हड्डी-वड्डी टूट गई है क्या ?"

"नहीं —" सुरेश्वर मुस्कराया, "हड्डी टूटने पर क्या इतना कम दर्द होता, इतने से छुटकारा मिलता।···हेम ने तो कहा कि मोच आ गई है।"

बिजली बाबू ने सुरेश्वर के मुंह की ओर ताका, "वे क्या यह सब भी समझती हैं ?"

सुरेश्वर हंसा, "सो तो थोड़ा-बहुत समझती ही है ! आखिर डॉक्टरी तो पास करनी पड़ी है।"

बिजली बाबू ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया, बाद में बोले, "तो फिर रहने दीजिए, दुर्गा-मन्दिर जाने की जरूरत नहीं, चलिए पोस्ट-ऑफिस ही चलें। वहां अगर बैजू का रिक्शा मिले, तब तो खैर वहीं से दुर्गा-मन्दिर चलेंगे।"

दिन ज्यादा नहीं चढ़ा है फिर भी शरत् की धूप इतनी चमकीली है कि आंखों में जलन-सी हो रही थी, ताप उभर उठा है। पेड़ों की छाया में चलते-चलते बिजली बाबू ने सिगरेट सुलगाई।

सुरेश्वर ने पूछा, "इस बार यहां आने वालों की संख्या कैसी है, बिजली बाबू ?"

"आज शाम से कुछ समझ में आएगा। कल तो कुछ लोग आए हैं। मगर उनकी संख्या कुछ बुरी नहीं है।"

"उमेश बाबू आए हैं ?"

"नहीं; कल आएंगे शायद।"

"आप लोगों की पूजा कैसी हो रही है ?"

"भला नई क्या होगी—जैसी बराबर होती है वैसी ही होगी," कहकर बिजली बाबू तनिक रुके, फिर सुरेश्वर के मुंह की ओर निहारकर कुछ देखा, व · "आप तो जानते हैं सा'ब, मैं ठहरा शराब-वराब पीने वाला आदमी, जरा-

बुराई मुझमें है, लेकिन ढमढम वाजा बजाकर कलकत्ता के वड़े लोगों के घरों में एक-एक थाली प्रसाद, और दो-दो परात महीन चावल की खिचड़ी का भोग भेज कर धन का अपव्यय करने को मैं राजी नहीं।" विजली वाबू ने होंठों में सिगरेट दवाकर कई वार कश लगाया, फिर वोले, "नवमी के दिन भिखारियों-विखारियों को खिलाया जाता है यहां—यह तो आपने खुद भी देखा होगा—यह हो, यह वरावर होता आ रहा है, मैं इसका विरोध नहीं करता। मगर वड़े लोगों के घरों में ढेर सारे फल-मिठाइयां और भोग भेजने की जरूरत क्या है?···इसे लेकर उस दिन झगड़ा हुआ हरिहर से। वह कहता है, कलकत्ता से उन वड़े लोगों से पच्चीस, पचास, सौ-सौ रुपये चन्दा मिलता है, उनकी खातिरदारी किये विना चलेगा कैसे? भाड़ में जाए तेरी खातिरदारी···"

विजली वावू, चाहे जिस कारण से हों, असन्तुष्ट और उत्तेजित हैं, सुरेश्वर यह समझ पाया। वोला, "वे लोग अवश्य मोटा चन्दा देते हैं। वे लोग नहीं आते हैं, तो भी वे लोग सालाना चन्दा ठीक भेज दिया करते हैं, ऐसा मैंने सुना है।"

"तो इससे क्या हुआ, रुपया देते हो, इसलिए देवी का भोग तुम साले अपने कुत्ते को भी खिलाओगे।···विश्वास कीजिए महाराज, यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। कलकत्ता के चार वक्त अंडे, मुर्गी की टंगड़ी, मछली, केला, फल आदि खाने वाले अंग्रेजी वावू के यहां देवी का भोग भेजा गया तो औरतों के उसे जरा-जुरा अपने होंठों से छुलाने या न छुलाने पर उसे घर के कुत्ते को खिला दिया गया।···" गुस्से के मारे विजली वावू ने आमने-सामने 'महाराज' कहकर संवोधित कर डाला। ऐसा वे साधारणतः नहीं करते हैं। सुरेश्वर अवश्य यह जानता है कि विजली वावू उसे महाराज-वहराज कहते हैं।

क्या कहता सुरेश्वर, खामोश रहा।

विजली वावू ने अपनी कमीज की जेव टटोलकर दियासलाई निकाली। "देवी वेवी को कंधे पर लेकर नाचूं, मैं ऐसा नहीं। हिन्दू के घर जन्मा हूं, दुर्गा, काली, लक्ष्मी आदि को देखने पर ज्यादा-से-ज्यादा एक प्रणाम ठोंकता हूं, वस। वात यह है कि आज सतरह-अठारह वर्षों से यह वंगाली लोग दुर्गा-पूजा कर रहे हैं, आखिर उसे तो हम उठा नहीं देंगे। मैंने तो खैर अष्टमी के दिन वकरे का मांस चवाकर, वोतल देवी को सामने विठाकर अष्टमी की, लेकिन मेरी दोनों वहुएं तो अष्टमी का उपवास करेंगी, पुष्पांजलि देंगी, सन्धि-पूजा देखेंगी।···आप ही कहिए, हमारे घर की वहुआ-वहुओं, लड़के-लड़कियों, वूढ़े मां-वाप—इनके लिए तो पूजा का एक मूल्य है। भक्ति-वक्ति वे लोग करते हैं, यह उन्हीं लोगों का आनन्द है। इसके अलावा मैंने तो खैर भले ही देवी-वेवी नहीं मानी, पर दूसरे लोग तो मानते हैं।··· मैं इसीलिए दो टूक कहता हूं, पूजा तो जरूर करूंगा, लेकिन वड़े लोगों की तवज्जह करने की खातिर पूजा नहीं करूंगा।"

सुरेश्वर ने कहा, "तो हरि वावू वगैरह से आपका झगड़ा-टंटा हुआ?"

"हां, हुआ। वह हरि और ठिगना-कातिक—वे दोनों ही हैं हरामजादे। उन लोगों ने दल वनाया है, दल वनाकर कलकत्ते के गण्यमान्य व्यक्तियों को फुसला-कर यहां एक अखाड़ा खोलने की सांठ-गांठ की है, वैष्णवों का अखाड़ा। मृदंग-मंजीरा वजाएंगे, वतासे खायेंगे। मैंने कहा है, पूजा कमेटी से निकलकर वह सव करो।···मेरा नाम है विजलीवरण चक्रवर्ती, मैं पैंतीस वर्षों से यहां हूं, तुम लोग

यह मत सोचो कि दो दिनों के जोगी आकर मुझ पर धौंस जमाओगे ।"

"आखिर झगड़ा-टंटा क्यों किया आपने ?" सुरेश्वर ने मानो जरा मुस्कराकर ही कहा ।

"क्यों नहीं करूंगा झगड़ा ! वे लोग पूजा का रुपया चुराते हैं, पब्लिक मनी लेकर बिजनेस करते हैं···। हरि गुप्त ने तो बाजार में एक कपड़े की दुकान खोली है । कहां से लाता है पूंजी ?"

सुरेश्वर ने इस अप्रिय प्रसंग को दबा देना चाहा । बोला, "जाने दीजिए । ये सब बातें रहने दीजिए ।"

बिजली बाबू ने सिगरेट सुलगाकर फिर कश लगाना शुरू किया । दाहिनी ओर रेलवे-लाइन है, एक ट्रॉली चली जा रही है, सफेद छाते के नीचे हाफ पैंट और शर्ट पहने अधिकारी बाबू बैठे हुए हैं, दो कुली पैरों के पास बैठे हुए हैं, मोटर की फटफटाहट हो रही है । देखते-देखते वह ट्रॉली केबिन को पार करके चली गई ।

बाईं ओर का रास्ता पकड़ा सुरेश्वर ने, पोस्ट-ऑफिस जाने के लिए यही रास्ता सुविधाजनक है ।

थोड़ी दूर आगे बढ़कर बिजली बाबू ने कहा, "तो फिर एक बात स्पष्ट करके कह ही डालूं । मंशा थी, अबकी बार पूजा से कुछ रुपये बचाकर आपके हाथ में दूं ।"

सुरेश्वर जाते-जाते ठिठककर खड़ा हो गया और बिजली बाबू की ओर ताका, "मेरे हाथ में ?"

बिजली बाबू कुछ इस तरह से चश्मे के पीछे आंखें चमकाकर हंसे कि लगता है, जैसे इस विषय में उनका उद्देश्य पूर्व नियोजित है । चलते-चलते बोले, "अच्छे कामों में दो पैसे जाएं, तो अखरना नहीं है । ···इसके अलावा, ये लोग दो-एक सौ रुपए भला क्यों नहीं देंगे । यहां से आंखें दिखाने के लिए तो कुछ कम लोग नहीं जाते हैं ।"

सुरेश्वर ने कैसी परेशानी-सी महसूस की, "पहले पहल यहां के सभी ने अपने-अपने बूते भर मेरी मदद की थी, बिजली बाबू ।"

"जानता हूं," बिजली बाबू माथा एक ओर झुकाकर बोले, "सभी कुछ जानता हूं । दो-एक रुपये सभी ने दिए थे, तो आपका मन रखने के लिए, अपना मान बचाने के लिए ।···और जितना दिया था उसका पांच गुना वसूल भी तो कर लिया है ।"

"वह तो उनका हक है !"

"तो आपको रुपये की जरूरत नहीं है, महाराज ?"

सुरेश्वर ने बिजली बाबू के मुंह की ओर ताका, ताककर चुप रहा । अन्त में बोला, "रुपये की जरूरत तो है । कितना कुछ करने को है, मगर धन के अभाव में कुछ कर नहीं पा रहा हूं ।"

[illegible]

चश्मे की दुकान नहीं है, शहर में भी बस एक दुकान है, वहां अत्यधिक दाम लिया

जाता है, गरीबों के लिए शहर आना-जाना, और चश्मा खरीदने का रुपया जुटाना बहुत ही कष्टकर है। यदि सुरेश्वर चश्मा भी दे सकता, तो सुविधा होती। थोड़े खर्च में, उस हालत में बिना खर्च के ही बहुतों को चश्मा मिल सकता था।…अंधों के रहने का घर-मकान भी बढ़ाना जरूरी है, और भी कुछ अंधों को रखने का इंतजाम किया जा सके, तो अच्छा हो। उन लोगों के हाथों में चीजें दी जाएं, तो वे और भी कितना काम कर सकते हैं, पर धन के अभाव में माल-मत्ता उतना नहीं दिया जा सकता है।

बात करते-करते पोस्ट-ऑफिस के नजदीक पहुंच गया सुरेश्वर।

बिजली बाबू बोले, "मैदा ज्यादा मत सानिए—आखिरकार पूड़ियां बेलने वाला भी नहीं मिलेगा, उन्हें तल भी नहीं सकिएगा। जो कुछ करना हो,—इस सब जगह में छोटे पैमाने पर ही कीजिएगा।"

सुरेश्वर मुस्कराया। "एक-एक करके सभी कुछ होगा। आप पांच आदमी तो हैं।"

बिजली बाबू ने माथा हिलाया, और ठिठोली करते हुए बोले, "आप जैसे विज्ञ आदमी ने कैसे यह बात कही? पांच आदमी एक साथ बैठकर ताश-पासा खेल सकते हैं, अफीम, शराब, गांजा वगैरह चढ़ा सकते हैं, मगर पांच आदमियों में कोई अच्छा काम नहीं होता है।"

"बुरा काम तो होता है?" सुरेश्वर ने लघु स्वर में मुस्कराते हुए कहा।

"सो तो होता ही है।…यह विद्या आपको ठीक मालूम नहीं है, इसीलिए आप ऐसा कहते हैं। मालूम होती तो समझते कि जो कुछ मैंने कहा है, वह खरी बात है।"

सुरेश्वर ने परिहास करके ही पूछा, "वह विद्या आप ही को क्या मालूम है?"

"सो थोड़ी-सी मालूम है," बिजली बाबू ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया; उसके बाद बोले, "देखिए महाराज, आप मुझसे उम्र में छोटे हैं—बहुत छोटे हैं, लेकिन विद्या बुद्धि में बहुत बड़े हैं, आदमी भी बड़े हैं। मगर इस दुनिया का हाल-चाल जितना मैं जानता हूं उतना आप नहीं जानते हैं।"

"कैसा हाल-चाल?"

बिजली बाबू ने सुरेश्वर के मुस्कराते से चेहरे की तरफ ताका। जैसे चाहें, तो बहुत कुछ बता सकते हैं। अवश्य खास कुछ बोले नहीं, सिर्फ बोले, "दुनिया में जब आप हैं, तो इसका हाल-चाल थोड़ा-सा आप भी समझते हैं, बाद में और भी समझेंगे।"

पोस्ट-आफिस के सामने पहुंच गए वे लोग। सीढ़ी पर डाकिया है।

बिजली बाबू रुके, "कुछ है क्या, रामेश्वर?"

रामेश्वर ने सिर हिलाकर 'नहीं' कही और चले जाते समय एकाएक रुका, हाथ में कुछ चिट्ठियां हैं, बाकी थैली में है। हाथ की चिट्ठियों में से एक लिफाफा निकाल लिया और कहा, "इसे देखिए तो जरा।"

बिजली बाबू ने उस लिफाफे को हाथ में लेकर देखा। पानी पड़ जाने की वजह से लिफाफे पर का अनाड़ी हाथ का लिखा हुआ पता घुलकर बिलकुल अस्पष्ट हो गया है, कुछ समझ में नहीं आता है। गौर से देखकर बिजली बाबू ने कहा,

"बिजली ऑफिस के साहब की चिट्ठी है, ऐसा ही तो लग रहा है—मित्तिर साहब की।"

"मित्तिर साहब की !···मुझे भी वैसा ही लग रहा था।···साहब की एक रसीद भी है।"

"काहे की रसीद ?"

"मनी आर्डर की।"

बिजली बाबू ने रामेश्वर डाकिए की तरफ ताककर न जाने क्या सोचा। वह चिट्ठी उसके हाथ में वापस दे दी। उसके बाद एकाएक बोले, "देखूं तो, हाथ की लिखावट अगर मिले···।"

रामेश्वर ने कुछ नहीं समझा, रसीद निकालकर आगे बढ़ा दी। मनी आर्डर की रसीद लौट आई है। बिजली बाबू ने दस्तखत देखा। ललिता मित्र। कलकत्ता का स्टॉम्प तो है ही। रुपये की राशि भी देख ली उन्होंने।

रसीद वापस देते हुए बिजली बाबू ने कहा, "नहीं, अलग लिखावट है। वह चिट्ठी मित्तिर साहब की होगी। लेकिन साहब तो अभी ऑफिस में नहीं मिलेंगे, वे तड़के काम से निकल गए हैं, घर में दे देना चिट्ठी।"

रामेश्वर चला गया। सुरेश्वर पोस्ट-ऑफिस के अन्दर घुस गया है।

बिजली बाबू डाक-घर के बरामदे में थोड़ी देर तक खड़े रहे। जैसे बड़ी चिंता में पड़ गए हैं। ललिता मित्र ! आखिर यह ललिता मित्र कौन है ? मित्तिर साहब के न मां है, न बहन; बहू है, ऐसा भी तो उन्होंने नहीं सुना था। ब्याह की चर्चा पर मित्तिर साहब बराबर प्रसंग को टाल गए थे और हंसकर कहा था : 'कोशिश की थी; पर तकदीर बुरी है।' इस प्रकार की बात से कुछ समझ में नहीं आता है, जो कुछ भी समझ में आता है उससे यह लगता है कि हो सकता है, उन्होंने ब्याह करने की सोची थी, लेकिन उन्होंने ब्याह नहीं किया है।

हाथ की बनाई हुई सिगरेट है, वह बार-बार बुझ जाया करती है; बिजली बाबू ने फिर से सिगरेट सुलगा ली। वह चिट्ठी जो मित्तिर साहब की है, इसमें बहुत ज्यादा सन्देह नहीं हो रहा है। ऑफिस का नाम (गलत नाम और हिज्जे के बावजूद) मोटे तौर पर समझ में आ रहा था। ऑफिस में ए० एन० मित्र तो (मित्र यद्यपि पढ़ा नहीं गया था; पर ए० एन० पढ़ा गया था) और कोई नहीं है। अनाड़ी हाथ का लिखा पता है, बिलकुल छोटे बच्चे के हाथ का लिखा-सा। ललिता मित्र का दस्तखत और इस लिफाफे पर का पता एक ही हाथ की लिखावट नहीं है। तो यह चिट्ठी आखिर किसने लिखी ? मित्तिर साहब ने तो कभी भी यह नहीं बताया कि उनका कोई नाते-रिश्तेदार है दुनिया में। बन्धु-बान्धवों की बात अवश्य उन्होंने कही थी। तो क्या वह चिट्ठी उनके मित्रों में से ही किसी के घर के किसी ने लिखी है ? मगर यह रुपया पाने वाली कौन है,

मित्तिर साहब तो बड़े रहस्यमय हैं। बिजली बाबू ने अपने मन से ही माथा हिलाया, *अच्छा, तो आज रात को मैं देखूंगा।*

सुरेश्वर ने रुपया निकालने का फॉर्म लिखकर दे दिया था और बैठे-बैठे शर्मा जी से गपशप कर रहा था। बिजली बाबू बगल में आकर खड़े हो गए।

पोस्ट-ऑफिस का काम निबटाकर सुरेश्वर बाजार गया। नजदीक ही बाजार है। बाजार में छेदीलाल की दुकान में रुपया-पैसा चुकाया। उसके बाद बि-

बाबू के साथ बस ऑफिस गया। बस ऑफिस में बिजली बाबू के कमरे में बैठकर पानी पिया, चाय पी। बस छूटने में अभी भी कुछ देर है, बीसेक मिनट। दस बज गये हैं।

बिजली बाबू बोले, "पूजा के बीच एक दिन आइये। कब आइएगा ?"

सुरेश्वर खिड़की से बाहर गौर से देख रहा था। उधर रास्ते के उस पार—पेड़ों की छाया में बाजार लग चुका है, साग-सब्जी, मछली, अंडे आदि हैं। इस समय यहां बाजार जरा बड़े पैमाने पर लगता है, पूजा के वक्त कलकत्ता-पटना से लोग-बाग आते हैं, बाबू लोगों के वास्ते गांव-गंवई से व्यापारी लोग सिर पर सौदा-सुलुफ लिए भागे आते हैं तड़के, और दोपहर तक लौट जाते हैं। आज का बाजार उतना बड़ा नहीं है, कल से और भी बहुत-से लोग आएंगे, सवेरे के वक्त ज्यादा भीड़ होगी। कुछ लड़के-लड़कियों और बूढ़े-बूढ़ियों को सुरेश्वर देख पाया, वे लोग बाजार कर रहे हैं घूम-घूमकर। किसी-किसी ने छाता ओढ़ लिया है।

बिजली बाबू ने पान चबाते-चबाते कहा, "तो फिर कब आ रहे हैं आप ?"

सुरेश्वर ने बिजली बाबू की ओर ताका, मुस्कराया, "तो आप निमंत्रण दे रहे हैं ?"

"गरीब के घर में दो कौर खाइएगा, भला इसमें कहना क्या है !"

"अच्छा, आऊंगा किसी दिन।"

"कब ?"

सुरेश्वर ने फिर खिड़की से बाहर ताका। "आऊंगा।"

"अष्टमी के दिन आना हो, तो सवेरे आइएगा; शाम को बिजलीवरण सन्धि-पूजा पर बैठेगा।" कहकर बिजली बाबू अपनी मसखरी पर जोर-जोर से हंसे।

सुरेश्वर बोला, "यह आदत अब छोड़ने की कोशिश कीजिए न। उमर ढलती जा रही है न।"

बिजली बाबू कृत्रिम विस्मय से सुरेश्वर का मुंह देखते-देखते बोले, "यह आप क्या कह रहे हैं महाराज ? किसे छोड़ूं ?" बिजली बाबू ने कुछ इस ढंग से 'किसे छोड़ूं' कहा कि सुरेश्वर हंस पड़ा।

बिजली बाबू थोड़ी ही देर बाद बोले, "हम लोग क्या छोड़ने वाले आदमी हैं, महाराज ! छोड़ने वाले आदमी ठहरे आप लोग। आप लोग तो सभी कुछ छोड़ रहे हैं। आप लोगों ने घर-संसार छोड़ा, सुख-चैन छोड़ा, मौज-मस्ती लूटना भी छोड़ा। और भी कितना क्या छोड़ रहे हैं कितना क्या छोड़ेंगे यह कौन कह सकता है !"

सुरेश्वर ने बिजली बाबू की आंखों में ऐसी एक प्रकार की हंसी देखी जो कैसी धूर्तों की-सी थी। बिजली बाबू ने जो ठीक क्या कहना चाहा, यह सुरेश्वर की समझ में नहीं आया।

"आप लोग सब कुछ छोड़ते हैं, और हम लोग पकड़ते हैं। छोड़ने का मजा क्या है, जानते हैं, एक बार छोड़ना शुरू करने पर छोड़ने में मजा आने लगता है, नशा-सा लग जाता है। आज शराब छोड़ूंगा, कल नौकरी छोड़ूंगा, परसों बहू छोड़ूंगा···। छोड़ते-छोड़ते एकदम बुद्ध देव हो जाऊंगा।···इसीलिए तो मैं उस रास्ते नहीं गया।"

सुरेश्वर हंसते-हंसते उठकर खड़ा हो गया, बोला, "अच्छा तो चलता हूं, अब शायद देर नही है।"

बिजली बाबू ने अपनी मेज पर से कुछ कागज-पत्र उठाकर दराज में रखे, बोले, "चलिए, आपको चढ़ाकर मैं एक बार दुर्गा-मन्दिर जाऊंगा।"

बाहर आकर बिजली बाबू ने अपनी साइकिल ली, हैंडल में एक सोले का हैट लटक रहा है। बरसात में छाता लटकता है, धूप में वे सोले का हैट पहनते हैं।

रास्ते पर उतर कर बिजली बाबू ने कहा, "मित्तिर साहब का एक बड़ा प्रमोशन हो रहा है, सुना है आपने ?"

"नहीं तो।"

"मित्तिर साहब का ऊपर वाला पटना चला जा रहा है, उस जगह पर मित्तिर साहब को काम करना पड़ेगा।"

"यह तो अच्छी खबर है।"

"हमारे लिए तो यह अच्छी खबर है, लेकिन जिनकी खबर है, वे तो खफा हो उठे हैं।"

"क्यों ?"

"सो तो नही पता। लेकिन मित्तिर साहब यह जगह छोड़ने को राजी नहीं हैं। ऊपर वाले की जगह पर काम करने के लिए उन्हें दूसरी जगह जाना पड़ेगा।"

सुरेश्वर कुछ नही बोला। चलने लगा। सामने ही बस है।

बिजली बाबू ने ही बात की। "मित्तिर साहब आदमी, समझे महाराज, कुछ अजीब से हैं! क्या कहते हैं कि मिस्टिरियस से हैं। जीवन में उन्नति करने का मौका आने पर आदमी खफा होता हो, ऐसा दूसरा देखा है आपने ?"

सुरेश्वर ने सिर हिलाया अन्यमनस्क भाव से।

बस के निकट आकर बिजली बाबू ने ड्राइवर से न जाने क्या कहा - उसके बाद सुरेश्वर को फर्स्ट क्लास में बिठा दिया। "आप धूप में लट्ठा से पैदल नहीं जाइएगा, बस आपको गुरुडिया पहुंचा देगी।"

सुरेश्वर आपत्ति करने जा रहा था, मगर उसकी उस आपत्ति की परवाह किए बिना बिजली बाबू साइकिल पर चढ़ कर चले गए। साइकिल पर चढ़ने के पहले सोले का हैट उन्होंने पहन लिया था।

बस छूटी। सुरेश्वर के बगल में तीनेक शहर के पैसेंजर हैं। उनमें से एक विवाहिता स्त्री खिड़की से सटकर बैठी हुई है। वे लोग गैर-बंगाली हैं। पति-पत्नी बातें कर रहे थे, तीसरा व्यक्ति उन्हीं का रिश्तेदार है, वह भी बात कर रहा है।

जाते-जाते सुरेश्वर को न जाने क्यों अवनी की ही बात याद आ रही थी। वे जो थोड़े-से दूसरे प्रकार के हैं, यह धारणा सुरेश्वर की पहले ही हुई थी। इन दिनों अवनी से बात-चीत करके और उसके आचरण को देखकर के भी सुरेश्वर की यह धारणा टूटी नही है, बल्कि उसे लग रहा था : अवनी ठीक जितनी तिक्तता व वितृष्णा प्रकट करता है उतना तिक्त व वितृष्ण आदमी वह नहीं है। उसका बहुत-सा आचरण अभी अपरिपक्वों का-सा है, बात-चीत में बहुत समय आवेग का ताप रहता है। उस दिन उतनी रात गए वह नितान्त तुच्छ कारण से गुरुडिया जाकर हाजिर हो गया था। वह कारण जो तुच्छ था वह खुद भी

जानता था, और उसे छिपाने की कोशिश भी उसने उतनी नहीं की थी। एक बड़ा सा दुर्दिन—आंधी-पानी आया था इसीलिए शायद खबर लेने गया था: "खोज लेने आया कि कैसे हैं आप?···मैंने सोचा तो था कि आपके आश्रम का छाजन-वाजन उड़ गया होगा। पर देखता हूं, कुछ भी तो नहीं हुआ है।"

अवनी चतुर नहीं है, ठीक जितना बुद्धिमान होने पर उसका उद्देश्य समझना मुश्किल हो जाएगा उतना बुद्धिमान भी नहीं है। सुरेश्वर कम-से-कम यह भली भांति समझ पा रहा है कि अवनी के आकर्षण की पात्र है हेम।

बस थाने को पार कर गई। सुरेश्वर अन्यमनस्क है।

नौकरी में उन्नति न चाहता हो, ऐसा आदमी तो खास नजर नहीं आता है—सुरेश्वर सोच रहा था—अवनी उस उन्नति की उपेक्षा करना चाह रहा है। आखिर क्यों? यह जगह छोड़कर वह जाना नहीं चाहता है, बिजली बाबू ने बताया। मगर क्यों?

हेम! तो क्या हेम के लिए ही अवनी यह जगह छोड़कर जाने को राजी नहीं है?

लेकिन आज हेम कलकत्ता जा रही थी, इसलिए वह तो स्टेशन नहीं आया। बिजली बाबू के कहे अनुसार, जरूरी काम से तड़के ही निकल गया है अवनी। जो आदमी इतना काम समझता है, जिम्मेदारी समझता है, वह और भी बड़ी जिम्मेदारी लेने को गैर-रजामंद क्यों है?

सुरेश्वर ने धूप-भरे मैदान की ओर ताका और न जाने क्या सोचकर मृदु हंसा।

## ग्यारह

बिजली बाबू के घर के सामने आकर हॉर्न बजाया अवनी ने। आज हाट लगने का दिन है, बिजली बाबू के घर के पीछे की ओर बहुत बड़ा मैदान है, उसी मैदान में हाट लगता है; मैदान के पश्चिम से होकर रेल लाइन चली गई है। दशहरा बीता है परसों, फिर भी हाट के नजदीक होने की वजह से दशहरे के मेले का असर अभी भी हाट पर है, पेट्रोमैक्स और गैस-बत्तियां नजर आती हैं, नाक में तिरती हुई आती है सूखे शाल के पत्तों और रेंडी अथवा तिल के तेल की महक, कलरव अभी भी कानों में आता है।

अवनी ने और भी एक बार हॉर्न बजाया और गाड़ी से उतरकर खड़ा हो गया। बिजली बाबू के घर के कुएं के पास बाग से होकर एक बहू अन्दर चली गई। अवनी उसे देख पाया पहचान भी सका; बिजली बाबू की दूसरी पत्नी थी, छोटी बहू।

बिजली बाबू की पहली पत्नी घर के अन्दर रहती है, शायद ही वह बाहर दिखाई पड़ती है; और दूसरी पत्नी घर के अन्दर उतना नहीं रहती है, अवनी ने उसे अनेक बार देखा है। बड़ी रहती है घर-संसार और धर्म-कर्म को लेकर, और छोटी रहती है गृहस्थी और पति को लेकर। बाहर से लगता है कि बिजली बाबू

का परिवार छोटा है—बस तीन आदमी हैं, मगर दरअसल उनका परिवार और भी बड़ा है; बस-आफिस के दो-एक व्यक्ति इसी परिवार की रोटियां तोड़ते हैं, एक लड़के को बिजली बाबू ने अपने घर में आश्रय दिया है, वह बंगाली का लड़का है, स्कूल में पढ़ता है; उस पर भी प्राय: ही शहर के बिजली बाबू के जान-पहचान के लोगों में से कोई-न-कोई काम-काज के सिलसिले में आता है और उनके घर ठहरता है। बस-आफिस की मैनेजरी से इतनी बड़ी गृहस्थी नहीं चलती है, उनके पिता ने अपनी कमाई से कुछ जमीन-जायदाद की थी, उस जमीन-जायदाद को बिजली बाबू ने थोड़ा-बहुत बढ़ाया है, बाजार की ओर दो मकान हैं जिन्हें उन्होंने किराए पर लगा दिया है, कुल मिला-जुलाकर खुशहाली से ही चल चल जाता है।

लकड़ी का फाटक है, मामूली से कई पेड़-पौधे हैं, कुछेक सीढ़ियां हैं—उसके बाद ही ढका हुआ बरामदा है। खुले दरवाजे से बिजली बाबू बाहर आए, हाथ उठाकर बोले, "आ रहा हूं—दो मिनट।" बिजली बाबू फिर भीतर घुस गए।

अवनी ने घर के सामने चहल-कदमी करते-करते सिगरेट सुलगाई। शाम होने को आई, हाट की ओर से गुंजन तिरता हुआ आ रहा है, कहीं न जाने कौन ढोल बजा रहा है, शायद धोबियों के मुहल्ले में। रेल-लाइन की तरफ से गुमगुम की आवाज आ रही है, हो सकता है, मालगाड़ी आ रही हो। अवनी ने बरामदे की ओर ताका, पूरब वाले कमरे में बत्ती जली, शंख बज रहा है, खिड़की पर बिजली बाबू की छोटी बहू है।

बिजली बाबू के ही मुंह से अवनी ने सुना है कि उनकी दोनों पत्नियां सगी बहनें हैं। बड़ी और छोटी की उम्र में पांचेक साल का फर्क है। दोनों के चेहरे की बनावट-बुनावट लगभग एक-सी है, लेकिन छोटी जैसे बड़ी से अधिक सुन्दर हो, उसके बदन का रंग भी साफ है। अवनी ने खुद जितना देखा है उससे उसे लगा है कि छोटी के तमाम चेहरे में कमाल की एक प्रसन्नता का भाव है, वह बड़ी खुश-मिजाज है, बिजली बाबू के योग्य पत्नी है। बड़ी बिलकुल बूढ़ी गृहिणी है, शान्त है, गम्भीर है। बिजली बाबू, अवनी की धारणा है, बड़ी की कद्र ज्यादा करते हैं, और प्यार ज्यादा करते हैं छोटी को। बड़ी के जीवन में पति अब साथी नहीं है, गृहस्वामी या अभिभावक है। बिजली बाबू से सुना हुआ है कि बड़ी अलग कमरे में रहती हैं, पूजा-पाठ करती है, गृहस्थी की जिम्मेदारी ढोती फिरती है। छोटी भी घर-गृहस्थी को लेकर रहती है, तो भी उसके साथ पति के लेटने-बैठने और हंसी-दिल्लगी का सम्बन्ध है। बिजली बाबू कहा करते हैं, "मित्तिरसा'ब, मेरे दोनों ओर दो केले के पेड़ हैं और मैं माला हूं महाराज। मेरी बड़ी ठहरी साकर नारायण की लक्ष्मी, और छोटी ठहरी मेरी मेनका-वेनका।…मैं भाग्यवान पुरुष हूं।"

अवनी ने सिगरेट का टोटा फेंक दिया और मन-ही-मन हंसा। तब तक बिजली बाबू बाहर निकल आए थे।

बिजली बाबू के हाथ में एक टिफिन कैरियर है, कन्धे से बड़े साइज का फ्लास्क लटक रहा है।

अवनी ठक्-सा रहकर बोला, "यह सब क्या है ?"

टिफिन कैरियर को ऊपर उठाकर दिखाते हुए बिजली बाबू ने कहा, 'यह है

सुरेश-महाराज का। मेरी घरवाली ने दिया।" कहकर हाथ नीचे किया बिजली बाबू ने, "मिठाई-विठाई, खीर वगैरह है।...और यह है..." बिजली बाबू ने फ्लास्क दिखाया ओर आंख मारकर हंसे, "हम लोगों का। रास्ते में प्यास-व्यास लगेगी न!"

अवनी जोर से हंस उठा। "तो क्या उसे भी आपकी घरवाली ने दिया है?"

"यह भी क्या कोई घरवाली देती है मित्तिर साब।...इसीके चलते तो देर हो गई। कितनी हाइड एंड सीक की, तब जाकर मिला-जुलाकर लाया।"

"तो क्या आपका हाइड एंड सीक है?" अवनी हंस रहा था।

"नहीं, सो तो नहीं है। लेकिन जैसा देवता वैसी पूजा। जा रहा हूं सुरेश्वर महाराज के पास—आखिर यह चीज लेकर तो जा नहीं सकता हूं, उस पर गाड़ी से रात के वक्त आना-जाना पड़ेगा—शराब लेकर जा रहा हूं, यह जानने पर वह क़्या मुझे भला सलामत रखती!"

गाड़ी में आ बैठे दोनों। बिजली बाबू ने पिछली सीट पर टिफिन केरियर को ठीक से रखा, सावधानी से; फ्लास्क उनकी बगल में ही रहा।

जीप को स्टार्ट किया अवनी ने। फिर मजाक करते हुए कहा, "एक से तो खैर आपने छिपाया, मगर दूसरी से? उन्होंने क्या कहा?"

"वह भी खुश नहीं है। मैंने कहा, एक पाव चीज में पांच पाव पानी मिलाया है जी, इसे पीने से नशा नही आएगा; कोई डर नही,—मैं बे-मौत नहीं मरूंगा।"

अवनी हंसने लगा। गाड़ी ने चलना शुरू किया था।

बिजली बाबू पान चबा रहे थे। अवनी ने आज दूसरी पोशाक पहन रखी है। धोती-कुर्ता। दशहरे के दिन धुला-धुलाया पहना था। कुर्ता-पाजामा अवश्य वह घर में पहनता है, धोती पहनने का तो मौका ही नहीं मिलता है। कलकत्ता में था तो फिर भी बीच-बीच में वह धोती पहना करता था, मगर यहां आकर, बिलकुल ही धोती नहीं पहनता है। नितान्त विजया के दिन लोग-बाग आते हैं घर पर, दो-एक जगह उसे भी जाना पड़ता है। इसीलिए यह धोती है।

मलेरिया कन्ट्रोल के ऑफिस को पार करके गाड़ी ने टाउन का रास्ता पकड़ा। बिजली बाबू ने सिगरेट निकाली, "लीजिए मित्तिर सा'ब।"

"मैं बाद में पिऊंगा; आप लीजिए।"

बिजली बाबू ने सिगरेट सुलगा ली।

मकान लगभग खत्म होने को आए, मैदान के किनारे शाम का झुटपुटा गहराता जा रहा है। उसी के ऊपर चांदनी छिटक रही है। सूखी ठण्डी हवा बह रही है, दोनों किनारे पेड़ों की फुनगियों पर अभी भी पंछियों का झुंड उड़-उड़कर बसेरा ले रहा था, कलरव तिर रहा है। बिजली बाबू पिछली सीट की ओर ताक-कर टिफिन केरियर को ठीक करने लगे। गाड़ी के हिचकोले से वह हिल रहा था, उलट जा सकता है।

अवनी बोला, "आपकी पत्नी सुरेश्वर महाराज की बड़ी भक्त है, न बिजली बाबू?"

"सो ख़ातिर-वातिर तो करती ही हैं! औरतों के दो रोग अक्सर रहते हैं, मित्तिर सा'ब, एक हिस्टिरिया और दूसरा ठहरा जाकर उन अविवाहित साधु-संन्यासियों, महाराजों-वहाराजों के के प्रति भक्ति।"

अवनी हंस पड़ा। हंसते-हंसते बोला, "टिफिन केरियर देखकर तो ऐसा ही लग रहा है।"

बिजली बाबू ने जवाब दिया, "यह जो आप देख रहे हैं, तमाम कुछ मेरी बड़ी घरवाली का दिया हुआ है। छोटी भी उनकी भक्त है, लेकिन उतनी नहीं।··· समझे मित्तिर सा'ब, सुरेश महाराज जब इधर रहते थे, तो बीच-बीच में मेरे घर आया करते थे, एकाध दिन उन्होंने रामचरित मानस की चौपाइयों को भी गाकर थोड़ा बहुत सुनाया था। बड़ी घरवाली का तभी से सुरेश महाराज के प्रति थोड़ा-सा आकर्षण है।"

"खुद आपका भी तो बड़ा आकर्षण है—।"

"मेरा! ···भला मेरा क्या आकर्षण होगा। वे ठहरे निरामिष आदमी, और मैं ठहरा आमिष व्यक्ति। चरित्र ही अलग-अलग है।" बिजली बाबू ने हंस-हंसकर कहा।

अवनी ने गाड़ी चलाते-चलाते गरदन टेढ़ी करके बिजली बाबू को एक बार देखा। उसके बाद बोला, "आपने सुरेश महाराज को पांच सौ रुपये दिए थे?"

बिजली बाबू मानो हठात् कैसे हो गए, पलकें नहीं झपकीं, मुंह फेरकर अवनी को विस्मित दृष्टि से देख रहे थे। अन्त में बोले, "किसने कहा?"

"आपके सुरेश महाराज ने।"

बिजली बाबू जैसे थोड़ी-सी परेशानी और शर्मिंदगी महसूस कर रहे थे। यह स्वीकार करने में उनमें अद्भुत कुंठा जाग रही थी। सीधे कोई जवाब न देकर घुमाकर बोले, "कब कहा उन्होंने?"

"कह रहे थे एक दिन बातों-बातों में।"

"उनका यह कहना ठीक नहीं है—" बिजली बाबू ने जवाब दिया, उसके बाद थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर जैसे अवनी को समझा रहे हों, कुछ इस ढंग से बोले, "रुपया मैंने ठीक दिया नहीं था, और पांच सौ रुपए भला मैं पाऊंगा कहां, गरीब आदमी हूं। उन्होंने गलत कहा है।"

"तो यह गलत है!" अवनी ने कौतुक करके कहा।

बिजली बाबू जैसे बाकायदा मुसीबत में पड़ गए हों। बोले, "बात क्या है, जानते हैं मित्तिर सा'ब, एक बार—सुरेश महाराज ने जब आश्रम के काम में हाथ लगाया था, तो उन्हें एकाएक एक दिन रुपए की खूब जरूरत पड़ गई थी। गांव में शायद उनकी कुछ सम्पत्ति-वम्पत्ति की खरीद-बिक्री की बात चल रही थी, रुपया उन्हें समय पर नहीं मिला था। यहां आए थे रुपया कर्ज लेने। मुझसे बात-चीत हो रही थी, मुझसे कह रहे थे किसी मारवाड़ी महाजन के पास ले जाने के लिए। सो मैंने देखा कि मारवाड़ी महाजन से रुपया कर्ज लेना उनके हक में अच्छा नहीं दीखता है। इसके अलावा मैं रहता साथ में, मारवाड़ी लोग भला क्या कहेंगे। सोचेंगे मैं बंगाली होकर भी अपने प्रान्त के आदमी के लिए पांच सौ रुपये का जुगाड़ नहीं कर दे सका। इज्जत को ठेस पहुंचो··· । इसके अलावा यहां के मारवाड़ियों के साथ मेरा वैसे जो खूब मेल-जोल है यह मुंह से है पर भीतर-ही-भीतर होड़ है। वह बहुत पुरानी बात है मित्तिर सा'ब, बस-वस, बाजार के मकान तरह-तरह की बातें हैं।···सो मैं पड़ गया पेच में। क्या करूं! तब मैंने सुरेश महाराज को तीन सौ रुपया कर्ज दिया था। और बाकी दो सौ रुपये दिए थे मेरी

वड़ी घरवाली ने। उसने मेरे मुंह से सुना था, और सुनकर दिया था। वह था उसका मामला।"

अवनी कुछ नहीं वोला। विपरीत दिशा से एक लॉरी आ रही है शायद, इतनी जोरदार रोशनी है कि अवनी की आंखें चौंधिया रही थीं, उसने अपनी गाड़ी को रास्ते के एक ओर हटा लिया।

विजली वावू अपने आप ही वोले, "सुरेश महाराज ने लेकिन उसके वाद ही रुपया चुकता कर देना चाहा था, हाथ में रुपया आ गया था। पर मैंने तव रुपया नहीं लिया था। कहा था, अभी रहने दीजिए; वाद में जरूरत पड़ने पर लूंगा। ···उसके वाद भी उन्होंने वहुत वार कहा था—, पर मैंने नहीं लिया। कभी ले लूंगा।"

लॉरी विलकुल आमने-सामने आ गई थी, अवनी ने अपनी गाड़ी को साव-धानी से वगल से निकाल लिया। आगे सुनसान रास्ता है, दोनों किनारे खेत हैं, द्वादशी की चांदनी ने भलीभांति खिलना शुरू किया है।

अवनी ने अवकी वार एक सिगरेट सुलगाई। वोला, "आप चाहे कुछ भी कहिए, सुरेश महाराज के प्रति आपका वड़ा आकर्षण है।" हंस-हंसकर ही वोला।

विजली वावू ने भी हंसकर कहा, "इसे आकर्षण मत कहिए, कहिए खातिरदारी। सो महाराज आदमी ठहरे, थोड़ी-सी आवभगत किए विना चलता है। मुझसे उनकी भेंट-मुलाकात ही भला आजकल कितनी होती है कि मेल-जोल रहेगा।"

"आप उन्हें पसन्द करते हैं?"

"पसन्द! हां सो तो करता हूं।···वात क्या है, जानते हैं मित्तिर सा'व, मैं तो ज्यादा कुछ समझता नहीं, मूरख आदमी ठहरा, मगर एक चीज अच्छी तरह समझता हूं। वह यह कि संसार में हम—हमारे जैसे आदमी—अपने-अपने वोरिया-विस्तर लिए हुए हैं। अपनी-अपनी सोचते-सोचते ही हमें आंखें मूंदनी पड़ती हैं। सुरेश महाराज-वहाराज जैसे लोग फिर भी कुछ काम तो करते हैं। हम लोग तो कुछ भी नहीं करते हैं।"

अवनी ने सुना। आगे एक ढलान है, गियर वदल लिया गाड़ी का। फिर हंसकर वोला, "इन सव लोगों के वारे में आपके उमर खैयाम क्या कहते हैं?"

विजली वावू ने कोई जवाव नहीं दिया, वाद में वोले, "पता नहीं मित्तिर सा'व, लेकिन मुझे लगता है, वे लोग ठहरे दूसरे प्रकार के आदमी—उनमें से कोई शराव नहीं छूता है, जैसे-तैसे लोगों के साथ; मौका मिलते ही हर महफिल में, प्याले को वे नहीं लगाते हाथ।"

अवनी थोड़ी देर चुप रहा, फिर परिहास करता हुआ वोला, "सो भले ही आप हमारे साथ प्याला न लें, पर प्याला तो हाथ में लेते हैं। तो कौन-सी महफिल में लेते हैं?"

"सो उनकी अलग महफिल है—" विजली वावू ने भी हंसकर कहा, "लेकिन प्याला वे लोग लेते हैं। नशे में डूवे विना कोई काम नहीं कर सकता, मित्तिर सा'व। मतवाला वनना पड़ता है, नहीं तो कोई होशोहवास खो नहीं सकता है।"

अवनी चुप। वस, और थोड़ी दूर है, लट्ठा का मोड़ आ गया है।

लट्ठा का मोड़ पहुंचा, तो गाड़ी घुमाकर गुरुडिया का कच्चा रास्ता पकड़ा अवनी ने।

बिजली बाबू बोले, "मित्तिर सा'ब, मेरा तो खास कोई सिक्रेट नहीं है। जो कुछ समझता हूं, कह डाला।"

अवनी ने जवाब नहीं दिया। न जाने कहां उसे थोड़ी ईर्ष्या-सी महसूस हो रही थी, अधम-सा प्रतीत हो रहा था अपने आपको। बिजली बाबू से उसका परिचय या घनिष्ठता कम नहीं है, बल्कि दिन-पर-दिन वह बढ़ रही थी, बिजली बाबू, हो सकता है, इस घनिष्ठता को साधारण कोटि की समझते हों। अवनी के बारे में उनकी कोई धारणा नहीं है, अवज्ञा भी, हो सकता है न हो। अवनी को लगा, उसके [illegible] धारणा है वह सम्भवतः [illegible] है उतनी ही है—उससे ज्यादा कुछ नहीं।

सुरेश्वर से अपनी इस तरह से तुलना करके भी उसे विरक्ति महसूस हो रही थी। बिजली बाबू उसे उत्तम अथवा अधम चाहे कुछ भी क्यों न सोचें, इससे क्या आता-जाता है! इस चिन्ता को मन से दूर हटाने की कोशिश की अवनी ने, और ईषत् अप्रसन्नता के बावजूद उसे प्रकट नहीं किया। बल्कि यथा सम्भव हल्के गले से बोला, "आप कहते हैं कि आपका कोई सिक्रेट नहीं है, लेकिन एक-एक करके ये सारे सिक्रेट जो निकल रहे हैं बिजली बाबू!"

बिजली बाबू शायद लज्जित हुए, माथा हिलाकर बोले, "नहीं, नहीं, भला यह ऐसा क्या सिक्रेट है।"

गुरुडिया के कच्चे रास्ते पर गाड़ी बीच-बीच में उछल उठती थी। बिजली बाबू ने पिछली सीट की तरफ ताककर टिफिन केरियर को देखा, वह एक ओर लुढ़क गया है, उन्होंने जोभ से एक आवाज की और हाथ बढ़ाकर टिफिन केरियर को आगे अपने पास ले लिया। सुरेश महाराज पूजा के बीच आने की कहकर भी नहीं आए। क्या हुआ कौन जाने। हो सकता है, पैर का दर्द बढ़ गया हो। पूजा-मंडप में मालिनी से भेंट हुई थी बिजली बाबू की, वह सप्तमी के दिन सवेरे घर आई थी, सुरेश महाराज की बात बता नहीं सकी। इन्तजार करते-करते आज वे लोग जा रहे हैं, विजया की भेंट-मुलाकात निबटा आएंगे। बड़ी बहू ने कुछ मिठाइयां-विठाइयां दे दी हैं।

गुरुडिया के इस कच्चे रास्ते पर गाड़ी उतरी, तो द्वादशी की चांदनी और भी साफ दिखाई पड़ रही थी। आदिगन्त फैले मैदान में सन्नाटे में मानो चांदनी का स्रोत बह रहा हो, हेमन्त की थोड़ी-सी खूब हल्की ओस की गंध है कहीं, ठंड की मामूली-सी खुमारी महसूस हो रही है, चारों दिशायें निस्तब्ध हैं; मैदान में पलाश और आंवले के झुरमुट जुगनू टिमटिमा रहे हैं।

बिजली बाबू बोले, "मित्तिर सा'ब, तो फिर एक बात कहता हूं। मेरा सिक्रेट और खिड़की का परदा दोनों एक ही चीज हैं; हवा बहने से उड़ जाते हैं, देखने में तकलीफ नहीं होती है। मगर आप ठहरे मिस्टिरियस मैन।…कई दिनों से ही आपसे पूछने की सोच रहा हूं पर कैसी लाज-सी लग रही है।…उस दिन मैं आप से पूछ रहा था न कि एक चिट्ठी आपको मिली है या नहीं—पता पड़ा नहीं जाता था। आपने कहा कि मिली है।"

अवनी ने मुंह फेरकर बिजली बाबू को देखा।

अवनी असतर्क होकर ब्रेक दबाने जा रहा था, गाड़ी ने कैसा मामूली-सा हिचकोला खाया, फिर चलने लगी।

थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। अवनी कोई जवाब नहीं दे रहा है, बिजली बाबू इन्तजार किए हुए हैं। ठहरा हुआ समय पल-पल बहता जा रहा है।

थोड़ी देर बाद अवनी बोला, "यह आपने कैसे जाना ?"

"मैंने मनीआर्डर की रसीद देखी।"

"ओ !"

"मैं पोस्ट-ऑफिस गया था सुरेश महाराज के साथ; रामेश्वर मुझे वह चिट्ठी दिखा रहा था, तभी मैंने रसीद देखी।"

अवनी ने गाड़ी रोककर एक सिगरेट सुलगाई। कुछेक क्षण चुप रहा। उसके बाद हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "तो क्या आपके सुरेश महाराज भी यह जानते हैं ?"

"नहीं, वे पोस्ट-ऑफिस के अन्दर घुस चुके थे।"

गाड़ी ने फिर चलना शुरू किया। थोड़ी दूर आगे बढ़कर अवनी ने कहा, "ललिता एक समय मेरी पत्नी थी।"

"एक समय ?"

"हां, कुछेक साल।"

बिजली बाबू विमूढ़ हो गए थे। वे शायद यह समझ नहीं पा रहे थे कि एक समय जो पत्नी होती है बाद में वह क्या होती है। घबराए गले से पूछा, "तो अब वे आपकी पत्नी नहीं हैं ?"

"नहीं।"

"कैसे ? उन्हें आप रुपया भेज रहे हैं..."

"वह एक एरेंजमेंट है। मैं खर्चा दे रहा हूं।"

"ओ ! तो आपने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है ?"

"हां, दोनों ने ही एक-दूसरे को छोड़ दिया है; बाद में डिवोर्स ले लूंगा।"

बिजली बाबू मानो सांस रोके चुपचाप बैठे रहे। अवनी के चरित्र को जैसे वे देखने या समझने की कोशिश कर रहे थे, किन्तु ईषत् प्रकाश के बाद अन्धकार जैसे दृष्टि को दिग्भ्रमित करता है वैसे ही वे दिग्भ्रमित होते जा रहे थे।

"बात पुरानी है—मुझे अब कोई इंटरेस्ट नहीं रहा—" अवनी ने गला साफ करते-करते कहा। "रुपया भेजना चाहिए, सो भेजता हूं।"

"पर वह चिट्ठी किसकी थी ?" बिजली बाबू ने पूछा।

अवनी मौन रहा। उसके सामने, बगल में हेमन्त की सफेद-सी चांदनी है; गाड़ी के इंजन के सिवाय कोई आवाज नहीं सुनाई पड़ रही है, समूचे बाट-घाट में शायद झींगुर झीं-झीं कर रहे हैं, कानों में हठात् यह आवाज खटकी। थोड़ी दूर पर आश्रम है, वह छाया-सा दीख रहा है।

अवनी ने मृदु गले से कहा, "मेरी बेटी की थी।"

बिजली बाबू चौंक उठे, पत्नी की बात सुनकर वे इतना नहीं चौंके थे। "आपकी बेटी !"

अवनी फिर कुछ नहीं बोला।

बिजली बाबू हाँक-गुहार लगाएं, इसके पहले ही सुरेश्वर बाहर निकल आया था। "अरे, आइए-आइए ! क्या सौभाग्य है !"

"सौभाग्य तो हम लोगों का है सा'ब, आप लोग ठहरे मुहम्मद, और हम लोग ठहरे पर्वत। आप हिले नहीं, इसीलिए हमीं लोग आए।" बिजली बाबू ने सरल ठिठोली करते हुए कहा, "आइए गले लग लें पहले।"

सभी एक-दूसरे के गले लगे। अवनी एकाएक कैसा निष्प्राण-सा हो गया है, अन्यमनस्क है, कोई खास बात-चीत भी नहीं की। बिजली बाबू ने टिफिन केरियर सुरेश्वर के हाथ में थमा दिया तथा और भी पांच हंसी-मजाक किया।

सुरेश्वर के घर के छोटे-से बरामदे में ही बैठे ये लोग। सुरेश्वर भरतू को बुलाने चला गया था, वापस आकर बैठा।

पैर के दर्द के चलते नहीं, दूसरे कारण से सुरेश्वर नहीं जा सका था। टखने का दर्द तो दो-एक दिनों के अन्दर ही अच्छा हो गया था, लेकिन अष्टमी के दिन पिछली रात में अंध-कुटीर के एक ओर के छाजन का बहुत बड़ा हिस्सा हठात् न जाने कैसे धंस गया। नहीं, कोई घायल-वायल नहीं हुआ है। दूसरे दिन उधर के तमाम खपड़ों को हटवाया गया और नए सिरे से छाजन छवाकर खपरे-वपरे बिठवाये गए तब जाकर राहत मिली। दो दिन यही सब करने में बीते। शायद वर्षा में, और उस दिन जैसे आंधी-पानी में छाजन की बल्ली-बड़ेरियों में कुछ हो गया था, उनमें घुन लग गया था पहले ही, वे टूट गए अचानक। इसके अलावा आश्रम में देख-भाल करने वाले लोगों में से भी खास कोई नहीं था। पूजा में मालिनी घर गई थी, कल सवेरे लौटी है, हैमन्ती कलकत्ता में, अभी भी नहीं लौटी है, चिट्ठी दी है, पूर्णिमा के दूसरे दिन लौटेगी, युगल बाबू गए थे गया, लौटे हैं कल। शिवनन्दन जी नियमित आते थे, उन्हीं की कोशिश से लोग-बाग माल-मत्ते आदि का जुगाड़ हुआ और रातोंरात सब कुछ की मरम्मत हुई।

अवनी मनोयोग से कुछ नहीं सुन रहा था, कानों में आ रहा था, कुछ खयाल कर रहा था, कुछ खयाल नहीं कर रहा था। भरतू चाय दे गया, और बिजली बाबू की लाई हुई मिठाइयों में से कुछ मिठाइयां, कुछेक पेड़े। बिजली बाबू प्रतिवाद कर रहे थे—'यह आप क्या कर रहे हैं, आपका हिस्सा हम लोग लूटपाट कर खा रहे हैं, यह जानने पर बड़ी बहू चिढ़ जाएगी सा'ब···', सुरेश्वर ने सुनकर भी जैसे नहीं सुना।

कुछ देर बैठा रहा अवनी। सुरेश्वर और बिजली बाबू के बीच गपशप हो रही है, दो-एक बातें कभी कर रहा था अवनी, लगातार कई सिगरेट पीने की वजह से मुंह स्वाद-हीन लग रहा है। अच्छा नहीं लग रहा था बैठा रहना। सहसा वह उठ पड़ा, बोला, "आप लोग गपशप कीजिए, मैं मैदान में जरा चहलकदमी करता हूं, सिर में दर्द-सा हो रहा है।"

अवनी उठकर आया और मैदान में खड़ा हो गया। आकाश की ओर मुंह उठाया और मुंह बाकर सांस ली कई बार। द्वादशी का चांद बहुत कुछ भरता जा रहा है, एक ओर बादलों का एक कटा-छंटा टुकड़ा नीचे से होकर तिरता जा रहा है। अवनी ने मुंह नीचा किया और धीरे-धीरे डग भरने लगा।

बिजली बाबू धूर्त नहीं हैं, उसके पीछे उन्होंने जासूसी भी नहीं की थी, फिर भी उन्होंने ललिता और कुमकुम की बात जानी है। ललिता की बात छिपाने की

अवनी ने क्या सचमुच ही कोई खास कोशिश की थी ? नहीं, नहीं की थी। हर महीने ललिता के नाम मनीआर्डर का रुपया जाता है, रसीद वापस आती है। ऑफिस के नौकर, पोस्ट-ऑफिस के किरानी, रामेश्वर डाकिया, इन लोगों को कम-से-कम मनीआर्डर की बात मालूम है, उत्साह प्रकट करने पर कोई भी आदमी इसे जान सकता था। किन्तु छिपाने की कोशिश न करके भी अवनी ने ललिता के प्रसंग का कभी भी किसी से उल्लेख नहीं किया था। करने की इच्छा नहीं होती थी, कारण भी नहीं था। बिजली बाबू, हो सकता है, सोच रहे हों कि अवनी ने चालाकी करके अपनी पत्नी की बात छिपायी है। मगर बात ऐसी नहीं है, अवनी सोच रहा था, उसने ठीक छिपाने का मन लेकर कुछ नहीं किया है, जिसके साथ उसका न तो कोई सम्बन्ध है, न रहेगा, जिसका प्रसंग बताने अथवा न बताने से कुछ आता-जाता नहीं है उसके प्रसंग का उल्लेख अवनी आखिर क्यों करता ! कोई कारण नहीं था उल्लेख करने का। यह पहले जानने से भला क्या लाभ होता बिजली बाबू का ! कौतूहल शान्त होता, बस, अथवा कौतूहल और भी बढ़ता, इससे ज्यादा कुछ नहीं होता। यह व्यक्तिगत बात है, विशेष करके जो तिक्त स्मृति है, जिसके साथ अवनी के जीवन का कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है अब, वह और उसके बारे में बताने का उत्साह उसे नहीं हुआ था।

अवनी डग भरते-भरते गाड़ी के पास चला आया था। रुका।

ललिता की खातिर नहीं, कुमकुम की खातिर ही अवनी को अच्छा नहीं लग रहा था। कुमकुम ने पहले कभी चिट्ठी नहीं लिखी थी, यही पहली बार लिखी है। उसने, बहुत सम्भव है, छिपकर अवनी का पता कहीं देखा होगा। पता देखकर चिट्ठी लिखी है। बच्ची है, इसीलिए टायफायड के बाद, कमजोरी की हालत में बिस्तर पर लेटे-लेटे उसे अपने पिता की बात याद आई है। शायद ललिता बेटी की उतनी हिफाजत नहीं करती है और पूरा रुपया अपनी सुख-सुविधा के लिए खर्च कर रही है। कुमकुम की चिट्ठी से लगता है कि वह अपनी मां के ऊपर भीषण अभिमान करती है और अपने चारों ओर एकान्त भाव से अपना किसी को न देखकर उसके मन को बहुत दुःख पहुंचा है। नहीं तो कुमकुम चिट्ठी नहीं लिखती। ललिता ने बेटी को कभी भी ऐसा कुछ नहीं सिखाया है कि जिससे अपने पिता के प्रति उसका मन खिचे। शुरू से आखिर तक ललिता ने बेटी को पिता के प्रति अश्रद्धा प्रकट करना सिखाया था, घृणा करने की शिक्षा बेटी को उसने दी थी, जैसे अवनी बगल के मकान का या मुहल्ले का कोई एक शैतान किस्म का आदमी हो। कुमकुम का स्वभाव गंदा और खराब होता जा रहा था। आखिर एकाएक उस लड़की ने आज अपने बाप को उस तरह से चिट्ठी क्यों लिखी।

अवनी ने अन्यमनस्क भाव से एक सिगरेट सुलगानी चाही, तो कुछ याद आने की वजह से सिगरेट नहीं सुलगाई। हाथ बढ़ाकर गाड़ी की सीट पर से बिजली बाबू का फ्लास्क लिया।

कुमकुम ने सफेद कापी के पन्नों पर ढ़ाई-तीन पन्ना चिट्ठी लिखी है। बड़े-बड़े अक्षर हैं पेंसिल से लिखे गए हैं, अनाड़ी हाथ की लिखावट है, गन्दी-सी। जल्दी-जल्दी लिखने के चलते हो अथवा छिप-छिपकर डरते-डरते लिखने के चलते हो, लिखावट बहुत खराब हो गई है, बहुत-सी गलतियां भी हुई हैं। हो सकता है, वह शरीर से भी बहुत दुर्बल हो गई हो।

"पिताजी, मुझे टायफायड हो गया था। एक सौ पांच डिग्री बुखार हो गया था।'''पिताजी, मुझे बहुत भूख लगती है, मां दो नारंगियां देती है। बहुत [illegible] अच्छा [illegible] लिए [illegible] ताजी, [illegible]

अवनी अन्यमनस्क भाव से चल रहा था। ज्वर आने की तरह उसके शरीर को कैसा जाड़ा-जाड़ा-सा लग रहा था। दांत जैसे कुछ दबाना चाह रहे थे। हिंस्र भाव से अवनी ने मानो कुछ कहा।

उसके बाद एकाएक वह स्तब्ध होकर रुक गया। कई पल उसकी सूनी दृष्टि में कोई भी चीज जैसे स्पष्ट नहीं हो उठी, बाद में आंखें थोड़ी-सी साफ होने पर देख पाया, सामने मालिनी है। मालिनी कैसी ससंकोच और विमूढ़ भाव से खड़ी है। अवनी हेमन्ती के कमरे के बरामदे के सामने है।

मालिनी धीरे से बोली,"हेम दीदी कलकत्ता गई हैं, अभी भी नहीं लौटी हैं।"

अवनी ने बात नहीं की, मालिनी को देखने लगा। बरामदे के नीचे मालिनी खड़ी है, निर्मल चांदनी में उसकी मिल की सफेद साड़ी, बदन का सांवला रंग, साधारण गोल-मटोल चेहरा-मोहरा, रसीला मुंह कैसा नया-सा दीख रहा था।

अवनी ने अस्पष्ट रूप से कुछ कहना चाहा, पर गले से स्वर नहीं फूटा।

## बारह

कुमकुम की चिट्ठी पाने के बाद अवनी विरक्त, क्षुब्ध, अप्रसन्न हुआ था। बेटी के ऊपर जितना विरक्त हुआ था उससे सौ गुना ज्यादा विरक्त ललिता के ऊपर हुआ था। अवनी जो कुछ छोड़ आया है, जिसके साथ उसका अब कोई संबंध नहीं है, जिसका सभी कुछ निरर्थक है, कुमकुम की चिट्ठी फिर से उसे जबरन याद करा दे रही है। कुमकुम उसे पुरानी तिक्तता के बीच खींचकर ले जाए, अवनी को यह पसन्द नहीं आया है। बेटी के प्रति एक दबा हुआ अभिमान भी उसे था। मां की देखा-देखी और मां के सिखाने से उसने पिता को अनात्मीय समझना सीखा था, ललिता के मुंह से सुन-सुनकर चार साल की लड़की ने भी एक समय उसे 'पाजी' 'बदजात' कहा था। उसके मुंह की आधी बात तब भी स्पष्ट नहीं हुई थी। और भी कितना क्या वह कहा करती थी। आज उसी लड़की का एकाएक पिता के प्रति आकर्षण आखिर क्यों छनक उठा?

कुमकुम के प्रति यह विरक्ति अवश्य सामयिक थी, अवनी यथा समय उसे भूल जा सका। पर भूल न सका ललिता को। वह चिट्ठी अहरह उसे ताना दे रही थी, और ललिता के प्रति घृणा व आक्रोश पुंजीभूत हो रहा था। ललिता की सुख-सुविधा और मौज-मस्ती के लिए वह हर महीने इतना रुपया नहीं भेजता है। बेटी का ललिता सही ढंग से लालन-पालन करेगी, यह उन लोगों की शर्त थी। ललिता बेटी को अवनी को दे सकती थी, पर नहीं दिया था स्वार्थ के चलते। उसे डर [illegible]

कि अवनी को बेटी मिल जाने पर किसी भी समय वह ललिता को रुपया भेजना बन्द कर सकता है; या उसने सोचा था कि अवनी जितना भेजेगा वह इतना थोड़ा होगा कि ललिता का उससे नाममात्र भरण-पोषण हो सकता है। बेटी को अपने अधिकार में रखकर ललिता ने आर्थिक चिन्ता के हाथ से बचना चाहा था बस, मानो कुमकुम को उसने जमानत के तौर पर रख लिया था।

अवनी ने प्राथमिक उत्तेजना में ललिता को ही चिट्ठी लिखना चाहा था। पर बाद में लगा कि ललिता को चिट्ठी लिखना बेवकूफी होगा, कुमकुम ने छिपाकर पिता को चिट्ठी लिखी है, यह जानकर ललिता बेटी पर प्रसन्न नहीं होगी। कुमकुम को सीधे चिट्ठी लिखना या कुछ रुपया भेजना भी उचित नहीं है, ललिता को मालूम हो जाएगा, कुमकुम पकड़ी जाएगी। ललिता अब अपने पिता के पास रहती है, वहां उसके पिता, भाई, बहन, आदि इन लोगों की दृष्टि बचाकर वह कुमकुम के लिए कुछ नहीं कर सकेगा—एक चिट्ठी लिखना भी असम्भव है। ललिता बेटी पर आक्रोश वश किसी भी प्रकार का अत्याचार कर सकती है, उसके लिए सभी कुछ सम्भव है।

बहुत सोचकर अवनी को लगा था कि कमलेश को एक चिट्ठी लिखना ही सबसे अच्छा है। अथवा ध्रुव को। ध्रुव ने किसी भी दिन ललिता को पसंद नहीं किया था। उसका स्वभाव भी गंवारों का-सा है। ललिता के घर जाकर वह एक गड़बड़ी मचा सकता है, इससे लाभ नहीं होगा। उससे कमलेश को लिखना ही अच्छा है। कमलेश से ललिता का परिचय पुराना है, अवनी से ललिता का परिचय करा देने के पहले भी ललिता के मायके में उसकी आवा-जाही थी। कमलेश का स्वभाव ठंडा है, सोच-विचारकर ढंग से काम कर भी सकता है। इसके अलावा कलकत्ता के मित्रों के साथ जो बचा-खुचा लगाव है वह अभी भी कमलेश के साथ है। बीच-बीच में कमलेश की चिट्ठी मिलती है। ध्रुव के साथ चिट्ठी-पत्री से सम्पर्क भी अब नहीं रहा।

आखिर कमलेश को ही चिट्ठी लिखी थी अवनी ने। लिखा था, कमलेश जैसे एक बार ललिता के घर जाए, और ललिता तथा कुमकुम से मिले; मिलकर अकेले में कुमकुम को यह बताने को कहा था कि अवनी को उसकी चिट्ठी मिली है, किन्तु चिट्ठी लिखने पर पीछे उसकी मां-मौसी जान सकती हैं, इसीलिए उसने नहीं लिखा। कुमकुम जैसे जल्दी से अच्छी हो उठे, मन भारी न करे। कमलेश को कुमकुम के वास्ते दो-चार अच्छे-अच्छे फ्रॉक खरीदकर ले जाने को भी लिखा था अवनी ने, फ्रॉक, टॉफी, जूते। अवनी ने उसे खासतौर से सावधान कर दिया था, ललिता जैसे कुमकुम के चिट्ठी लिखने की बात न जान पाए। कमलेश को यह भी अवनी ने खुलासा लिख दिया था कि ललिता यदि बेटी की हिफाजत न करे, तो वह रुपया भेजना बन्द कर देगा और ललिता को सबक सिखाएगा। और कुमकुम ? जरूरत पड़ने पर कुमकुम को किसी हॉस्टल में रख देगा अवनी।

चिट्ठी पूजा के ही बीच में भेज दी थी अवनी ने, रुपया भी भेज दिया था। अवश्य कमलेश को रुपया बिना भेजे भी चलता, कुछ कहा नहीं जा सकता है, वह, हो सकता है, थोड़ा-सा असन्तुष्ट ही हो। ललिता से सम्बन्ध विच्छेद होने के समय कमलेश ने बहुत कहा था, बेटी को मत छोड़ना—वह बेटी को बिलकुल बरबाद कर देगी। आखिर है तो तेरी ही बेटी न।

कमलेश से चिट्ठी का जवाब आने के पहले ही बिजली बाबू ने पास अवनी को यह स्वीकार कर लेना पड़ा कि कलकत्ता में उसकी बेटी है, पत्नी भी है—यद्यपि उनके साथ उसका अब कोई सम्बन्ध नहीं है।

बिजली बाबू ने जो क्या सोचा या कौन जाने, उन्होंने उसकी पत्नी अथवा बेटी के सम्बन्ध में और कोई प्रश्न नहीं किया था। हालांकि अवनी यह अच्छी तरह समझ पा रहा था कि बिजली बाबू न जाने कहां अप्रत्याशित विस्मय-बोध लिए हुए हैं, हो सकता है, वे खुद निःसंतान हैं, इसलिए अवनी की अपनी संतान के प्रति यह उपेक्षा उन्हें निर्मम प्रतीत हो रही थी। अवनी को एक समय लगा था बिजली बाबू, हो सकता है, अनुमान कर रहे हों कि पत्नी के चरित्र और संतान के जन्म-रहस्य के सम्बन्ध में अवनी को कोई सन्देह है, और उस संदेहवश अवनी ने अपनी पत्नी और कन्या का त्याग किया है। बिजली बाबू दूसरा और क्या सोच रहे हैं, क्या सोच सकते हैं, अवनी यह नहीं जानता है। यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि बिजली बाबू के पास अवनी ने इन दिनों कैसी परेशानी-सी महसूस करना शुरू किया था। मानो उन्होंने अवनी का अत्यन्त गुप्त कुछ जान लिया हो जिसे उसने बताना नहीं चाहा था। वे उसके भीतर किस अवनी को देख रहे हैं, बीच-बीच में यह बिरबिनकर चिन्ता आकर अवनी को अन्यमनस्क और कुंठित कर रही थी। कम-से-कम बिजली बाबू यदि यह सोचें कि कुमकुम जारज है—यह भय व आशंका अवनी को कैसा पीड़ित व लज्जित कर रही थी। आत्म सम्मान व कुमकुम की मर्यादा की खातिर अवनी के लिए क्या करणीय है, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

अपने शैशव की ओर ताकने पर अवनी जिन लोगों को देख पाता है उनमें से कोई भी उसके लिए सम्माननीय नहीं है। पिता और मां के बीच सही सम्बन्ध क्या था अवनी बहुत दिनों तक यह समझ नहीं सका था। बाद में समझा था। समझकर उसे घृणा हुई थी, मां के ऊपर, पिता के ऊपर, अपने ऊपर। पिता-जैसा निखट्टू आदमी, हो सकता है, दुनिया में कुछ हों, किन्तु उसके पिता वे हर तरह से निखट्टू। उन्होंने अपना मेरुदंड कभी भी सीधा नहीं किया था। सीधा करने की शक्ति भी वे खो बैठे थे, कभी-कभार, हो सकता है, असह्य होने पर पिताजी ने तनिक हिल-डुलकर उठने की सोची थी, मगर ऐसा कुछ होने का उपक्रम होना तो जैसे मां यह जान जाती थी, और बड़ी ही आसानी से मां पिताजी के उस सुप्त रुग्ण मेरुदंड को फिर से टेढ़ा कर दिया करती थी। मां के आगे पिताजी का कोई अस्तित्व नहीं था; कभी-कभार लगता, सर्कस के तम्बू के अन्दर पिताजी को नशा खोर निर्जीव बाघ की तरह लाकर खड़ा करके मां हाथ में चाबुक लिए खेल दिखा रही है। मां कभी भी उस चाबुक को फटकारती नहीं थी, यहां तक कि उसकी आवाज भी सुनाई नहीं पड़ती थी, हालांकि पिताजी मां को खेल का कौतूहल प्रदान किया करते थे, जरूरत पड़ने पर मां के इशारे पर पिताजी गरजते भी थे। दर्शकों के आगे मानो मां के श्रेय के लिए ऐसा गरजना जरूरी था। मां इस सब दृष्टि से असाधारण प्रतीत होती थी, लगता, मां के लिए असाध्य कुछ भी नहीं है। मां का स्वभाव जो कितना प्रखर था और व्यक्तित्व कैसा उग्र था, यह पिताजी की बगल में मां को देखने पर समझ में आता था। अवनी बचपन में मां को अच्छी तरह नहीं समझता था, बाद में उम्र बढ़ने के साथ-साथ देखा था कि मां तमाम

कुछ हड़पे हुए हैं। मां के व्यक्तित्व के आगे पिताजी निष्प्रभ थे। संसार में किसी भी चीज को मां अपने व्यक्तित्व के जोर से दबाकर रख दे सकती थी। अवनी ने भी गरदन उठाने की हिम्मत नहीं की थी, कोई संशय प्रकट करने का साहस नहीं पाया था। पिता की निर्जीवता के सम्बन्ध में उसे घृणा हो गई थी, और कभी भी अपने भले-बुरे में उसने पिता को नहीं पुकारा था, वैसी आदत उसे नहीं लगी थी, मां ने उसे वैसी आदत लगने नहीं दी थी।

पिताजी की विकृत यौनाचार में आसक्ति थी, और अवलम्बन था नशा। पिताजी तरह-तरह का नशा किया करते थे। नशा और बुरे काम के लिए मां पिताजी को पैसा दिया करती थी। पिताजी हाथ पसारकर पैसा लेते थे। पिताजी की अपनी कोई कमाई नहीं थी। एक समय पैतृक धन से पिताजी जितने धनी नहीं थे उतने अभिजात थे। मां ने पिताजी के इस धन और आभिजात्य को हथिया लिया था। पिताजी के थियेटर की औरत के आगे आत्म समर्पण करने के बाद मां ने निश्चिन्त भविष्य को बेवकूफी करके पैरों से ठुकरा नहीं दिया था, बल्कि बुद्धिमती की नाईं स्वीकार किया था। बाद में अवश्य मां ने थियेटर छोड़ दिया था, किन्तु मां ने अपने परिचितों के साथ संबंध बिगाड़ा नहीं था। उनकी सलाह जो हरदम मां लिया करती थी, ऐसी बात नहीं लेकिन उनके साथ सम्पर्क रखकर मां धन व आभिजात्य का सद्व्यवहार किया करती थी। इसी धन से उन लोगों का लालन-पालन हुआ था। मां चरित्र-विलासी थी, एक युवक के प्रति मां में अनुराग का बाहुल्य भी था। मृत्यु के पहले पिताजी ने मां के प्रति अविश्वास व आक्रोशवश बस एक बार हठात् अपना तमाम निर्जीवत्व भूलकर सिर उठाकर खड़ा होना चाहा था, पर खड़ा हो नहीं सके थे, बल्कि ऐसा आघात पाया था कि पिताजी उस आघात को सह नहीं सके थे। पिताजी चल बसे। मां उसके बाद भी अपनी ज्योति से जली थी। आखिरकार मां की यह ज्योति अकस्मात् समाप्त हुई। मुकदमेबाजी में फंसकर विफलता और दुश्चिन्ता के मारे मां ने दम तोड़ दिया था; मां की तब गरीबी की हालत थी। अवनी तब तक बड़ा हो चुका था, युवक; इंजीनियरिंग की पढ़ाई भी खत्म कर ली थी। मां की मृत्यु से वह दुःखित नहीं हुआ था, पिता की मृत्यु के समय उसने कई बूंद आंसू बहाए थे, कारण, तब वह बच्चा था, और मां ने धूम-धाम से पिताजी का क्रिया-कर्म करवाया था। धूम-धाम के प्रभाव से पिताजी की मृत्यु को इतना बड़ा दिखाया गया था कि अवनी आंसू बहाए बिना नहीं रह सका था। पिता की अन्तिम अवस्था में अवनी प्रायः निःसन्देह यह जान पाया था कि मां के साथ उसका खून का रिश्ता है, तो भी पिता के साथ नहीं है। अवश्य मां ने उस सजाए हुए पिता का श्राद्ध अवनी से ही पूरे तौर पर करवाया था। उस उम्र में, यह जानने अथवा संदेह करने के बाद भी अवनी के लिए कुछ करने को नहीं था। मां की नजरों के सामने वह इतना तुच्छ था कि उसकी मजाल नहीं थी कि वह आंखें उठाकर मां की ओर ताके। अतः कोई खास फर्क नहीं पड़ा था, जिस तरह से वह बढ़ता जा रहा था, मां को जिस हालत में देखता था उससे वह सभी कुछ का आदी हो गया था।

मां का स्वभाव, चरित्र, व्यक्तित्व, बुद्धि, अहंकार—यह सब चाहे जैसा भी हो, पर एक विषय में मां की कोई कंजूसी नहीं थी। वह यह कि आखिरी दिन तक मां ने अवनी को किसी प्रकार का आर्थिक अभाव या दुःख-कष्ट भरसक समझने

नहीं दिया था, बेटे को मां ने खुशहाली में पाल-पोस कर बड़ा किया था, पढ़ना लिखना सिखाने में भी कोई कोर-कसर नहीं रखी थी।

मां की मृत्यु के बाद अवनी ने एक अजीब तरह की मुक्ति पाई। पैरों में जंजीर पहनाए हुए पंछी के लम्बे अरसे तक बन्दी रहने पर उसके पैर जैसे सुन्न हो जाते हैं अवनी ने भी उसी प्रकार पहले-पहल अपनी मुक्ति को डरते-डरते देखा था, उसकी हिम्मत नहीं हुई थी कदम बढ़ाने की। उसके बाद संशय दूर होने पर उसने कदम बढ़ाए थे, मगर ज्यादा दूर तक वह चल नहीं पाया था। न जाने कौन मां का प्रभाव उसके रक्त में घुल मिल गया था, मन की किसी चीज को जैसे उसने जकड़ रखा था, अवनी उसे ठुकरा नहीं सकता था। आखिरकार वह बेपरवाह और दुस्साहसी होकर अपनी स्वाधीनता के लिए उछल पड़ा, लेकिन उसने जहां कदम रखा, वह थोड़ी-सी उसके सजाए हुए पिता की जगह थी, और थोड़ी सी मां की। एक ओर वह अकेला, निःसंग, पीड़ित, क्लान्त और विरक्त था, दूसरी ओर वह तीव्र, सुखान्वेषी और भोग-विलासी था। अपने मेरुदण्ड को सीधा करते समय सम्भवतः वह सामंजस्य भूल गया था, और कुछ इस तरह से उसने अपना मेरुदण्ड सीधा किया जो स्वाभाविक नहीं था, फलस्वरूप वह कृत्रिम अनभ्यास द्वारा मेरुदंड हुई उसकी उद्धता।

अपने शैशव की यह स्मृति न तो सुखद है, न काम्य ही। अवनी ने यह नहीं चाहा था कि कुमकुम का शैशव भी उसके पिता की भांति सीसे के चहबच्चे के अन्दर बीते। निःश्वास प्रश्वास लेने के लिए थोड़ी-सी हवा आने लायक इन्तजाम रहेगा शायद, मगर और कुछ नहीं रहेगा। गंदगी, कदर्यता, ग्लानि और नीचता के अलावा कुमकुम को और कुछ नहीं मिलेगा। स्नेह, प्यार, कोमलता—यह सब कुछ नहीं मिलेगा उसे। हालांकि ललिता ने कुमकुम को नहीं छोड़ा। अवनी के धैर्य ने जवाब दे दिया था। किसी भी कीमत पर वह शायद तब मुक्ति चाहता था। ललिता ही आखिरकार जीत गयी।

कमलेश का जवाब आने में थोड़ी-सी देर हुई।

कमलेश ने लिखा है, वह कलकत्ता में नहीं था, तीनेक दिन के लिए पुरी गया था, वापस आकर अवनी की चिट्ठी पाई थी। चिट्ठी पाकर वह ललिता के घर गया था। पहले दिन ललिता से मुलाकात नहीं हुई थी, बाद में फिर जाकर उससे मुलाकात की थी।

"बहुत दिन बाद ललिता को देखा," कमलेश ने लिखा है, "पांच-छः महीने बाद। पहले बाट-घाट में बीच-बीच में भेंट मुलाकात होती थी, पर आजकल नहीं होती है, मैंने जो घर बदला है, यह तो तुम्हें मालूम है। कुमकुम की बात पहले बताता हूं। अब वह अच्छी है, लेकिन शरीर बहुत रुग्ण है। उससे अकेले में जितना कहना था, कहा है, ज्यादा कहना उचित नहीं होता। फ्राक-व्राक मैंने खरीद दिए हैं, मगर ललिता से मैं यह छिपा नहीं सका कि तेरे कहे मुताबिक मैं उन्हें खरीद कर ले गया हूं। कुमकुम पर ललिता ने सन्देह नहीं किया है सोचा है, तुम्हें खयाल आने की वजह से तूने खरीद देने को कहा है। बात इससे ज्यादा आगे नहीं बढ़ी है।"'ललिता के विषय में कुछेक बातें बता रहा हूं, तुम्हें इंटरेस्ट हो न हो पर तुम्हें यह जान रखना चाहिए। ललिता आजकल एक गैर-बंगाली सेल्स मैनेजर

के साथ ज्यादातर समय रहती है, सुना कि वहां वह एक नौकरी भी करती है। मुझे बहुत सन्देह है; ललिता ने बाकायदा शराब-वराब पीना शुरू किया है; उसका मुंह-आंख देखने पर ऐसा लगता है, बात-चीत सुनने पर भी। शरीर भीतर ही-भीतर बरबाद हो गया है, ऊपर से उसे ढककर इन तमाम मामलों में औरतें जो कुछ करती फिरती हैं वह वही करती फिर रही है। बेटी के सम्बन्ध में उसे खास कोई उत्साह नहीं है, मैंने जिम्मेदारी भी नहीं देखी। बेटी की हिफाजत करने को कहा, तो बोली कि इससे ज्यादा हिफाजत करना मेरे लिए सम्भव नहीं। तू रुपया भेजना बन्द कर देगा, यह मैंने नहीं कहा—मेरा यह कहना अच्छा नहीं दीखता। ···मुझे लगता है, इस विषय में खुद तेरा ही कुछ लिखना अच्छा है। लेकिन, ललिता के पास बेटी को रखना जो बिलकुल ही उचित नहीं है, यह मैं कह सकता हूं।···इस मामले में जो अच्छा हो, कर।"

कमलेश की चिट्ठी पढ़कर अवनी समझ नहीं पाया कि वह क्या करे, और उसे क्या करना चाहिए।

ललिता को चिट्ठी लिखने का उसे आग्रह नहीं हुआ। कमलेश से ही खबर पाकर जैसे वह लिख रहा हो, इस तरह से लिखा जा सकता था (कुमकुम ओट में ही रहती), मगर अवनी की खास कोई इच्छा ही नहीं हुई। ललिता के प्रति उसकी घृणा और नए सिरे से बढ़े, इसका कोई कारण नहीं है, वह शराब पिए, या पांच लोगों के साथ सोए-बैठे, इससे अवनी का कुछ आता-जाता नहीं है। यह वह पहले करती थी, बाद में करेगी। ललिता का स्वभाव बदलेगा, ऐसी प्रत्याशा वह कभी भी नहीं करेगा। ललिता के लिए उसका माथा-पच्ची करना अनावश्यक है। लेकिन कुमकुम ? आखिर कुमकुम का क्या होगा ?

या तो कुमकुम को उसकी मां के हाथों छोड़ देना चाहिए, जिस तरह से ललिता उसे पाले, उसी तरह से पलकर वह बड़ी हो, (अवनी जैसा हुआ था। लेकिन अवनी की मां के साथ ललिता की तुलना नहीं की जा सकती है, कम-से-कम सन्तान के पालन के सम्बन्ध में नहीं) या कुमकुम को ललिता के पास से ले आना चाहिए। मगर कहां लाएगा ? यहां ? यहां लाना क्या संभव है ? आखिर कौन देखेगा उसे ? एकाएक उसकी बेटी आई कहां से, यह रहस्य यहां के लोगों को चंचल व उत्तेजित करेगा। कुमकुम से पांच तरह के प्रश्न करेंगे लोग। इसके अलावा कुमकुम जो उसके पास आना चाहेगी, भला इसी की क्या स्थिरता है ! ललिता निश्चय आसानी से बेटी को छोड़ना नहीं चाहेगी।

बहुत सोचकर अवनी ने स्थिर किया, अभी जैसी है कुमकुम वैसी ही रहे। कमलेश के ललिता से भेंट करने के बाद, हो सकता है, ललिता कुछ ताड़ पा रही हो। वह काफी चालक है। बेटी खोने का अर्थ ललिता के लिए हर महीने की बंधी-बंधाई कमाई खोना है। हो सकता है, वह इसका अन्दाजा लगाकर कुमकुम पर थोड़ा-सा ध्यान दे।

और भी कई महीने देखा जाए। यदि ललिता न सुधरे, तो कुमकुम को किसी अच्छे मिशनरी लड़कियों के ही हॉस्टल में रख देना होगा।

दूसरी चिट्ठी में, अवनी ने स्थिर कर लिया, कमलेश को लिखना होगा कि वह कलकत्ता के किसी वकील के पास जाए और डिवोर्स के सम्बन्ध में सलाह ले

# तेरह

उस दिन, रविवार के तीसरे पहर अप्रत्याशित रूप से सुरेश्वर व हैमन्त आकर हाजिर हो गए। साथ में थे बिजली बाबू। अवनी बरामदे में बैठकर ऑफि का कागज देख रहा था। फाटक खुलने की आवाज से सामने ताका, तो उन लोग को देखा। उठकर गया और उनकी आगवानी की, "आइए।"

बिजली बाबू ने ही बात की पहले, "मित्तिर सा'ब ऑफिस लेकर बैठे [illegible] क्या ?"

"नहीं, नहीं, एक कागज देख रहा था।"

सीढ़ी पर सुरेश्वर और बिजली बाबू थे, थोड़ी पीछे हैमन्ती थी। हैमन्त अगल-बगल ताक-ताककर देख रही थी, पेड़-पौधे, बगीचा, मकान। इसके पह वह कभी-भी इस घर में नहीं आई थी।

बैठक में ला कर बिठाना चाह रहा था अवनी, सुरेश्वर बोला, "अभी ज्याद देर तक नहीं बैठूंगा, मुझे जरा काम निबटाना है; उमेश बाबू से एक बार मिल जाना; वे कल पटना वापस जा रहे हैं।"

उमेश बाबू का परिचय यहां के सब को मालूम है, अवनी भी जानता है उन्होंने पटना हाईकोर्ट में जजी की थी एक समय, अभी अवकाश-प्राप्त जीव बिता रहे हैं। पटना शहर में दो पीढ़ियों से रहते हैं, भाई-बहन, बेटे सभी-के-सभ नामवर व्यक्ति हैं, सभी प्रायः पटना में रहते हैं अभिजात परिवार है, पटना गणमान्य व्यक्ति हैं। सुनने में आता है कि देव-तुल्य मनुष्य हैं उमेश बाबू। पूजा समय यहां आते हैं, पर है, दो एक सप्ताह रहते हैं, उसके बाद फिर वापस च जाते हैं। इस बीच ऊंच-नीच का भेद-भाव बरते बिना सबसे मिलते-जुलते हैं पांच आदमियों का अनुरोध और पैरवी-सिफारिश सुनते हैं। भरसक उपकार भ करते हैं, प्रवासी बंगाली हैं इसीलिए शायद बंगाली-प्रीति कुछ ज्यादा है।

अवनी से उमेश बाबू का परिचय नहीं है, वह कभी भी परिचित होने नह गया, उसकी खास कोई इच्छा भी नहीं हुई। सुरेश्वर क्यों उमेश बाबू के पा जाएगा, अवनी इसका अन्दाज लगा सका। उमेश बाबू सुरेश्वर के विशेष अनुराग हैं, ऐसा उसने सुना है, इसके सिवा उमेश बाबू पटना के सरकारी क्षेत्र में कह-सुन कर सुरेश्वर के अन्धाश्रम के लिए किसी-किसी विषय में सहायता की व्यवस्थ कर दे रहे हैं, ऐसा भी सुनने में आ रहा है।

महिन्दर को बुलाकर अवनी ने बाहर और भी कुर्सियां देने को कहा।

बिजली बाबू ने कहा, "मेरा कहना है कि उठने का मन लेकर बैठने से का निबटा आकर, हाथ-पांव फैलाकर बैठना ही अच्छा है। तीसरा पहर भी तो ढल को है।" कहकर उन्होंने सुरेश्वर के मुंह की ओर ताका।

लगा कि सुरेश्वर की भी वैसी ही इच्छा है। अवनी की तरफ ताक क बोला, "तीसरे पहर की बस से आया हूं, बिजली बाबू के घर बिना बैठे आऊंगा तो वे हमारी तरफ वाली बस बन्द कर देंगे, ऐसे धमकी उन्होंने दी थी"—सुरेश्व हंसा। "हाथ में कोई खास समय भी नहीं है, शाम की बस से लौटना है। ह बल्कि उनसे मिलकर ही आते हैं। हेम बैठें।"

अवनी बोला, "बैठिए, लौटने के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है।"

सुरेश्वर अनुमान लगा पाया कि अवनी क्या कहना चाहता है।

"नहीं, हमें पहुंचा देने के लिए फिर आप गाड़ी लेकर जाएंगे, ऐसा नहीं हो सकता है; अकारण कष्ट···"

"इसमें कष्ट की कोई बात नहीं है। मैं भी शायद जाता आज।" कहकर असतर्क भाव से हैमन्ती की ओर ताका पल भर के लिए।

बिजली बाबू बोले, "आप तो ऐसा करते हैं महाराज, जैसे आप पानी में गिरे हों। आखिर हम लोग तो हैं, शाम की बस पकड़ने के लिए आप इतने उतावले क्यों हो रहे हैं!"

सुरेश्वर ने तनिक सोचा, बोला, "तो फिर काम निबटा कर बैठूं। उमेश बाबू कल चले जाएंगे, घर में लोगों की भीड़ हो सकती है।"

थोड़ी देर तक बैठकर सुरेश्वर व बिजली बाबू चले गए।

हैमन्ती से विशेष कोई बात-चीत तब तक नहीं हुई थी, अब की बार अवनी ने बेंत की कुर्सी जरा पीछे की ओर हटाई और हैमन्ती के मुंह-दर-मुंह होकर, मुस्कराता हुआ बोला, "कहिए, तो आपकी क्या खबर है? कैसी घूमीं?"

"घूमी कहां, घर घूम आई।" हैमन्ती ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया।

"सुना था कि आप लौट आई हैं, मगर पिछले सप्ताह ऑफिस के काम से सांस लेने तक का समय नहीं मिला था। गधे की तरह खटना पड़ा था। एक नए कंस्ट्रक्शन की बात चल रही है, दोनों वक्त बीस-बाईस मील तक की भाग-दौड़ करनी पड़ी थी। नौकरी बड़ी ह्यूमिलेटिंग चीज है।···खैर, तो आप अपनी खबर बताइए। एक दिन मैं आपके वहां गया था।"

"सुना है, मालिनी ने कहा था।"

कोई वजह नहीं है, तो भी मालिनी के नाम से अवनी ने कैसी परेशानी-सी महसूस की। उस दिन वह ठीक किस मानसिक अवस्था में, कितना होश गंवाकर हैमन्ती के कमरे के सामने जाकर खड़ा हो गया था, मालिनी यह नहीं जानती है। उसने अवनी को किस भाव से देखा था, क्या सोचा था, कौन जाने। अवनी की समझ में नहीं आया कि मालिनी ने हैमन्ती से और भी कुछ कहा है या नहीं।

अवनी थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर दूसरे प्रसंग में बात की, "तो कैसा लगा कलकत्ता?"

"कैसा लगेगा भला, जैसा लगता है—" हैमन्ती होंठों को फैलाकर मुस्कराई।

"इस जंगल से एकाएक कलकत्ता जाकर थोड़ा-सा दूसरी तरह का लगना चाहिए।"

"सो लगा है; अच्छा ही लगा है।"

"यहां वापस आकर अब कैसा लग रहा है?" अवनी ने मजाक करते हुए कहा।

"पहले जैसा ही।"

"लेकिन आप इस बार जरा दूसरी तरह की दीख रही हैं।"

"ऐसी बात है क्या? कैसी दीख रही हूं मैं?" हैमन्ती ने पलकें उठाकर कहा।

"कैसी···! मतलब कि···थोड़ी-सी रिफ्रेश्ड दीख रही हैं।"

"ओ!" हैमन्ती थोड़ी-सी मुस्कराकर रुक गई।

महिन्दर चाय बनाकर चाय का ट्रे दे गया, बिस्कुट हैं, अंडे हैं, मिठाइयां हैं। हैमन्ती ने जल्दी से हाथ हिलाकर नहीं-नहीं की। "खाना ले जाने को कहिए, बिजली बाबू के घर में उनकी पत्नी ने कुछ ऐसा आग्रह किया"'सचमुच, मैं अब कुछ नहीं खा सकूंगी।"

"विजया के बाद मुंह मीठा करना पड़ता है, कराना भी पड़ता है। नहीं कराना पड़ता है!" अवनी ने सरल भाव से हंस-हंसकर कहा, बहुत कुछ बच्चों—जैसा।

"पर अब विजया नहीं है; पूर्णिमा तक रहती है—" हैमन्ती ने भी सरल मधुर स्वर में कहा। "दीवाली आ गई, सो मालूम है?"

"आखिर कुछ-न-कुछ तो लीजिए, नहीं तो मेरी पहुनाई बदनाम होगी।"

"तो फिर मैंने एक बिस्कुट लिया—"

"वही लीजिए" अवनी ने सम्मति दी। वह चाय उड़ेलने जा रहा था, हैमन्ती ने हाथ बढ़ा दिया।

"मुझे दीजिए, मैं उड़ेलती हूं।" हैमन्ती ने कुर्सी थोड़ा-सा आगे बढ़ा ली।

चाय में दूध-चीनी मिलाते-मिलाते हैमन्ती बोली, "आपका घर अच्छा है, मुझे बहुत अच्छा लग रहा है।"

"यह मेरा घर कहां है? यह तो किराए का मकान है।" अवनी ने कौतुक करके कहा।

"कलकत्ता में मेरे घर में यहां की तरह-तरह की बातें होती थीं—" हैमन्ती ने जैसे अवनी की बात कान में हो नहीं ली, बोली, "मेरे छोटे भाई ने कहा है कि वह दीवाली के समय सप्ताह भर की छुट्टी लेकर घूमने आयेगा। उसकी धारणा है कि आपके साथ दोस्ती गांठ लेने पर वह जंगल-झाड़ में घूमकर शिकार-विकार कर सकेगा। आप शिकार-विकार करते हैं क्या?"

"शिकार! नहीं तो।"

"लेकिन मैंने यह नहीं कहा है कि आप शिकारी हैं'''" हैमन्ती ने चाय के प्याले से थोड़ी-सी चुस्की ली और हंसकर बोली।

"बचपन में मैंने एयरगन चलाया था, इसके अलावा मैंने जीवन में बन्दूक नहीं पकड़ी है," अवनी ने चाय का प्याला लेने से पहले सिगरेट सुलगाई।

हैमन्ती हंस रही थी। अवनी की आंखों में आंखें डालकर न जाने कैसी स्वच्छ, हालांकि ईषत् दबी हुई हंसी हंस रही थी वह। आखिर ऐसी हंसी का क्या अर्थ है? अवनी ने कैसी परेशानी-सी महसूस की।

"मैं क्या शिकारी-जैसा दीखता हू?" अवनी ने हैमन्ती की दृष्टि और हंसी को सदय करते-करते कहा।

हैमन्ती ने पलकें झुका लीं, मुंह नीचा किया और प्याले से होंठ छुलाकर माथा हिलाया, इतने धीरे से कि जैसे हां या नहीं कुछ समझ में नहीं आया। उसके बाद जब उसने मुंह उठाया, तो उसके सारे चेहरे पर साफ-सुथरी झकझकाती-सी हंसी थी और उसकी दृष्टि नम्र, सुन्दर, शालीन व हार्दिक हंसी भरी थी।

अवनी इस दृष्टि से अनुभव कर सका कि हैमन्ती में कोई चतुराई न उसने वास्तव में बुरा मानकर ऐसा नहीं कहा था। अवनी के साथ मात्र प्यार-भरी बात-चीत करना ही उसकी आकांक्षा थी, अभी भी है।

अवनी ने अनुमान लगा लिया कि विजली वावू की मार्फत यह वात सुरेश्वर के कानों तक पहुंची है। हो सकता है, सुरेश्वर ने भी कहा हो हैमन्ती से। तो क्या सुरेश्वर के आश्रम में वह आजकल वात-चीत का विषय हो उठा है ? विजली वावू ने क्या अवनी के वारे में और भी कोई समाचार दिया है। विजली वावू के प्रति अवनी ने असीम विरक्ति अनुभव की।

"तवादले की वात ठीक नहीं है—" अवनी वोला, "एक दूसरी वात हो रही थी, वह यह कि मुझे दूसरी जगह जाना होगा।"

"सुना है। हायर पोस्ट पर।"

"तव तो सभी कुछ सुना है आपने।" मुझे लेकर इतनी वात-चीत होती है क्या ?"

"नहीं वात उठती है, तो होती है।"

अवनी फिर कुछ नहीं वोला। उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

दोनों फिर मौन हुए। देखते-देखते धूसरता गाढ़ी हो गई और पेंसिल के दाग जैसा अंधेरा जमा हो रहा है। उजाला पुंछने को आया। रास्ते से होकर न जाने कौन लोग वकवक करते-करते चले जा रहे हैं। वरामदा अंधेरा हो आया।

और भी कुछ देर तक चुपचाप वैठे रहने के वाद अवनी वोला, "वत्ती जला देता हूं।"

अवनी उठकर गया और वत्ती जलाई वरामदे की।

हैमन्ती रोशनी में दो पल वैठी रही। मानो सहसा इस मटमैलेपन व धुंधलके के छंट जाने के वाद वह अपने आपको रोशनी की आदी वना ले रही है। आश्रम की टिमटिमाती रोशनी की तुलना में यह रोशनी जैसे वहुत सुन्दर हो, साफ सव कुछ नजर आता है। कलकत्ता के घर की रोशनी भी भला ऐसी नहीं होती है, वहां वाट-घाट, वगल के मकानों—सव जगह से रोशनी आकर उसके घर की रोशनी को डुवो देती है, ऐसा नहीं लगता है कि एकान्त में अपने मुताविक थोड़ी-सी रोशनी जलाई। यहां, इस क्षण हैमन्ती को यह रोशनी अच्छी लगी; यह न तो क्षीण है, न अति उज्जवल ही, फिर यह न तो अति धुंधली है, न चमकदार ही; यह सूनी है हालांकि अपनी है।

## चौदह

देखते-देखते दीवाली पार हो गई और जाड़ा आ गया। जाड़े की यह शुरुआत यहां अत्यन्त मनोरम होती है। नमी का लेशमात्र कहीं नहीं है; समूचे आकाश में नीलिमा की आभा है, हवा सूखी है, सारी रात हिम और ओस गिरने से घास-पात, वृक्ष आदि जितना भीगते हैं सवेरे की चमकीली धूप से उसके सूख जाने पर एक तेज साफ हरियाली की दीप्ति उभर उठती है। अभी भी उतरैया उतनी जोर से नहीं चली है, फिर भी जाड़े की अल्हड़ हवा का झकोरा जंगल की ओर से वीच-वीच में भागा आता है, आकर सनसनाता हुआ घास-पात और पेड़-पौधों को अस्त-व्यस्त और सिहराकर चला जाता है। गुरुडिया के शाल के

जंगल में इतने दिनों तक मानो वह सोया हुआ था, कोई आवाज नहीं आती थी। अभी प्रायः रोज ही सवेरे दो-चार बैलगाड़ियां कच्चे रास्ते और ऊंचे-नीचे मैदान से होकर शाल के जंगल में चली जाती हैं, पहियों की निरवच्छिन्न चर्र-चों की आवाज के साथ बैलों के गले की घंटियां टुन-टुन बजती हैं, उसके बाद सारी दुपहरी हवा में लकड़हारों के लकड़ी काटने की आवाज गूंजती है; कभी-कभी वह आवाज स्तब्ध दुपहरी में अन्धाश्रम में भी तिरती आती है। तीसरा पहर ढले, इसके पहले ही गाड़ियां लौट जाती हैं। दो-तीन दिनों तक वे लोग सिर्फ पेड़ काटते हैं, उसके बाद एक दिन उन्हें गाड़ियों पर लादकर लौटते हैं। लौटते शाल की शाखा-प्रशाखाओं के पत्तों से रास्ते की धूल थोड़ी उड़ती है, जमीन में खरोंच लगती रहती है।

तीसरा पहर जैसे देखते-देखते खत्म हो जाता है, गाढ़ी धूप के फीकी हो जाने के पहले ही कैसी एक अवसन्नता छा जाती है। नरम रोशनी बदन में लगाकर पंछी जंगल की ओर से लौटना शुरू करते हैं, छाया जमा होती रहती है ओट में; आंवले की पौदों और शरीफे के झुरमुट को घेरकर जंगली पतिंगे और दो-चार तितलियां तब भी शायद नाचती हैं; उसके बाद जाड़े की हवा के झकोरे आकर पेड़-पौधों को कंपाकर सरसराता हुआ बह जाने पर मैदान से, पेड़-पौधों पर से आखिरी रोशनी भाग जाती है, अन्धाश्रम के सब्जी के बाग से गन्ध तिरती है, खाद की गन्ध, धरती की गन्ध और जाड़े की गन्ध। गोधूलि भी उभर नहीं पाती है, छाया और अंधेरा आकर तमाम कुछ ढक देता है।

जाड़े के शुरू में ही अन्धाश्रम के कई नये काम शुरू हो गए थे। एक नया कुआं खोदा जा रहा था, कुएं की खुदाई खत्म हुई, तो उसे बांधा गया। एक नया छप्पर छाया जा रहा है। एक ओर एक और तांत-घर बनेगा। रांची से तांत आ रही है। गुरेश्वर और शिवनन्दन जी मजूर-मिस्त्री और ईंट-लकड़ियों को लेकर सारा दिन व्यस्त रहते हैं।

हैमन्ती का इस सब विषय में कोई आग्रह या उत्साह नहीं था। उसके कमरे के बरामदे में खड़े होने पर बहुत दूर पर आश्रम के ये नये काम दिखाई पड़ते हैं, हैमन्ती ने देखा है अवश्य, किन्तु किसी प्रकार का उत्साह अनुभव नहीं किया है। बल्कि कैसा कौतुक अनुभव किया है, मालिनी से कहा है, 'तांत का काम तुम भी सीख लेना मालिनी।'

मालिनी समझ सकती थी कि हेम दीदी उससे मजाक कर रही हैं। उसे लगता, हेम दीदी आजकल कुछ दूसरी तरह की होती जा रही हैं।

अवनी को कोई खास गलत दिखाई नहीं पड़ा था। कलकत्ता जाने के पहले हैमन्ती जैसी थी कलकत्ता से लौटकर ठीक वैसी नहीं थी। उसमें कहीं जैसे कुछ हुआ था। वह क्या था—यह स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता था। लेकिन हैमन्ती के व्यवहार में यह परिवर्तन लक्ष्य किया जा सकता था। स्वभाव में वह प्रगलभता नहीं थी, अभी भी उसके आचरण या बातचीत में आतिथ्य व चटुलता नहीं है, उसकी वह गंभीरता अटूट थी, अपने कर्त्तव्य के बारे में उसकी अवहेलना या उदासीनता नजर नहीं आई है। तो भी हैमन्ती कहीं जैसे थोड़ी-सी बदल गई थी। मालिनी जैसे स्पष्ट देखती, हेम दीदी जरा दूसरी तरह की हो गई हैं। इससे उसे सुविधा छोड़कर असुविधा नहीं हुई है। दोनों के बीच लगाव की एक मात्र/

पहले थी, मालिनी ने कभी भी वह बाड़ा लांघने की हिम्मत नहीं की थी। अब उसे लगता है, वैसी हिम्मत उसकी होती जा रही है, कोशिश करने पर वह उस बाड़े को लांघ सकती है। हो सकता है, हेम दीदी यह पसन्द न करें, लेकिन वे कुछ कहेंगी भी नहीं।

पहले से हेम दीदी अब अच्छी ही लग रही थीं मालिनी को। पहले जो बातें बिना समझे कहते समय उसने हेम दीदी से नजरों की डांट खाई थी या जो तुच्छ बातें अच्छी लगने की वजह से कहने आकर उसे हेम दीदी की तरफ से कोई उत्तर नहीं मिला था—अब गलती से उन सब बातों के कह डालने पर भी हेम दीदी दो-चार बातें करती हैं या हंसती हैं। मालिनी को कहीं जैसे थोड़ा-सा प्रश्रय मिल रहा था।

उस दिन हैमन्ती के कमरे में बैठकर मालिनी नाटक सुन रही थी। बाहर देखते-देखते बड़ी ठंड पड़ गई है। बिस्तर पर अधलेटी होकर हैमन्ती अंग्रेजी कहानी की किताब पढ़ रही थी, सिरहाने एक सुन्दर शेड लगी बत्ती जल रही थी। हैमन्ती इस बार कलकत्ता से इसे लाई है, लालटेन की उस टिमटिमाती रोशनी में कमरा ऐसा नहीं दीखता था, कांच के सफेद शेड पहनाई हुई उस बत्ती में कमरा बहुत सुन्दर और साफ-सुथरा दिखाई पड़ रहा था।

मालिनी रेडियो के सामने एक छोटी-सी तिपाई पर बैठी हुई थी। गोद में पशम थी, और हाथों में सलाइयां। नाटक सुनते-सुनते उसका पशम बुनना रुक गया था। हैमन्ती ने उसे कलकत्ता से ऊन ला दी है, मालिनी ने कहा नहीं था, खुद ही लाई है हैमन्ती, लाकर अपने हाथों एक नई बुनावट सिखा दी थी और कहा था, "जाड़े के पहले बुनाई खत्म कर डालो। पहनना इसे।"

बुनाई प्रायः खत्म हो गई है, इतने दिनों में बुनाई खत्म हो जाती, पर पता नहीं कहां एक गड़बड़ी हो जाने की वजह से बहुत-सारा हिस्सा खोल डालना पड़ा था, फिर से उसे बुनना पड़ रहा है। दो-एक दिनों के अन्दर ही बुनाई खत्म हो जाएगी।

नाटक जब हो रहा था, तो हैमन्ती बीच-बीच में किताब बन्द करके सुन रही थी, फिर पढ़ रही थी। नाटक खत्म होते समय हैमन्ती ने किताब को बन्द करके तकिए की बगल में रखा और सीधी होकर बैठी घुटनों के पास उसके हाथों की उंगलियां एक-दूसरे से कसी हुई हैं। वह रेडियो की तरफ ताकती हुई मनोयोग देकर अन्तिम अंश सुन रही थी। मालिनी भी सुन रही थी।

थोड़ी ही देर बाद नाटक खत्म हुआ। मालिनी ने अब तक जो सांस रोक रखी थी इस बार आवाज करके वह सांस छोड़ी, उसका मुंह कई क्षण कैसा अन्य-मनस्क-सा दीखा।

नाटक के बाद न जाने क्या शुरू हो गया था, हैमन्ती ने रेडियो बन्द कर देने को कहा। मालिनी ने बन्द कर दिया। मालिनी से रेडियो खोलने या बन्द करने को कहा जाता है, तो उसे बच्चों का-सा सुख मिलता है। हैमन्ती से देख-देखकर ये दो चीजें उसने सीखी हैं।

हैमन्ती ने छोटी-सी जम्हाई ली; जम्हाई लेकर आलस्य छोड़कर बिस्तर से उतरी। उसने एक साधारण जनाना दुशाला ओढ़ रखा है, दुशाले का रंग गहरा काला है। बदन की सफेद साड़ी के ऊपर काला दुशाला और भी प्रखर होकर

खिल रहा था। हैमन्ती ने आज बाल नहीं बांधे हैं, बालों को गरदन के पास लपेट रखा था।

मालिनी न जाने क्या कहना चाहती थी, मगर चप्पल पांवों में डाल, टार्च को मेज पर से उठाकर हेम दीदी गुसलखाने जा रही थी, इसलिए अभी वह कुछ नहीं बोली।

थोड़ी ही देर बाद हैमन्ती लौट आई। लौट आई, तो बोली, "बाहर बहुत जाड़ा पड़ा है।"

मालिनी ने माथा हिलाया जैसे वह जानती हो बाहर बहुत जाड़ा पड़ा है।

हैमन्ती फिर बिस्तर पर बैठ गई।

मालिनी बोली, "अन्त में जो क्या साफ हुआ, कुछ समझ में नहीं आया।"

हैमन्ती ने बात का जवाब दिए बिना तकिए के ऊपर से किताब फिर उठा ली।

मालिनी हैमन्ती के जवाब की प्रत्याशा में रही, फिर अन्त में बोली, "तो क्या वह भाग गया?"

"भाग क्यों जाएगा, मर गया, गाड़ी के नीचे आकर···"

"ओ!···क्या पता, मैंने सोचा कि वह भाग गया।"

"तुम तो वैसा ही सोचती हो।"

मालिनी न तो घबराई, न उसे लज्जा ही आई। बल्कि हंसकर बोली, "इतनी गाड़ियों की आवाज और शोर-शराबे में क्या कुछ समझ में आ सकता है! उस पर सिर्फ अंग्रेजी बोल रहा था।'

हैमन्ती जिस पन्ने को पढ़ रही थी उसे तलाशने लगी।

बात करनेवाला आदमी सामने हो, तो मालिनी ज्यादा देर तक चुपचाप बैठी नहीं रह सकती है। बोली, "हेम दीदी, मैं ऐसे एक आदमी की बात जानती हूं।"

हैमन्ती उस पन्ने को ढूंढ़ पाई। रहस्य अभी भी मझदार में है।

सुननेवाली के मनोयोग पर मालिनी का ध्यान नहीं था, वह घटना बताने लगी, "बहुत दिन पहले की बात है, समझी हेम दीदी, हम लोग तब छोटे थे, इधर इतने घर-घर भी नहीं बने थे, तब भी लोग पूजा के बाद जाड़े के वक्त यहां सेहत बनाने आते थे। एक बार एक पति-पत्नी आए। दोनों ही देखने में बड़े सुन्दर थे। वे बहुत घूमते-फिरते, बाजार-हाट करते, ग्रामोफोन बजाते, वह औरत कितनी तरह से सजती! वे लोग कहते कि हम सेहत बनाने आए हैं। मजे में थे दोनों। एकाएक एक दिन हलचल मच गई, उनके घर के सामने क्या भीड़ लगी, पुलिस-पुलिस तक आ गई। हाय राम, अन्त में सुना कि वह औरत दूसरे आदमी की बहू है, उसके साथ चली आई है; वह जिसकी बहू थी उसे खोज मिली, तो हठात् वह आ हाजिर हुआ था। मैं तो सुनकर ठक्-से रह गई थी!"

हैमन्ती ने किताब के पन्ने पर से नजरें उठाईं, मालिनी की ओर ताका और बोली, "आखिर उसके साथ इसका क्या सम्बन्ध है?"

"दोनों ही तो एक-सी घटना हैं न," मालिनी अचरज में पड़कर बोली, "यह भी तो दूसरे आदमी की पत्नी को भगाकर ले जाने का मनसूबा बांध रहा था।"

हैमन्ती विरक्त हुई, तो भी हंसे बिना नहीं रह सकी। बोली, "तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया। भगाकर ले जाने का मनसूबा किसी ने नहीं बांधा था।"

"अरे वाह, इतनी वार वोल रहा था !"

"वोला नहीं था, वह आदमी सोच रहा था। मन-ही-मन क्या सोच रहा है, यह हम जानेंगे कैसे, इसीलिए मुंह से कह रहा था, वह उसके मन की भावना थी।"

मालिनी अव की वार जैसे समझ पाई, यद्यपि इससे उसका कोई लाभ नहीं हुआ। वोली, "मन में सोचे या चाहे कुछ भी करे, पर वह आदमी वुरा था।"

हैमन्ती ने कौतुक अनुभव किया। "मगर वुरा तो उसने कुछ नहीं किया था।"

"वुरा काम उसने नहीं किया था !" मालिनी ने आंखें फाड़कर ताका, उसके वाद वोली, "सव कुछ जान-वूझकर वह एक आदमी की वहू को ठग रहा था, यह वुरा काम नहीं था ?"

हैमन्ती समझ पाई कि मालिनी को यह विषय समझाना उसके लिए मुश्किल है। वहुत वकवक करनी पड़ेगी। वताने पर भी मालिनी जो समझेगी, ऐसी वात नहीं। कुछ सीधी-सादी सरल धारणा व संस्कार लेकर वह पली-वढ़ी है, उसे इतनी आसानी से भले-वुरे की जटिलता नहीं समझाई जा सकेगी। हैमन्ती ने वैसी कोशिश नहीं की, सिर्फ हंसकर वोली, "तुम यह सव नहीं समझोगी। लो, चुप रहो। किताव खत्म कर लूं।"

मालिनी चुप हो गई। हैमन्ती ने फिर किताव के पन्ने पर निगाह डाली।

कुछेक पंक्तियां पढ़ीं हैमन्ती ने, मगर मन में कहीं वेचैनी-सी महसूस कर रही थी; मानो उसे कुछ कहना चाहिए था मालिनी से पर उसने नहीं कहा ! वार-वार यह औचित्य वोध उसे सता रहा था। हैमन्ती अन्यमनस्क हुई, कुछ सोचा। थोड़ा-सा, फिर किताव के पन्ने में मन लगाने की कोशिश की। पर मन लगा नहीं सकी। न जाने कहां खटका-सा लग रहा था। किताव के पन्ने पर उंगली रखकर मुंह उठाया हैमन्ती ने, पहले दूसरी ओर ताकती रही, उसके वाद मुंह फेरकर मालिनी की ओर देखा। वह जो कहना चाहती है वह मालिनी से कहने या उसकी चर्चा करने में उसकी मर्यादा को ठेस पहुंच रही थी। मुंह से कहते नहीं वन रहा था। दरअसल नाटक का द्वन्द्व प्यार का द्वन्द्व था। लोभ और दुर्वलता के वावजूद जो प्यार ही था।

..मालिनी ने पशम वुनना रोककर मुंह उठाया, तो हैमन्ती से उसकी आंखें चार हुईं। हेम दीदी उसकी ओर ताककर क्या देख रही हैं, यह समझ न पाकर वह हक्की-वक्की होकर ताकती रही।

हैमन्ती कैसी परेशान-सी हुई। निगाह हटा लेना सम्भव नहीं हुआ; वल्कि उसकी परेशानी के भाव को जिससे मालिनी समझ न सके, इसलिए जवरन चेहरे पर थोड़ी-सी मुस्कान लाकर हैमन्ती ने कुछ छिपाने की खातिर तपाक से कहा, "तुम और कितने दिन लगाओगी उसे खत्म करने में ?"

मालिनी ने वुनी पशम को ऊपर उठाकर दिखाया। "हो गया है, गला थोड़ा-सा वाकी है। हाथ भी पूरा कर लिया है।"

"जाड़े में पहन सकोगी न !"

मालिनी कुछ ऐसा मुंह वनाकर हंसी कि जैसे लगा, हेम दीदी जो क्या कहती हैं। भला कितना वाकी है, दो-तीन दिनों के अन्दर ही पूरा हो जाएगा। मालिनी

ने कुछ सोचकर कहा, "एक बात कहूं, हेम दीदी ?"

"मना करने पर क्या तुम नहीं कहोगी ?" हैमन्ती कौतुक करके हंसी।

"यह पूरा बन जाए, तो इसे पहले आप पहनिएगा।"

"मैं ?"

"पहनिएगा एक वक्त ! मुझे बहुत अच्छा लगेगा।"

"पर तुम्हारे पहनने पर जो मुझे और भी अच्छा लगेगा।"

"सो तो लगेगा ही। आप मेरे लिए लाई हैं।···आप जरा-सा पहनेंगी, तो मुझे बहुत आनन्द होगा, हेम दीदी। मैं तो आपको कभी भी कुछ नहीं दे सकूंगी।"

हैमन्ती दुर्बलता अनुभव कर रही थी। उसे परेशानी हो रही थी। "तुमने आजकल बहुत बोलना सीखा है।"

मालिनी की दोनों आंखें स्निग्ध और सरल हैं, हालांकि न जाने कितनी कृतज्ञ-सी दीखीं। मालिनी बोली, "मैं कुछ भी नहीं कहती, हेम दीदी। आप गुस्सा करेंगी, यह सोचकर मैं कुछ नहीं कहती। कितनी बातें कहने को जी चाहता है।···एक बात कहूं ?"

"कहो।"

"इस बार कलकत्ता से आकर आप जरा कैसी हो गई हैं।"

"कैसी ?" हैमन्ती मुंह दबाकर हंसी।

"पहले मुझे लगता था कि आप हमारे यहां ज्यादा दिन नहीं रहेंगी, चली जाएंगी। पर अब लगता है कि आप रहेंगी।"

हैमन्ती समझ नहीं पाई कि मालिनी की ऐसी धारणा कैसे हुई। यहां तक कि वह यह नहीं समझ पाई कि मालिनी की पहले की बात के साथ बाद की बा का क्या सम्बन्ध है !

हैमन्ती बोली, "कलकत्ता से आकर मैं क्या हो गई हूं, यही बताओ।"

मालिनी जैसे क्या कहे, कुछ समझ नहीं पाई। सोचते-सोचते हठात् चेहरे प मुस्कान बिखेर कर बोली, "आप और भी अच्छी हो गई हैं।···पहले आपसे म डर-सा लगता था, पर अब वैसा नहीं लगता है।"

हैमन्ती ने अन्यमनस्क भाव से कहा, "क्यों ?"

"अरे वाह, आप जो हमें—मुझे प्यार करती हैं।"

हैमन्ती ने मालिनी की आंखों की ओर ताका।

●

रात को बिस्तर पर लेटकर हैमन्ती सोच रही थी —सोच रही थी वि कलकत्ता से वापस आने के बाद सभी उसमें परिवर्तन देख रहे हैं। यह परिवर्त जो क्या है, यह ये लोग नहीं जानते हैं, हैमन्ती जानती है। यह परिवर्तन बहु कुछ वह जान-बूझकर दिखा रही है, कभी-कभी जोर देकर वह कुछ साबित करन चाहती है। हो सकता है, दीवाली के समय गगन के आने पर हैमन्ती को और कुछ करना पड़ता, उससे कमोबेश क्या तारतम्य होता, वह नहीं जानती है दीवाली के समय गगन आ नहीं सका। मां की तबीयत खराब हो गई थी, बुखार वगैरह हो गया था; मामा की तबीयत भी उतनी अच्छी नहीं है। दोनों ही हो गए हैं, दुश्चिन्ता, उद्वेग आदि वैसे भी रहता है, बीमारी होने पर चिन्ता य है। गगन आ नहीं सका। लिखा है, क्रिसमस के समय आएगा। वह समय

भी अच्छा होगा घूमने के लिए।

गगन यहां ठीक जो घूमने ही आ रहा है, ऐसी वात नहीं। मां की तरफ से वह कुछ निपटाने आ रहा है सुरेश्वर से। यह निपटारा जो क्या हो सकता है, हैमन्ती इसका अन्दाजा लगा सकती है। लेकिन मां को उसने यह सब वात वतानी नहीं चाही है, न वताई है। वताने से कोई लाभ नहीं होता। मां सोचती, हेम ने वरावर जो किया है— अभी भी वही करना चाह रही है, अपना भला-वुरा, घर-गृहस्थी की चिन्ता-दुश्चिन्ता की वात न सोचकर अपनी जिद और झोंक लिए पड़ी हुई है।

मगर ऐसी वात नहीं है। हैमन्ती ने वरावर जिद में आकर कुछ नहीं किया है। आज सात-आठ वर्ष या उससे भी ज्यादा हुआ—इतने वर्षों तक कोई जिद में आकर वैठा नहीं रह सकता है। जिद की वात यह नहीं है, वल्कि यह सुरेश्वर को सुखी करने की सव प्रकार की कोशिश है। सुरेश्वर की साध पूरी करने, उसे तृप्त करने और उसके प्रति हेम के प्यार के लिए जो कुछ करना था उसने किया है। उसकी प्रतीक्षा यदि अकारण होती, अर्थहीन होती तो वह ऐसी प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी।

गुरुडिया आकर हैमन्ती यह समझ पाई है कि सुरेश्वर ने उससे अकारण प्रतीक्षा करवाई है। सुरेश्वर अव पहले की दुर्वलता से मुक्त है। किन्तु उस दुर्वलता के न रहने पर सुरेश्वर किस अधिकार से उसे यहां खींच लाया?

कलकत्ता जाकर हैमन्ती ने अपना मन स्थिर कर डाला था। सुरेश्वर का आश्रम वह अभी छोड़कर नहीं आएगी। मां या मामा को वह यह नहीं दिखाना चाहती कि हैमन्ती का इतने दिनों का विश्वास व प्रेम विफल हो गया है। इसके अलावा सुरेश्वर से अपनी मर्यादा की प्रतिद्वन्द्विता में वह हार नहीं जाना चाहती है। वह उपकृत और कृतज्ञ है; सिर्फ इसी वोध से वह सुरेश्वर को कुछ प्राप्य दे रही है, यह जैसे सुरेश्वर अनुभव कर सके।

हैमन्ती ने मन-ही-मन सोच लिया था—उसकी इस लम्वी प्रतीक्षा, विश्वास व प्यार का मूल्य जैसे सुरेश्वर के लिए कुछ नहीं है, उसी प्रकार सुरेश्वर की अन्धों की सेवा का कोई मूल्य उसके लिए नहीं है। यह सेवा, दया, धर्म, पुण्य —चाहे कुछ भी हो, उसके लिए सुरेश्वर की चाहे जितनी दुर्वलता हो, हैमन्ती की नहीं होगी। सुरेश्वर के इस अतीव दुर्वल-स्थान के प्रति हैमन्ती की परम अवहेलना व उपेक्षा रहेगी।

गुरुडिया वापस आकर हैमन्ती अपना विमर्ष भाव अव प्रकट नहीं कर रही है। जैसे उसकी विमर्षता का कोई कारण नहीं हो सकता हो। वह निस्पृह है, आश्रम उसका कुछ नहीं है, उसे रत्तीभर उत्साह नहीं है आश्रम के लिए, रोगी आएंगे, तो वह उन्हें देखेगी, उसका काम अस्पताल में ही खत्म होगा, उसके वाहर वह कुछ नहीं करेगी—इस मनोभाव से उसे अच्छा लग रहा था। अपनी निःसंगता में वह डूवी नहीं रहेगी, हो सकता है, हैमन्ती ने यह भी स्थिर कर लिया था। एक दो निजी साथियों की भी उसे जरूरत है।

## पन्द्रह

अन्धों के अस्पताल के काम का बधा-बंधाया समय नामक कोई चीज नहीं थी। रहना सम्भव भी नहीं था। फिर भी उसीमें मोटे तौर पर जो समय था वह था सवेरे के वक्त, दिन चढ़ने तक। देहात, गांव-गंवई और आस-पास के पच्चीस-तीस मील के इलाके से एक-एक करके रोगियों के आकर जुटने-जुटते दिन चढ़ जाता था। सवेरे की पहली बस गुडडियाआती है सात बजे के लगभग। उसके बाद जो बस आती है उसके आकर पहुंचने में दस बज जाते हैं, किसी-किसी दिन ग्यारह बज जाते हैं। चाहे जैसे भी आएं, चाहे जिससे भी आएं, आंख दिखाने आने वाले एक निर्धारित समय के बीच आकर नहीं पहुंच सकते थे, हेर-फेर होता था। हाट लगने के दिन इन दिनों जैसी हालत हो गई थी उसमें दोपहर में भी रोगी आते थे, और दोपहर के बाद भी, हाट करके आकर जैसे वह काम निवटा जाते।

जाड़ा पड़ जाने की वजह से तरह-तरह की दिक्कतें हो रही थीं। सवेरे की बस से शाम कोई आकर पहुंच नहीं सकता था; बस के भरोसे बैठे रहने वालों के आने में दिन बहुत चढ़ जाता था। दूसरे लोगों में से भी—बैलगाड़ी से अथवा लट्ठा से पांव पैदल आने वाले—सब-के-सब एक-एक करके आते, अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार। जाड़े का दिन, देखते-देखते दोपहर होने को आती। उस पर मोटे तौर पर समझदार रोगी होने तो भी एक बात थी। एक-एक रोगी के पीछे हैमन्ती को जितना समय लगाना पड़ता था उतने में कलकत्ता के अस्पताल में तीन रोगियों की आंखें देखी जा सकती हैं। देहात के आदमी ठहरे, ये जितने सरल होते हैं उतने ही बेवकूफ, और बेहद डरपोक होते हैं। आंख पर रोशनी डालने के पहले ही उनमें क्या आतंक होता है!

साधारणतः अस्पताल का काम निवटाकर लौटने में हैमन्ती को दोपहर हो जाने लगी। हाट लगने के दिन दोपहर भी उसे अस्पताल में बितानी पड़ती। एकाध दिन ऐसा हुआ है—दोपहर बाद हैमन्ती लौटी है कि एकाएक हाट से लौटी बैलगाड़ी से कोई आया, ठीक जैसे हाट के बाद ये लोग बेचने-खरीदने का पैसा लेकर स्टेशन की दुकान में सौदा करने जाते हैं।

स्वभावतः इन सब कारणों से, हैमन्ती को तरह-तरह की दिक्कतें होने लगीं। नहाने, खाने और आराम करने के मोटे तौर पर एक नियम का वह पालन नहीं कर पा रही थी। हालांकि लम्बे अरसे वह इस अभ्यास का पालन करती आ रही है। बीमारी के बाद से इस प्रकार के किसी-किसी नियम की वह आदी हो उठी थी, और इस विषय में उसकी कुछ मानसिक दुर्बलताएं भी पैदा हो गई थीं।

एक दिन दोपहर के बाद और एक दिन, हाट लगने के दिन शाम को दो रोगी आए, तो उसने उन्हें लौटा दिया, देखा नहीं। उसके बाद युगल बाबू से कह दिया कि सवेरे के आठ से बारह बजे के बीच और हाट लगने के दिन एक बजे तक जो रोगी आएंगे सिर्फ उन्हें ही देखेगी हैमन्ती। यही अस्पताल का निर्धारित समय है। सभी को यह नियम मानना होगा, युगल बाबू जैसे सभी को यह समझा दें।

यह बात सुरेश्वर के कानों में पहुंची। इसके पहले रोगियों को लौटा देने का समाचार भी उसके कानों में पहुंचा था। सुरेश्वर शायद विरक्त नहीं

किन्तु मन-ही-मन नाराज हुआ था। उसे लगा था, इस विषय को लेकर हैमन्ती के साथ उसका कई बातें करना जरूरी है। पहले शाम के वक्त हैमन्ती प्रायः रोज ही उसके यहां आया करती थी, गपशप करती थी; पर धीरे-धीरे आवा-जाही हैमन्ती ने कम कर दी थी। कुछ दिनों से वह खास अब आ नहीं रही थी। पूजा के बाद कलकत्ता से लौटकर वह दो-चार बार आई थी, लेकिन इन दिनों बिलकुल ही नहीं आती है। सवेरे किसी दिन अस्पताल के ऑफिस में, किसी दिन रोगियों के कमरों की तरफ सुरेश्वर से हैमन्ती की भेंट हुई थी। अन्धाश्रम के नये काम-धाम को लेकर सुरेश्वर खुद भी बहुत व्यस्त है। आश्रम के अन्दर बाट-घाट में भेंट हो गई थी, तो भी कोई खास बातचीत दोनों में नहीं हुई थी। हैमन्ती ने अपनी सुविधा-असुविधा के बारे में कुछ नहीं कहा था।

सुरेश्वर यह बात कहने के लिए हैमन्ती को बुला भेज सकता था। मगर सुरेश्वर का जैसा स्वभाव है उससे ऐसी बात कहने के लिए हैमन्ती को बुला भेजना उसे उचित नहीं लगा। इसके अलावा, हैमन्ती के कमरे की तरफ वह कोई खास नहीं गया था कभी भी। बीच-बीच में उसे भी तो जाना चाहिए।

उस दिन शाम के वक्त सुरेश्वर हैमन्ती के कमरे के पास आकर खड़ा हो गया।

हैमन्ती के कमरे के दरवाजे में परदा लटक रहा है, बत्ती जल रही है भीतर, रेडियो में गाना हो रहा था, मृदु सुर में मर्दाने गले से कोई गाना गा रहा है। कृष्ण पक्ष है, अगहन खत्म होने वाला है, बाहर बहुत ठंड है।

सुरेश्वर थोड़ी देर तक खामोश खड़ा रहा। खड़े-खड़े गाना सुन रहा था। यह गाना उसने बहुत बार सुना है, उसके बोल अभी भी याद हैं, सुर भी शायद नहीं भूला है सुरेश्वर। सुनने में बड़ा अच्छा लग रहा था सुरेश्वर को।

गाना खत्म हुआ, तो सुरेश्वर ने पुकारा, "हेम।"

कमरे के अन्दर मालिनी थी, सुरेश्वर का गला सुना, तो जल्दी से दरवाजे पर आकर परदा हटाया। मालिनी जैसे अवाक् हुई, थोड़ी देर के लिए उसे काठ मार गया। सुरेश्वर को अन्दर आने को नहीं कह सकी मालिनी, सिर्फ परदा और भी हटा दिया।

सुरेश्वर कमरे में घुसा।

हैमन्ती बिस्तर पर उठ बैठी है, पैताने एक हल्का-सा कम्बल था, तह खोली हुई; समझ में आ जाता है कि पैरों को ढककर लेटी या बैठी थी।

बिस्तर से उतर पड़ी हैमन्ती। मालिनी परेशान-सी, कई क्षण खड़ी रही, फिर चली गई।

खिड़की की ओर कुर्सी के नजदीक आगे बढ़ते-बढ़ते सुरेश्वर बोला, "बाहर खड़े-खड़े गाने का अन्तिम हिस्सा सुन रहा था।"

हैमन्ती की वेश-भूषा थोड़ी-सी बेतरतीब थी : बदन पर का आंचल ढीला-ढाला-सा था, उसके ऊपर छोटी हल्की-सी शाल ओढ़ रखी थी उसने। कमर के पास आंचल का बहुत बड़ा हिस्सा लटक रहा था, कोंछियाकर साड़ी न पहनने के चलते आगे कोई कोंछी नहीं थी। बिलकुल साधारण रूप मे घरेलू ढंग से साड़ी पहने हुए थी। सिर पर ऊपर उठाकर जूड़ा बांधा था। हैमन्ती का मुंह-आंख, सिर के बाल सूखे और लाल-से दीख रहे थे।

हैमन्ती ने अपनी बेतरतीबी सुधार ली और रेडियो बन्द करने लगी। सुरेश्वर ने बाधा दी, बोला, "बजने दो न, गाना सुनूं।"

हैमन्ती रेडियो के सामने खड़ी है, सुरेश्वर खिड़की के नजदीक कुर्सी पर बैठा हुआ है। बैठे थोड़ी-सी परेशानी महसूस की तो हाथ बढ़ाकर खिड़की का बन्द पल्ला थोड़ा-सा खोल दिया। बाहर की ठंड का झोंका आया।

रेडियो में गाना हो रहा था : 'मेरे अन्दर तुम्हारी सीमा होगी···'

सुरेश्वर इस तरह से आयेगा, अचानक हैमन्ती ने यह नहीं सोचा था। बहुत कम उंगलियों पर गिनकर यह बताया जा सकता है शायद कि सुरेश्वर ने कितने दिन उसके कमरे के बरामदे या कमरे में कदम रखे हैं। इस तरह से फट-से आ टपककर उसने हैमन्ती को जो थोड़ा-सा परेशानी में डाला है, इसमें सन्देह नहीं। हैमन्ती की तबीयत अच्छी नहीं है, बिस्तर पर पैरों को कम्बल से ढककर वह लेटी हुई थी, किताब भी नहीं पढ़ रही थी आज। मालिनी बैठी थी, उससे गप्पें लड़ा रही थी।

हठात् सुरेश्वर आखिर यहां क्यों आया? कितनी देर तक बाहर आकर खड़ा था? इतना मन देकर गाना सुनने की भला उसे क्या जरूरत थी?···हैमन्ती ने सुरेश्वर को मनोयोग देकर लक्ष्य किया। सुरेश्वर एकाग्रता से गाना सुन रहा है। ठंड कोई खास कम नहीं है, फिर भी सुरेश्वर के बदन पर बिना बांह का फतुही जैसा गरम कुर्ता छोड़कर पशम का कुछ नहीं है। पैर की चप्पल भी दरवाजे के पास खोलकर आया है और नंगे पांव बैठा हुआ है।

हैमन्ती और भी कुछेक क्षण रेडियो की बगल में खड़ी रही, फिर बगल की तिपाई पर बैठी। मालिनी वहां रोज बैठती है। उसे ठंड लग रही थी, बिस्तर पर से नीचे उतर आने की वजह से तलवों में ठंड लग रही थी।

गाना खत्म हुआ।···किसी दूसरी चीज के शुरू होते ही रेडियो बन्द कर दिया हैमन्ती ने।

सुरेश्वर मानो बहुत ही परितृप्त हुआ हो, उसके चेहरे पर स्मित हंसी है, गाने में से ही एक चरण का पाठ किया, 'आनन्दमय तुम्हारे इस संसार में, मेरा कुछ अब बाकी नहीं रहेगा।'

हैमन्ती ने सुरेश्वर के मुंह की ओर ताका, आंखें सहज थीं।

सुरेश्वर बोला, "यह एक अच्छा इन्तजाम किया है तुमने। बीच-बीच में तुम्हारे यहां आकर गाना सुन जाऊंगा।"

एक समय सुरेश्वर को संगीत से प्रेम था। पता नहीं कि उसने [illegible] संगीत चर्चा क्यों नहीं की है। हैमन्ती के लिए यह सब [illegible] नहीं था। लेकिन अभी भी जो सुरेश्वर को संगीत से प्रेम है, हैमन्ती को यह मालूम नहीं था। मालिनी से [illegible] उसने यह सुना है, सुरेश्वर को [illegible] कभी-कभी [illegible], जैसे [illegible], हैमन्ती का यहां आने के बाद से [illegible] नहीं हुआ है। हैमन्ती ने [illegible] (जिसमें [illegible] हैमन्ती [illegible] [illegible] हो।

सुरेश्वर ने [illegible], "[illegible]"

समय मुझे लगा, अभी भी जैसे वह सुर मोटे तौर पर याद हो।···" कहकर सुरेश्वर दो क्षण रुका, फिर जैसे अत्यन्त सरलता और खुशी से मृदु स्वर में गाया : 'सारा घमंड है, मेरा डुबो दो आंसुओं में।' गाकर थम गया।

हैमन्ती अत्यधिक विस्मित हुई। अपलक निहारती रही उसकी ओर। गला चाहे जैसा भी हो, सुर की चाहे जो भी भूल-चूक हुई हो, तो भी वह अभी भी गाना गा सका ! लोगों के मुंह से सुनने पर विश्वास नहीं होता, कानों से सुनकर भी जैसे हैमन्ती को विश्वास नहीं हो रहा था। सुरेश्वर एक समय यह गाना जो गाया करता था, हैमन्ती यह जानती है। स्मृति में क्षण भर के लिए सुरेश्वर की वह पुरानी सूरत उभर उठी और फिर विलीन हो गई।

सुरेश्वर बोला, "यह गाना मेरी मां को भी बहुत पसंद था।···फिर भी मां का घमंड किसी दिन दूर नहीं हुआ था।"

हैमन्ती ने बदन की गरम शाल को और भी जरा करीने से ओढ़ लिया।

सुरेश्वर हैमन्ती का कमरा देखने लगा। इन दिनों वह हैमन्ती के कमरे में नहीं आया था। बिस्तर पर मोटा-सा कवर है, छोटी मेज पर लेस का काम किया हुआ मेजपोश है, नई बत्ती है, खिड़कियों में परदे हैं, एक ओर ड्रेस-स्टैंड है, पोथी-किताबें सजाई हुई हैं दूसरी ओर, कुछ किताबें एक तरफ पड़ी हुई हैं।

देखते-देखते सुरेश्वर ने, "तुम्हारा यह कमरा छोटा पड़ रहा है, न हेम ?"

हैमन्ती ने पहले-पहल कोई जवाब नहीं दिया; बाद में बोला, "काम चल जाता है···।" कहकर खांसी। उसकी खांसी की आवाज कानों में खटकती है।

"तुम्हें दिक्कत होती है। नहीं होती है ?"

"कोई खास नहीं।"

हैमन्ती के मुंह-आंख की ओर ताकते-ताकते सुरेश्वर ने इस बार कहा, "तुम्हारी तबीयत खराब है ! गला भारी-भारी-सा लग रहा है।"

"नया-नया जाड़ा पड़ा है, ठंड लग गयी थी।"

"बुखार आ गया था ?"

"थोड़ा-सा; पर उतर गया है।" हैमन्ती के कहने का ढंग देखकर लग रहा था कि वह बहुत निर्लिप्त है, निरुत्ताप है।

हैमन्ती के मुंह-आंख को लक्ष्य करते-करते सुरेश्वर ने कहा, "तुम्हारा मुंह-वुंह अभी भी सूजा हुआ है।···उस तरह से सिमटी-सिकुड़ी-सी क्यों हो ? जाड़ा लग रहा है ?"

हैमन्ती को जाड़ा लग रहा था। दोनों तलवे ठंडे हो गए हैं और बदन में सिहरन हो रही है।

"दवा-दारू कुछ खाई है ?" सुरेश्वर ने पूछा।

माथा झुकाया हैमन्ती ने : खाई है। उसकी तबीयत खराब है, यह जैसे सुरेश्वर को देरी से नजर आया हो। मन-ही-मन हैमन्ती ने कैसी विरक्ति बोध की।

"बिस्तर पर थी, बिस्तर पर ही जाकर बैठो न।" सुरेश्वर बोला।

"रहने दो। यहीं ठीक हूं।"

"तुम्हारी तबीयत खराब है, मुझे तो यह किसी ने नहीं बताया।"

"बताने लायक कुछ नहीं है।"

आदी नहीं हो; शुरू-शुरू में टंडन्बंड लगेगी, आदी होना होगा धीरे-धीरे।"
इतने में मालिनी आई। दो प्याले चाय लेकर आई है। ऐसा उसने अपनी
ा से नहीं किया है, थोड़ी देर पहले हैमन्ती ने उससे चाय के बारे में कहा था,
वर के आने के पहले ही। आम तौर पर इस समय एक बार वे लोग चाय
हैं। इसके सिवा हैमन्ती का गला थोड़ा-सा दुःख रहा था, फिर भी थोड़ा-सा
ी है।
सुरेश्वर ने चाय का प्याला हाथ में लिया और मुस्कराकर मालिनी से बोला
वमगल कर रही हो क्या ?"
मालिनी संकुचित हुई। बोली, "हेम दीदी ने पहले ही चाय पीनी चाही
"
"ओ ! तो रोज शायद तुम लोग गाना-वाना सुनती हो ?"
मालिनी ने मुंह नीचा किए थोड़ा-सा सिर झुकाया।
"हेम की तबीयत खराब है, यह तो तुमने मुझे नहीं बताया ?"
मालिनी चुप। हेम दीदी के बारे में दो-एक बातें पहले वह सुरेश्वर को
ती थी। हेम दीदी यह जान पाई थीं तो बहुत असन्तुष्ट हुई थीं। हेम दीदी
काम-बुखार के बारे में अवश्य उसने एक बार सुरेश्वर को बताने की सोची
उसके बाद फिर कहा नहीं पाई थी, बुखार उतर गया था इसीलिए शायद।
हैमन्ती के हाथ में चाय का प्याला देकर मालिनी चली गई धीरे-धीरे।
चाय पीते-पीते सुरेश्वर ने फिर हैमन्ती से बिस्तर पर जाकर बैठने को
। पर हैमन्ती नहीं उठी। एक समय लम्बे अरसे तक सुरेश्वर की आंखों के
ने वह बिस्तर पर लेटी-बैठी रही है, सुरेश्वर उसके सिरहाने कभी, तो कभी
र की बगल में बिस्तर पर बैठा रहा है। पर आज हैमन्ती की वह उम्र नहीं
वैसी हालत ही है।
सुरेश्वर ने इस बार बात उठाई बोला, "हेम, तुमसे मैं एक बात करने
। मगर तुम्हारे इस तरह बैठी रहने पर मैं कहूं कैसे।...तुम्हें वह कम्बल
?"
तमाम मामलों में सुरेश्वर की यह नम्र, मधुर, शिष्ट बातचीत व आचरण
समय हैमन्ती को पसन्द आता था। पर अब पसन्द नहीं आता है। अब लगता
ह एक प्रकार की कृत्रिमता है, आदमी को मोहित करने का, वश में करने का
न है। हैमन्ती सन्देह में पड़ गई। हठात् सुरेश्वर का यहां आना, आकर चुप
र गाना सुनना, गाना सुनकर उसका गुट भी कौतुक करता हुआ जरा गाना
, उसके बाद क्रमशः माहौल को अनुकूल बनाना और यह कहना—हेम, मैं
एक मामले में बात-चीत करने आया—इसका क्या अर्थ है ? काहे की बात-
?
हैमन्ती नितान्त बाध्य होकर बिस्तर के किनारे जाकर बैठी, बैठकर कमर
कर पैर तक कम्बल से ढक लिया।
सुरेश्वर बोला, "सुना कि तुमने अस्पताल में आंख दिखाने का एक अंधा-
ा समय कर दिया है ?"
हैमन्ती ने ताका, स्थिर नजर रखकर सुरेश्वर के मुंह का भाव देखा। —

यह बात है ? अस्पताल के मामले को लेकर बात करने आया है ? पता था, तुम आओगे, मन-ही-मन सोचा हैमन्ती ने, कैफियत मांगने आओगे।

"हां, मैंने समय बांध दिया है।" हैमन्ती ने कहा।

सुरेश्वर ने शान्त भाव से ही कहा, "तुम्हें जो बहुत दिक्कत हो रही थी,—यह तो मैं समझ ही पा रहा हूं। मगर, मैं कह रहा था, उन लोगों की बात सोचकर दूसरा कुछ नहीं किया जा सकता है ?" सुरेश्वर ने कुछ इस तरह से कहा, जैसे वह राय मांग रहा हो। लेकिन हैमन्ती यह जानती है कि राय लेने सुरेश्वर नहीं आया है, बल्कि अपनी राय व्यक्त करने आया है।

"नहीं, अब कुछ नहीं किया जा सकता है," हैमन्ती ने कड़े भाव से कहा। मन-ही-मन जैसे उसने तयकर लिया हो कि उसने जो स्थिर कर लिया है उसके लिए वह अन्त तक अड़ी रहेगी।

सुरेश्वर ने जोरदार गले से तो कुछ नहीं कहा, शान्त गले से हैमन्ती को जैसे समझा रहा हो, नरम गले से प्रायः अनुरोध करने जैसा बोला, "मैं जानता हूं हेम, उन्हें समय का ज्ञान कम है, लेकिन तुम तो यह जानती ही हो कि किस तरह से सब आते हैं, कितनी दूर-दूर से आते हैं। तरह-तरह के झंझट उठाकर आते हैं, उन्हें गाड़ी-वाड़ी नहीं मिलती है ठीक से।"

हैमन्ती विरक्त हुई, आखिर क्या कहना चाहता है सुरेश्वर ? तो क्या सारा दिन उन रोगियों को लेकर उसे रहना होगा ? हैमन्ती बोली, "अस्पताल का एक नियम होता है।"

"होता है, लेकिन वे सब हैं शहर के अस्पताल। इसे तुम वैसा क्यों समझती हो ?"

"तो कैसा समझूं ?"

"यह बहस की बात नहीं है, हेम। मैं सिर्फ उनकी असुविधाओं के बारे में तुम्हें बता रहा हूं। तुम अगर नियम ठीककर देने के पहले मुझे एक बार बताती तो…"

"न बताकर मैंने अन्याय किया है," हैमन्ती ने विरक्त गले से कहा, "लेकिन मेरे लिए अस्पताल को मिठाई की दुकान बनाकर रखना सम्भव नहीं है।"

सुरेश्वर के कपाल पर कई रेखाएं उभर उठीं। "तो क्या तुम हमारे अस्पताल को शहर का अस्पताल बना डालना चाहती हो ?"

"मैं कुछ भी नहीं चाहती। हर चीज के लिए एक नियम होना जरूरी है। मैं तुम्हारे रोगियों की नौकर नहीं हूं कि जब वे बुलाएंगे, मुझे भागना होगा। मेरे लिए नहाने, खाने-पीने और आराम करने का एक समय रखना जरूरी है।" हैमन्ती उत्तेजित हो उठी थी।

सुरेश्वर इस बार कैसा क्षुब्ध हुआ। बोला, "कितनी दूर से उस दिन दो आदमी आये थे और तुमने उन्हें लौटा दिया था। अपनी थोड़ी-सी असुविधा उठाकर भी क्या तुम उन्हें नहीं देख सकती थीं ?"

हैमन्ती को और सहन नहीं हुआ। प्रचंड विद्वेष व घृणा के साथ बोली, "नहीं मैं नहीं देख सकती थी। जाड़े का दिन है, मैं डेढ़-दो बजे नहाकर भात खाने बैठती हूं। उस पर भी तुम्हारे रोगी अगर आएं, तो मेरे लिए उन्हें देखना संभव नहीं है। तुम्हारे रोगी ही सिर्फ आदमी नहीं हैं, मैं भी आदमी हूं।"

सुरेश्वर न जाने कैसा विस्मित हुआ। ऐसे कठोर, निर्मम, निर्दय प्रत्युत्तर की जैसे उसने आशा नहीं की थी। बोला, "हेम, मैंने क्या तुमसे तुम्हारे लिए जो असाध्य है वह करने को कहा है? मैं तो सिर्फ यह कहने आया था कि तुम अपनी असुविधाओं के बारे में अगर मुझे बताती तो···"

"तुम्हें बताने की बात होती, तो बताती।"

सुरेश्वर सन्न रह गया। "तो अस्पताल के मामले में तुम मुझे नहीं बताओगी···?"

"नहीं। अस्पताल के रोगियों को मैं कब देखती हूं, कैसे देखती हूं, क्यों नहीं देखती हूं—यह सब मुझे तुम्हें बताने की कोई जरूरत है, ऐसा मैं नहीं समझती। मैं डॉक्टर हूं, मेरा अधिकार यदि तुम न मानो, तो मैं रोगी देखना बन्द कर दूंगी।"

सुरेश्वर स्तब्ध, निर्वाक् होकर बैठा रहा।

## सोलह

सुरेश्वर नीरव कुछ देर तक बैठा रहा, फिर उठा। उसके चेहरे पर न प्रसन्नता थी, न असन्तोष न विरक्ति। न सरल स्मित हंसी ही थी; कैसी एक गंभीरता गहरा उठी थी चेहरे पर। ऐसी गंभीरता में किसी आदमी का क्रोध या वितृष्णा भी प्रकट नहीं होती है; लगता है, अन्यमनस्कताबश और वेदनाजन्य एक मलिनता पैदा हो गई है।

हैमन्ती के कमरे से शान्त भाव से ही विदा लेकर सुरेश्वर बाहर चला आया।

बाहर ठंड बढ़ गई है। उत्तरैया ने अभी भी उतना बहना शुरू नहीं किया है; फिर भी आज हवा में धार थी, रह-रहकर उत्तरैया का झकोरा आ रहा था। अगहन खत्म होने वाला है, चारों ओर ओस की धूसरता जमा हो रही है, आकाश के तारे जैसे उतने नहीं चमक रहे हों। सुरेश्वर धीमे कदमों से चलने लगा, मानो ठंड में अकेले चहलकदमी कर रहा हो।

हैमन्ती के आज के व्यवहार से वह दुःखित है, शायद क्षुब्ध है। तो भी सुरेश्वर हैमन्ती के हित में सोच रहा था। दूसरे के प्रति विरक्त होने में श्रे: भी नहीं हो जैसे, इस प्रकार के मनोभाव के वशीभूत होकर वह ‍ सहृदय हो रहा था और यह सोचकर देखने की कोशिश कर रहा हैमन्ती इतनी कठोर हुई क्यों।

हेम ने जो असंगत कुछ कहा है, शायद ऐसी बात नहीं है, सुरे था, अस्पताल और मिठाई की दुकान दोनों कभी भी एक नहीं हो: कत्ता के अस्पताल में हेम को जैसी शिक्षा मिली है उसमें वह नियम जाना चाहती है, शायद नहीं जा सकती है। अस्पताल का बंधा-बंध रखना चाहती है। इसमें दोष की कोई बात नहीं है या उसने क्यों किया है। इसके अलावा, सुरेश्वर खुद भी यह समझता है कि हेम ‍ और स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, अनियम व अत्यधिक परि

हानिकारक है।

लेकिन, सुरेश्वर ने सोचा, हेम सहृदयता के साथ इस विषय पर विचार करने को क्यों राजी नहीं हुई? ऐसा अनिच्छुक आचरण उसका क्यों है? यदि वह अत्यधिक परिश्रम की बात उठाती है, तो उसे विचार करना चाहिए था कि यहां ऐसा रोज नहीं होता है, रोज ढेर सारे रोगी यहां आंख दिखाने नहीं आते हैं। सवेरे के वक्त दो-चार आदमी आते हैं, और दिन चढ़ने पर और भी कई आदमी आते हैं। मोटे तौर पर हिसाब लगाने पर, हो सकता है, देखने को मिले कि सारे दिन में आमतौर पर आठ-दस रोगियों से ज्यादा नहीं आते हैं। हाट लगने के दिन रोगियों की संख्या कुछ बढ़ती है। वैसे ही फिर बीच-बीच में सारे दिन में रोगियों की संख्या एक दो से ज्यादा भी जो नहीं होती है।

हेम को ये सब बातें सोचनी चाहिए थीं; सोच सकती थी कि किसी-किसी दिन जैसे उसे अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है, किसी-किसी दिन फिर उसके हाथ में काफी समय रहता है। वह आराम पाती है। इसके अलावा यह बात सही है कि यह कोई शहर-बाजार नहीं है, यहां आंख दिखाने आने की सोचने से ही कोई नहीं आ सकता है। आने-जाने की इस असुविधा पर उसे विचार करना चाहिए था। इच्छा रहने पर भी बहुत-से लोग जो निरुपाय होकर देरी से आते हैं, हेम क्या यह नहीं समझती है? या कि यह विचार करना उसकी जिम्मेदारी नहीं है?

सुरेश्वर ऐसा नहीं समझता है कि यह कोई गंभीर विषय या समस्या थी। मामूली बात थी, शायद तुच्छ बात थी। हेम अस्पताल का नियम रखना चाहती है, रखे, लेकिन उसके बंधे-बंधाए नियम में थोड़ा-सा इधर-उधर करके भी तो वैसा किया जा सकता था। सुरेश्वर ने सोचा था कि वह हेम से कहेगा : तुम बल्कि सवेरे के वक्त और भी थोड़ा पहले अस्पताल से चली आना, नहा, खा-पीकर और आराम करके दोपहर में फिर एक बार जाना और तीसरे पहर तक रहना।

सुरेश्वर की धारणा है कि मोटे तौर पर इस नियम से किसी को भी असुविधा होने का कोई कारण नहीं है। जिन रोगियों के आने में दिन ज्यादा चढ़ जाता है और जो दोपहर के वक्त आते हैं उन्हें हेम दोपहर-तीसरे पहर में देख सकती है। हाट लगने के दिन छिटपुट एकाध आदमी के आ धमकने पर भी हेम उसका इन्तजाम कर ले सकेगी।

ठंड में अंधेरे में चलते-चलते सुरेश्वर अपने कमरे के पास चला आया।

हेम बड़ी नासमझ हो उठी है। उसने अपने काम और अधिकार को लेकर आज जो कुछ कहा उससे सुरेश्वर नाराज हुआ है। सुरेश्वर वास्तव में ही अपना कोई अधिकार दिखाने नहीं गया था। अस्पताल के मामले में अपनी राय थोपने की बात भी उसने नहीं सोची थी। फिर भी हेम ने यह समझ लिया कि सुरेश्वर अपना अधिकार दिखाने आया है।...मेरा आश्रम है, मेरा अस्पाल है, मेरे कहे मुताबिक काम होगा—ठीक इस प्रकार का मनोभाव क्या सुरेश्वर ने कहीं प्रकट किया है? जान-बूझकर तो नहीं किया है, अनजाने में यदि किया हो, तो वह नहीं जानता है। हेम को सुरेश्वर ने बुलवा तक नहीं भेजा था, खुद आया था, कोई कैफियत नहीं मांगी थी, न कड़ी बात कही थी। फिर भी हेम ने उसे कुछ दूसरा समझा।

र किसी ने सुरेश्वर से इस तरह से नहीं कहा था, या यह समझाने का नहीं दिया था कि सुरेश्वर इस आश्रम को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति सम- । हेम ने घुमाकर यह बात समझाने की कोशिश की है। कहना चाहा है वर उसके अधिकार की सीमा लांघने गया था।

श्चर्य है ! आज चार वर्षों से तो सुरेश्वर को ऐसा नहीं लगा था कि आश्रम यह प्रभुत्व दिखाने का आनन्द पाना चाहता है ! या ऐसा भी उसे नहीं कि इस आश्रम के साथ उसका एक अद्भुत अहंकार जुड़ा हुआ है; और धिकार का यह जहां-तहां प्रयोग करने की अबाध स्वाधीनता भोग कर यह आश्रम मेरा है, मैं इसका मालिक हूं, मेरा तुम लोगों को सम्मान ाहिए—इस प्रकार की गदी, भद्दी कल्पना व आत्म सन्तोष का भाव क्या को किसी दिन हुआ है।

या हिलाया सुरेश्वर ने, नहीं, उसके मन में ऐसा कोई अहं-बोध नहीं है। रन्तु वह न जाने कहां कातर हुआ और सोचा, यदि ऐसा बोध मुझे न हो, की बातों से मैं विचलित क्यों हुआ ? तो क्यों मुझे तब लगा था कि कैसा न है हेम का, कैसा दुस्साहस है ! यद्यपि मैं तब स्तम्भित और निर्वाक् था, रे मन को न जाने किसने एकाएक बुरी तरह नाखूनों से खरोंच डाला था, ी रही थी; कैसा एक तप्त रोष मेरी आंखों व मुंह पर आ गया था। मैंने हने की कोशिश की थी, शायद मैं सफल नहीं रह सका था, हेम मेरे मुंह- ा भाव देख पायी थी।

ाखिर क्यों ऐसा होता है, क्यों ? सुरेश्वर मानो ग्लानि अनुभव कर रहा ाथा-मुंह नीचा किए सीढ़ियां चढ़कर बरामदे में पहुंचा।

रने समर्थन में उसे युक्ति नहीं है, ऐसा नहीं। हेम के तमाम व्यवहारों में का भाव था, निर्दयता थी; अविचार व अन्याय के लिए हेम पर उसका होना स्वाभाविक है। सुरेश्वर ने इस प्रकार की कठोरता की प्रत्याशा ी थी। फिर भी, सुरेश्वर को लगा—उसने हेम के आगे अपना प्रभुत्व प्रकट ला था। सुरेश्वर ने कहा था : 'अस्पताल के बारे में तुम मुझे नहीं बता- ''?' बाकी उसने नहीं कहा था, लेकिन समझ में आ जाता है कि सुरेश्वर ा चाहा था कि आश्रम में कहां क्या होना है, क्या हो रहा है, क्या होगा— छ उसे बताना जरूरी है; उसे बताए बिना, उसकी राय लिए बिना कुछ सकता है। हेम सुरेश्वर के इस प्रभुत्व अथवा कर्तृत्व का रूप समझ सकी झ सकी है इसीलिए समान उद्धत होकर अपने अधिकार की बात उठाई है।

मरे में आकर बैठा सुरेश्वर। लालटेन की रोशनी उतनी चमकीली नहीं है। र लगभग धुंधला-सा है, ठंड महसूस हो रही है, भरतू ने कमरे की एक रकर अन्य खिड़कियों को बन्द नहीं किया है, खिड़कियों से बाहर के अंधेरे ावा और कुछ नजर नहीं आता है।

जाने कैसे अपराधी की भांति बैठा रहा सुरेश्वर; उसे ग्लानि व पछता ा था। अभी वह यह स्पष्ट ही समझ पा रहा था कि हेम के आगे वह प ही विनीत, नम्र, सरल होकर उपस्थित हुआ हो, उसके अन्दर कहीं द

बुरा अहंकार था। आश्रम के मामले में उसका अधिकार ठुकराया जाना उसे सहन नहीं हुआ था, अच्छा नहीं लगा था। वह असन्तुष्ट व विरक्त हुआ था।

बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहकर सुरेश्वर ने अपनी विचलता दबाई। उसे लगा, हेम ने जैसी थोड़ी-सी ज्यादती की है, वह भी वैसी ही थोड़ी-सी ज्यादती कर रहा है। इतना कातर होने या ग्लानि बोध करने का कोई कारण नहीं है। आश्रम का भला-बुरा, रोगियों की सुविधा-असुविधा देखना उसका कर्तव्य है। हेम यदि अन्याय करती हो, यदि उसके काम-काज से रोगियों या अस्पताल का नुकसान होता हो, तो सुरेश्वर को उस विषय में कहने का अधिकार है। युगल बाबू या शिवनन्दन जी भी ऐसा कह सकते थे। युगल बाबू भी रोगियों को भगाने के मामले में सन्तुष्ट नहीं हैं। शिवनन्दन जी ने भी जिनसे अस्पताल का कोई सम्बन्ध नहीं है—यह सुनकर कहा था, काम उन्होंने अच्छा नहीं किया।

मन का क्षोभ व कातरता कम होने को आई, तो भी सुरेश्वर अनुभव कर रहा था, उसमें कहीं जैसे एक कांटा चुभा हुआ हो। पर यह कांटा है क्या, यह ठीक समझ में नहीं आ रहा था। हो सकता है, यह कांटा हैमन्ती से मिला अप्रत्याशित आघात हो, हो सकता है, हैमन्ती के आगे आज प्रकट हुई उसकी अपनी कोई दुर्बलता हो। कोई दूसरी चीज भी हो सकती है।

जीवन के जिन तमाम मोटे तारों को सुरेश्वर ने मोटे तौर पर एक संगति में बांध डाला था या बांधने की कोशिश करता आ रहा था उनमें से कोई एक तार सुरेश्वर के बांधे परदे को छोड़कर एकाएक टूटकर उछल उठा आज। वह क्या है ? अहंकार है ?

अहंकार सुरेश्वर में बराबर ही था, बचपन से ही। सम्भवत: मां के चरित्र से उसे यह अहंकार-बोध मिला था। पिता में जिस प्रकार का अहंकार था वह साधारण अहंकार था, धन व वंश-मर्यादा का अहंकार था, किन्तु मां का अहंकार था अन्य प्रकार का। रूप के लिए मां को कोई अहंकार नहीं था, क्योंकि असामान्य रूप के बावजूद मां उस रूप में पिताजी को बांधकर नहीं रख सकी थी। हो सकता है, इसलिए रूप के मामले में मां हताश हो गई थी। मां का अहंकार था दूसरी जगह और वह था अद्भुत। मां हठात् ऐसा कुछ कर बैठती थी जो साधारणत: लोग नहीं करते हैं। यह बात ठीक है कि मां का स्वभाव मनमौजी था, और मां ठीक प्रकृतिस्थ नहीं रहती थी सब समय; तो भी मां संसार में कोई-कोई ऐसा आश्चर्य-जनक कांड कर बैठती थी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। अपने जीवन में भी मां ने ऐसा किया था। बीनू मौसी को जब एक बहुत बुरी बीमारी हुई, तो मां उसे अपने कमरे में ले आई और उसे अपने बिस्तर पर सुलाया। महीने भर बीनू मौसी की बीमारी के साथ मां की जैसी दोनों वक्त लड़ाई चली। बीनू मौसी चंगी हो उठी, तो मां ने अपने दो भारी-भारी गहने उसके हाथ में देकर कहा, 'जा, अब धरम-करम कर, दूसरे के घर तूने बहुत दिन बिताए। तू जा—मैं तुझे हर महीने बीस-पच्चीस रुपए दूंगी। किसी के घर महरीगीरी मत करना, हराम-जादी, मेरी कसम रही। जा।'···पर बीनू मौसी थी कि जाने का नाम नहीं ले रही थी, मां ने उसे जोर देकर भेजा। लोगों ने कहा था : एक महरी के लिए आखिर इतनी हमदर्दी क्यों दिखाई जा रही है ?···बीनू मौसी यद्यपि ठीक महरी नहीं थी, फिर भी मां की अपनी दासी तो थी ही। बीनू मौसी को पुरी भेजकर मां

प्रायः ही कहा करती थी : "बीनू मुँहजली जब तक जिएगी तब तक मेरी बात सोचेगी, समझा।" ऐसा बहुत किया था माँ ने, किसी की बेटी के ब्याह में अपने गहने दे दिए थे, किसी को आश्रय दिया था बाहरी घर में बराबर के लिए, किसी को फिर मामूली कारण से दुतकारकर भगा दिया था। सच तो यह है कि अपने जीवन में माँ ने इस अद्भुत अहंकार के चलते अपने पति तक को अन्य रमणी के साथ रहने को छोड़ दिया था।...इस अहंकार में माँ की एक आश्चर्यजनक आत्म-तृप्ति थी। वह सोचती, यह सब करने से माँ की मर्यादा बढ़ेगी, लोग माँ का गुण-गान करेंगे। लेकिन ऐसा गुणगान बीनू मौसी को छोड़ और किसी ने नहीं गाया। बीनू मौसी अभी भी जिन्दा है, बूढ़ी हो गई है, पुरी में ही रहती है, सुरेश्वर को कम-से-कम साल में दो-एक बार चिट्ठी भी लिखती है। विजया के बाद बीनू मौसी की चिट्ठी आती है : बेटा सुरेश, मेरा विजयादशमी का आशीर्वाद लेना...। ...बीनू मौसी यहाँ आना चाहती है, पर सुरेश्वर उसे नहीं लाता है। इतने दिन जिसके पुरी में बीते, उसे यहाँ लाना कष्ट देना है।

माँ के इस अहंकार को पिताजी ने भी कोई मूल्य नहीं दिया था। यहाँ तक कि उन्होंने किसी दिन यह अनुभव भी नहीं किया था कि उनकी अप्रकृतिस्थ पत्नी ने उन्हें कामवासना को शान्त करने के लिए जो अपार स्वाधीनता दी थी उसके लिए उन्हें कृतज्ञ रहना चाहिए था। पिताजी कभी-भी माँ के प्रति कृतज्ञ नहीं थे। सिर्फ माँ के निधन के बाद पिताजी ने माँ के कमरे में बैठकर आँसू बहाए थे।

यह अहंकार-बोध सुरेश्वर पर भी बचपन से अधिकार किए बैठा था। दबी हुई वेदना की तरह यह उसका दबा हुआ अहंकार था। बाद में उम्र बढ़ने पर सुरेश्वर को लगा था, यह अहंकार उसके जीवन में भी आत्मतृप्ति का कारण है, और यही बोध उसका अभिमान है। पिता की उपपत्नी व उसकी सन्तान को जब सुरेश्वर ने सम्पत्ति के हिस्से के रूप में [illegible] अहंकार व अभिमान बोध किया था। [illegible] होता है—यह जैसे उसने समझाना [illegible] के हाथों सौंपकर अपने अहंकार में आत्म-परितृप्ति प्राप्त की थी, उसी प्रकार सुरेश्वर ने अपने वाजिब हक में से थोड़ा-सा अनायास छोड़ देकर अभिमान की रक्षा की थी व आत्मतुष्टि प्राप्त की थी।

तो क्या हैमन्ती की बीमारी के समय भी सुरेश्वर ने जो कुछ किया था वह अहंकारवश किया था?

सुरेश्वर फिलहाल चाहे किसी भी कारण से हो, यह अब सोचना नहीं चाह रहा था। सम्भवतः यह विषय और भी जटिल है, और जटिल है, इसीलिए निःसंशय कुछ कहा नहीं जा सकता है, ऐसा सोचना भी उचित नहीं है। बहुत समय कर्तव्य का पालन करके मनुष्य आत्मतृप्ति पाता है, सहायता करके भी सुख या आनन्द पाता है। इस तरह से देखने पर यही अजीब युक्ति माननी पड़ती है कि मनुष्य एक प्रकार का सुखान्वेषी यन्त्र के सिवा और कुछ नहीं है, उसका हर काम ही यांत्रिक है। घड़ी की सुइयों की भाँति वह सिर्फ घूम सकता है, जब तक है, जब तक कल-पुर्जे नहीं बिगड़ते हैं। और ये कल-पुर्जे भी बने-बनाए हैं, करके बिठाये हुए हैं। इस प्रकार की युक्ति में सुरेश्वर की कोई आस्था इ[illegible] समय नहीं रही है। जाड़े से ठिठुरते गरीब, निराश्रय भिखारी को आश्रय [illegible]

या उसे एक रुपया देने पर आत्मतृप्ति होती है, और आत्मतृप्ति होती है, इसीलिए मेरा दया-बोध जागता है, ऐसी निर्मम युक्ति स्वीकार नहीं की जा सकती है। उस तरह से विचार करने पर मनुष्य के लिए कुछ नहीं रहता है, सभी कुछ एक आत्म-तृप्ति का हेतु बन जाता है: दया, धर्म, प्रेम, करुणा, ममता-भला क्या नहीं।···हेम की या हेम के परिवार की मदद करने के पीछे सुरेश्वर का कोई गुप्त क्रय-विक्रय था—ऐसा उसे नहीं लगता है। उसे लगा था, मदद करना उसका कर्त्तव्य है; उसे लगा था, हेम को वह प्यार करता है, उसे लगा था—उसके लिए हेम के जीवन का मूल्य है। और यह बात भी ठीक है कि मदद करके, प्यार करके, हेम के जीवन के लिए मूल्य आरोपित करके उसने सुख पाया था। यदि कोई यह समझे कि सुरेश्वर का यह सभी कुछ अहंकार-बोध से आया है, तो हैमन्ती की आज की बातों को सुरेश्वर अभी और बारीकी से न सोचकर हैमन्ती के आज के व्यवहार से जो कुछ समझ में आया है, उसके बारे में सोचने लगा।

हेम न तो उसके प्रति सन्तुष्ट है न आश्रम के प्रति ही। इस असन्तोष और विरक्तिवश वह असन्तुष्ट हो उठी है। वह क्षुब्ध है, अप्रसन्न है। आजकल सुरेश्वर के साथ उसका सम्बन्ध कैसी एक होड़ में पहुंच रहा हो जैसे। कम-से-कम आज के आचरण से लगता है, हेम ने जो कुछ किया है वह सुरेश्वर की अवज्ञा करने के लिए, उसे दुःख पहुंचाने के लिए। ऐसी होड़ की कोई जरूरत नहीं थी। मगर हेम क्रमशः कैसी ऊबती जा रही है, और जान-बूझकर वह सुरेश्वर व इस आश्रम से कतरा कर अपनी अवज्ञा समझाना चाह रही है।

आखिर हेम क्यों अकारण ऐसी अशान्ति पैदा कर रही है, यह सुरेश्वर की समझ में नहीं आया। अच्छा न लगने पर वह चली जा सकती है, कोई उसे जबरन पकड़कर नहीं रखेगा।

## सत्रह

बरामदे में खड़ी होकर मालिनी को पुकारा हैमन्ती ने।

जाड़े की गहरी दुपहरी की निविड़ता के इस बार जैसे दूर हो जाने का समय आया हो, धूप निष्प्रभ व पीली होने को आई। मालिनी के कमरे की ओर पश्चिम में झुककर बरामदे में धूप पड़ी हुई है।

मालिनी की कोई आवाज नहीं आई। हैमन्ती ने फिर पुकारा।

उत्तरैया में आज बड़ी धार है। आजकल दोपहर खत्म होने के पहले से ही उत्तर से हवा आना शुरू करती है। हवा का झकोरा आ रहा है। झुंड बांधकर फतिंगे और तितलियां उतरी हैं मैदान में; मैदान की धूप में, घास की फुनगियों पर, फूलों के पौधे के झुरमुट पर फतिंगे और तितलियां उड रही थीं। तोता बोल रहा था।

दो बार पुकारने के बाद मालिनी बाहर आई। जाड़े की दुपहरी में सो रही थी, आंखें सूज गई हैं; नींद से उठकर आने की वजह से लम्बी-लम्बी जंभाई ले रही थी।

"चलना हो, तो जल्दी करो। लगभग तीन बजने हैं।"

स्टेशन जाने की बात करने पर मालिनी हरदम पैर टटाए रहती है। लेकिन के पहले सुरेश्वर से पूछना उसकी आदत है। दूसरे दिन हेम दीदी पहले ही रखती थी, मालिनी भी अनुमति लेकर रखती थी सुरेश्वर की, हाथ का काम भी निबटा रखती थी। पर आज एकदम फट-से कहना होगा, हाथ में समय नहीं है, भैया, हो सकता है, अभी आराम कर रहे हों, काम-धाम भी कुछ टा नहीं रखा है उसने। मालिनी ने आगा-पीछा किया, वह जाना तो चाहती लेकिन 'हां' नहीं कह पा रही है।

मालिनी के मुंह की ओर ताककर हैमन्ती ने कहा, "क्या सोच रही हो ?"

"नहीं, कुछ नहीं सोच रही हूं—" मालिनी ने माथा हिलाया। "भैया से तो कहा नहीं है हेम दीदी। मैंने काम निबटाया भी नहीं है।"

"ओ ! तो फिर रहने दो; तुम्हें जाने की जरूरत नहीं।" हैमन्ती ने और जार नहीं किया; उसके हाथ में तौलिया है, गुसलखाने की ओर चली गई।

मालिनी बड़ी दुविधा में पड़ी। हेम दीदी अकेले जाएगी, यह क्या अच्छा गा ? भैया, हो सकता है, गुस्सा करें। हेम दीदी जो अकेले कभी भी स्टेशन गई हैं, ऐसी बात नहीं, उस बार तो गई थी। भैया तनिक नाराज हुए थे। सारी किताबें, कुछ चीज-वस्त लेकर हेम दीदी वापस आईं, तो भैया की नजर गई थी। हेम दीदी के अकेले इतनी चीज-वस्त ढोकर लाने की वजह से भैया रने में मालिनी से कहा था, तुम साथ गई होती, तो अच्छा करती।

मालिनी साथ तो जा ही सकती थी; किन्तु उस दिन बहुत सारे काम थे हाथ हेम दीदी ने भी हठात् जाना स्थिर कर डाला था। आज भी वैसा ही किया है। दूर से लेटे-लेटे, हो सकता है, एकाएक दिमाग में कीड़ा घूमा हो, स्टेशन ऊंगी, वैसे ही फौरन तैयार। अथवा पढ़ने की किताबें खत्म हो गई होंगी, चीज- भी कुछ खरीदनी होंगी, स्टेशन जा रही हैं।…सो जाए, पर अभी क्या किया र ? चली जाए मालिनी ? भागकर एक दौड़ में जाकर भैया से कह आए ? र के काम निबटा देने के लिए और किसी से कहे ?

इतनी जल्दी सब कुछ नहीं हो सकता है। हाथ का काम अवश्य ऐसा कुछ है कि जिसमें से दो-एक झटपट निबटाकर, बाकी परबतिया के हाथ में देकर चली नहीं जा सकती है ! मगर भैया ? भैया से कहे बिना वह जाए, तो जाए ?

हैमन्ती गुसलखाने से लौटी, मुंह-आंख भीगा है, कपाल और कानों के पास के रनीब बालों में पानी की बूंदें हैं, गले के नीचे साबुन का थोड़ा-सा झाग है।

हैमन्ती समीप आई, तो मालिनी बोली, "हेम दीदी, आप तैयार होती रहिए, एक दौड़ में भैया से एक बार कह आती हूं।"

हैमन्ती ने जाते-जाते ही जवाब दिया, "रहने दो।"

मालिनी की बगल से होकर चली गई हैमन्ती। मालिनी ने अबकी बार कहा, ाय पीकर नहीं जाइएगा ?"

"समय नहीं है—"

"पानी चढ़ा दे रही हूं, आपके कपड़े बदलते-बदलते चाय बन जाएगी।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया, कमरे में घुस गई।

यह एक परेशानी है मालिनी की। हेम दीदी ने शायद गुस्सा किया। सचमुच गुस्सा करने की बात ही है। हेम दीदी क्या उस-जैसी हैं, जो अभी लट्ठा तक अकेले खटखट करके पांव पैदल जाएंगी, हाथ में, हो सकता है, ढेर-सारी किताबें हों, उसके बाद लट्ठा के मोड़ पर जाकर मुंह बाये बस के लिए खड़ी रहना होगा, देहात के रहनेवाले भला हेम दीदी को पहचान गए हैं, ताक-झांक करेंगे आव-भगत दिखाएंगे, पान की दुकान से टूटी-फूटी टीन की कुर्सी लाकर रास्ते के सामने बिछा देंगे बैठने के लिए।

मालिनी ने कमरे में आकर जल्दी से चाय का पानी चढ़ा दिया स्टोव पर। चाय का पानी चढ़ाकर मुंह-आंख धो आने गई।

हैमन्ती प्रायः तैयार हो ली है। मालिनी चाय ले आई।

अवनी के पास से लाई छः एक किताबें चमड़े के बड़े काले बैग में भर ले रही है हैमन्ती। मालिनी ने खड़े-खड़े देखा दो क्षण, उसके बाद बोली, "आप चाय पीजिए हेम दीदी, मैं तैयार हो रही हूं।"

हैमन्ती ने पीछे मुड़कर मालिनी की ओर नहीं ताका, न जवाब ही दिया।

मालिनी क्या करे, कुछ समझ नहीं पाई; उसे लगा, हेम दीदी ने गुस्सा किया है। आना-कानी करके मालिनी ने फिर कहा, "आपके चाय पीकर तैयार होते-होते मैं भी तैयार हो जाऊंगी। आप बल्कि बैग मुझे देकर आगे बढ़ते रहिए, मैं रास्ते में आपको पकड़ लूंगी।"

"रहने दो, तुम्हें जाने की जरूरत नहीं," हैमन्ती ने इस बार जवाब दिया।

मालिनी खामोश रही। उसके बाद धीरे से बोली, "आप अकेले जाएंगी ?"

"क्यों, अकेले जाऊंगी, तो क्या होगा ?" हैमन्ती ने दीवार पर टंगे आईने के पास जाकर चेहरा देखा और सिर के बालों को थोड़ा-सा ठीक कर लिया।

"लौटने में तो रात हो जाएगी।" डरते-डरते मालिनी ने कहा।

"यह तो मुझे सोचना है।"

मालिनी समझ नहीं पाई कि उसने ऐसा क्या किया है जिसके चलते हेम दीदी उस पर इतनी गुस्सा हो गईं। हेम दीदी आज कई दिनों से कैसी अजीब गुस्से से भरी हुई हैं।

हैमन्ती जल्दी-जल्दी चाय पीने लगी। चाय पीते-पीते ही गरम कोट खींच लिया और बिस्तर पर रखा।

इस बार सरल ढंग से मालिनी ने कहा, "हेम दीदी, आप अकेले स्टेशन जाएंगी, तो भैया गुस्सा करेंगे।"

हैमन्ती ने मानो ठिठककर मालिनी के मुंह की तरफ ताका, आंखें लक्ष्य कीं। चेहरे की गंभीरता और भी गहराने को आई; आंखों की पुतलियां चमकीं।

मालिनी कुछ समझ नहीं पाई, निहारती रही सरल ढंग से ही।

हैमन्ती विरक्त भाव से बोली, "तो क्या तुम्हारे भैया ने मेरे साथ-साथ तुम्हें घूमने को कहा है ?"

ता क्या सुरेश्वर हेमन्ती की आशा-आकांक्षा को दबा-दबा करना चाहता है ?
ी का चेहरा लाल हो उठा गुस्से के मारे, मुंह-आंख में गरमी लगी आंच की।
नी के सामने अपने आपको यथासाध्य संयत करती हुई हेमन्ती बोली, "तुम
, मालिकी मत करो।"
मालिनी कैसी विमूढ़ होकर खड़ी रही कुछेक क्षण, उसके बाद अपराधी की
मुंह नीचा किए चली गई।
थोड़ी देर तक हेमन्ती कैसी निस्पन्द होकर खड़ी रही, कुछ सोच नहीं सकी।
नहीं थी। खिड़कियां बन्द कर दीं, दरवाजे का ताला ढूंढ लिया। गरम कोट
में लटका लिया, हाथ में बैग लिए बाहर आई। ताला लगाया दरवाजे में।
ती ही साधारणत. उसका घर-द्वार बन्द करती है, दरवाजे में ताला लगाती
ाबी रखती है। पर आज हेमन्ती ने अपने ही हाथों सब कुछ किया, मालिनी
ड़ी दूर पर अपने कमरे के पास बरामदे में खड़े-खड़े देखा। ताले की चाबी
नहीं दी हेमन्ती ने। सब कुछ देख-सुनकर भी जैसे हेमन्ती ने कुछ नहीं देखा
ालिनी की उपेक्षा करके वह मैदान में उतर गई, मैदान से होकर अन्धाश्रम
टक की ओर चली गई, उसके बाद उस पार जामुन के पेड़ के पास वाले
पर।



पिछले कई दिनों से हेमन्ती को चैन नहीं मिल रहा है। मन के अन्दर जैसे
जमा हो गया हो, वह गुस्सा है या क्षोभ या विरक्ति या मलिनता या दुःख
 पछतावा, यह समझ में नहीं आता था। अपना सही मनोभाव खुद को
ातर समय समझ में नहीं आता है। कभी हेमन्ती को लगता, यह क्षुब्ध और
 खाई हुई है, कभी लगता, सुरेश्वर से उसके निपटारे की एक जरूरत थी,
यह दबा हुआ कलह या होड़ मानो उसकी शुरुआत हो। बीच-बीच में फिर
भी लगता कि उस दिन झोंक में आकर हेमन्ती ज्यादा कठोर हो गई थी।
ी कठोर उसे नहीं होना चाहिए था शायद। हालांकि अपनी ओर से हेमन्ती
 खास दोष भी ढूंढ नहीं पाती थी। उस दिन उसका दिमाग गरम हो गया था,
ादमी का दिमाग गरम होता है, इसमें शर्म से मरने की क्या बात है ! सभी
 तो सुरेश्वर नहीं हैं कि वे पेड़-पत्थरों की तरह सहिष्णु होंगे, शान्त होंगे।
 सुरेश्वर ऊपर से जितना धीर-स्थिर शान्त भाव दिखाता है भीतर से वह
ा धीर-स्थिर शान्त है नहीं। सुरेश्वर की दृष्टि में विरक्ति और गुस्सा हेमन्ती
 दिन लक्ष्य किया था। उसकी बातों से सुरेश्वर असन्तुष्ट हुआ था, मन-
न बांध लिया था। हेमन्ती को सन्देह नहीं कि सुरेश्वर इस आश्रम के सब
धीनता चाहता है, सम्मान चाहता है, और यह न मिलने पर आत्ममर्यादा में
त पाता है।
ऐसी मर्यादा हेमन्ती की भी न होने का कोई कारण नहीं है। सुरेश्वर अपनी
दा के विषय में यदि इतना सचेत हो सकता है, तो दूसरे की मर्यादा के बारे में
पेक्षित भाग क्यों नहीं होगा ? हेमन्ती को सही मर्यादा क्या वह देना चाहता

गुरुडिया के कच्चे रास्ते को पकड़कर लट्ठा की राह पर चलते-चलते हैमन्ती बेतरतीब ढंग से ये बातें सोच रही थी। जाड़े की इस सूनी दुपहरी में राह चलने में उसे बुरा नहीं लग रहा था। पहले अकेले इस तरह से सूने में चलना उसे अच्छा नहीं लगता था, या इतनी दूर चलने की आदत उसकी नहीं थी। पर आजकल हैमन्ती की मोटे तौर पर आदत हो गई है। वह चल सकती है, उसे अच्छा भी लगता है।

तो क्या सुरेश्वर उसका अकेले स्टेशन जाना पसन्द नहीं करता है ? आखिर क्यों ? मालिनी उसके साथ-साथ रहेगी, यही क्या सुरेश्वर की इच्छा है ? या कि आदेश है ? भला ऐसा कैसे हो सकता है, यदि ऐसा होता, तो मालिनी उसके साथ आज जा सकती थी। मैया की बड़ी गुलाम है मालिनी। अनुमति लिए बिना आश्रम के बाहर कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं करती है। मालिनी ने अनुमति नहीं ली थी, इसलिए जाने की हिम्मत नहीं की। आखिरकार जो जाना चाहा था वह शायद उसी डर से कि अगर सुरेश्वर गुस्सा करे !

चिन्ता कैसी जटिल होकर धागे के उलझने की तरह उलझ जाने लगी। किसी-किसी समय चिन्ता की झोंक के गन्दी हो उठने का उपक्रम हो रहा था। धागे का उलझाव हाथों से खोलते वक्त खोल न पाने पर बार-बार की कोशिश से जैसे उंगलियों का मैल लगने से कोई-कोई जगह काली-सी हो जाती है उसी प्रकार तरह-तरह से चिन्ता को सुलझाते वक्त कहीं-कहीं मन का मैल लग रहा था। हैमन्ती का हरदम छाया की तरह पीछा करने को कहने जैसा मन सुरेश्वर का नहीं है। स्टेशन वह बीच-बीच में जा रही है, इसलिए सुरेश्वर मालिनी को हैमन्ती के ऊपर नजर रखने के लिए कहेगा—ऐसा बुरा और गंदा सुरेश्वर न कभी था न कभी होगा। उसकी ईर्ष्या या सन्देह का···

ईर्ष्या या सन्देह शब्द मानो दिमाग में कौंध की तरह आया। बहुत समय जैसे आंखें फेरते वक्त या किसी दूसरी ओर ताकते वक्त सहसा धूप की कोई कौंध या प्रतिबिम्बित प्रकाश का तीर आकर आंखों की पुतलियों में लगता है और आंखें कैसी हो जाती हैं उसी तरह मन में और चिन्ता में ईर्ष्या व सन्देह शब्द तीर की मानिंद आकर लगा। हैमन्ती कैसी बेहोशी में रास्ते के बीच खड़ी हो गई, बेहोश-सी, न कुछ देख पाई न कुछ सोच पाई, सांस लेना भी जैसे भूल गई। उसके बाद एकाएक कलेजे में तकलीफ अनुभव की, तो नजरें उठाकर रास्ता और पेड़-पौधे देखे, सांस ली। एक बैलगाड़ी आ रही है, लट्ठा बहुत दूर है, सनसनाती हुई हवा बह रही है, शाल की पौदों के झुरमुट के ऊपर से होकर जंगली मुर्गी फड़फड़ाती हुई उड़ गई।

ईर्ष्या, सन्देह···! किस पर ईर्ष्या, किस विषय में सन्देह ?

मन-ही-मन अवनी का चेहरा देख पाई हैमन्ती। इन दिनों अवनी के साथ उसका मेल-जोल बहुत सहज स्वाभाविक होता जा रहा है। भेंट-मुलाकात हो रही है। हैमन्ती स्टेशन जाती है, अवनी भी आता है; लेकिन बिलकुल हाल में काम-काज के चलते अवनी उतना नहीं आ पा रहा है। हैमन्ती आज भी अवनी के पास जा रही है। सिर्फ अवनी के पास नहीं जा रही है, बल्कि उसे कुछ खरीदारी करनी है; रेडियो की बैटरी, एक क्रीम, लगाने का तेल, ओवलटिन—यही सब।

हैमन्ती डग भरने लगी। अभी उसे कैसा अजीब-सा लग रहा था। सुरेश्वर

में ईर्ष्या या सन्देह नामक कोई चीज हो सकती है, ऐसा सोचा नहीं जा सकता है। भला किस कारण से ईर्ष्या होगी उसे ? अवनी के साथ हैमन्ती के मेल-जोल से उसका कुछ आता-जाता नहीं है, कुछ आता-जाता है क्या ! सुरेश्वर न्यायत: व संगत भाव से अवनी के प्रति ईर्ष्या बोध नहीं कर सकता है, उसे हैमन्ती पर संदेह भी नहीं होना चाहिए। सच तो यह है कि आज हैमन्ती और सुरेश्वर के बीच जो सम्बन्ध है उसमें हैमन्ती और किसी के भी साथ किस तरह से मिल-जुल रही है, किस प्रकार की घनिष्ठता हो रही है उनमें, इससे क्या आया-गया उसका ! अगर प्यार की भी बात हो, तो हैमन्ती ने किसी और को प्यार किया या न किया, इसे लेकर सुरेश्वर को जलन होने का कोई कारण नहीं है।

चिन्ता इस बार मानो कौतुक-जैसी हो उठी हो। हैमन्ती ने अपनी इस हास्यास्पद चिन्ता से हल्की होकर हंस पड़ना चाहा। हालांकि हंसना चाहकर भी हंस नहीं सकी, कहीं जैसे एक बाधा आई, मगर किस बात की बाधा ?

ऐसा तो हो सकता है कि—हैमन्ती ने सोचा : सुरेश्वर अभिभावक के रूप में जिम्मेदारी निभा रहा है। यहां हैमन्ती का कोई नाते-रिश्तेदार नहीं है, वह अकेली है; सुरेश्वर ही उसे इस जंगली इलाके में लाया है, अत: हैमन्ती के प्रति उसकी जिम्मेदारियां व कर्तव्यबोध है। सुरेश्वर उस दायित्व-बोध के चलते उसका अभिभावक है, और उसी रूप में हैमन्ती पर ध्यान रखता है।

किन्तु हैमन्ती को सोचते नहीं बनता कि आखिर यह किस प्रकार का अभिभावकत्व है कि उसके व्यक्तिगत विषय पर सुरेश्वर नजर रखे ? हैमन्ती बच्ची नहीं है, या वह सुरेश्वर के टुकड़े पर नहीं जीती है कि सुरेश्वर उसके चलने-फिरने-घूमने अथवा किसी के भी साथ मिलने-जुलने पर आंख रखेगा।

मन-ही-मन जो कौतुक का भाव आया था थोड़ी देर पहले, वह भाव अब नहीं रहा हैमन्ती का। बल्कि वह नाराज हो उठी फिर। सुरेश्वर ऐसा नहीं हो सकता है, उसके मन में निश्चय सन्देह या ईर्ष्या नहीं हो सकती है, पर होती, तो शायद अच्छा ही होता। —असल में हैमन्ती पर सुरेश्वर एक प्रकार का कर्तृत्व व प्रभुत्व दिखाना चाहता है। वह समझाना चाहता है कि वह हैमन्ती का अभिभावक है, उसके भले-बुरे का मालिक है।'' यह चिन्ता बुरी लगी उसे, और हैमन्ती ने हठात् सुरेश्वर के प्रति तीव्र घृणा अनुभव की। तो क्या उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता, इच्छा, रुचि और मन पर अन्धाश्रम के मालिक का मालिकाना अधिकार रहेगा ? मुझे क्या तुमने अपने आश्रम का घर-मकान, ताल और महरी-नौकरानी समझ रखा है ? या मैं बेवकूफों की तरह तुम पर विश्वास करती आ रही थी मैंने तुम्हें प्यार किया था—उसके बल पर तुम मेरे जीवन-मरण के मालिक बन गए हो ?

मैदान के ऊपर से होकर कुछ धूल और कुछ सूखे पत्ते उड़कर आए। सामने मट्टा का मोड़ है। हैमन्ती एकाएक कैसे जोर-जोर से चलने लगी, कपाल के दोनों ओर बड़ी गरमी लग रही थी। सूर्य बिलकुल मुंह-दर-मुंह है। माथे में धूप लग रही थी, इसलिए हैमन्ती इस सुनसान में माथे पर पल्लू रखकर चल रही थी, अबकी बार पल्लू गिरा दिया माथे पर से।

दूर पर बस आ रही है। समय पर पहुंच गई है हैमन्ती। एकाएक हैमन्ती को एक अजीब बात याद हो आई। अगर आज वह अवनी के घर से न लौटे, तो क्या करेगा सुरेश्वर ? वह क्या कर सकता है ?

## अठारह

अवनी बोला, "आइए, मुझे लग रहा था कि आज आप आएंगी।"

अवनी के मुस्कान-भरे चेहरे और सरल दृष्टि को लक्ष्य करते-करते हैमन्ती ने आखिरी सीढ़ी चढ़कर बरामदे में कदम रखा। "कैसे लगा कि मैं आऊंगी ?"

"इंट्यूशन से।" अवनी ने हंस-हंसकर ही कहा।

बरामदे में बैठा जा सकता था, मगर ज्यादा देर तक बैठा नहीं रहा जा सकता था। अभी शाम ढलती जा रही है, इसी दम देखते-देखते अंधेरा हो जाएगा, ठंड और हवा बदन में चुभेगी। हैमन्ती बरामदे में खड़ी हो गई। बोली, "मैं बाजार में उतरी थी, बैटरी वैटरी खरीदनी थी।" कहकर हैमन्ती क्षण भर के लिए रुकी, अवनी की आंखें देखीं, उसके बाद हंसकर बोली, "वहां आपके महिन्दर को देखा, साइकिल पर सवार होकर आ रहा था।"

अवनी ने तुरन्त माथा हिलाया। "अरे, नहीं नहीं, महिन्दर ने मुझे कुछ नहीं बताया है, मुझे पता ही नहीं है कि वह बाजार गया था।"

हैमन्ती ने इस बार आंखों को तनिक मटकाया। "तब तो आपके इंट्यूशन पर विश्वास करना ही पड़ता है।"

दोनों ही मुस्कराए।

अवनी ने कहा, "आज मैंने एक बार उधर जाने की सोची थी। उसके बाद पता नहीं कैसे लगा कि आप आ सकती हैं।"

"सोचा था जब, तो आइएगा—" हैमन्ती ने होंठों पर मीठी-सी मुस्कान बिखेरी। "मेरी किताबें खत्म हो गई हैं—" हैमन्ती ने कुछ इस ढंग से कहा जिससे लगता है कि किताबें खत्म हो जाने पर उसके लिए आए बिना उपाय क्या है। अवश्य ऐसा कहना उतनी कैफियत-सा नहीं लगा।

अवनी बोला, "इतनी जल्दी क्यों पढ़ डालती हैं ?"

"क्यों ?"

"आप इस तरह से पढ़ेंगी, तो मैं और ज्यादा दिनों तक किताबें सप्लाई नहीं कर सकूंगा।"

"वह तो बाद की बात है—"

"आप जरा और इत्मीनान से पढ़िएगा," अवनी ने मुस्कराकर कहा, मगर कुछ इस ढंग से कहा जिससे समझ में आता है कि उसकी बातों में एक कौतुक-भरा इंगित है। अवनी ने मानो परिहास करते हुए यह समझाना चाहा कि इतनी जल्दी सारी किताबें खत्म हो जाएंगी, तो हैमन्ती भला क्यों यह घर आएगी !

हैमन्ती ने इस बात पर कान दिया या नहीं दिया, कुछ समझ में नहीं आया।

बैठक में आकर बैठी हैमन्ती। बत्ती जला दे या न जला दे—सोचते-सोचते अवनी खिड़की के निकट जाकर खड़ा हो गया। "सुरेश्वर बाबू की क्या खबर है ?"

हैमन्ती ने पहले-पहल कोई जवाब नहीं दिया, बाद में उदासीन मन से बोली "अच्छी है।"

अवनी हैमन्ती की ओर निहार रहा था। कहने का ढंग उसके कानों में गूंजा। उसने बाहर ताका; जाड़े का अपराह्न बीत चुका है, कहीं धूप नहीं है, प्रकाश का थोड़ा-सा आभास अभी भी है, पेड़-पौधे लगभग काले-से होने को आए, छाया गहराकर मैली होती जा रही है। यह समय अवनी की आंखों में हरदम विषण्ण-सा लगता है, खासकर जब वह अकेले रहता है, अकेले देखता है। हैमन्ती की बात से अवनी को लगा, जवाब बहुत निस्पृह है; पहले इस तरह से जवाब खास देती नहीं थी हैमन्ती, पर अब देती है; अब वह आश्रम के बारे में अपनी विरक्ति या उदासीनता अवनी को बताने में भी नहीं हिचकती है। किन्तु सुरेश्वर के बारे में ज्यादातर समय हैमन्ती मौन रहती है, या जो कुछ कहती है उसमें उत्साह या अनुत्साह कुछ नहीं रहता है। इस क्षण का 'अच्छी है' कहना ठीक निर्वैयक्तिक नहीं है, न उदासीन है; कहने के स्वर और ढंग में न जाने कहां एक विरक्ति थी।

अवनी बोला, "बिजली बाबू परसों गए थे न!" इस बात का पहले की बात से कोई सम्बन्ध नहीं है। जान-बूझकर ही अवनी ने दूसरे प्रसंग में बात शुरू की।

"हां, वे अपनी पत्नी को दिखाने आए थे।"

"वे बता रहे थे कि उनकी पत्नी की आंख में कुछ हो गया है—"

"जरा-सी गड़बड़ी है, ठीक हो जाएगी।" हैमन्ती ने हाथ का बैग खोला और अवनी की किताबें निकालकर रखीं। उसके बाद एकाएक बोली, "बिजली बाबू की पत्नी से मेरा थोड़ा-सा परिचय है, मैंने उन्हें दो-एक बार देखा। बड़ी अच्छी लगीं।"

"आखिर बात क्या है?" अवनी ने जान-बूझकर विस्मय जताया, परिहास करते हुए ही।

"कौन-सी बात, और क्यों?"

"यही कि आप दोनों एक दूसरे की इतनी प्रशंसा कर रही हैं।"

"उन्होंने क्या मेरी प्रशंसा की है?"

"बिजली बाबू ने तो ऐसा ही बताया। वे तो आपकी बहुत प्रशंसा कर रही थीं।"

"ओ! तो आप सुनी-सुनाई बात कर रहे हैं—" हैमन्ती इस बार हंसी। उसकी हंसी से यह समझ में आया कि वह पहले की मानसिक विरक्ति को भूल चुकी है।

"अपनी आंखों देखने के लिए तो एक मौके की जरूरत है—" हंसते-हंसते कहा अवनी ने। फिर हैमन्ती के नजदीक एक जगह पर आकर बैठा। बैठने के पहले कमरे की बत्ती जला दे आया।

हैमन्ती ने अचानक कहा, "बिजली बाबू की पत्नी को देखने पर मुझे अपनी एक सहेली की बात याद आती है; दोनों के चेहरे अविकल एक-से हैं। दोनों की हंसी-वंसी भी ढंग एक-सी हो। मेरी वह सहेली अभी दिल्ली में रहती है।"

"तो वे भी डॉक्टर हैं?" अवनी ने डरते मन से कहा।

"हां, लेकिन वैसे वह डॉक्टरी नहीं करती है; सरकारी हेल्थ डिपार्टमेंट में पता नहीं काहे की एक नौकरी ली है। उसका पति भी डॉक्टर है।"

अवनी ने हैमन्ती की आंखों में आंखें डालीं। हो सकता है, अवनी ने यह समझने की कोशिश की कि हैमन्ती के मन में किसी प्रकार की निराशा है या नहीं। मगर कुछ समझ में नहीं आया। अवनी को दूसरी कोई बात ढूंढ़े नहीं मिली, तो मानो बिजली बाबू की पत्नी का प्रसंग जरा और भी विस्तृत किया, "बिजली बाबू की दूसरी पत्नी उनकी पहली पत्नी की सगी बहन है।"

"सुना है।...मैंने बड़ी को भी देखा है, वह जो मैं विजयादशमी के बाद गई थी। बड़ी रोबीली हैं, गृहिणी-सी हैं..."

"धरम-करम, जप-तप को लेकर ही रहती हैं वे। वे सुरेश महाराज की बड़ी भक्त हैं।" अवनी ने अन्तिम वाक्य न जाने कैसे भीतर के किसी लोभवश कह डाला।

हैमन्ती ने यह सुना, पर कुछ बोली नहीं।

अवनी ने बैठे-बैठे एक सिगरेट सुलगाने के लिए जेब में हाथ डाला, तो उसे पैकेट या दियासलाई नहीं मिली। सोने के कमरे में पड़ी हुई है। वह उठकर खड़ा हो गया, सिगरेट लानी होगी, चाय के बारे में कहना होगा महिन्दर से, खिड़कियों के बाहर मानो हहराकर ढेर सारा अंधेरा आ गया हो, बगीचे के पेड़ों पर पंछियों ने झुंड बांधकर मंडराते हुए कलरव शुरू किया है।

"आप जरा बैठिए, मैं आ रहा हूं।" अवनी चला गया।

हैमन्ती बैठी रही। अवनी के इस बैठक में आजकल उसे बीच-बीच में आकर बैठना पड़ता है, इसीलिए यह कमरा परिचित व अभ्यस्त होने को आया है। सीधा-सादा-सा बेंत का सोफा-सेट है, उस पर रूई का गद्दा बिछा हुआ है, लकड़ी की छोटी-सी सेंटर टेबुल है, एक ओर एक किताब का रैक है, एक छोटी-सी लकड़ी की अलमारी है, उसके निचले खाने में कुछेक तांबे और पीतल की मूर्ति-वूर्ति हैं, ऊपर एक फूलदान है, टेबुल लैम्प है, दीवार पर एक कैलेंडर है, अवनी की जवानी की एक तसवीर है, इस सज्जा में न बाहुल्य है न एकदम शून्यता ही है, मानो काम चला देने लायक सजाया हुआ कमरा हो। कमरा बड़ा साफ-सुथरा है, कहीं कोई चीज अव्यवस्थित-सी नहीं है। अकेला आदमी है, घर-द्वार के बेतरतीब होने का कोई कारण नहीं है। नौकर-चाकर जितना करते हैं वही जैसे काफी हो।

हैमन्ती ने अवनी के बैठक के अलावा भीतर के अन्य दो कमरों को भी एक दिन देखा था। अवनी ने मकान दिखाते समय एक दिन दिखाया था। किसी भी कमरे में उसने जरूरत से ज्यादा या विशेष शौक की चीजें नहीं देखी थीं। जैसे अवनी को कोई शौक न हो; उसका सभी कुछ सीधा-सादा-सा है, वह जरूरत से ज्यादा कोई चीज नहीं रखता है। इस प्रकार का आदमी जैसा होता है वह वैसा ही है—ऑफिस को लेकर पड़ा हुआ है, काम-धाम खत्म होने पर जो समय बचता है उसे सो, बैठ और आराम करके गुजारता है, आलस्य में बैठे-बैठे जासूसी कहानियां पढ़ता है, इलस्ट्रेटेड वीकली देखता है, या ज्यादा-से-ज्यादा रेडियो खोल देता है और चहलकदमी करता है।

अवनी लौट आया। कपड़े-लत्ते बदलकर आया है, उसने गरम पतलून पहन रखी है, बदन में पूरी बांह वाला स्वेटर है, मुंह-आंख साफ-सुथरा है, सिर के बाल संवारे हुए हैं। हाथों में कुछ किताबें हैं। हैमन्ती के निकट हाथों की किताबें रख

दीं और बोला, "देखकर चुन लीजिए, इनमें से दो-एक पहले भी मैं ने आपको दी होंगी।"

बाहर तब तक शाम हो चुकी थी, कमरे की रोशनी इस बार उभर उठी है। हैमन्ती किताबें देखने लगी, अवनी ने मुंह-दर-मुंह बैठकर पतलून की जेब से मोजे निकाले और झुककर उन्हें पहनने लगा। उसके आचरण में किसी प्रकार का संकोच नहीं था।

किताबें देखते-देखते हैमन्ती ने कहा, "कहीं जाना है ?"

"आपके साथ···"

यह जैसे हैमन्ती को मालूम था। साधारणतः उसके आने पर अवनी उसे गुरुडिया पहुंचा आता है। आज पहले से ही हैमन्ती को कोई जल्दी नहीं थी। दूसरे दिन वह आकर हर पन्द्रह-बीस मिनट पर घड़ी देखती थी, बस की बात करती थी, पर आज एक बार भी उसने न घड़ी देखी, न बस की बात की। उसकी इच्छा है, आज वह देरी से लौटेगी। जितना सम्भव हो, वह देरी करना चाहती है।

"आज तो बड़ी ठंड है—" हैमन्ती बोली, मानो इतनी ठंड में अवनी को गुरुडिया तक खींचकर ले जाने के लिए उसने मन-ही-मन पहले ही माफी मांग ली।

"इस ठंड का मैं आदी हूं," अवनी सीधा होकर बैठा। "और कई दिन बाद ही क्रिसमस है, तब कई दिन, जनवरी के मध्य तक बहुत ठंड पड़ेगी, खुद मुझे बहुत अच्छा लगता है यह समय।"

"क्रिसमस में मगन आ रहा है।" हैमन्ती ने तीन किताबें चुनकर एक-दूसरी किताब में हाथ लगाया।

चाय लेकर आया महिन्दर। चाय और आमलेट। हैमन्ती ने महिन्दर से दो बातें कीं, इस घर में उसका परिचय अब प्रायः स्वाभाविक होता जा रहा है, इसलिए नौकर-चाकरों में भी कौतूहल अब दिखाई नहीं पड़ता है। महिन्दर अपने पिता का मोतियाबिन्द हैमन्ती को दिखा लाया है। उसके मोतियाबिन्द का आपरेशन करना होगा। अभी भी थोड़ी-सी देरी है। हैमन्ती खुद उसके मोतियाबिन्द का आपरेशन नहीं करेगी उसने कहा है कि वह इन्तजाम कर देगी।

महिन्दर चला गया, तो हैमन्ती ने चाय उड़ेलकर अवनी की ओर आगे बढ़ा दी।

अवनी बोला, "अगले हफ्ते मुझे, हो सकता है, एक बार पटना जाना पड़े।"

"पटना ! क्यों ?"

"ऊपरवाले का बुलावा है।"

"उसी सिलसिले में क्या ?"

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है। हो सकता है, उसी सिलसिले में बुलावा आया हो।" अवनी आमलेट का एक टुकड़ा मुंह में डालकर धीरे-धीरे चबाने लगा। उसके बाद बोला, "जिस नये कन्स्ट्रक्शन की तैयारियां हो रही हैं, हो सकता है, उसी सिलसिले में बुलावा आया हो।"

हैमन्ती ने चाय का प्याला नीचे रखा और चमचे से आमलेट काटते-बोली, "जीवन में उन्नति नहीं होती है, इसलिए लोग अफ़सोस करते हैं, और

ठीक इसका उल्टा कर रहे हैं; उन्नति आपके पैर पकड़कर आपकी चिरौरी कर रही है और आप ही मुंह फेर रहे हैं।"

अवनी मुस्कराया। "बिजली बाबू भी यही कहते हैं।"

"सभी कहेंगे; बिजली बाबू तो आपके दोस्त हैं···"

थोड़ी देर तक चुप रहा अवनी, फिर चाय पी। अन्त में बोला, "बस, मजे से तो हूं यहां। ऊंची कुर्सी पर बैठने से बहुत-सारा झमेला सिर पर लेना पड़ता है।"

"तो झमेले से बचने के लिए आप प्रमोशन नहीं लेंगे?"

अवनी ने हैमन्ती की आंखों में आंखें डालीं, बाद में आंखें हटा लीं। "इस सब नौकरी को—खास करके बंगाली होकर यहां ज्यादे दिनों तक टिकाये रखना मुश्किल है। बहुत तरह की क्लिक रहती है। मुझे कोई इंटरेस्ट भी नहीं है।"

हैमन्ती ने आमलेट मुंह में डालने के पहले अवनी को देखते-देखते कहा, "आपका जैसे कोई बड़ा ऍम्बिशन ही न हो।"

"नहीं, मेरा कोई बड़ा ऍम्बिशन नहीं है।" अवनी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

"क्यों?"

"क्या होगा बड़े ऍम्बिशन से।"

"ज्यादा वेतन मिलेगा, दबदबा बढ़ेगा, ख्याति मिलेगी।" हैमन्ती मन्द-मन्द मुस्कराती हुई कह रही थी, "सुना है, यही सब तो होता है।"

"जितना वेतन मिलता है उससे मेरा गुजारा हो जाता है, मैं कोई खास कमी महसूस नहीं करता।"

"अभी आप अकेले हैं, इसलिए गुजारा हो जाता है। मगर बाद में···" हैमन्ती ने असतर्क भाव से कह डाला।

अवनी ने फिर निगाह उठाई और स्पष्ट करके हैमन्ती का मुंह-आंख देखा। हो सकता है, परिहास हो, फिर भी औरताना कौतूहल से हैमन्ती को ऐसा लगना विचित्र नहीं है या वैसा कौतूहल प्रकट करना भी अन्याय नहीं है। अवनी बोला, "भविष्य की बात मैं कोई खास सोच नहीं सकता। यह मेरा डिफेक्ट है···"

"आप दबदबा नहीं चाहते हैं—यह भी शायद आपका डिफेक्ट ही है," हैमन्ती ने मानो पहले की असतर्कता में कही बात को पोंछने की खातिर कहा, बड़े जोर-जोर से हंसकर।

"थोड़ा-बहुत दबदबा मेरा यहां भी है—" अवनी ने भी परिहास के गले से जवाब दिया।

"पुरुष दबदबे का बड़ा पुजारी होता है। घमंड, दबदबा, मर्यादा—ये सब उसके गहने हैं···" हैमन्ती ने यद्यपि परिहास करने की तरह कहा था, फिर भी ये बातें परिहास-जैसी लगीं नहीं।

अवनी अनुभव कर पाया कि हैमन्ती के कहने के ढंग में परिहास है, तो भी उसमें कैसी एक तिक्तता छिपी हुई है, मानो दबा उपहास किया हैमन्ती ने। अवनी कोई स्पष्ट अनुमान नहीं लगा सका, लेकिन उसे लगा, हैमन्ती का आज का आचरण थोड़ा-सा उल्टा है।

"इतने गहने बदन पर लदा लेने से भला कोई चल सता है?" लघु स्वर में अवनी ने कहा।

"क्यों नहीं चल सकेगा, चल सकता है।" हैमन्ती के होंठों का किनारा टेढ़ा हुआ।

"तब तो वे पुरुष नहीं, महापुरुष हैं।" अवनी ने मजाक करते हुए कहा। चाय खत्म की है अवनी ने, इत्मीनान से सिगरेट सुलगाई।

हैमन्ती ने और भी एक किताब चुन ली और अन्य किताबों को टटोलते-टटोलते मुंह नीचा किए बोली, "आप में लगन नहीं है, जिनमें लगन होती है वह महापुरुष हो सकता है।"

"हां, मैं स्वभाव से थोड़ा-सा इनऐक्टिव हूं।" अवनी हंसा।

किताबों पर से नजरें उठाकर हैमन्ती ने बाकी चाय खत्म की और अवनी की ओर ताका। दो क्षण ताकती रही, फिर बोली, "चलिएगा ?"

"मुझे जल्दी नहीं है ! और भी कुछ देर तक बैठ सकती हैं।"

"मेरा किताबें चुनना खत्म हो गया है—बस, एक और लूंगी···" कहकर हैमन्ती थोड़े तेज हाथों से अन्य एक किताब चुनने लगी।

अवनी की एक किताब पर नजर पड़ी थी। बोला,"वह-वह किताब आप ले सकती हैं, ठीक क्राइम या मिस्ट्री नहीं है, फिर भी पढ़ने में बुरी नहीं लगेगी।"

"यह···?" हैमन्ती ने एक किताब उठाकर दिखाई।

"नहीं, नीचे वाली, आपकी गोद में है—"

हैमन्ती ने गोद में से वह किताब उठा ली, 'ए रूम फॉर टू'। नाम देखा हैमन्ती ने, मुंह से कुछ नहीं बोली, चुनकर रखी किताबों में उसे रखा।

शाम गहरा गई है। अवनी ने घड़ी देखी। पौने सात बजे हैं। हैमन्ती ने समय पूछा, समय बताया अवनी ने। उसके बाद चुप्पी छाई रही, जैसे यहां काम एकाएक सब-का-सब खत्म हो गया हो। नीरव बैठकर हैमन्ती अपने बैग में किताबें भरने लगी। अवनी चुप रहा। कमरे की बत्ती थोड़ी-सी मद्धिम होकर फिर तेज हो उठी। बाहर हवा की आवाज तेज होने पर सुनाई पड़ रही थी।

"चलिए चलें।" हैमन्ती बोली।

"चलिए। जरा ठहरिए, मैं जूते पैरों में डाल आता हूं।" अवनी उठा, उठकर बगलवाले कमरे में चला गया।

हैमन्ती ने बैग का मुंह बन्द किया। मुंह पोंछा रूमाल से, दोनों हाथों से कपाल पर के बालों को थोड़ा-सा ठीक किया। बैठा रहना अच्छा नहीं लग रहा था, उठकर खड़ी हो गई और कमरे के अन्दर थोड़ी-सी चहलकदमी की, दीवार पर टंगी अवनी की जवानी की तस्वीर देखी। उस तस्वीर में वह बहुत निरीह और डरपोक-सा दीखता है, तब की शक्ल-सूरत और अभी की शक्ल-सूरत में बड़ा फर्क है। अवनी कभी भी अपनी पारिवारिक बात क्यों नहीं बताता है ? हैमन्ती ने प्रायः सभी कुछ बताया है, मां, मामा, बड़े भाई, भाभी, गगन आदि की बात। अवनी का जैसे इन सब पारिवारिक बातों में कोई आग्रह नहीं हो। हैमन्ती खिड़की की तरफ हट गई। बाहर अंधेरे में ओस के साथ थोड़ा-सा धुआं जमा हो गया है, पास में स्टेशन है, इंजन का धुआं इस समय जरा जमा रहता है यहां, उतरैया सनसनाती हुई बही, इस ठंड और हवा में अवनी गुरुडिया जाएगा··· फिर आएगा, यह सोचकर जैसे हैमन्ती ने थोड़ा-सा संकोच अनुभव किया।

आज उसे न जाने कैसा लग रहा है। अवनी के घर वह तनिक देरी-से

आई। क्यों आई ? एक वार ऐसा भी मन किया था कि वह नहीं आएगी। आज अकारण उसमें न जाने कहां थोड़ी-सी झिझक और संकोच जाग रहा था। तभी से—लट्ठा आते समय से—वस में चढ़ते और वस में आते-आते, वाजार में उतर कर (वाजार में वह जान-वूझकर ही पहले उतरकर समय विता रही थी और मन स्थिर कर ले रही थी) वाजार से पैदल आते समय प्रायः ही उसकी वह भद्दी-सी चिन्ता कांटे की तरह चुभ रही थी : सुरेश्वर की ईर्ष्या व सन्देह और अवनी का मुंह मन में तिर रहा था। यह वड़ी अजीव चिन्ता है। जैसे एक के साथ दूसरी उलझी हुई हो। यद्यपि ऐसी ईर्ष्या व सन्देह असम्भव है। हैमन्ती विश्वास नहीं करती है। फिर भी···फिर भी। अवनी सम्बन्धी उसकी इस प्रकार की कोई-कोई चिन्ता होश रहते नहीं हुई थी अव तक, पर अव हो रही है, यद्यपि यह प्रायः कुछ भी नहीं है, तो भी यही चिन्ता उसे कैसे अकारण संकुचित कर रही थी। आखिरकार हैमन्ती चली आई, किन्तु अवनी के सामने वीच-वीच में उसने जो परेशानी महसूस की है, इसमें कोई संदेह नहीं। मगर ऐसा क्यों होता है, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। आज उसने अवनी के सामने, हो सकता है, कुछ वेतरतीव वातें की हों, हो सकता है, अन्य दिनों की तरह वह वेझिझक नहीं हो सकी हो, यद्यपि उसके लिए कोशिश की थी। यहां तक कि हैमन्ती ने जैसे गुप्त रूप से सुरेश्वर के प्रति अपने मन की थोड़ी-सी नाराजगी भी आज प्रकट कर डाली हो। अवनी शायद कुछ समझ नहीं पाया है। अथवा हो सकता है, समझ पाया हो। कौन जाने !

अवनी आया। "चलिए, मैं तैयार हूं।"

हैमन्ती ने पीछे मुड़कर ताका। अवनी के गले की वगल से होकर एक मोटा-सा मफलर लटक रहा है, हाथ में टार्च है। दो पल निहारती रही हैमन्ती।

"और कोई गरम कपड़ा नहीं पहनियेगा ?"

"नहीं, और गरम कपड़ा पहनने की जरूरत नहीं है।"

"ठंड लग जाएगी।"

"नहीं लगेगी।"

हैमन्ती आगे वढ़ आई, सोफे पर से अपना लम्वा गरम कोट उठा लिया और पहना।

गाड़ी पर आकर चढ़ते समय हैमन्ती वोली, "गाड़ी अगर आप धीरे से चलाएं, तो मैं आगे वैठूं।"

"वैठिए।"

हैमन्ती गाड़ी पर चढ़ी। हाल में जीप में कुछ नया परिवर्तन किया गया है। पहले ऊपर था किरमिच, अव अलमूनियम की शीट से ऊपर ढक दिया गया है, हाल ही में पिछला हिस्सा ढक दिया गया है और पूरी जीप में भी नया किरमिच लगाया गया है। यह सभी कुछ अवनी ने अपनी सुविधानुसार करवा लिया है, नहीं तो इस हर तरफ खुली गाड़ी को लेकर भाग-दौड़ करने में उसे दिक्कत हो रही थी : जरूरी चीजें, कागज-पत्र आदि वरवाद हो रहे थे रास्ते में।

हैमन्ती आज पीछे नहीं वैठी; पीछे वैठने पर वात-चीत करने में, गपशप करने में वड़ी दिक्कत होती है; एक आदमी की गर्दन की ओर मुंह किए पूरी देर तक वैठा रहना या वातें करना वड़ा वुरा लगता है। मुंह दिखाई नहीं पड़ता है,

जोर-जोर से चिल्लाकर बातें करनी पड़ती हैं। इसके सिवा, बाहर का यह हवा का थपेड़ा पीछे ज्यादा लगता है, आगे बैठने पर कांच की आड़ मिलती है, हवा के थपेड़ों से बचा जा सकता है।

गाड़ी स्टार्ट करके अवनी बाहर निकलकर रास्ते पर आया, तो नजर आया, आकाश में टेढ़ा चांद निकला हुआ है। .

बाजार तक दोनों में कोई खास बात नहीं हुई, साधारण कुछ वाक्यों का आदान-प्रदान हुआ। बाजार को पार करके गाड़ी ने थाने की ओर कोलतार का रास्ता पकड़ा, तो आस-पास में घर-मकान, रोशनी कम होने को आई, उसके बाद थाने को पार किया, तो सब कुछ जैसे झप्प-से बुझ गया और बस्ती ओझल हो गई। अवनी बहुत धीरे से गाड़ी चला रहा था।

कमरे में बैठकर हैमन्ती को यदि कोई अस्वच्छन्दता बोध हुई हो, तो बाहर रास्ते में आकर और अंधेरे में उसे वैसी अस्वच्छन्दता बोध नहीं हो रही थी। बल्कि उसे अच्छा लग रहा था। उसने जाड़ा अनुभव किया, तो भी पोशाक की परतों के चलते वह कांप नहीं रही थी या हवा के थपेड़े बदन में लगने नहीं दे रही थी। हालांकि हाथों की उंगलियां, नाक, कान आदि ठंडे होते जा रहे थे।

अवनी जैसे कुछ कहने जा रहा था, हैमन्ती ने उसके पहले ही कहा, "गगन के आने पर जरा घूमने की इच्छा है। चारों ओर, सुनती हूं, घूमने की विभिन्न जगहें हैं। एक दिन टाउन जाऊंगी।"

"आप टाउन नहीं गई हैं अभी भी ?"

"एक दिन दोपहर में गई थी, तीसरे पहर ही लौटना पड़ा···"

"तो चलिए एक दिन ·"

"गगन आ जाए, तब चलूंगी।"

"उसके आने पर एक बार और चलेंगे, लेकिन परसों यदि आप जाना चाहें, तो मैं आपको ले जा सकता हूं। परसों मुझे जाना होगा एक बार, काम है।"

"परसों आप कब जाएंगे ?"

"यही कोई दिन के दस बजे के लगभग।"

"नहीं, तब तो मैं नहीं जा सकूंगी।"

"क्यों ?"

हैमन्ती ने कुछ जरा सोचा, बोली, "ऊपर वाले का हुक्म नहीं है।" कहकर हंसने की कोशिश की।

अवनी ने मुंह घुमाकर देखा। वे लोग जिस तरह से, जिस स्वर में 'ऊपरवाला' शब्द कहा करते हैं हैमन्ती ने ठीक उसी तरह से कहा। अनुकरण करने में गलती नहीं हुई थी। किन्तु इस प्रकार के अनुकरण में जो रहने की बात नहीं है हैमन्ती के कहने में वह था।

अवनी ने हंसते हुए कहा, "भला आपका ऊपरवाला कहां है ? सुरेश्वर बाबू···"

हैमन्ती नहीं हंसी। "दिन के एक बजे तक मुझे अस्पताल में रहना पड़ता है; इसमें इधर-उधर नहीं किया जा सकेगा।"

"बहुत कड़ा नियम है यह तो।"

"अवश्य यह मेरा नियम है। वे लोग तो और भी ज्यादा देर तक रहने को

कहते हैं। सुबह में, दोपहर में, शाम में। पर मैं राजी नहीं हूं। इसी को लेकर गड़बड़ी चल रही है।"

"गड़बड़ी चल रही है ?" अवनी मुस्करा रहा था, मगर मन-ही-मन वह समझ पा रहा था कि कहीं एक मनमुटाव चल रहा है शायद।

हैमन्ती ने माथा हिलाया, बोली, "हां, वैसी ही कुछ।"

गाड़ी देखते-देखते बहुत दूर चली आई है। स्टेशन आनेवाली आखिरी बस बगल से होकर चली गई है। दोनों ओर ऊंचा-नीचा मैदान है, और पेड़-पौधे हैं; अंधेरे में खूब फीकी चांदनी लिपटी हुई है, समूचे मैदान में हवा भाग रही थी, जाड़ा मानो और भी गहराता जा रहा हो यहां।

अवनी ने गाड़ी चलाते-चलाते ही एक सिगरेट सुलगा ली। बोला, "लेकिन आपके ऊपरवाले हरदम आपकी सराहना करते हैं।"

"करते होंगे..."

"उस दिन भी वे मुझसे आपकी बड़ी सराहना कर रहे थे।"

"किस रूप में ? डॉक्टर के रूप में न ?"

"हां, और किस रूप में करेंगे ?"

"डॉक्टर के रूप में ही मेरा जो दाम है..." हैमन्ती एकाएक कह बैठी। कह-कर चुप हो गई।

अवनी ने अब की बार मुंह नहीं फेरा। वह अनुभव कर पाया कि हैमन्ती मे कहीं जैसे एक क्षोभ क्रमशः जमा हो-होकर भारी हो गया हो। पहले यह समझ में नहीं आता था, बाद में थोड़ा-थोड़ा समझ में आ रहा था, अब तो यह और भी स्पष्ट है, प्रकट है। सुरेश्वर से हैमन्ती का ठीक कहां जो मनोमालिन्य हो सकता है, अवनी इसका अनुमान करता है आजकल। किन्तु वह यह नहीं समझ पाता है कि स्वेच्छा से जो कलकत्ता छोड़-छाड़कर इस जंगल-झाड़ के इलाके में चली आई है उसमें हठधर्मी ज्यादा है, या कि अनुराग है, अथवा आदर्श है ? उसमें आदर्श नहीं है। क्योंकि इन कई महीनों के परिचय से अवनी यह निःसन्देह समझ पाया है कि अन्धाश्रम के प्रति कोई आदर्श या आकर्षण हैमन्ती में नहीं है। और जब आदर्श नहीं रहता है, तो अनुराग को छोड़कर और कुछ नहीं रहता है, सुरेश्वर के प्रति अनुरागवश ही हैमन्ती सब-कुछ छोड़-छाड़कर आई है। तो क्या यह अनुराग यहां आकर क्रमशः नष्ट होता जा रहा है। क्यों ? हैमन्ती क्या आशा लेकर आई थी, वह कहां विफल हुई, उसकी आशा टूटने का सही कारण क्या है ? हैमन्ती क्या अपनी दिल्ली की सहेली की तरह हो सकती, तो सुखी होती ?

अवनी को लट्ठा का मोड़ सामने दिखाई पड़ा; बोला, "आप गुरुडिया जाएंगी, या घूमेंगी जरा ?"

"जरा घूमूं..."

"आपको जाड़ा नहीं लग रहा है ?"

"नहीं, उतना नहीं लग रहा है।"

"तो और जरा हटकर बैठिए, हवा नहीं लगेगी।"

हैमन्ती और भी जरा अवनी की ओर हटकर बैठी। अवनी धीरे-धीरे गाड़ी चलाने लगा, मानो इस रास्ते में, निर्जन में, अतिम्लान ईषत् नक्षत्र के प्रकाश में दोनों घनिष्ठ व अन्यमनस्क भाव से चहलकदमी करते हुए टहल रहे हों।

## उन्नीस

बड़े दिन की छुट्टियों में गगन आया। दिसम्बर के मध्य से ही जाड़ा प्रचंड हो उठा था, उस जाड़े की खरोंच जैसे और भी धारदार व तीक्ष्ण हो रही थी। गुरुडिया में कदम रखते ही गगन ने कहा, "अरे बाप रे, बर्फ-वर्फ पड़ेगी क्या री यहां ?" हेमन्ती ने हंसकर जवाब दिया, "तू तो रह ही रहा है, बर्फ पड़ेगी, तो मजा चखेगा।"

गगन को देखने से ही हेमन्ती के साथ उसके खून के रिश्ते का अंदाजा लगाया जा सकता है। दोनों के चेहरे में बड़ी समानता है, मुंह, आंख-नाक आदि का सादृश्य सहज ही नजर आ जाता है। फिर भी पुरुष होने की वजह से गगन में कुछ वैशिष्ट्य है, सब-कुछ जैसे साफ-सुथरा और तराशा हुआ हो। उसकी नाक हेमन्ती की नाक की तुलना में कड़ी और ऊंची है, होंठ कुछ मोटे व बड़े हैं। ठोड़ी में भी थोड़ा-सा फर्क है। गगन के बदन का रंग गोरा है, लेकिन लड़की होने की वजह से हेमन्ती के बदन के रंग में जो चिकनाहट और कोमलता है वैसी चिकनाहट और कोमलता गगन के बदन के रंग में नहीं है। गगन रूपवान, बेझिझक और खुश-मिजाज लड़का है, उम्र में हेमन्ती से चारेक साल छोटा है। दीदी के साथ उसका सम्बन्ध बराबर ही साथी और दोस्त-जैसा है। बड़े भाई, हेमन्ती से भी बड़े, के साथ इन दो भाई-बहनों का सम्बन्ध नहीं के बराबर है। चाय बागान के वे साहब भैया और उनकी चवनिया-मेम बहू उनके रिश्तेदार हैं, इस मौलिक परिचय को छोड़कर और कुछ भी बताने लायक नहीं है। उनसे न कोई सम्पर्क है, न उनसे भेंट-मुलाकात ही होती है, यहां तक कि मां के साथ चिट्ठी-पत्री में भी भैया जो सम्बन्ध बनाए रखते थे एक समय, आजकल वह भी नहीं रखते हैं। भैया की उम्र और इन दोनों की उम्र में काफी फर्क था, पिताजी के जीते जी ही भैया दूर हट गए थे, उसके बाद ब्याह किया था, ब्याह उन्होंने अपनी मर्जी से किया था, घरवालों या मां की राय नहीं ली थी, न परवाह ही की थी। तब से दोनों पक्षों के सम्बन्धों में बड़ी-सी दरार पड़ गई थी। हेमन्ती की बीमारी के समय बड़े भाई का व्यवहार देखकर इन लोगों ने समझ लिया था कि वह पक्ष किसी भी तरह से अब इन लोगों के साथ सम्बन्ध रखने को इच्छुक नहीं है, जिम्मेदारियां अस्वीकार करने में भी उसे हिचक नहीं हो रही है तभी से सम्पर्क टूट गया है, मां व मामा साल में एक-दो साधारण चिट्ठियां लिखते हैं, बस, भैया भी उसी तरह जवाब देते हैं। अतः पारिवारिक व सांसारिक सम्बन्ध जो कुछ है वह इन्हीं दोनों भाई-बहनों में निर्मित हुआ है बराबर, बड़े भाई की बात न तो ये लोग सोचते हैं, न सोच ही सकते हैं।

गगन आकर गुरुडिया में अन्धाश्रम में ही ठहरा। सुरेश्वर की इच्छा थी कि गगन उसी के पास रहे, उसके घर में। हेमन्ती का इसमें उतना आग्रह नहीं था, उसकी इच्छा थी कि गगन उसके कमरे के बगल-बगल रहे। हेमन्ती और

मालिनी के कमरों से सटा हुआ एक छोटा-सा कमरा था, उसमें तरह-तरह की वेकार की चीजें इकट्ठा की हुई थीं। गगन के आने के पहले इस कमरे की सफाई कराई हैमन्ती ने। एक चौकी का इन्तजाम भी हुआ, हैमन्ती ने गगन के लिए अपने कमरे से नेवार की एक नई आराम कुर्सी लाकर उसके कमरे में रखी एक छोटी-सी वेंत की मेज जुगाड़ कर लाई मालिनी। मोटे तौर पर फबने लगा कमरा।

सुरेश्वर कमरे का इन्तजाम देखने आया था सवेरे; देख-भाल कर बोला, "वाह, बढ़िया इन्तजाम है।'

तीसरे पहर सुरेश्वर और हैमन्ती दोनों ही स्टेशन गए गगन को लाने। जाड़े की शाम देखते-देखते गहराती जा रही थी, उस अंधेरे और जाड़े में वस से वे लोग गुरुडिया आए, गगन को उसके कमरे में पहुंचाकर सुरेश्वर थोड़ी देर तक वैठा, फिर चला गया। तव तक रात होती जा रही थी, जाड़ा भी पड़ रहा था।

जाड़े का प्रकोप देखकर वोला, "अरे वाप रे, वर्फ-वर्फ पड़ेगी क्या री यहां?"

भाई का बिस्तर विछाते-विछाते हैमन्ती ने हंसकर जवाव दिया, "तू तो रह ही रहा है, वर्फ पड़ेगी, तो मजा चखेगा।"

दो-चार साधारण घरेलू वातों के वाद गगन बोला, "सुरेश भैया तव न जाने क्या कह रहे थे?"

"कुछ नहीं। पहले उसने कहा था कि तुम उसके मकान में ठहरोगे, मगर मैंने नकार दिया था।"

"उनका मकान कैसा है?"

"प्रायः ऐसा ही है, गारे की चुनाई है, दो-एक कमरे हैं। कल देखना।"

"कहीं उन्होंने बुरा तो नहीं माना?"

"इसमें बुरा मानने की क्या वात है, मेरे घर का आदमी आकर मेरे पास ठहरेगा या उसके पास।"

गगन विस्तर की वगल में नेवार की आराम कुर्सी पर वैठा हुआ था। दिन के दस वजे के लगभग गाड़ी पर चढ़ा था। थोड़ी-सी भीड़ थी आज। ट्रेन के धक्कम-धक्के से वह थोड़ा-सा थका हुआ था शायद, अथवा कलकत्ता शहर की चहल-पहल, कलरव और रोशनी से एकाएक इस निर्जन, निस्तब्ध अंधेरे जंगल में आ धमका है, इसलिए अनभ्यस्त, अनजाने, अनचीन्हे परिवेश का अभी भी उतना आदी न वन पाने के चलते वीच-वीच में अन्यमनस्क व म्लान हो रहा था।

विस्तर के ऊपर एक कम्वल विछाकर विस्तर ढक दिया हैमन्ती ने, और दूसरे कम्वल को तहाकर पैताने रखा। वोली, "तेरे विस्तर को कम्वल से ढक दिया, बिस्तर गरम रहेगा। एक और कम्वल पैताने रहा।"

गगन ने घूर-घूरकर विस्तर देखा, अन्यमनस्क भाव से कमरे के चारों ओर ताका, जंभाई ली।

हैमन्ती विस्तर की वगल में वैठी हुई है। कमरे की खिड़कियां वन्द हैं, दर-वाजा लगभग भिड़ा हुआ है।

गगन एकाएक वोला, "इस ठंड में तुम्हें तकलीफ नहीं होती है?"

"इन कई दिनों से थोड़ी-सी हो रही है, रात को, दिन में नहीं होती है। दिन

बड़ा सुहावना होता है।" —

"तुम्हारी तबीयत तो खराब नहीं न होगी?" गगन के गले में दबी चिन्ता थी।

हैमन्ती ने माथा हिलाया, "नहीं। मैं तो सावधानी से ही रहती हूं।"

गगन ने इस बार सिगरेट निकालकर सुलगाई। थोड़ा-सा कश लगाया, उसके बाद बोला, "मां ने मुझे बहुत कुछ बता दिया है, समझी। मामा ने भी।"

"क्या बता दिया है?"

"सो बहुत-सी बातें हैं। मुझे फिर पॉयट वन-टू करके सजाकर याद कर लेना होगा—" गगन हंसा, "बाद में बताऊंगा।"

हैमन्ती भाई की आंखों की ओर निहार रही थी। वह मोटे तौर पर जानती है कि मां ने क्या बताया होगा, क्या बता सकती है, या गगन यहां क्यों आया है। सिर्फ जो घूमने के ही उद्देश्य से गगन यहां आया है, ऐसी बात तो नहीं है।

हैमन्ती बोली, "तू मुझसे बात किए बिना किसी से कुछ मत कहना।"

गगन बातों के ढंग से समझ पाया कि दीदी क्या कहना चाह रही है। फिर भी जैसे समझा नहीं हो, कुछ इस तरह से दूसरी ओर निहारता रहा।

थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही, गगन ने बत्ती की तरफ धुएं का एक छल्ला छोड़ने की कोशिश की, पर वैसा कर न सका। बाद में बोला, "सुरेश भैया को मैंने बहुत दिनों बाद देखा। सो जो वे उस बार कलकत्ता गए हुए थे, तब का देखा, इस बार देखा उन्हें—उन्हें देखे हुए लगभग दो-ढाई साल तो हुए ही होंगे। "मगर उनकी तबीयत, सेहत तो अच्छी ही है। वे मांस-मछली खाते हैं, या छोड़ दिया है।"

"मांस यहां नहीं बनता है।"

"क्या कहती हो तुम?"

"इतना पैसा कहां है! ···मगर मछली-वछली मिलेगी बीच-बीच में, नदी से पकड़कर लाई हुई छोटी-छोटी मछलियां बड़ी स्वादिष्ट होती हैं वे।"

"क्या कहती हो तुम! पहले तो तुमने नहीं कहा।"

"कहा था मैंने, तू भूल गया है—" हैमन्ती हंसी। यह हैमन्ती ने वास्तव में कहा था या नहीं, इस विषय में सन्देह है। हो सकता है, नहीं कहा हो। वह खुद भी मांस नहीं खाती है, मांस खाना उसे अच्छा नहीं लगता है। कलकत्ता में थी, तभी से उसने मांस खाना छोड़ दिया है।

भाई को सांत्वना देने के लिए ही मानो हंस-हंसकर हैमन्ती ने कहा, "मगर तेरे घबराने का कोई कारण नहीं है गगन, तू मांस खाना चाहता है, तो मैं इसका इन्तजाम कर दूंगी। अंडे खाना, नदी की मछली खाना, यहां के बाग की सारी ताजा साग-सब्जी खाना। सात दिन में फूल जाएगा तू।···"

"लेकिन तुम तो नहीं फूली हो," गगन हंसा।

"ऐसा मत कह, कलकत्ता का ब्लाउज अब मुझे तंग होता है।"

"लगता तो नहीं है। लेकिन तुम्हारी सेहत खराब भी नहीं हुई है। रंग कैसा झुलस-सा गया है।"

"जाड़े में यहां चमड़ियां खुरदरी-सी हो जाती हैं, और धूप, सुबह हो, देखना—क्या तेज होता है धूप में।"

गगन इतनी देर तक हैमन्ती के मुंह-आंख को लक्ष्य कर-करके कोई-न-कोई

सन्देह कर रहा था। इस बार बोला, "इतनी अच्छी जगह है, तुम यहां कई महीने से हो, लेकिन तुम्हें जितनी अच्छी दिखना जरूरी था उतनी अच्छी तुम दीख नहीं रही हो···कलकत्ता में पूजा के समय मैंने तुम्हें जैसा देखा था तुम उससे अच्छी नहीं हो; बल्कि तुम्हारे चेहरे पर···" बात खत्म नहीं की गगन ने।

हैमन्ती भाई के मुंह की ओर निहारती रही कई पल, उसके मुंह का भाव हठात् मलिन होने को आया, मानो वह अब और कुछ गुप्त रखना नहीं चाह रही हो। आंखों की दृष्टि में इस भाव के उभर उठने के बाद हैमन्ती शायद सचेत हुई थी, हंसकर उसने यथासम्भव अपने आपको संयत करना चाहा। ऐसे समय में बाहर मालिनी का गला सुनाई पड़ा।

हैमन्ती ने जवाब दिया।

मालिनी कमरे में आई। हाथ में एक बड़ा-सा लकड़ी का पीढ़ा है, उस पर मिट्टी का छोटा-सा चूल्हा है; बच्चों के घरौंदे के चूल्हे जैसा। लकड़ी के कोयले की आग सुलगाकर लाई है। चूल्हा नीचे रखकर मालिनी ने हैमन्ती की ओर ताका, "गरम पानी दूं गुसलखाने में ?"

हैमन्ती जरा सन्नाटे में आ गई थी। कमरे में यह आग देने के वास्ते या पानी गरम करने के लिए तो उसने मालिनी से नहीं कहा था। अपनी ही बुद्धि लड़ाकर मालिनी ने ऐसा किया है। खुश होकर हैमन्ती ने कहा, "तो पानी भी गरम कर दिया है ! वाह ! मालिनी बड़ी गुणवंती लड़की है—" कहकर भाई के मुंह की तरफ हंसकर ताका।

मालिनी ने थोड़ी-सी परेशानी महसूस की, नीचे गले से बोली, "भैया जाते समय मुझसे कह गए थे।"

तो ये आतिथ्य पालन की व्यवस्थाएं सुरेश्वर के निर्देश से हो रही हैं। हैमन्ती कुछ नहीं बोली। मालिनी थोड़ी देर तक खड़ी रही, फिर चली गई।

गगन बोला, "तो फिर मैं कपड़े-लत्ते बदल डालूं, क्यों ?"

"हां, तू कपड़े लत्ते बदलकर आ, मैं गुसलखाने में पानी देने को कह रही हूं। हैमन्ती ने कैसे अन्यमनस्क गले से कहा, और कमरे से निकलकर चली गई।

रात को खाना-पीना खत्म हुआ, तो भाई-बहनों में गपशप हो रही थी। गगन बिस्तर पर एक कम्बल ओढ़कर बैठा हुआ है, और हैमन्ती दुशाला ओढ़कर नेवार की कुर्सी पर बैठी हुई है। पैरों में ठंड लगने के डर से मोजे पहन रखे हैं उसने। दोनों के सामने लकड़ी के पीढ़े पर वही लकड़ी के कोयले का चूल्हा है, उसकी आंच प्राय: बुझती जा रही है।

कलकत्ता के घर की बात, मां और मामा की बात, जान-पहचान के किसी-किसी की बात के बाद प्रसंग अन्त में जब खत्म हो गया, तो दोनों ही थम गए। थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। उसके बाद गगन बोला, "तुम्हारे उस इंजीनियर साहब की क्या खबर है ?"

"किसकी, अवनी बाबू की ?"

"हां—"

"अच्छी ही है। उनके पटना जाने की बात थी, ऑफिस के काम से। यह तो पता है कि वे पटना गए थे। अब तक लौट आए होंगे। ये कई दिन मैं स्टेशन नहीं जा सकी हूं।"

"तो क्या तुम स्टेशन आया करती हो ?"

"हां जाया करती हूं; बीच-बीच में जाती हूं। यहां मुंह बन्द किए रहना पड़ता है, बात करने लायक एक आदमी नहीं है। बात करने के लिए, बस, वही मालिनी है। भला उससे कितनी बातें की जा सकती हैं!"

"और सुरेश भैया…"

"वह बड़ा आदमी ठहरा, उसकी बात अलग है। गपशप करके समय बरबाद करने की फुरसत नहीं है उसे।" हैमन्ती ने इस प्रसंग को दूसरे ढंग से टाल जाने की कोशिश की, तो भी उसकी बोली के स्वर में निराशा व दबी विरक्ति थी।

गगन निर्बोध नहीं है, उसके कानों में हैमन्ती के मन की नाराजगी गूंजी। हैमन्ती की आंखों को लक्ष्य किया गगन ने, बाद में बोला, "तुम तो उतनी खुश नहीं लग रही हो।"

हैमन्ती ने भाई की ओर नहीं ताका। मुंह नीचा किए दुशाले के पाड़ को खोंटने लगी। बोली, "मैं नाखुश हूं, यह तुमने कैसे समझा!"

गगन ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। चूल्हे की आंच में दोनों हाथ सेंकने के लिए झुककर बैठा, तापने की कोशिश की, आग बुझ गई है, मामूली-सा ताप है, भली-भांति अनुभव भी नहीं किया जा सकता है।

"मैं तो यह मामला सेट्ल करने आया हूं —" गगन ने धीरे-धीरे कहा, "मां के लिए इस तरह से बैठा रहना अब सम्भव नहीं है। बहुत बूढ़ी हो गई हैं, तबीयत खराब है, आजकल हरदम दुश्चिन्ता किया करती है। मामा बूढ़े आदमी ठहरे, सारा जीवन हम लोगों को लेकर रहे। मामा भी अब और कुछ सुनना नहीं चाहते हैं। कौन कब आंखें मूंदेगा, इसी चिन्ता में पड़े हैं आजकल, जिम्मेदारियां निबटा डालना चाहते हैं।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली। मुंह नीचा किए ही बैठी रही।

गगन ने थोड़ा-सा इन्तजार किया, उसके बाद फिर बोला, "भैया की घटना के बाद मां को तरह-तरह का डर लगा रहता है, मामा को भी। भैया को हम लोगों ने बहुत दिन हुए छोड़ दिया है, भैया ने भी हमें छोड़ दिया है। तुम भी अगर…"

"क्यों, तू तो है—" हैमन्ती ने इस बार मुंह खोला, जैसे उसने जी जान से कोशिश की गगन की बातों की तमाम गम्भीरता को थोड़ा-सा हल्का करके वातावरण को नरम करने की।

"तुम मेरी बात छोड़ दो। मैं तो तुमसे छोटा हूं।"

"इस्स, तू तो अभी भी दूध पीता बच्चा है—" हैमन्ती ने हंसने की कोशिश की।

गगन ने हंस-हंसकर जवाब दिया, "मुझमें अभी भी मैच्योरिटी नहीं आई है, तीस इकतीस साल की उम्र में आजकल लड़के ब्याह-ब्याह नहीं करते हैं। ठहरो, वेट करो—पहले अपना केरियर तैयार कर लूं, उसके बाद मैं क्या भला बैठा रहूंगा—"

"तेरी उस तैरनेवाली गर्ल फ्रेंड की क्या खबर है?" हैमन्ती ने चुटकी लेते हुए जानना चाहा।

"अरे बाप रे, उसका तो सांघातिक ब्याह हो गया है—तुम्हें नहीं पता। फॉरेन सर्विस के एक छोकरे के साथ। बिग फैमली है।···समझी दीदी, मैं पहले से ही बाईं लाइन में चला गया था; उस सब बिग मामले में नहीं रहते। अभी एक स्टेनो टाइपिस्ट लड़की के साथ प्रेम चलाए जा रहा हूं, नवनी की बहन है वह, तुमने उसे देखा है, नाम बताऊं उसका ?" गगन मुंह-आंख फुलाकर हंस रहा था।

हैमन्ती ने हंसते-हंसते दाहिना हाथ उठाकर झापड़ मारने की मुद्रा बनाई, "तेरे गाल पर तड़ाक-से एक थप्पड़ मारूंगी। बहुत बढ़-बढ़कर बातें करना सीख गया है···! पाजी कहीं का···!"

"मैं बढ़-बढ़कर बातें नहीं कर रहा हूं। प्रेम-प्रेम के न रहने पर इस उम्र का लाइफ नहीं रहता है। कमला को मेरी बगल में देखोगी, तो तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि उसकी बगल में मेरा लाइफ-फोर्स कितना बढ़ जाता है।"

हैमन्ती खिलखिलाकर हंस उठी। ऐसी हंसी वह यहां किसी दिन नहीं हंस सकी थी, कलकत्ता में हंस सकती थी। यहां उसका पारिवारिक सम्बन्ध कहीं नहीं है, न यहां ऐसा कोई है जिसके साथ उसका ऐसा स्नेह-मधुर घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है। कलकत्ता में मां थी, मामा थे, गगन था, दो-एक सहेलियां थीं। कलकत्ता में वह परिवार की एक आदमी थी, पारिवारिक संबंध में, आत्मीयता में, स्नेह में, बन्धुत्व में दूसरों के साथ जुड़ी हुई थी, पर यहां वह सब से विच्छिन्न है। आश्रम के लोगों के लिए वह डॉक्टर है, ज्यादा-से-ज्यादा मालिनी की हेम दीदी है। कर्तव्य पालन के अलावा और कोई सम्बन्ध नहीं है दूसरों के साथ। स्वाभाविक जीवन के इस आनन्द व सुख से वह वंचित होगी, ऐसा उसने पहले नहीं सोचा था। अब समझ सकती है कि हैमन्ती का कलकत्ता का जीवन था घरेलू, परिवार के लोगों के साथ उसका लगाव था, डॉक्टरी तो उसका बाहरी जीवन थी; बाहर काम का समय इस बाहरी जीवन में वह बिता सकती थी, इसमें उसे न तो परेशानी होती, न तकलीफ ही होती। किन्तु यहां जो कुछ हुआ है वह उल्टा है, बाहरी जीवन ही उसका सब कुछ हो गया है, पारिवारिक जीवन का स्वाद कहीं नहीं है।

हंसी रुक गई थी हैमन्ती की, वह अन्यमनस्क हो गई थी। सरदी लगी बदन में, सिहर उठने की तरह वह जरा-सी कांपी। बहुत रात हो गई है, दस बजे हैं। हैमन्ती ने अपनी बाईं कलाई में बंधी घड़ी देख ली और इस बार हिल-डुल उठी। "दस बजे; ले और रात मत कर, सो जा।" कहते-कहते हैमन्ती उठकर खड़ी हो गई।

"तुमने तो कुछ बताया नहीं ?" गगन ने पूछा।

"पहले तेरी बात तो सुनूं। मां, मामा ने क्या बता दिया है तुझे, उसे याद करके रख, कल कहना···"

"सो तो मैं सुरेश भैया से कहूंगा।"

"नहीं, पहले मुझसे कहना।"

"सुरेश भैया से ही कहने के लिए कहा है।"

"कहें। मेरे मामले में जो कुछ कहना है, मुझे पहले बताए बिना तू किसी से कुछ मत कहना।···मां, मामा ने तुझे यहां किसी के आगे हाथ-जोड़ने के लिए नहीं भेजा है।"

"हाथ जोड़ने की तो कोई बात ही नहीं है···"

"तब तो खुशी की बात है। ले, तू सो जा, दरवाजा बन्द कर ले।" हैमन्ती ने दरवाजे की ओर कदम बढ़ाए।

बिस्तर छोड़कर हंसते-हंसते गगन ने हंसकर कहा, "सुरेश भैया के पास तुमने मुझे इसलिए नहीं रहने दिया, न री?"

उसकी बात का कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया हैमन्ती ने। बोली, "तो तुझसे बात करने, गप लड़ाने मुझे उस मकान में जाना होगा क्या! उस मकान में मैं खास जाती नहीं। तू मेरे पास नहीं रहेगा, तो मैं तुझे पाऊंगी कैसे सब समय···ले दरवाजा बन्द कर ले।"

बहुत रात तक हैमन्ती को नींद नहीं आई। गले तक लिहाफ ओढ़कर लेटे-लेटे वह कभी आंखें खोलकर निविड़ अन्धकार देख रही थी, तो कभी पलकें मूंद कर कमरे के अन्दर संचित आधी रात के जाड़े में बेचैनी महसूस कर रही थी। उसका कपाल ठंडा है, नथुने भी उतने गरम नहीं हैं, सांस भी भारी हो उठी है। यह जाड़ा उसे निद्राहीन कर रहा था या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता है, लेकिन जाड़े के प्रति उसमें उतना मनोयोग नहीं था, वह दूसरी बात सोच रही थी, चिंता से जब मन दूर हट जाता था, तो जाड़े के स्पर्श से थोड़ी-सी बेचैनी महसूस कर रही थी। चिन्ता और घबराहट के मारे ही उसे नींद नहीं आ रही थी।

गगन आया है; वह किस उद्देश्य से आया है, हैमन्ती यह जानती है। सुरेश्वर और गगन के बीच कल-परसों या दो-एक दिनों के अन्दर जो बातचीत होगी, हैमन्ती इसका अन्दाजा लगा रही थी और सोच रही थी। सुरेश्वर के मनोभाव के बारे में हैमन्ती के लिए नए सिरे से और ज्यादा कुछ जानने को नहीं है, इन कई महीने में वह क्रमशः यह जान चुकी है, अब—हैमन्ती प्रायः निश्चित रूप से कह सकती है कि सुरेश्वर गगन को निराश करेगा। गगन यह नहीं जानता है, अथवा भले ही मन-ही-मन उसे थोड़ा-सा सन्देह दिखाई पड़ा हो, तो भी वह सुनिश्चित रूप से कुछ नहीं जानता है। मां और मामा ने भी इतना नहीं समझा है, न इतना जान सके हैं। हैमन्ती कलकत्ता जाकर जितने दिन थी मां को, मामा को उसने अपनी इस विफलता का विषय समझने नहीं दिया था। किन्तु अब गगन के यहां आने के बाद और उसके सुरेश्वर के साथ मुंह-दर-मुंह बात करने के बाद किसी के लिए कुछ अजाना नहीं रहेगा।

गगन को अपने पास रखने के पीछे हैमन्ती का स्वार्थ था। उसने यह नहीं चाहा था कि गगन हरदम सुरेश्वर के पास रहे। सुरेश्वर के हाथों गगन को छोड़ देने पर सुरेश्वर उसे क्या समझाता, क्या कहता, किस जादू से वशीभूत करता—कुछ भी समझ में नहीं आता। गगन सुरेश्वर का काफी आदर करता है, उसे पसंद करता है, यहां तक कि उसकी श्रद्धा भी करता है। सुरेश्वर गगन को [illegible] से देखता आ रहा है, गगन के साथ उसका सम्बन्ध सरल स्नेह-प्रीति और [illegible] यता—जैसा ही है। गगन—जैसे भोले-भाले सरल लड़के को सुरेश्वर [illegible] बड़ी बातों और मधुर व्यवहार से [illegible] और अपनी मर्जी के [illegible] चला ले सकता था। इसके अलावा, गगन बड़ा बुद्धू है, दीदी के प्रति [illegible] राग इतना ज्यादा है कि वह दीदी के लिए सुरेश्वर के आगे कितनी [illegible] दीनता प्रकट कर दे सकता है। इन दोनों के परिवार की बहुत [illegible]

जो एकान्त भाव से उन्हीं लोगों की हैं—दुर्वलता के क्षण में गगन क्या उन सब वातों को सुरेश्वर से कहे विना रह सकता है।

हैमन्ती ने यह सव नहीं चाहा था। वह नहीं चाहती कि उसकी मां, मामा या भाई की वातचीत से सुरेश्वर यह समझ सके कि वे लोग दीनता प्रकट कर रहे हैं। गगन यहां भीख मांगने नहीं आया है, सुरेश्वर से उनमें से कोई न तो निवेदन कर रहा है, न भीख ही मांग रहा है। अपने परिवार की मर्यादा को हैमन्ती वर-वाद होने देना नहीं चाहती है; साथ ही अपनी मर्यादा भी।

गगन को अपने पास रखने का वड़ा कारण यह है कि हैमन्ती उसे अगोर कर रखेगी। गगन को वह ऐसा कुछ करने या कहने नहीं देगी जिससे सुरेश्वर का अहं-वोध और भी वढ़ जाए। दुनिया में ऐसे लोग हैं जो इस अहं के सहारे आत्म-चरितार्थता प्राप्त करते हैं, खुश होते हैं। सुरेश्वर उस जाति का आदमी है या नहीं, इसे लेकर हैमन्ती को माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं है, किन्तु उसके घर के लोगों के आचरण से यदि कातर निवेदन व भीख का मनोभाव प्रकट हो, तो सुरेश्वर का अहं-वोध तृप्त हो सकता है। गगन को हैमन्ती वैसा कुछ नहीं करने देगी, वल्कि जहां तक सम्भव है, गगन को वह सुरेश्वर से दूर रखने की कोशिश करेगी। जरूरत पड़ने पर गगन को वह अपने पक्ष में लाकर सुरेश्वर से लड़ने को भी राजी है, फिर भी सुरेश्वर के आगे वह अपना आत्मसम्मान नष्ट नहीं करेगी, न किसी को करने देगी।

सुरेश्वर और उसका सम्वन्ध इन दिनों प्रायः एक प्रकार की भद्दी तिक्तता के वीच आ पहुंचा है। सुरेश्वर ने वाद में फिर कोशिश की थी कि हैमन्ती जैसे दोनों वक्त अस्पताल खोलकर रखे, अपनी सुविधा के अनुसार। पर हैमन्ती दोनों वक्त अस्पताल आने को राजी नहीं हुई थी, लेकिन वह आजकल सुवह के वक्त और भी एक घंटा ज्यादा रहती है। इससे उसे नहाने, खाने-पीने और आराम करने में दिक्कत हो रही है। सो हो, फिर भी अपनी जिद से हैमन्ती टस-से-मस नहीं होगी। सुरेश्वर हैमन्ती के इस आचरण से क्षुव्ध हुआ है, हैमन्ती के लिए दुश्चिन्ता जताई है, किन्तु इस विषय को लेकर और कोई दवाव नहीं डाला है।

उस दिन अवनी के साथ थोड़ी देर रात गए लौटते समय हैमन्ती ने आश्रम के वाहर रास्ते पर सुरेश्वर को घूमते-फिरते देखा था। पर अवनी नहीं देख पाया था। सुरेश्वर ठीक क्यों जो अंधेरे में रास्ते पर घूम-फिर रहा था, हैमन्ती यह नहीं जानती है, लेकिन उसे सन्देह हुआ था, मालिनी से हैमन्ती के अकेले स्टेशन जाने की वात जान पाकर, और शाम के वाद भी हैमन्ती के वापस न आने के चलते, हो सकता है, विरक्त या असन्तुष्ट होकर सुरेश्वर उस तरह से घूम-फिर रहा था। शाम की वस से जव नहीं लौटी है, तव तो अवनी की गाड़ी से लौटेगी, यह जान-कर भी सुरेश्वर क्यों अधीर हो रहा था? हो सकता है, वह कुछ देखना चाह रहा था। यदि सुरेश्वर मन-ही-मन कुछ देखने की आशा लेकर वाहर प्रतीक्षा करता रहा हो, उस दिन, तव तो उसने देखा होगा : हैमन्ती और अवनी को एक दूसरे के अगल-वगल वैठकर रात में आश्रम वापस आते हुए।

दूसरे दिन इस प्रसंग को लेकर कोई वात नहीं उठी थी। न तो सुरेश्वर आया था, न हैमन्ती को वुला भेजा था। मालिनी से भी कुछ नहीं पूछा था हैमन्ती ने। हो सकता है, सुरेश्वर उस दिन रात को जाड़े में यों ही घूम-फिर रहा था, उसका

कोई उद्देश्य नहीं था, हैमन्ती के लौटने, न लौटने के चलते उसे चिन्ता या व्यग्रता नहीं थी। फिर भी उस दिन जो कुछ घटा था उसमें हैमन्ती ने न जाने कहां थोड़ी-सी तृप्ति अनुभव की थी।

कुछेक दिन बाद एक अन्य प्रकार की घटना घटी। पटना जाने के पहले अवनी मिलने आया था। तब अंधेरा होता जा रहा था, हैमन्ती शाम को थोड़ा-सा टहल कर कमरे में लौटी थी, अन्धाश्रम के मैदान में अवनी की गाड़ी रुकी। हैमन्ती अवनी को लेकर अपने कमरे में चली आई। बहुत देर तक था अवनी, गप-शप की, चाय पी, उसके बाद चला गया। सुरेश्वर से भेंट करने की इच्छा उसकी थी, मगर गपशप में वह इतना मशगूल था कि उठना चाहकर भी वह नहीं उठ सका था। आखिरकार सुरेश्वर से वह नहीं मिल सका था।

अगले दिन सुबह के वक्त अस्पताल के सामने सुरेश्वर से हैमन्ती की मुलाकात हुई थी।

सुरेश्वर बोला, "कल अवनी बाबू आए थे ?"

"हां, वे पटना जा रहे हैं···"

"वे पटना जा रहे हैं ! ···वे कब आए, कब गए, यह तो मैं जान ही नहीं सका। वे पटना जाएंगे, यह मालूम होता, तो मैं उन्हें एक काम का भार देता।··· कब जाएंगे वे ?"

"आज रात की गाड़ी से।"

"ओ ! ···अच्छा, देखू," सुरेश्वर ने मानो मन-ही-मन कुछ सोचा, उसके बाद बोला, "कल एक बार उनसे मुलाकात हुई होती, तो अच्छा होता।"

हैमन्ती ने पल भर के लिए सुरेश्वर के मुह की ओर ताका, उसके बाद बिलकुल अचानक न जाने कैसे किसी एक अजीब इच्छा से प्रभावित होकर वह बैठी, "उन्हें समय नहीं मिला। बातों-बातों में देरी हो गई।"

सुरेश्वर जो हैमन्ती को लक्ष्य कर रहा है, हैमन्ती बिना ताके हुए ही यह समझ पाई। बाद में सुरेश्वर ने कहा, "तुम ठीक कह रही हो, उन्हें समय नहीं मिला होगा।"

हैमन्ती के कानों को यह बात खूब प्रिय नहीं लगी।

## बीस

यह जगह गगन को बहुत पसन्द आ गई। इतनी पसन्द आ गई कि पहले दिन सुबह से लेकर दोपहर तक वह आस-पास पाव पैदल घूमता-फिरा; जाड़े की सलोंठ धूल लगाई, धूप में झुलसा, झुलसकर सिर के बालों को रूखा-सूखा करके तीसरे पहर के लगभग जंगल की ओर से घूमकर लौटा। लौट आया, तो बोला, "यह तो ब्रिलिएंट जगह है, समन्ती दीदी, दोनों आंखें जुड़ा जाती हैं। कलकत्ता में तो हम ताक नहीं सकते, हर दो हाथ पर आॅब्स्ट्रक्शन है, यहां तो फुल व्यू है; इस सब जगह में ताकने में भी क्या आराम मिलता है।

गगन ऐसा ही है, थोड़े ही में उच्छ्वसित और सन्तुष्ट हो जाता है। वह घूमने

आया है, उसका यह भाव पहले दो दिनों तक पूरे तौर पर बना रहा। घूम कर, खा-पीकर, सोकर, और गपशप करके उसने ठाठ से समय गुजार दिया, गुरुडिया के जाड़े को लेकर सुरेश्वर से हंसी-मजाक किया, अन्धाश्रम की गपशप सुनी, गोभी-मटर के स्वाद और अंडे के अन्दर के पीले भाग के रंग को लेकर भी धारा प्रवाह बोलता रहा। यह समझने की गुंजाइश नहीं थी कि गगन के मन में कोई दूसरा उद्देश्य है। असली बात की उसने भनक तक नहीं लगने दी; सुरेश्वर को यह समझने नहीं दिया कि कुछेक दिन सैर करने के अलावा उसे कोई दूसरा काम है।

गगन ने सुरेश्वर के आगे बात नहीं उठाई, तो भी वह अपने उद्देश्य के बारे में सचेत था। गगन हैमन्ती को बड़ी सावधानी से लक्ष्य कर रहा था, और समझने की कोशिश कर रहा था कि दीदी के मन का भाव ठीक किस प्रकार का है। अकेले में दोनों भाई-बहनों में जो बातचीत होती, उसमें से ज्यादातर बातें व्यक्तिगत ही थीं, उस चर्चा में सुरेश्वर का प्रसंग निर्धारित था। गगन उस स्थिति में खुद ज्यादा कुछ नहीं बोलता, जितना बोलता उसमें उसकी कुछ चालाकी रहती। वह जानना चाहता कि दीदी के मन में कोई फेर-बदल हुआ है या नहीं, दीदी कोशिश करके कोई बात छिपाना चाह रही है, या कि उसकी यह तिक्तता व विरक्ति महज ही अभिमान है। एक-एक समय उसे लगता, दीदी के अन्दर अभी जो गुस्सा, वितृष्णा और क्षोभ दिखाई पड़ रहा है वह वस्तुतः कुछ नहीं है, हो सकता है, वह प्रणय-कलह हो; फिर दूसरे समय दीदी की बातचीत से गगन को सन्देह होता, ामला ठीक सरल नहीं है, दीदी के मन में कहीं इतने दिनों का संचित विश्वास व त्याशा नष्ट हो गई है।

तीसरे दिन गगन स्टेशन घूमने गया। साथ में थी हैमन्ती। सुरेश्वर जा नहीं सका। अवनी से बातचीत और परिचय करके लौटते समय बिजली बाबू से मुलाकात हुई। बिजली बाबू से परिचय पहले दिन ही हो गया था, बस स्टैंड पर। बिजली बाबू ने पूछा, "क्या, कैसा लग रहा है?" गगन ने जवाब में हंसकर कहा, "वंडरफुल"। बिजली बाबू ने कहा, "यह जगह तो अच्छी ही है, खासकर इस समय। तो इधर आकर रहिए दो-चार दिन, सैर-सपाटा करेंगे।" गगन बोला "वह सब तय हो गया है अवनी बाबू के साथ...।" बिजली बाबू ने सिर हिलाक हामी भरी। तब तो इन्तजाम हो ही गया है।" और भी दो-चार हल्की बातों बाद गगन वगैरह ने विदा ली।

बस स्टैंड पर बस हॉर्न दे रही थी, आखिरी समय के यात्रियों को बुला र आज उतने यात्री नहीं हैं। ऐसे जाड़े के समय शाम की बस में साधारण भीड़ नहीं रहती है। फर्स्ट क्लास में कोई यात्री नहीं है। गगन और हैमन्ती पर चढ़े। पीछे कुछ यात्री गठरी-मोटरी लेकर बैठे कलरव कर रहे हैं।

थोड़ी ही देर बाद बस छूटी। फौरन ठंडी हवा का थपेड़ा आया। बगल दोनों खिड़कियों के पल्ले उठा दिए गगन ने, उनके सिर के ऊपर टिमटिम बत्ती आज नहीं जल रही है। बाजार को पार करके आते ही पूस के जाड़े से खड़े हो गए। गगन ने गले में मफलर लपेटा और इत्मीनान से सिगरेट सुल हैमन्ती ने दोनों हाथों से कानों को दबाकर अचानक सिहर उठने का भा संभाल लिया।

बाजार और थाने को पार करके आखिरकार अंधेरे में आ पहुंची बस

ओर कही एक कतरा रोशनी नही, सुनसान बराबर, सामने जोरदार रो
स्रोत फेंकती बस चली जा रही है, पीछे यात्री बात कर रहे हैं, खांस रहे
फूंक रहे हैं।

गगन बोला, "सैर-सपाटे का इन्तजाम अच्छा ही हुआ, क्यो ?"

"सो तो हुआ। मगर मैं तेरे साथ इतना डोल नही सकूंगी।"

"कोई बात नही; और रात को तुम्हें साथ लेना भी उचित नही हो
[illegible]।"

[illegible] कोशिश की, अंधेरे मे [illegible]
दिखाई नही देता है, पीछे की रोशनी का सहारा है। "तो क्या तू इसके लि
सुरेश भैया से कहेगा ?"

"आखिर उनसे कहने मे क्या हर्ज है! बड़े दिन के समय तुम जरा सैर
तो इसमे आपत्ति करने को क्या है।"

"नहीं, तू उससे कुछ मत कहना।"

गगन ने सिगरेट का धुआं निगल लिया और हैमन्ती की ओर पूरे
मुंह फेरकर बैठा। हैमन्ती के गले के पास साड़ी की तह फूली हुई है, हृ
भग ढक गई है, बदन का गरम कोट काला है, अंधेरे मे सिर्फ चेहरा धु
दिखाई देता है।

गगन ने थोड़ा-सा इन्तजार करके कहा, "तुम्हारा मामला-वामला मुझे
रियस लग रहा है।"

हैमन्ती ने बात का जवाब नही दिया।

गगन चुपचाप कुछ सोच रहा था। धीरे-धीरे कई कश लगाकर सि
धुआं पिया, उसके बाद बहुत घनिष्ठ गले से मृदु स्वर में बोला, "आखिर
इच्छा क्या है ?"

हैमन्ती ने इस बार भी बात का कोई जवाब नहीं दिया। गगन के साथ
दिन एकान्त में उसकी जो बातचीत हुई है उसमे कम-से-कम एक बात उस
करके समझा दिया है, वह यह कि सुरेश्वर से उसे अब किसी प्रकार की
नही है। उसके उस पहले के सुरेश्वर में और आज के सुरेश्वर मे काफी
उन दिनो का साधारण आदमी आज कितना असाधारण हो गया है, इसक
उसे माथा-पच्ची करने की जरूरत नही। हो सकता है, सुरेश्वर धरती
उठकर आकाश मे पहुंचा हो, छोटे-मोटे सुख से बड़े सुख की तलाश कर र
लेकिन इससे हैमन्ती को क्या ? हैमन्ती ने क्या यह सब चाहा था ? नहीं
यह सब नही चाहा था, न चाहती है।

प्रतीक्षा करते-करते अन्त मे गगन ने कहा, "दीदी, तुम मुझे स्पष्ट
बताओ।" कहकर गगन आग्रह के साथ ताकता रहा।

हैमन्ती मौन रही। उसने आह भरी। बस के पीछे के यात्रियों मे से
कौन देहाती सुर में देहात का गाना गा रहा था गुनगुनाकर; लगातार—
एक ही प्रकार की एक आवाज हो रही है बस की, कान उसके आदी हो
[illegible]

"दीदी…"

"ऊं !"

"तुम्हें तो कोई जबरन यहां नहीं लाया है ?"

"नहीं, मगर मुझे धोखा देकर लाया गया है।"

"यह तुम्हारे गुस्से की बात तो नहीं न है ?"

"नहीं।"

"तुम्हें तो सब कुछ पता था।"

"नहीं, मुझे कुछ पता नहीं था। मैंने इतने दिनों तक जो कुछ किया है दूस का मन रखने के लिए किया है…"

"इतने दिनों तक—"

"हां, इतने दिनों तक। डॉक्टरी पढ़ने और डॉक्टर बनने का शौक भी मु नहीं था। मुझे अच्छा नहीं लगता था। फिर भी सात-आठ वर्षों तक मैंने बेगार क्यों खटी !"

गगन ने सिगरेट का टोटा फेंक दिया। यह बात उसके परिवार का कोई नहीं समझता था, ऐसी बात नहीं, सभी समझते थे : दीदी डॉक्टरी पढ़े, ऐ आग्रह सुरेश भैया का ही था। मां या मामा की उतनी राय नहीं थी। हालां तब किसी ने भी कोई खास बाधा नहीं दी थी; बाधा देने लायक मन की दशा न थी। सभी ने मान लिया था कि सुरेश्वर का आग्रह अपनी भावी पत्नी के बारे है, हैमन्ती को वह अपने मन के मुताबिक बना लेना चाहता है। हो सकता है, उसका शौक हो। इसके सिवा, तब उसका परिवार सुरेश्वर के प्रति इतना कृत था व उसके प्रति सबका अनुराग इतना ज्यादा था कि सुरेश्वर की इच्छा व स को अधूरी रखना किसी ने नहीं चाहा था। सच तो यह है कि गगन को अब सन्देह होता है कि दीदी के बारे में उसके परिवार का मनोभाव तब युक्तियु नहीं हुआ था; यहां तक कि मन-ही-मन सभी ने जैसे सुरेश भैया को दीदी अभिभावक समझ लिया था और दीदी को सुरेश भैया के मन के मुताबिक चल दिया था। बाद में, दो-तीन साल बाद मां को कैसा सन्देह हुआ था; सुरेश भैया तब कलकत्ता छोड़ा था, बीच-बीच में आते थे, फिर चले जाते थे। मां के मन खटका लगा था, तो भी दीदी ने तब कुछ नहीं समझा था। या समझा था तो शान्त बनी हुई थी, विश्वास रखा था। उसके बाद जितने दिन गुजरे थे मां उत ही अस्थिर, अधैर्य हो उठी थी। सुरेश भैया जो क्या कर रहे हैं, और क्यों यह आश्रम-वाश्रम बनवा रहे हैं—इससे क्या होगा, मां की समझ में कुछ नहीं आ था, न मां को यह अच्छा ही लगता था। मां ने इसी समय से सावधान होना चा था। हालांकि दीदी का मन मां अच्छी तरह जानती थी, इसीलिए कुछ कर न पाई थी। दीदी मानो तब मझधार में आ पहुंची थी, वापस जाना असम्भव बाकी हिस्से को उसने पार किया था। प्रत्याशा लेकर ही, दुविधा अगर आई होगी, तो उसके लिए अन्य कोई उपाय नहीं था। अब और दीदी को कोई भरो नहीं रहा।

दीदी के लिए गगन को दुःख हुआ। उसे बुरा लग रहा था। सुरेश भैया अब तक उसने कोई बात नहीं की है, आज करेगा। दीदी के लिए जो कह संभव नहीं है, गगन को वह कहने में झिझक नहीं होगी।

गगन थोड़ा-सा कुबड़ा होकर माल पर हाथ रखे बैठा रहा थोड़ी देर तक। सोच रहा था। ठंडी हवा से मुंह जैसे सुन्न होता जा रहा था। कानों को मफलर से ढक लिया गगन ने। उसके बाद बोला, "सुरेश भैया से तुम्हें सीधे एक बात करनी चाहिए थी इतने दिनों में। आखिर तुम्हारे आए तो कुछ कम दिन नहीं हुए हैं।"

हेमन्ती चुप रही। उसे नहीं लगा कि जो कुछ उसने समझा है, उससे ज्यादा कुछ उसे समझने को था। इतनी उम्र में सुरेश्वर से वह बच्चों की तरह चिल्ला-चिल्लाकर झगड़ा करेगी क्या?

"तुम कलकत्ता जाकर फिर क्यों आई—यह भी तो मेरी समझ में नहीं आता है," गगन बोला।

तुरन्त जवाब नहीं दिया हेमन्ती ने, थोड़ी देर बाद बोली, "देखने—"

"देखने! क्या देखने?"

"महापुरुष—" हेमन्ती की बोली के सुर में श्लेष था।

गगन कुछ समझ नहीं सका। सोचा, दीदी उपहास कर रही है।

हेमन्ती मानो समझ गई कि गगन क्या सोच रहा है; अपने से ही फिर बोली, "तू समझता है कि मैं मजाक कर रही हूं। पर मैं मजाक नहीं कर रही हूं; सचमुच ही मैं उसे देखने के लिए रह गई हूं।" हेमन्ती के कहने में उपहास था, तो भी कहीं जैसे उसके अतिरिक्त भी कुछ था, पर वह जो क्या था, यह स्पष्ट समझ में नहीं आया।

गगन ने उसकी बात पर उतना कान नहीं दिया। बोला, "तुमने बहुत कुछ देखा है। अब अपने आपको देखो।"

हेमन्ती गाड़ी के आगे की ओर निहारती रही; ड्राइवर की पीठ, कुछेक सलाखों के बीच में से होकर एक अति मृदु प्रकाश, इंजन की आवाज…। निहारते-निहारते हेमन्ती ने मृदु गले से, मानो अपने ही मन से कहा, "आदमी अपने आपको कितन बड़ा बनाकर देखना चाहता है, यह अगर तू जानता, गगन।"

गगन सोच रहा था, दीदी से इस बार वह स्पष्ट रूप से एक बात पूछेगा पूछेगा, तुम ठीक-ठीक बताओ कि सुरेश भैया को तुम अभी भी प्यार करती या नहीं? पर हेमन्ती की बातों से उसका प्रश्न क्षण भर के लिए कैसा बेतरती सा हो गया। नितान्त बात का जवाब देने के लिए बोला, "तुम सुरेश भैया बात कर रही हो?"

"हां, लेकिन वे लोग सभी-के-सभी एक तरह के हैं।"

"किस तरह के?"

"वे लोग अपने आपको अब आदमी नहीं समझते हैं। तेरे और मुझ आदमी होने पर उनका महत्त्व नहीं रहेगा—इस डर से नकली साज पहने हैं। लोगों के आगे ऐसा भाव दिखाते हैं जैसे वे देवी-देवता हों।"

"हां, उसी तरह के…" हेमन्ती इस बार उत्तेजित हो उठने जैसी हो गई "मीठी बातें बोलने और नम्र बने रहने से ही मनुष्य भगवान नहीं होता मिट्टी के घर में रहता हूं, जंगल में आकर अन्धाश्रम खोला है—तुम लोग मैं कितना बड़ा हूं! मैं महापुरुष हूं।—यह सभी कुछ दिखावा है।…असल क्या है, यह मुझे दिखाई पड़ रहा है।"

…के गले का स्वर ऊंचा हो गया था। गगन ने दीदी [illegible] वदन प

नहीं घूम आई, तो फिर वह घूम नहीं पाएगी।" गगन ने सिगरेट निकालकर सुलगाई।

सुरेश्वर ने वदन की मोटी चादर को सहेज लिया। "अच्छी वात है, जाए।"

"सुवह-दोपहर में तो उसका अस्पताल है।" गगन ने कुछ सोचकर याद दिला दिया।

"अस्पताल ठीक दोपहर में नहीं है! खैर, उसका इन्तजाम वह कर लेगी।"

गगन ने सिगरेट के एक के वाद एक कई कश लगाए। वह ठीक जो चीज कहना चाहता है, उसकी भूमिका किस तरह से वनाई जाए, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। समझ में न आने की वजह से मन चंचल व अस्थिर वना हुआ था।

"वहुत जाड़ा है···। ठंड लग गई है गले में—" गगन गले के पास वाले हिस्से को दवाने लगा। "आपका भरतू जरा चाय नहीं पिलाएगा?"

"भरतू को तो वुखार आ गया है।···मैं वनाए दे रहा हूं।"

"आप!···नहीं नहीं···रहने दीजिए···"

"क्यों रहने दूं भला, दो प्याला चाय मैं नहीं वना सकूंगा!···सवेरे मैं अपनी चाय खुद वनाकर पीता हूं, सो पता है तुझे।" सुरेश्वर उठा। गगन को तू तू कह-कर वात करने की सुरेश्वर की पुरानी आदत है।

गगन वोला, "मैं वनाता हूं, कहां क्या है, वताइए?"

"वताने से करना आसान है—" सुरेश्वर ने सस्नेह हंसते हुए कहा। "तो फरि उस कमरे में चल, स्पिरिट लैम्प पर पानी चढ़ा दें और गप्पें लड़ाएं।"

वगल के कमरे की वत्ती मानो दीये की तरह टिमटिमा रही थी, लौ तेज कर दी सुरेश्वर ने। कमरे के एक कोने में मिटसेफ की वगल में छोटी-सी तिपाई पर स्पिरिट लैम्प है। स्पिरिट लैम्प जलाकर चाय का पानी चढ़ाया सुरेश्वर ने।

सोने के कमरे में सुरेश्वर का सीधा-सादा विस्तर है, एक ओर एक छोटी-सी लोहे की अलमारी है, ड्रेस-स्टैंड पर कुछेक कपड़े-लत्ते हैं, एक ओर काठ के साधारण रैक में कुछ कितावें हैं, एक हल्की-सी तिपाई है, एक नेवार की कुर्सी है। दीवार पर मां की तस्वीर है।

गगन उस कमरे से एक कुर्सी खींच लाया, जूते भी उतारकर रखे उस ओर।

सुरेश्वर वोला, "तू मेरे साथ एक जगह घूमने जायेगा?"

"कहां?"

"मिशनरी लोग एक मेला लगाते हैं क्रिसमस के समय, शहर से आठेक मील दूर पर। आदिवासी देखेगा, नाच देखेगा, इधर के ईसाई देखेगा। तरह-तरह का मजा रहता है मेले में, जाएगा क्या?"

सुरेश्वर मेले के तरह-तरह के विवरण सुनाने लगा, गधे की पीठ पर, विप-रीत दिशा में मुंह किए, वैठकर कौन कितनी दूर तक भाग सकता है—इसकी चूहल, ऊन की गेंद से मारकर गुब्वारे फोड़ना, ताश का मैजिक, लॉटरी का खेल इत्यादि। दरअसल यह इधर के देशी मिशनरियों की कोशिश से वहुत दिनों से लगता चला आ रहा है। वे लोग शाल के जंगल के मैदान में वैठकर ईसा मसीह की आराधना करते हैं, गरीवों में पुराने गरम कपड़े-लत्ते वांटते हैं, शिशुओं के हाथों में कुछ देते-लेते हैं उसी वीच किसी सेवा-प्रतिष्ठान के लिए कुछ चंदा वसूलते हैं।

गगन ने ठिठोली करके पूछा, "तो क्या आप भी चंदे का डिब्बा लेकर जा रहे हैं ?"

सुरेश्वर ने चाय के पानी में चाय की पत्ती मिलाते-मिलाते मुस्कराते हुए कहा, "हां, सोचता हूं, तेरे गले में एक चंदे का डिब्बा लटका दूं।"

"तब तो मैं जाने से रहा।" गगन ने डरता हुआ-सा हाथ-सिर हिलाया।

सुरेश्वर जोर-जोर से हंसने लगा। अन्त में बोला, "नहीं, तुझे चन्दा नहीं वसूलना है। हम वहां मैजिक लालटेन दिखाते हैं···"

"मैजिक लालटेन ?"

"स्लाइड शो। नहीं देखा है तू ने ? तू कलकत्ता में सिनेमा नहीं देखता है····"

"सो तो समझ में आ ही रहा है। मगर काहे की मैजिक लालटेन दिखाते हैं ?"

"आंखों की। कैसे आंखें अच्छी रखनी चाहिए, आंखों में क्या-क्या बीमारियां होती हैं—यही सब। उन्हें यह सब दिखाना जरूरी है।" सुरेश्वर ने कहा। कहकर चाय के प्यालों को सहेजा और चाय उड़ेलने लगा।

गगन एक तरह का मन लेकर आया था, हालांकि बातों-बातों में उसका मन दूसरी तरफ बहता जा रहा है, यह समझकर परेशानी अनुभव करने लगा। इस आदमी को गगन बराबर ही आत्मीय-सा समझता आया है, श्रद्धा-भक्ति की है बड़े भाई की तरह, प्यार किया है दोस्त की नाईं, बहस की है, हो-हल्ला किया है, फिर लिहाज करने में भी कहीं उसे झिझक नहीं हुई है। दीदी और सुरेश भैया के संबंधों की यह विच्छिन्नता उसे अच्छी नहीं लगी है। मन-ही-मन वह तकलीफ पा रहा था। उसके परिवार का कोई भी यह नहीं चाहता है कि दीदी और सुरेश भैया का सम्बन्ध इस हालत में बराबर के लिए टूट जाए। दीदी भी काफी बड़ी हो गई है, इस उम्र में दीदी को दुलहन सजाकर, दिखाकर मां दीदी का ब्याह रचाएगी यह आशा भी वह नहीं करता है। इसके अलावा, दीदी के जीवन में इतने दिनों तक जो कुछ मूल्यवान बना हुआ था वह जो रातोंरात तुच्छ हो जाएगा, ऐसी बात भी नहीं। मां, मामा सभी जो चाहते हैं वह ऐसा कुछ ज्यादा चाहना भी नहीं है। समाज, परिवार में रहने के लिए उसके कुछ नियम तो मानने ही होंगे। इस तरह से दीदी को छोड़ नहीं सकते हैं सुरेश भैया। जो सगत है, जो उचित है, जो नजरों में खटकने वाला नहीं है, हालांकि दीदी जिससे सुखी हो सकती है, आप वही कीजिए। न तो कोई आपसे आश्रम उठा देने के लिए कह रहा है, न कलकत्ता लौट आने के लिए ही कह रहा है। आपकी इस सेवा-धर्म में यदि मति हो, तो रहे, किन्तु एक लड़की को उसके नाते-रिश्तेदार किस भरोसे इस तरह से छोड़ सकते हैं।

सुरेश्वर ने चाय का प्याला बढ़ा दिया। "लो जी गगन बाबू, पीकर देखो—"

गगन ने चाय का प्याला होंठों से छुआया। सुरेश्वर अपनी नेवार की कुर्सी पर बैठा। बैठकर चाय पीने लगा।

"सुरेश भैया—" गगन ने धीमे गले से कहा।

सुरेश्वर ने चाय की चुस्की लेकर मुंह उठाया। "कहो।"

गगन एक भद्दी-सी परेशानी अनुभव कर रहा था। सुरेश्वर की ओर ताक नहीं सका। सुरेश्वर इन्तजार कर रहा है।

"क्या हुआ···? सुरेश भैया कहकर जो तू बैठा रहा ? क्या बात है ?"

नहीं घूम आई, तो फिर वह घूम नहीं पाएगी।" गगन ने सिगरेट निकालकर सुलगाई।

सुरेश्वर ने वदन की मोटी चादर को सहेज लिया। "अच्छी बात है, जाए।"

"सुबह-दोपहर में तो उसका अस्पताल है।" गगन ने कुछ सोचकर याद दिला दिया।

"अस्पताल ठीक दोपहर में नहीं है! खैर, उसका इन्तजाम वह कर लेगी।"

गगन ने सिगरेट के एक के बाद एक कई कश लगाए। वह ठीक जो चीज कहना चाहता है, उसकी भूमिका किस तरह से बनाई जाए, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। समझ में न आने की वजह से मन चंचल व अस्थिर बना हुआ था।

"बहुत जाड़ा है···। ठंड लग गई है गले में—" गगन गले के पास वाले हिस्से को दबाने लगा। "आपका भरतू जरा चाय नहीं पिलाएगा?"

"भरतू को तो बुखार आ गया है।···मैं बनाए दे रहा हूं।"

"आप!···नहीं नहीं···रहने दीजिए···"

"क्यों रहने दूं भला, दो प्याला चाय मैं नहीं बना सकूंगा!···सवेरे मैं अपनी चाय खुद बनाकर पीता हूं, सो पता है तुझे।" सुरेश्वर उठा। गगन को तू तू कह-कर बात करने की सुरेश्वर की पुरानी आदत है।

गगन बोला, "मैं बनाता हूं, कहां क्या है, बताइए?"

"बताने से करना आसान है—" सुरेश्वर ने सस्नेह हंसते हुए कहा। "तो फरि उस कमरे में चल, स्पिरिट लैम्प पर पानी चढ़ा दें और गप्पें लड़ाएं।"

बगल के कमरे की बत्ती मानो दीये की तरह टिमटिमा रही थी, लौ तेज कर दी सुरेश्वर ने। कमरे के एक कोने में मिटसेफ की बगल में छोटी-सी तिपाई पर स्पिरिट लैम्प है। स्पिरिट लैम्प जलाकर चाय का पानी चढ़ाया सुरेश्वर ने।

सोने के कमरे में सुरेश्वर का सीधा-सादा बिस्तर है, एक ओर एक छोटी-सी लोहे की अलमारी है, ड्रेस-स्टैंड पर कुछेक कपड़े-लत्ते हैं, एक ओर काठ के साधारण रैक में कुछ किताबें हैं, एक हल्की-सी तिपाई है, एक नेवार की कुर्सी है। दीवार पर मां की तस्वीर है।

गगन उस कमरे से एक कुर्सी खींच लाया, जूते भी उतारकर रखे उस ओर।

सुरेश्वर बोला, "तू मेरे साथ एक जगह घूमने जायेगा?"

"कहां?"

"मिशनरी लोग एक मेला लगाते हैं क्रिसमस के समय, शहर से आठेक मील दूर पर। आदिवासी देखेगा, नाच देखेगा, इधर के ईसाई देखेगा। तरह-तरह का मजा रहता है मेले में, जाएगा क्या?"

सुरेश्वर मेले के तरह-तरह के विवरण सुनाने लगा, गधे की पीठ पर, विप-रीत दिशा में मुंह किए, बैठकर कौन कितनी दूर तक भाग सकता है—इसकी चुहल, ऊन की गेंद से मारकर गुब्बारे फोड़ना, ताश का मैजिक, लॉटरी का खेल इत्यादि। दरअसल यह इधर के देशी मिशनरियों की कोशिश से बहुत दिनों से लगता चला आ रहा है। वे लोग शाल के जंगल के मैदान में बैठकर ईसा मसीह की आराधना करते हैं, गरीबों में पुराने गरम कपड़े-लत्ते बांटते हैं, शिशुओं के हाथों में कुछ देते-लेते हैं उसी बीच किसी सेवा-प्रतिष्ठान के लिए कुछ चंदा वसूलते हैं।

गगन ने ठिठोली करके पूछा, "तो क्या आप भी चंदे का डिब्बा लेकर जा रहे हैं ?"

सुरेश्वर ने चाय के पानी में चाय की पत्ती मिलाते-मिलाते मुस्कराते हुए कहा, "हां, सोचता हूं, तेरे गले में एक चंदे का डिब्बा लटका दूं।"

"तब तो मैं जाने से रहा।" गगन ने डरता हुआ-सा हाथ-सिर हिलाया।

सुरेश्वर जोर-जोर से हंसने लगा। अन्त में बोला, "नहीं, तुझे चन्दा नहीं वसूलना है। हम वहां मैजिक लालटेन दिखाते हैं···"

"मैजिक लालटेन ?"

"स्लाइड शो। नहीं देखा है तू ने ? तू कलकत्ता में सिनेमा नहीं देखता है···"

"सो तो समझ में आ ही रहा है। मगर काहे की मैजिक लालटेन दिखाते हैं ?"

"आंखों की। कैसे आंखें अच्छी रखनी चाहिए, आंखों में क्या-क्या बीमारियां होती हैं—यही सब। उन्हें यह सब दिखाना जरूरी है।" सुरेश्वर ने कहा। कहकर चाय के प्यालों को सहेजा और चाय उड़ेलने लगा।

गगन एक तरह का मन लेकर आया था, हालांकि बातों-बातों में उसका मन दूसरी तरफ बहता जा रहा है, यह समझकर परेशानी अनुभव करने लगा। इस आदमी को गगन बराबर ही आत्मीय-सा समझता आया है, श्रद्धा-भक्ति की है बड़े भाई की तरह, प्यार किया है दोस्त की नाईं, बहस की है, हो-हल्ला किया है, फिर लिहाज करने में भी कहीं उसे झिझक नहीं हुई है। दीदी और सुरेश भैया के संबंधों की यह तिक्तता उसे अच्छी नहीं लगी है। मन-ही-मन वह तकलीफ पा रहा था। उसके परिवार का कोई भी यह नहीं चाहता है कि दीदी और सुरेश भैया का सम्बन्ध इस हालत में बराबर के लिए टूट जाए। दीदी भी काफी बड़ी हो गई है, इस उम्र में दीदी को दुलहन सजाकर, दिखाकर मां दीदी का ब्याह रचाएगी यह आशा भी वह नहीं करता है। इसके अलावा, दीदी के जीवन में इतने दिनों तक जो कुछ मूल्यवान बना हुआ था वह जो रातोंरात तुच्छ हो जाएगा, ऐसी बात भी नहीं। मां, मामा सभी जो चाहते हैं वह ऐसा कुछ ज्यादा चाहना भी नहीं है। समाज, परिवार में रहने के लिए उसके कुछ नियम तो मानने ही होंगे। इस तरह से दीदी को छोड़ नहीं सकते हैं सुरेश भैया। जो संगत है, जो उचित है, जो नजरों में खटकने वाला नहीं है, हालांकि दीदी जिससे सुखी हो सकती है, आप वही कीजिए! न तो कोई आपसे आश्रम उठा देने के लिए कह रहा है, न कलकत्ता लौट जाने के लिए ही कह रहा है। आपकी इस सेवा-धर्म में यदि मति हो, तो रहें, किन्तु एक लड़की को उसके नाते-रिश्तेदार किस भरोसे इस तरह से छोड़ सकते हैं।

सुरेश्वर ने चाय का प्याला बढ़ा दिया। "लो जी गगन बाबू, पीकर देखो—"

गगन ने चाय का प्याला होंठों से छुलाया। सुरेश्वर अपनी नेवार की कुर्सी पर बैठा। बैठकर चाय पीने लगा।

"सुरेश भैया—" गगन ने धीमे गले से कहा।

सुरेश्वर ने चाय की चुस्की लेकर मुंह उठाया। "कहो।"

गगन एक भद्दी-सी परेशानी अनुभव कर रहा था। सुरेश्वर की ओर ताक नहीं सका। सुरेश्वर इन्तजार कर रहा है।

"क्या हुआ···? सुरेश भैया कहकर जो तू बैठा रहा ? क्या बात है ?"

गगन को पल भर के लिए मानो हैमन्ती का विषण्ण, क्षुब्ध, तिक्त मुंह
ाई पड़ा, गला सुनाई पड़ा। मुंह उठाकर सुरेश्वर को देखा कई पल गगन ने।
पसे मुझे कई बातें कहनी हैं।"

"कौन-सी बातें ?" सुरेश्वर ने सहज गले से पूछा।

"कहता हूं।...आप जरूर हमें गलत नहीं समझेंगे—" गगन ने फंसे गले को
ाफ कर लेने की खातिर चाय पी। हो सकता है थोड़ा-सा समय लिया अपने आप
ो सहेज लेने के वास्ते।

सुरेश्वर बोला, "मेरे समझने में गलती न हो, तो मैं तुम लोगों को गलत क्यों समझूंगा ?"

"नहीं, वही कह लिया। आप तो मुझ से उम्र में बड़े हैं, आपसे हमारा क्या रिलेशन है, यह तो आप भी जानते हैं।...बात चाहे जैसी भी हो, मैं यह नहीं चाहता कि इसको लेकर कोई गलतफहमी हो।"

"अच्छी बात है, कोई गलतफहमी नहीं होगी।"

"मां ने मुझे आपसे कई बातें कहने को कहा है। मामा ने भी कहा है।"

"पर तुमने तो मुझसे कुछ नहीं कहा है।"

"नहीं, मैं कहने की सोच रहा था, मगर मुझे मौका नहीं मिल रहा था।"
गगन ने विस्तर की ओर ताका, सुरेश्वर से आंखें चार होने का संकोच वह अनुभव कर रहा है।

सुरेश्वर शान्त भाव से प्रतीक्षा कर रहा था।

आखिरकार गगन ने अपनी दुर्बलता व संकोच दूर किया और कहा, "दीदी के बारे में आपने क्या तय किया ?"

सुरेश्वर मौन रहा। गगन की जबान की लड़खड़ाहट, उसकी परेशानी, और संकोच से, हो सकता है, सुरेश्वर अन्दाजा लगा पाया था कि गगन इस प्रकार की कोई बात उठाएगा। विस्मित अथवा विभ्रान्त होने लायक जैसे कुछ नहीं था इस बात में।

गगन ने फिर कहा, "मां बड़ी व्यग्र हो उठी है। मामा कह रहे थे, इस तरह से दीदी को यहां छोड़ा नहीं जा सकता है।...उन लोगों का कोई दोष नहीं है, आप तो समझ पा रहे हैं—दोनों ही बूढ़े हो गए हैं, तरह-तरह की दुश्चिन्ताओं को लेकर रहते हैं। दीदी की बात वे लोग भुला नहीं सकते हैं। कुछ भी हो, आखिर बेटी है न, उसकी एक व्यवस्था न होने तक मन में उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी।"
गगन जैसे बेतरतीब ढंग से कह रहा था।

सुरेश्वर ने चाय का प्याला नीचे फर्श पर रखा। फिर गगन की तरफ सीधे निहारता रहा कुछेक क्षण, उसके बाद बोला, "हेम ने क्या तुम लोगों से कुछ नहीं कहा है गगन ?"

"नहीं तो..." गगन ने माथा हिलाया, "क्या कहेगी ?"

"मैंने सोचा था, कलकत्ता जाकर वह, हो सकता है, कुछ कहे, चाची जी से।"

"मुझे नहीं पता।" गगन सुरेश्वर की ओर निहारता रहा। उसके बाद बोला, "दीदी से मेरी बात हुई है। मगर वह तो उसकी बात है, आपकी नहीं।"

सुरेश्वर कुछ देर तक चुप रहा, कुछ सोच रहा था, अन्त में बोला, "गग
मुझे आजकल लगता है कि मैंने कई बड़ी गलतियां की हैं। हेम को यहां र

लाना मेरे लिए उचित नहीं हुआ है। वह जिस लिए आई है मैं उसे उस उद्देश्य से नहीं लाया हूं। यहां मैं उसे अपने पास बराबर नहीं रख सकूंगा। तुम लोग जो सोचते हो वह नहीं हो सकता है। उसमें और भी अशान्ति बढ़ेगी। मुझमें ऐसा कुछ नहीं है, जिससे मैं हेम को अब सुखी कर सकूं।"

गगन जैसे कुछ देर तक कैसा दिग्भ्रमित-सा होकर बैठा रहा, न कुछ सोच पा रहा था, न कुछ बोल पा रहा था। एक अद्भुत वेदना और आघात उसे निर्वाक् किए दे रहा था। आखिरकार गगन ने अपने आपको किसी तरह संभाल लिया और कहा, "आपको कुछ नहीं है?"

"नहीं।" सुरेश्वर ने माथा हिलाया।

"दीदी को आप प्यार करते थे···"

"करता था। लेकिन उस प्यार से मुझे आनन्द नहीं मिला था···।"

गगन असहिष्णु हो उठा था। कठोर गले से कहा, "तो इतने दिन बाद एका-एक आपको यह ज्ञान हुआ क्या?"

"नहीं—" सुरेश्वर ने शान्त गले से कहा, "नहीं गगन, पहले ही हुआ था। तुम विश्वास नहीं करोगे, लेकिन जीवन में एकाएक कुछ होता है। बाहर से वह एकाएक होता है, पर भीतर से वह, हो सकता है, एकाएक न होता हो।···एक बार एक घटना से मेरे मन में तरह-तरह के संशय, दुविधाएं और दुर्बलताएं आई थीं। मुझे लगा था—*उस प्यार में मेरा सुख नहीं है, आनन्द नहीं है।*"

"आप सिर्फ अपने आपको ही देख रहे हैं।"

सुरेश्वर ने प्रतिवाद नहीं किया। वह अपने आपको ही देख रहा था: मानो अतीत की किसी घटना के सामने वह दर्शक बनकर बैठा हुआ हो।

## इक्कीस

गगन को गए बहुत देर हो चुकी है। जाने के पहले उसने सुरेश्वर से क्या जो कहा था सुरेश्वर ने उसे ध्यान से नहीं सुना था। गगन के गले के स्वर से लगा था कि उसके धैर्य का बांध टूट चुका है; क्रुद्ध, विरक्त होकर वह चला गया है। गगन ने आशा की थी कि सुरेश्वर और भी कुछ कहेगा, इसी आस में उसने इन्तजार किया था। पर सुरेश्वर ने कुछ नहीं कहा था। अस्पष्ट, बेसिर-पैर की दो-एक मामूली बातें उसने कही थीं, जो काफी नहीं थीं, यहां तक कि उसने कोई कैफियत भी नहीं दी थी—गगन सम्भवतः सुरेश्वर को यही ऊंचे स्वर में बताकर चला गया है।

गगन के चले जाने के बाद सुरेश्वर और भी कुछ देर तक उसी तरह से बैठा रहा। गगन की सूनी कुर्सी, गगन द्वारा छोड़ा गया चाय का प्याला उसे नजर आ रहा था; हालांकि गगन की बात वह नहीं सोच रहा था। गगन असन्तुष्ट हुआ है, यह समझकर भी जैसे वह चंचल नहीं हो।

पूस की रात जो कितनी हुई है, सुरेश्वर को यह खयाल नहीं था। भरतू के बदले न जाने दूसरा कौन कमरे में आकर रात का खाना रख गया। सुरेश्वर ने

न्यमनस्क भाव से लक्ष्य किया, गगन द्वारा खींचकर लाई गई कुर्सी को बगल-ले कमरे में रखकर, चाय के प्याले को धो-पोंछ कर वह आदमी चला गया है।

आखिरकार सुरेश्वर उठा। बाहर के कमरे का दरवाजा भिड़ा हुआ है, बत्ती ल रही है, मेज पर बेतरतीब कागज-पत्र हैं। दरवाजा बन्द किया सुरेश्वर ने; ली खिड़कियों से ठंडी हवा घुस रही है, खिड़कियों को भी बन्द किया। कागज-त्र सहेजकर, बत्ती बुझाकर अन्दर के बरामदे में आया। बरामदे के एक ओर गेटा-सा गुसलखाना है, पानी में हाथ नहीं डाला जा सकता है। मुंह-आंख धोने से ोड़ा-सा आराम मिला, गले में न जाने क्यों जलन हो रही है।

सोने के कमरे में वापस आया, तो सुरेश्वर को लगा, गगन ने जैसे एक बार उससे कोई बात पूछी थी। पर कौन-सी बात थी वह ? उस बात को याद नहीं कर का सुरेश्वर, लेकिन अनुमान लगाया कि उसकी बात पर सन्देह प्रकट करके गन ने उसकी स्वार्थपरता के बारे कोई एक कटु टिप्पणी की थी।

टाइमपीस घड़ी में रात के दस बज गए हैं। दूसरे दिन इस समय तक वह ा-पी लेता था। पर आज न जाने क्यों अब खाने को जी नहीं चाह रहा था। ुरेश्वर ने दूध पी लिया।

कमरे की खिड़कियों को भिड़ाकर सुरेश्वर ने अपने बिस्तर की मसहरी ांग ली। तो क्या गगन गुस्सा करके कलकत्ता लौट जाएगा ? ऐसा हठात् लगा ुरेश्वर को। दूसरे ही क्षण फिर लगा, तो क्या हेम भी हठात् गगन के साथ चली ाएगी ?

लालटेन को बुझा देने के पहले सुरेश्वर ने अपना टॉर्च ढूंढ़ लिया, टॉर्च लेकर बत्ती बुझाई और बिस्तर पर आकर लेट गया।

घने अन्धकार में कुछ देर तक पलकें मूंदे रहकर सुरेश्वर ने मानो अपने आपको शिथिल किए रखा, स्रोत में बहने की तरह अपने मन व कल्पना को जहां-तहां वह जाने दिया। हालांकि थोड़ी ही देर बाद सुरेश्वर ने अनुभव किया कि किसी स्थाई घाव की वेदना की भांति उसका मन घूम-फिरकर उसी एक कल्पना की ओर आकृष्ट हो रहा है। पलकें खोलकर अन्धकार में ताका सुरेश्वर ने। गहरे अन्धकार में दृष्टि मानो और भी निखालिस होकर उसी एक विषय को सजा ले रही हो। गगन के सामने जिसे स्पष्ट करके नहीं देख सका था सुरेश्वर, जो अत्यन्त धूसर, अति म्लान हो गया था, अभी वही अतिस्पष्ट है। लगा, निर्मला तब किसी ऐसे स्थान पर थी जहां दूसरों की उपस्थिति के चलते वह उसे स्पष्ट रूप से नहीं देख सका था, पर अभी वह दिखाई पड़ रही है।

सुरेश्वर ने मानो दम रोककर निर्मला को देखा। निर्मला की वह शार्ण, बुझते दीये की लौ की तरह अनुज्ज्वल, विषण्ण मूर्ति शायद सुरेश्वर की ओर कैसा एक स्तिमित प्रकाश बिखेर दे रही थी।

सुरेश्वर ने प्रतीक्षा की। निर्मला क्षीण दृष्टि थी; वह स्वाभाविक ढंग से चलकर नहीं आ सकती थी; पैर टिका-टिकाकर चारों ओर देखती हुई धीरे-धीरे आती थी। आज, इस क्षण भी सुरेश्वर ने जैसे निर्मला को उसकी आदत के मुताबिक निकट आने दिया।

निर्मला के निकट आने पर सुरेश्वर ने उसके मुंह की ओर निविष्ट आंखों से लक्ष्य किया : उस मुंह में ऐसा कुछ था जो रूप नहीं था, हालांकि जिसका आकर्षण

रूप से अधिक था। निर्मला को अभी इतना स्पष्ट व निजी तौर पर देख पाकर सुरेश्वर बहुत खुश हुआ।

निर्मला और सुरेश्वर के परिचय के बीच एक आकस्मिकता थी। सुरेश्वर को अभी भी वह पार्क का घुंघची का पेड़ जैसे दिखाई पड़ता हो, जिसके नीचे काल वैशाखी की भयंकर आंधी में निर्मला खड़ी थी।

तब वैसाख का महीना था, कलकत्ता शहर के पेड़-पौधे, धरती, रास्ते जैसे कई दिनों से जल रहे थे; सारा दिन उमस रहती थी, कहीं जरा-सी हवा नहीं बहती थी, न पेड़ों के पत्ते हिलते थे। उस दुःसह गरमी में एक दिन तीसरे पहर के बाद सुरेश्वर पार्क में आकर बैठा हुआ था। आस-पास में असंख्य लोग थे, वे हवा की आशा से पार्क में आए थे, कुछ बैठे हुए थे, कुछ घूम-फिर रहे थे। साबू के पेड़ के पत्ते निश्चल थे, बाड़ा लगाए हुए केले के पौधों के झुरमुट में एक भी फूल नहीं था, आकाश जैसे सारा दिन जल-जलकर राख होकर सिर के ऊपर राख के अम्बार की तरह पड़ा हुआ था।

सुरेश्वर जमीन पर मरी घास के ऊपर चुपचाप बैठा हुआ था। गरमी के मारे उसे सांस लेने में भी तकलीफ हो रही थी। एकाएक उसे लगा, चारों ओर कैसा एक अजीब-सा सन्नाटा छा गया है, तमाम जड़-चेतन जैसे इस शाम के क्षण में एकाएक कैसे अचेत-से हो गए हैं, न पेड़-पौधे हिल रहे हैं, न धूल उड़ रही है, पंछियों का स्वर स्तब्ध है, शून्यता के बीच सिर्फ एक अद्भुत शोषण चल रहा है, तमाम बची-खुची नमी भी सोख ली जा रही है। सुरेश्वर के आंख-कान में जलन हो रही थी, बदन की चमड़ी भी जैसे काहे की आंच लगने से जल रही थी।··· एकाएक ठीक शाम के वक्त ढेर सारी धूल उड़ी। किसी ने खयाल नहीं किया था कि आकाश का एक कोना इस बीच सज उठा है। धूल के थपेड़ों के रुक जाने के ठीक बाद ही पेड़ों की फुनगियों के पत्ते कांपने लगे। हवा के कई झकोरे आए। उसी के बाद हहराकर आकाश को ढकते हुए काले बादल आने लगे, अंधेरा हुआ, धूल का अन्धड़ आया झपट्टा मारकर। लोग-बाग तब तक पार्क से भाग रहे थे। पर सुरेश्वर नहीं उठा, और भी तनिक इन्तजार करके जाएगा। आसन्न अन्धड़ को बदन में थोड़ा-सा लगा लेने में उसे आपत्ति नहीं है।

देखते-देखते काल वैशाखी का अन्धड़ आ गया। साबू के पेड़ के पत्तों का झोंटा खींचकर सनसनाती हुई हवा बह रही थी, धूल उड़ रही थी, बूंदा-बांदी हुई। पार्क तब तक खाली हो चुका था। सुरेश्वर ने किसी तरह से आंख बचाकर चले जाते-जाते हठात् देखा, पार्क के फाटक के पास घुंघची के पेड़ के नीचे एक युवती लड़की अपने दोनों हाथों से मुंह-आंख ढककर किसी तरह से खड़ी रहने की कोशिश कर रही है। चले जाते-जाते भी सुरेश्वर कैसा ठिठककर खड़ा हो गया। उसे लगा, वह लड़की इतनी कमजोर है कि इस आंधी में कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं कर रही है।

वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों ने गिरना शुरू किया था, तपती, सूखी धरती से गरम तार उठ रहा था, सोंधी महक उठ रही थी, पेड़ों की डालियां शायद टूट जाएंगी। पार्क की दो-चार बत्तियां जलते-जलते बुझने-बुझने को हो गई थीं, आकाश में बिजली चमक रही थी।

सुरेश्वर ने घुंघची के पेड़ के पास आकर उस लड़की को सावधान करते हुए न जाने क्या कहना चाहा था, कि फौरन उस लड़की ने उसकी ओर अपने हाथ बढ़ा दिए।

निर्मला ने सोचा था कि उसका बड़ा भाई प्रमथ आया है।

प्रमथ जब तक पार्क में आया तब तक सुरेश्वर ने निर्मला को लेकर पार्क की विपरीत दिशा में एक ड्राई क्लिनिंग की दुकान के अन्दर जाकर आश्रय लिया था।

वर्षा में ही प्रमथ को पार्क में घुसते देखकर यह समझ में आ गया था कि वह विभ्रान्त व उद्विग्न होकर भागा आया है। निर्मला ने कहा था; भैया आएंगे। बड़ी मुश्किल से प्रमथ को दुकान में बुला लेना पड़ा था।

आंधी-पानी के थम जाने पर रिक्शे से जाते-जाते परिचय हुआ। निर्मला अगले रिक्शे पर थी, पिछले रिक्शे पर थे प्रमथ और सुरेश्वर।

प्रमथ बोला, "उसे बहुत कम दिखाई पड़ता है। मुझे बहुत डर लग गया था।"

सुरेश्वर बोला, "वे कह तो रही थीं कि उन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था।"

"कैसे समझता मैं कि एकाएक ऐसी आंधी आएगी।··· मुझसे ही गलती हुई थी, उसे इस तरह से छोड़कर मुझे नहीं जाना चाहिए था।"

"कहां गए थे आप ?"

"मैं ज्यादा दूर नहीं गया था। उसके चश्मे की कमानी खुल गई थी, उसे ठीक करा लाने गया था।"

"वे यही कह रही थीं।"

"शाम को उसे जरा टहलाने ले आया था। गरमी जो पड़ रही है। साथ में न लाऊं, तो आ नहीं सकती है, समझे···। तो भी गनीमत है कि उसने अकेले पार्क से चले जाने की कोशिश नहीं की—ऐसा करती तो बेशक गाड़ी के नीचे आ जाती।"

सुरेश्वर ने कौतूहल बोध किया, तो भी निर्मला की दृष्टि-क्षीणता के बारे तब कुछ नहीं पूछा था।

प्रमथ अपने से ही बता रहा था, "आंधी आई है, यह तो पहले-पहल मैं समझ ही नहीं सका था। वह दुकान भी भला वैसी है, प्राय: अन्त:पुर में है, अन्दर घर के बीच में था मैं, कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता था। उसके बाद जब समझ में आया, तो भागते-भागते आ रहा हूं। मैं तो बहुत डर गया था, सा'ब।···आपका शुभ नाम ?"

सुरेश्वर ने अपना नाम बताया।

प्रमथ ने अपना परिचय दिया। थोड़ा-सा। गैर सरकारी कॉलेज में पढ़ाता है, रहता है नजदीक के एक किराए के मकान में, गली के अन्दर। विधुर है, दुनिया में सगे-सम्बन्धियों के नाम पर यही बहन है।

पानी को चीरता हुआ गली के अन्दर रिक्शा घुसा। बत्ती जल रही थी या नहीं जल रही थी, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चारों ओर ढका हुआ था,

आकाश में तब भी बादल गरज रहे थे, दुःसह गरमी वर्षा के पानी से जैसे धुल गई थी।

कमरे में लाकर बिठाया प्रमथ ने। सुरेश्वर को जो आपत्ति करनी थी वह उसने रिक्शे पर चढ़ते समय पहले-पहल की थी, पर उसके बाद उसने फिर कोई आपत्ति नहीं की थी। ठीक जो क्या हुआ था, सुरेश्वर को यह मालूम नहीं, किन्तु किसी अद्भुत आकर्षणवश अथवा कौतूहल से वह प्रमथ के साथ चला आया था। यह आकर्षण किस बात का था, अथवा उसका कौतूहल कितना तर्कसंगत था, वह उसने तब नहीं सोचा था।

आकस्मिक भाव से जो कुछ घटा था, साधारण रूप से यह खत्म हो सकता था। पार्क की विपरीत दिशा की उस लाड़ी मे खड़ा होकर, अथवा रास्ते मे उतरकर, यहां तक कि रिक्शे पर जाते-जाते भी सौजन्य व कृतज्ञता प्रकट करके प्रमथ इस तुच्छ घटना को समाप्त कर सकता था। ऐसा करता, तो उसे दोष देने का कोई कारण नहीं होता। लेकिन प्रमथ ने ऐसा नहीं किया था। सज्जनों की संगत करनेवाला सरल आदमी था प्रमथ, उसके चरित्र में सुहृदजनोचित हार्दिकता थी। प्रमथ उम्र में सुरेश्वर से बड़ा था, तो भी उसने अपने चरित्र-माधुर्य से सुरेश्वर को मित्र जैसा बना लिया था। किन्तु दोनों पक्षों का परिचय क्रमशः जिस घनिष्ठता में बदला था, उसकी जड़ में सम्भवतः निर्मला का आकर्षण ही प्रधान था।

जीवन के कुछ सरल साधारण नियम के अनुसार निर्मला किसी युवक के आकर्षण की वस्तु नहीं हो सकती है। निर्मला का बाहरी रूप नहीं था। उसके बदन का रंग सांवला था, शरीर शीर्ण लता की तरह क्षीण था। और वह दुर्बल व शिशु की भांति असहाय थी। शंख की नाईं लम्बा मुंह था, बड़ा-सा कपाल था, पतली-सी ठोडी में रूप की ऐसी कोई पच्चीकारी नहीं थी कि जो दृष्टि को अलपक बना सके। निर्मला मोटे शीशे वाला चश्मा पहना करती थी, चश्मे के नीचे उसकी पलकें मोटी दिखाई देती थी, लगता, वह आंखें मींचे हुए है। उसकी आंखों की पुतलियों का रंग मटमैला था, निर्मला प्रायः हर दम ही झुकी नजरों से ताका करती थी, मानो यह प्रकाश बड़ा प्रखर हो, उसकी आंखों को सहन नहीं हो रहा हो।

निर्मला में रूप तो नहीं था, किन्तु एक आश्चर्यजनक सौंदर्य था। यह सौंदर्य उसके शरीर में नहीं है, यह तो समझ में आता था, किन्तु यह समझ में नहीं आता था कि ठीक कहां यह सौंदर्य है। कृष्ण-पक्ष की झीनी चांदनी जैसी एक आभा जैसे उसके सांवले रंग में घुली-मिली रहती थी, और कभी-कभी लगता, यह आभा शायद किसी एकान्त स्थान से निकल रही है। निर्मला का शंख-सदृश मुंह कभी-कभी एक ऐसी वेदना का संचार करता था जो हृदय के किसी अज्ञात स्थान में अनुभव किया जा सकता था, हालांकि उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता था। बहुत दिनों तक सुरेश्वर की समझ में यह नहीं आया था कि निर्मला के प्रति उसका आकर्षण क्यों है। बाद में भी जो उसकी समझ में आया था, ऐसी बात नहीं—फिर भी एक धारणा हुई थी। उसे लगा था, निर्मला इस संसार में मनुष्य की जो निर्दिष्ट नियति है, उसी वेदनादायक स्थिर परिणति के लिए प्रतीक्षा किए हुए है, हालांकि उसके आचरण में कुढ़न अथवा डर नहीं है; निर्मला कभी भी अपने भाग्य के बारे में कुछ

नहीं वोलती थी। सुरेश्वर को न जाने क्यों लगता, निर्मला के लिए इतनी सहिष्णुता अनुचित है।

प्रमथ ने कहा था, निर्मला क्रमशः अन्धी होती जा रही है, आखिरकार अन्धी हो जाएगी।

ठीक किस कारण निर्मला की आंखों में बीमारी हुई थी, यह कोई नहीं वता सका था। सब की अलग-अलग राय थी—जितने मुंह उतनी बातें। बचपन से ही निर्मला की आंखों में तकलीफ थी, उम्र बढ़ने के बाद वह बीमारी वन गई। पहले-पहल साधारण चिकित्सा व चश्मा पहनाकर उस बीमारी को रोक रखने की कोशिश की गई थी। वाद में और भी विभिन्न प्रकार चिकित्सा हुई थी। प्रमथ ने अपने बूते के बाहर कोशिश की थी, मगर उस रोग का कोई प्रतिकार नहीं हुआ था। अब प्रमथ निरुपाय है, सिर्फ अक्षम की तरह प्रतीक्षा किए हुए है। वस्तुतः उसके लिए करने को कुछ नहीं था, एक, सिर्फ वहन को अगोर कर रखने के अलावा, दूसरे, छुट्टियों में निर्मला को साथ लेकर वाहर घूमने जाने के सिवा। प्रमथ प्रायः हर छुट्टी में निर्मला को साथ लेकर घूमने निकलता था। न जाने किसने उससे कहा था, वाहर के खुले गगन-पवन में निर्मला को एक सामयिक लाभ हो सकता है। यह उपदेश लगभग संस्कार की तरह प्रमथ पर हावी हो गया था। छुट्टी मिलते ही वह निर्मला को लेकर वाहर भागना चाहता। निर्मला वाहर जाना पसन्द करती थी, लेकिन बड़े भाई की ज्यादती उसके शरीर को सहन नहीं होती थी। प्रमथ की इच्छा थी, वह कलकत्ता छोड़कर वाहर कहीं चला जाए नौकरी लेकर, निर्मला के लिए यह लाभदायक होगा लेकिन उसे डर था, कि वाहर एकाएक कोई गड़बड़ी होने पर निर्मला का इलाज कराना सम्भव नहीं होगा, वल्कि कलकत्ता में यह सम्भव है, कलकत्ता में उसका पुराना डॉक्टर था। प्रमथ इस असमंजस में पड़कर कुछ तय नहीं कर पाता था।

सुरेश्वर ने इस समय प्रमथ वगैरह के साथ वाहर जाना शुरू किया था। कभी-कभी ऐसा भी हुआ था कि सुरेश्वर पहले नहीं गया था, वे लोग चले गए थे, उसके वाद कई दिन गुजरते ही सुरेश्वर उनके पास आ धमका था। निर्मला के प्रति सुरेश्वर में जो कमजोरी पैदा हो गई थी वह प्यार थी कि नहीं, यह स्पष्ट रूप से वताना मुश्किल था। हो सकता है, वह प्यार थी, हो सकता है, वह ऐसा कोई अनुराग था, जिसकी व्याख्या करके वताया नहीं जा सकता है।

निर्मला जानती थी कि उसकी दृष्टि-शक्ति क्षीण-से-क्षीणतर होती जा रही है, और अन्त में वह अन्धी हो जाएगी। इसको लेकर उसे जैसे अब कोई घबराहट या दुश्चिन्ता नहीं थी। सुरेश्वर ठीक इस तरह से निर्दिष्ट व अवश्यम्भावी परिणति ान नहीं ले पाता था। वह अस्थिर व कातर होता था, क्षोभ प्रकट करता था मथ के आगे।

एक वार, रांची की ओर घूमने आकर एकाएक न जाने क्या हो गया निर्मला ो। दाहिनी आंख से लगभग दो दिनों तक उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ा। तीसरे न से निर्मला की स्वाभाविक दृष्टि क्रमशः वापस आने लगी। प्रमथ विचलित गया था, सुरेश्वर और भी अधिक विचलित और शंकित हो गया था। उसने हा था कलकत्ता लौट जाना। पर निर्मला राजी नहीं हुई थी।

कई दिनों के अन्दर मोटे तौर पर स्वस्थ हो उठने के वाद निर्मला ने एक

दिन कहा : "तुम क्या कलकत्ता जाकर आंख का ऑपरेशन करा लेने को कहते हो ?"

"ऐसा ही तो सुना था मैंने, प्रमथ कहता है—न जाने किस डॉक्टर ने कहा है कि ऑपरेशन करके एक बार कोशिश की जा सकती है···"

"पहले भी तो दो बार ऑपरेशन हुआ है···पर कहां कुछ तो नहीं हुआ···"

"तो भी···"

"तुम्हें बहुत डर लगता है, न ?"

"हां, तुम्हारी आंखें चली जाएंगी, तो क्या रहेगा ?"

"तो क्या मेरी दोनों आंखें ही मैं हूं ?"

सुरेश्वर ठगा-सा रहकर निर्मला की ओर निहार रहा था, उसकी बात समझ कर भी जैसे कुछ समझ नहीं रहा था।

निर्मला ने धीरे-धीरे कहा, "मेरे ये दोनों हाथ, अथवा सिर्फ यह मुंह, ये आंखें अगर मैं होऊं, तब तो यह मैं कुछ नहीं हूं।···तुम वह कहानी नहीं जानते ?"

निर्मला ने एक राजा और संन्यासी की कहानी कही थी। राजा अकेले एक संन्यासी के आश्रम में आया था अहेर में थककर। संन्यासी ने यथोचित राजसम्मान प्रदर्शित नहीं किया था, क्योंकि वह राजा को पहचान नहीं सका था। इस अपराध से राजा ने संन्यासी को राज सभा में बुला भेजा। उस सभा में राजा और संन्यासी के बीच 'परिचय' को लेकर कूट तर्क हुआ। संन्यासी ने कहा था : हे राजन, यदि आपकी एक कटी बांह रास्ते पर पड़ी हो, तो क्या कोई उस बांह को राजन कहकर सम्बोधित करेगा ? यदि आपके दोनों विच्छिन्न पैर नदी के पानी पर तिरते जाएं, तो आपकी कौन प्रजा उन्हें पहचान ले सकेगी ? आपके रथ का घोड़ा क्या आप हैं ? आपका राजदंड क्या आप हैं ? सारे परिचयों से जुड़े होने से ही आप का परिचय है, अन्यथा आपका कोई परिचय नहीं है। मेरे आश्रम में आप राज-वेश में राजरथ पर अमात्यों का दल लेकर उपस्थित नहीं हुए थे। मुझे भ्रम हुआ था। यह भ्रम सच्चा व स्वाभाविक है।

कहानी कहना खत्म करके निर्मला ने कहा, "मेरी दोनों आंखें हमेशा नहीं रहेंगी—।"

सुरेश्वर कहीं जैसे परास्त हो गया था, फिर भी बोला, "हमेशा तो कुछ भी नहीं रहता है।"

"जानती हूं। फिर भी क्या आजीवन कुछ नहीं रहता है ?"

"क्या रहता है ?"

"रहता है। तुम सोचकर देखो कि क्या रहता है ?"

"एक बात कहूं ?"

"कौन-सी बात ?"

"तुम्हें डर नहीं लगता है ? आंखें खोने पर तुम्हारा कितना कुछ जाएगा, यह सोचकर तुम्हें दुश्चिन्ता नहीं होती है ?"

निर्मला ने माथा हिलाया, "एक समय होती थी। अब तो शायद मैं इसकी आदी हो गई हूं।" कहकर थोड़ी देर रुकी, फिर मुस्कराती हुई बोली, "दुनिया में तो कितने अंधे हैं, हैं न ! आखिर वे लोग भी तो हैं।"

"तो वे ही लोग तुम्हारा भरोसा हैं ?"

"तुम लोग भी मेरा भरोसा हो।"

"हम लोग अगर न रहें तो ?"

"मैं बहस करना नहीं जानती। इतनी बड़ी दुनिया में आखिर कोई-न-कोई तो रहेगा।"

"तुम क्या भगवान की बात कह रही हो ?"

"भगवान में मेरी भक्ति है। मनुष्य में मेरा विश्वास है।···उस दिन पार्क से तुम तो मेरा हाथ थामकर मुझे ले आए थे। क्यों लाए थे ?"

सुरेश्वर कोई जवाब नहीं दे सका था।

निर्मला रांची की उस सामयिक दृष्टिहीनता से तो बच निकली, तो भी अगले वर्ष एक वसन्त की शाम में न जाने क्या घट गया।

## बाईस

अगले वर्ष जो कुछ घटा उसके साथ, हो सकता है, रांची की घटना का सम्बन्ध था, मगर कुछ समझ में नहीं आया था। कलकत्ता लौटकर प्रमथ निर्मला को अपने डॉक्टर के पास ले गया था। उसे निर्मला की आंखों में कोई नया लक्षण ढूंढे नहीं मिला था। रांची में जो कुछ घटा था वह इतना विचित्र व सामयिक था कि उसका कोई चिन्ह अब नहीं था।

प्रमथ निश्चिन्त हुआ।

निर्मला ने मानो थोड़ा-सा परिहास करके ही सुरेश्वर से कहा, "देखा···।"

परिहास का कारण अवश्य था। रांची में रहते सुरेश्वर में कैसा एक सदा-आतंक का भाव आ गया था। उसका आचरण देखने पर लगता था, किसी भी दिन, किसी भी समय निर्मला की आंखों की अंतिम दृष्टि शक्ति खत्म हो जाएगी, इस दुश्चिन्ता से वह शंकित बना हुआ है। निर्मला निकट रहती, तो सुरेश्वर कुछ इस तरह से उसे लक्ष्य करता, कि लगता था, हर क्षण वह निर्मला की किसी नई अस्वच्छन्दता को ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा है। निर्मला घर से बाहर निकलती तो सुरेश्वर उसके अगल-बगल छाया की भांति रहता, लगता, जैसे किसी पंगु शिशु की रखवाली करता हुआ वह उसे लिए जा रहा हो। हर सुबह नींद से उठकर जब तक न उसे निर्मला का गला सुनाई पड़ता तब तक वह बुत व संत्रस्त बना रहता, कमरे के बाहर नहीं आता।

रांची से कलकत्ता लौटा, तो सुरेश्वर की यह सदा-शंकित अवस्था दूर हुई। हालांकि तब भी उसके आचरण में घबराहट थी।

एक दिन न जाने किस बात पर निर्मला ने कहा, "तुम जैसा आदमी मैंने नहीं देखा है।"

"क्यों ?"

"तुमने भैया से क्या कहा है ?"

"क्या कहा है मैंने !"

"यही कि घड़ी की सुइयां देखने में मुझसे गलती होती है।"

"पर उस दिन तो तुमसे ऐसी गलती हुई थी।"

"नहीं, मुद्रायें देखने में गलती नहीं हुई थी, बल्कि कहने में गलती हुई थी। मैं अन्यमनस्क थी।"

"तब तो मेरी ही गलती है।...."

"तुम्हारे स्वभाव में पहले तो यह सब नहीं था। आजकल जैसे कैसी अस्थिरता-सी आ गई है तुम्हारे स्वभाव में।"

"मेरे स्वभाव में अस्थिरता आ गई है क्या! ...आखिर आदमी तो बदलता है।" सुरेश्वर हंसता।

सुरेश्वर जो बदल रहा था, यह, हो सकता है, उसे भी मालूम था।

इस समय सुरेश्वर ने रोज यह अनुभव करना शुरू किया था कि निर्मला उसके लिए इस आश्चर्यजनक आनन्द व अद्भुत वेदना का मिश्रण है। इस आनन्द की कोई निर्दिष्ट व्याख्या वह नहीं कर सकता था। उसे लगता, यह आनन्द अवर्णित है, स्फूर्त है, वह सोचकर देखता, निर्मला अपनी देह व मन को लेकर जितनी सीमित है, यदि वही उसका स्थूल अस्तित्व हो, तब तो इस अस्तित्व के परे भी निर्मला का एक आनन्द-स्पर्श है, जैसी चांदनी का होता है। सुरेश्वर ने एक समय इस प्रकार का सपना भी देखा था : देखा था, वह न जाने कहां खड़ा है, आस-पास में कहीं निर्मला नहीं है, फिर भी उसे निर्मला की बात याद आ रही थी, और वह निर्मला को मन-ही-मन ढूंढ रहा था। हठात् उसने अपने अंग-अंग में चांदनी का अनुभव किया, उसे यह ख्याल नहीं था कि वह चांदनी के बीच खड़ा है। मुंह उठाकर सुरेश्वर ने चांद देखना चाहा, ओट में कहीं शायद चांद था, दिखलाई नहीं पड़ा। सहसा अपने चारों ओर उसने निर्मला की उपस्थिति अनुभव की, लगा, निर्मला किसी अलौकिक शक्ति से चांद की किरण बनकर उसके चारों ओर विराज रही है।

जीवन में इस प्रकार के आनन्द के साथ सुरेश्वर का पूर्व-परिचय नहीं था। छुटपन से लेकर अब तक वह जिन लोगों को याद कर सकता है—पिताजी, मां और वीनू मौसी—उनमें से कोई भी उसके लिए आनन्द की मूर्ति नहीं था। पिताजी उसके लिए हरदम ही निरानन्द व वितृष्णा के—यहां तक कि करुणा के पात्र थे। मां थी दु:ख की मूर्ति; उपेक्षित होने की वजह से मां के अन्दर अभिमान की वेदना पुंजीभूत बनी हुई थी; मां में कहीं आनन्द नहीं था—, मां उसे आनन्द बांट नहीं सकती थी। मां के अन्दर एक टीमटाम थी—यह टीमटाम थी मां का अहंकार। सुरेश्वर ने छुटपन से लेकर अब तक न तो आनन्द देखा था, न आनन्द जाना था—यह जैसे पहली बार देख रहा था निर्मला में।

हेम की बात उसे इस समय बहुत याद आती थी। हेम के घर उसकी आवा-जाही भी थी। हेम बड़ी सुन्दर हो उठी थी, डॉक्टरी पढ़ रही थी। हेम के साथ अपने सम्बन्ध के बारे में भी सुरेश्वर सोचा करता था। हेम जो मात्र उस दिन भी उसकी काम्य वस्तु थी, मुख थी—यह बात वह अस्वीकार कर नहीं कर सकता था। हेम के प्रति उसकी ममता व स्नेह किसी विषय में कम नहीं हुआ था। किन्तु सुरेश्वर को हेम में कोई गहरा आनन्द ढूंढे नहीं मिला था। अथवा ये कहना अच्छा है कि निर्मला से जो आनन्द मिलता था हेम में वह आनन्द नहीं था। क्यों नहीं था, क्यों सुरेश्वर को हेम में अपना आनन्द नहीं मिलता था, यह उसे पता नहीं था।

इस समय सुरेश्वर कलकत्ता में रहता था, तो भी वह हेम के घर आना-जाना धीरे-धीरे कम करता जा रहा था। जैसे तब वह किसी दुविधा में पड़ा था। उसकी समझ में नहीं आता था कि उसकी इस दुविधा का सही कारण क्या है ? हालांकि हेम के प्रति उसकी ममता या स्नेह में कोई कमी नहीं आई थी।

सुरेश्वर निर्मला से बीच-बीच में हेम की चर्चा करता। हेम की बीमारी, उसका अस्पताल में रहना, चंगी हो उठना, पढ़ना-लिखना—यही सब चर्चा। निर्मला सहानुभूति के साथ सुनती, सुनते-सुनते हेम जैसे निर्मला की अतिपरिचित हो उठी थी।

सुरेश्वर कहता, हेम को मैं एक दिन इस घर में ले आऊंगा। मगर वह उसे लाता नहीं।

बीच-बीच में निर्मला ही तकाजा करती, "कहां, हेम को तो तुम नहीं लाए ?"

"लाऊंगा।...देखता हूं, वह पढ़ाई-लिखाई को लेकर बहुत व्यस्त है।"

"पर एक दिन तो उसे ला सकते हो।"

"सो तो ला सकता हूं।"

"मुझे क्या लग रहा है, जानते हो ?"

"क्या ?"

"उसे लाने की तुम्हारी इच्छा नहीं है।"

"नहीं, इच्छा जो नहीं है, ऐसी बात नहीं, लेकिन...। ...लाऊंगा एक दिन...।"

"तुम सोचते हो, मैं उसे अच्छी तरह से देख नहीं पाऊंगी ? मैं उसे ठीक देख पाऊंगी।" निर्मला ने मानो स्निग्ध कौतुक किया।

सुरेश्वर ने सोच-विचार कर धीरे से कहा : "तुम तो उसे देख पाओगी, पर, हो सकता है, हेम तुम्हें न देख पाए।"

इसी तरह से दिन गुजर रहे थे। सुरेश्वर ने उस बार पूजा के समय अपने गांव जाने की ठानी। बहुत दिन हुए वह अपने गांव-घर नहीं गया था, घर-द्वार की हालत कैसी हुई होगी कौन जाने, गांव से हालदार साहब चिट्ठी लिखा करते हैं, तकाजा करते हैं जाने के लिए, मगर वह जा नहीं सकता है।

प्रमथ से कहा सुरेश्वर ने "इस बार पूजा के समय हमारे वहां चलो।"

"चलो, अच्छा ही होगा।"

"तो फिर चिट्ठी लिख देता हूं—!"

"लिख दो। अच्छा, तुम्हारे घर में सांपों के बिल और सीढ़ियां तो ज्यादा नहीं न हैं ?"

सुरेश्वर तो अवाक्। "क्यों ? एकाएक तुम्हें सांप के बिलों और सीढ़ियों की दुश्चिन्ता क्यों हुई ?"

"सांप के बिलों से मुझे बहुत डर लगता है—" प्रमथ ने हंसते-हंसते कहा, "और सीढ़ियों वाले घर में निर्मला को लेकर रहने में डर लगता है।"

सांप के बिलों की दुश्चिन्ता तो सुरेश्वर को नहीं हुई थी, लेकिन सीढ़ियों की दुश्चिन्ता हुई थी। निर्मला की बात सोचकर जाने का इन्तजाम, हो सकता है, वह रोक देता, पर निर्मला ने ऐसा नहीं होने दिया था।

पूजा के समय गांव जाकर सुन्दर लगा था। उतना बड़ा मकान सुनसान पड़ा हुआ था। निचले हिस्से में एक प्राइमरी स्कूल लगता था, पूजा-मंडप का व्यवहार नहीं होता था, ढेर सारे कतवार इकट्ठे हो गए थे। फिर भी हालदार साहब ने भरसक सफाई करवाई थी। दो-मंजिले पर वे लोग रहते थे। पूरब वाली खिड़की खुलने पर नदी का तट और आदिगन्त फैला मैदान दिखाई पड़ता था। वह अमराई अब नहीं थी। रथ के मेले का मैदान तब भी था।

निर्मला को पकड़-पकड़कर छत पर ले जाता सुरेश्वर। छत की सीढ़ियां बराबर ही कैसी छोटी व अंधेरी-सी थीं। छत पर आकर निर्मला अपना हाथ छुड़ा लेती; धीरे-धीरे चहल-कदमी करती, सुबह अथवा शाम की हवा उसे बहुत पसन्द थी। सुरेश्वर निर्मला को नदी के तट पर टहलाने ले जाता, मैदान की हरियाली की तरफ ताकने को कहता, आकाश की ओर आंखें उठाकर तिरते सफेद बादलों को देखने के लिए कहता। दृष्टि-शक्ति को जहां तक संभव फैला देने के लिए निर्मला की व्यग्रता की अपेक्षा सुरेश्वर की व्यग्रता ज्यादा थी। हर क्षण वह अपनी उंगली उठाकर नजदीक की कोई चीज दिखाता; अच्छा, बताओ तो, वह किस चीज का पेड़ है? बगुले दिखाई पड़ रहे हैं वहां, नहीं दिखाई पड़ रहे हैं? अपने पैरों के पास फतिंगे को पकड़ो'''

निर्मला एक-एक दिन कहती, "तुम्हारी डॉक्टरी से तो मैं मर जाऊंगी।"

"मैं डॉक्टरी कहां करता हूं! यह सब तो आंखों के लिए अच्छा है।"

"बीच-बीच में मैं सोचती हूं, मेरी दोनों आंखें जैसे तुम्हारी हों, अपनी आंखों को लेकर भी आदमी शायद इतना नहीं करता है'''"

सुरेश्वर कोई जवाब नहीं देता।

एक दिन निर्मला ने शाम के वक्त छत पर बैठकर बातें करते-करते एकाएक कहा, "तारे देखे मुझे कितने दिन हुए, तारे देखने को बड़ा जी करता है'''"

प्रमथ अपने मन से गाना गा रहा था, गाना रोककर बोला, "आज तारे नहीं हैं। बहुत खिली चांदनी है, कल पूर्णिमा है।" उसकी बातों से जैसे लगता था, आकाश में तारे नहीं हैं, इसलिए निर्मला को दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, आकाश में तारे होते तो दिखाई पड़ते।

ऐसी कोई बात नहीं थी, फिर भी सुरेश्वर ने न जाने कहां एक पसलियां कंपा देने वाली वेदना अनुभव की। इतनी बड़ी दुनिया, माथे के ऊपर अनन्त आकाश, यह चांदनी सब-के-सब जैसे मलिन व अर्थहीन लगे। सुरेश्वर ने बाद में कहा, "चलो, नीचे चलें, ओस गिर रही है।"

आनन्द की भांति निर्मला सुरेश्वर की किसी वेदना का भी उत्स थी। जीवन के नाना दुःखों से सुरेश्वर का बचपन से परिचय था। उसके पिता, मां, पिता की उपपत्नी, बीनू मौसी, यहां तक कि हेम समार के किसी-न-किसी दुःख की तसवीर थी। ये लोग जो दुःखी थे, इसमें सुरेश्वर को कोई सन्देह नहीं था। इनका दुःख सुरेश्वर समझता था। मगर उसे नहीं लगता था कि वह सब दुःख और निर्मला में जो वेदना का उत्स है, वह एक है।

मां का दुःख मानो अत्यन्त व्यक्तिगत था। असाधारण रूप था, हालांकि मां को अपने पति का अनुराग व साहचर्य नहीं मिला था, मां को अवज्ञा मिली थी। यह दुःख मां नहीं पाती, यदि पिताजी मां पर अनुरक्त होते। और तमाम दुःख ही

एक व्यक्ति की वंचना से आया था।

पिताजी ठीक दुःखी नहीं थे, अभागे थे। पिताजी को कोई दुःख बोध नहीं था, या पिताजी को देखने पर दुःख पाने का कारण भी नहीं था। अनाचारी आदमी को देखने पर जिस प्रकार की करुणा हो सकती है पिताजी को देखने पर ज्यादा-से-ज्यादा वैसी ही करुणा होती थी।

एक समय हेम भी दुःखी प्रतीत होती थी सुरेश्वर को : जब हेम बीमार थी, जब हेम अस्पताल के बिस्तर पर असहाय होकर पड़ी हुई थी उस समय हेम की रंग उड़ी बदरंग सूरत और उसकी दो कोटरगत करुण आंखें देखने पर सुरेश्वर व्याकुल व अभिभूत होता था। इतनी छोटी उम्र में एक भयंकर रोग उसकी जीवनी शक्ति को तिल-तिलकर सोख रहा है—इस चिन्ता ने सुरेश्वर को कातर व पीड़ित किया था। उसे लगा था। इस तरह से जीवन का अपचय होने देना अर्थहीन है। हेम को नीरोग बनाना उसे अपना कर्त्तव्य-सा प्रतीत हुआ था। मगर हेम की अस्वस्थता, उसकी रोग-शय्या, असहायता व दुःख ने सुरेश्वर को किसी बड़ी वेदना से परिचित नहीं कराया था। उसे कभी भी ऐसा नहीं लगा कि हेम सांसारिक रोग-शोक के भोग के अलावा और कुछ भोग रही है। उसके बाद हेम स्वस्थ हो गई। उसके चंगी हो जाने के बाद हेम के दुःख की शक्ल धुल गई थी। एक समय कुछ मैल पड़ा था, पर अब वह साफ हो गया है और स्वाभाविक आदमी उभर उठा है—इससे ज्यादा कुछ हेम को देखकर नहीं लगता था।

निर्मला में जो वेदना थी वह जैसे उसका व्यक्तिगत दुर्भाग्य नहीं थी। सुरेश्वर समझ नहीं पाता था—किन्तु अनुभव करता था कि निर्मला मानो मनुष्य की एक ऐसी अवस्था को इंगित कर रही है जिस पर उसका कोई हाथ नहीं है। यह भाग्य है, अथवा यह वह परिणति है जिसे रोकने की क्षमता मनुष्य की नहीं है—निर्मला मानो उसी परिणति की असहायता प्रकट कर रही है। आखिरकार मानव-जीवन मृत्यु के आगे पराजित है, भाग्य के आगे उसका तमाम उद्यम झूठा हो जा सकता है, इस क्षण का सुख, दूसरे क्षण में विषाद हो सकता है। जैसे कोई सुव्यवस्थाहीन, युक्तिहीन, स्वैराचारी और निर्मम चीज हो। उसके आगे जीवन की तमाम चीजें ही जैसे आकस्मिक हों, अर्थहीन हों। दुःख के सिवा जीवन में वस्तुतः कुछ नहीं है, यन्त्रणा व क्षोभ के अलावा मानव-भाग्य की दूसरी परिणति नहीं है।

सुरेश्वर के मन में क्रमशः एक निराशा ने दर्शन देना शुरू किया था। निरर्थक है जीना, अस्थायी है यह सुख इस अकारण आत्मरक्षा की क्या जो जरूरत है, यह वह समझ नहीं पाता था। हालांकि यह निराशा सुरेश्वर की स्वभावजात नहीं थी। वह भाग्यवादी नहीं था। निर्मला की वेदना उसके मन में यह निराशा कैसे संचारित कर रही थी, यह उसे पता नहीं था, लेकिन निर्मला में कहीं निराशा नहीं थी। निर्मला की सहिष्णुता, धैर्य और विश्वास बीच-बीच में सुरेश्वर को इतना विचलित किया करता था कि वह क्षुब्ध व अप्रसन्न होता था।

"तुम सब कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझते हो," निर्मला कहती "हमारे दो हाथ हैं, हम हर तरफ नहीं लड़ सकते।"

"तब तो हम दुनिया में मिट्टी के माधो बनकर बैठे रह सकते हैं।"

"नहीं, हम मिट्टी का माधो बनकर बैठे नहीं रह सकते।"

"क्यों ?..."

"पता नहीं। साध्य और असाध्य नामक दो शब्द हैं।···जो असाध्य
कर पाने पर मुझे दुःख नहीं होता है।"

सुरेश्वर जो इन सब आसान बातों को नहीं समझता था, ऐसी
समझकर भी वह किसी मानसिक चंचलता के चलते अकारण क्षोभ प्र
था। वह यह समझ सकता था कि इतने दिनों तक उसके जीवन की
गति थी अब उधर उसका जीवन वह नहीं पा रहा है। वास्तव में वह
था, अकारण जीवन यापन करता जा रहा था। अपने जीवन की
अर्थ के सम्बन्ध में उसे कोई जिज्ञासा नहीं थी। कभी आवेग से, कभी
तो कभी स्वाभाविक दुर्बलता से वह बहता रहा था। कभी स्वार्थ से, कभी
से, तो कभी सामाजिक लोक-लाज से वह उदार हुआ था लेकिन इनमें से
उसके अन्तर का नहीं था। जीवन के साथ उसका लगाव निरपेक्ष दर्श
था, सक्रियता का नहीं था।

इस मानसिक अशान्ति और चंचलता के समय सुरेश्वर ने एक दि
का विदा-पर्व निर्बोध, अदम पशु की भांति लक्ष्य किया :

उस दिन होली थी, सारा दिन कलकत्ता के रास्तों पर रंगों की भर
लाल, बैंगनी, नीले आदि रंगों के दाग-लगे रास्ते थे, हवा में अबीर का
रहा था, लड़के-लड़कियों के सिर के बाल रूखे-सूखे थे, गाल और गले
रंगों के दाग थे, मकानों की दीवारों पर पान की पीक की तरह विचित्र-
रंग बिखरे हुए थे, शाम को चैती हवा ने बहना शुरू किया, चांद जगमग
उभर उठा आकाश में।

सुरेश्वर जब हेम के घर से होकर प्रमथ के घर पहुंचा, तो शाम हो
प्रमथ कमरे में बैठकर अपने कॉलेज के कुछ दोस्तों के साथ हो-हो करके
रहा था, कमरे में ठहाका गूंज रहा था।

निर्मला बोली, "आओ, तुम बल्कि मेरे कमरे में बैठो; वे लोग थो
बाद चले जाएंगे।"

सुरेश्वर प्रमथ को चेहरा दिखाकर बगल वाले कमरे में जाकर बैठा
निर्मला ने दूधिया साड़ी पहन रखी थी, उसका पाड़ था काला और
निर्मला किसी भी दिन जतन से बाल नहीं बांधती थी, किसी तरह से
लेती, उस दिन शायद उसने बालों में शैम्पू लगाया था, रूखे-सूखे बा
समूची पीठ पर फैले हुए थे, उसने साड़ी के आंचल से बालों को दबा रखा

सुरेश्वर बोला, "बात क्या है, आज के दिन ऐसी सफेद साड़ी पह
तुमने ?"

"भला बात क्या होगी, बस, यों ही पहन रखी है। मगर क्यों ?"

"आज सफेद कुछ देखने से ही हाथ कैसा करता है···"

"रंग डालोगे ? तो डालो।"

"बल्कि अबीर लगाऊं जरा-सा···"

"मैं दूं, या तुम लाए हो ?"

सुरेश्वर मुस्कराया, 'तुम्हीं दो।'

"चश्मा उतारो···" सुरेश्वर बोला।

"मुंह में लगाओगे क्या ? नहीं-नहीं—"

"कपाल में लगाऊंगा; चश्मे के शीशे में पड़ सकता है।···"

निर्मला ने चश्मा उतारकर हाथ में रखा।

सुरेश्वर ने अबीर का एक छोटा-सा टीका लगा दिया, उसके बाद बोला, "वाह ! अच्छा दीख रहा है।"

निर्मला हंस पड़ी। "तुम्हें जरा लगाऊं—पैरों पर डालती हूं।"

"नहीं; तुम मेरे पैर मत छूना।"

"तुम मुझसे उम्र में बड़े हो, मैं छोटी हूं; तुम्हारे पैर छूने में मुझे शर्म नहीं।"

"मेरे कपाल में लगा दो।"

निर्मला ने आखिरकार अवश्य सुरेश्वर के पैरों पर अबीर डाला, अबीर डालकर थोड़ी देर तक खड़ी रही, फिर दो-चार बातें कीं, अन्त में बोली, "बैठो, मैं चाय लेकर आती हूं।"

निर्मला के चले जाने के बाद भी जैसे उसकी दूधिया साड़ी का, उसके आंचल से दबे बिखरे रूखे-सूखे बालों का, उसके कपाल के अबीर के छोटे-से टीके का सौंदर्य और पवित्रता सुरेश्वर की आंखों में तिर रही थी।

हठात् कैसा एक अद्भुत, अवर्णनीय वीभत्स आतंक-भरा चीत्कार तिरता हुआ आया। आवाज भांपकर भागा जाए, इसके पहले जो कुछ घटने को था, घट चुका था। घर की महाराजिन की नाबालिग लड़की रसोई-घर से भागकर निकल आई थी, उसका सर्वांग कांप रहा था, और रसोई-घर में निर्मला तब भी अपनी साड़ी और बालों की आग बुझाने की कोशिश कर रही थी।

अस्पताल ले जाते समय निर्मला बेहोश थी।

अगले दिन दो बजे के लगभग उसे होश आया था; वह ज्ञान था कुहासाच्छन्न चेतना का। अवशिष्ट कई दिन निर्मला के उसी तरह से कटे थे। बोलने की वह जी-जान से कोशिश कर रही थी, पर बोल नहीं पाती थी; अस्पष्ट रूप से कुछ कहती, कुछ कहते-कहते रुक जाती। जलने के कई घाव मानो उसकी दुर्बल, शीर्ण देह को शववाहकों की भांति ढोकर क्रमशः मृत्यु के समीप ले गए थे। किन्तु सरल समाप्ति के पहले ही निर्मला अन्धी हो गई थी।

ऐसा कैसे हुआ था, यह रहस्य है। हो सकता है, उस दिन रसोई-घर में चाय बनाते समय उसने एकाएक अपनी आंखों के सामने सारी रोशनी बुझ जाते देख, विह्वल होकर चले आने की कोशिश की थी, तो साड़ी के आंचल में आग लग गई थी, हो सकता है, उसकी दृष्टि-शक्ति की क्षीणतावश और असतर्कता के चलते साड़ी में पहले ही आग लग गई थी—उसके बाद सहसा—आतंक से उसकी स्नायु आहत हो गई थी। वह आघात उसकी अति दुर्बल दृष्टि-शक्ति के लिए असह्य हो गया था। कोई दूसरा कारण भी हो सकता है···। कौन जाने ! निर्मला याद करके कुछ कह नहीं सकी थी। हो सकता है, कहा नहीं जा सकता था।

निर्मला की मृत्यु सुरेश्वर के लिए दुःसह हो गई थी। न जाने क्या उसे हरदम खदेड़ता फिरता था; अन्तर की कोई गुप्त यंत्रणा व प्रश्न उसे व्याकुल व विभ्रान्त किया करता था; यह जीवन उसे मूल्यहीन, अर्थहीन प्रतीत होता था; कोई सांत्वना नहीं थी। उसने अपने आपको ऐसा बेसहारा, रीता, सूना और कभी भी

महसूस नहीं किया था।

सुरेश्वर शायद कुछ ढूंढ़ने की आशा से पागलों की तरह कलकत्ता छोड़कर चला गया था उसके बाद। कई महीने बाद वापस आता था, फिर चला जाता था। इस तरह से उसकी कलकत्ता में आवा-जाही थी। प्रमथ भी अब कलकत्ता में नहीं था। क्रमशः सुरेश्वर ने कलकत्ता छोड़ा।

सुरेश्वर जैसे नींद में सपना देखते-देखते जाग उठा, जाग उठा, तो देखा, निर्मला अब नहीं रही। अध्यापन के कमरे में वह लेटा हुआ है, रात कितनी है, कुछ समझ में नहीं आता है, टाइम पीस घड़ी की आवाज गूंज रही है, स्लेटी अंधेरा है, पूस का असह जाड़ा उसके समूचे कमरे में बैठा हुआ है।

## तेईस

देखते-देखते क्रिसमस आ धमका।

ये कई दिन गगन वगैरह नजदीक की जगहों में घूम-फिर रहे थे। अवनी प्रायः नियमित आता था, दोपहर के बाद; अपने ऑफिस के काम-धाम और हैमन्ती के अस्पताल की बात सोचकर यही समय उसने तय कर लिया था। कोई असुविधा नहीं होती थी हैमन्ती को, वह जा सकती थी। इस बीच वे लोग शहर गए थे। यह शहर कुछ कम पुराना नहीं है, पुराने जमाने के मिशनरियों को शायद बहुत पसन्द आई थी यह जगह, बड़े पैमाने पर स्कूल, कॉलेज और चर्च बनवाया है उन्होंने, अभी भी उनकी काफी गरिमा है; चांदमारी की तरफ सरकारी ऑफिस-अदालतें हैं, उधर मिशों का-सा ठाट-बाट है—कंकरीले रास्ते हैं, दोनों ओर पेड़-पौधे हैं, ऊंचे-नीचे मैदान हैं, बगले हैं। रिफॉरमेटरी स्कूल, बिहार सरकार का एग्रिकल्चरल रिसर्च इन्स्टीच्यूट···ये सब भी हैं। शहर का एक हिस्सा ऐसा है, बाकी हिस्सा घना और गंदा है, जितनी धूल है, उतनी ही मक्खियां हैं।

और एक दिन ये लोग सहदेव पहाड़ घूमने गए। यह पहाड़ खास कुछ नहीं है, पर पहाड़ की तलहटी कमाल की है। दूर से देखने पर लगता है, शाल और महुए का हरा-भरा जंगल हाथ जोड़े हुए है और पेड़-पौधों से भरा पहाड़ ऊंचे आकाश से निवेदन कर रहा है। पहाड़ की तलहटी में हिरन और असंख्य जंगली पक्षी हैं।

उसके बाद गगन वगैरह गए राम-सीता कुंड देखने। गरम पानी के इस कुंड के पास मेला लगता है पूस के आखिर में, मेले की तैयारियां शुरू हो गई थीं।

इस तरह से सैर-सपाटे कर रहे थे गगन वगैरह। यहां तक कि एक दिन रिजर्व फॉरेस्ट भी घूम आए देर रात गए। उस दिन बिजली बाबू भी साथ थे। बिजली बाबू को गगन जैसे बातचीत से पहचानता था, असली आदमी को नहीं जानता था। उस दिन जाना। जानकर बिजली बाबू का परम भक्त हो गया, ऐसा रसिक आदमी कोई खास उसे नजर नहीं आया था। बिजली बाबू फौरन उसके 'बिजली भैया' हो गए।

यद्यपि गगन सैर-सपाटा कर रहा था, चेहरे पर हंसी-खुशी थी, फिर भी मन में उसके रत्ती भर भी सुख नहीं था। उसके यहां आने का प्रधान उद्देश्य विफल हो गया है। आने के बाद उसे यद्यपि सन्देह हुआ था, फिर भी दीदी की बातचीत और मनोभाव से उसने दीदी को जितना समझा था उतना सुरेश भैया को नहीं समझा था। दीदी क्या कहती है—नहीं कहती है, यह कलकत्ता वापस जाकर मां को बताने के लिए वह नहीं आया था, यह बताना अर्थहीन होता; सुरेश भैया का क्या कहना है, यही जानने के लिए वह आया था। अब तो उसे सभी कुछ मालूम हो चुका है। कलकत्ता लौटकर वह मां को किस तरह से यह बताएगा, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। बेचारी मां बिलकुल टूट जाएगी।

यहां रहने की भी जो गगन की अब उतनी इच्छा हो रही थी, ऐसी बात भी नहीं। लेकिन एकाएक चला जाना और भी आंखों में खटकने वाला होता। अन्दर की गड़बड़ी और भी खुली दिखती, कम-से-कम सुरेश भैया के आगे उन लोगों का विरक्त, वीतस्पृह, क्रोध का मनोभाव सीधे प्रकट हो जाता, तो जैसे कहीं जरा ओछा बनकर रहना पड़ता उन्हें। गगन सोच रहा था, और मात्र कई दिन किसी तरह से बिताकर वह नये वर्ष के शुरू में ही कलकत्ता लौट जाएगा।

गगन की दूसरी दुश्चिन्ता बन गई थी हैमन्ती। उसे साथ ले जाए, या फ़िल-हाल छोड़ जाए।

उस दिन सुरेश्वर के पास से आने के बाद हैमन्ती ने स्पष्ट रूप से जानना चाहा था सब कुछ। उसकी इच्छा नहीं थी कि गगन जाए; गगन धुन में आकर चला गया था। वापस आकर गगन को शायद लगा था कि सुरेश भैया ने जो-जो कहा है अविकल उसे कहना, हो सकता है, कठोर हो। उसने घुमा-फिराकर कहा था: 'तुम्हारे यहां रहने का अब कोई मतलब नहीं है।'

हैमन्ती के न समझने का कोई कारण नहीं था; उसने कोई दूसरी आशा भी नहीं की थी। फिर भी गगन के इस आगे जाने और वापस आने में जो ग्लानि है उसने उसे अप्रसन्न और अधोमुख किए रखा।

उसके बाद ये कई दिनों से यह सैर-सपाटा हो रहा था। गगन मन-ही-मन मुरझाया हुआ था, तो भी चेहरे पर हँसी-खुशी लिए सैर कर रहा था; हैमन्ती जो ठीक क्या सोच रही थी, कुछ समझ में नहीं आता था—मुंह देखने से लगता था कि उसमें उत्साह कुछ कम नहीं है।

मन-ही-मन दोनों भाई-बहन एक दूसरे से जैसे कुछ छिपाने की कोशिश कर रहे थे। गगन शायद यह नहीं समझने देना चाहता था कि सुरेश्वर के ठुकराने में कितनी निर्ममता है; हैमन्ती भी जैसे यह नहीं समझने देना चाहती थी कि वह कितना असम्मानित बोध कर रही है, और कैसी प्रचंड ग्लानि और वितृष्णा हो रही है उसे। सम्भवतः वे दोनों अपने-अपने मनोभाव को छिपाने के लिए तीसरा ऐसा कुछ चाह रहे थे जो सामयिक रूप से उन्हें अन्यमनस्क किए रखे। हो सकता है उनमें से कोई यह नहीं चाह रहा था कि यहां ऐसा कुछ सहसा घटे जिससे सुरेश्वर और उन लोगों के बीच का व्यक्तिगत मामला दूसरों की नज़रों में कौतू-हल व सन्देह का विषय हो उठे। हठात् वे लोग कलकत्ता नहीं चले जा सकते, अवनी के साथ घूमने-फिरने की सारी व्यवस्था ठीक करके आकर आज अचानक दोनों भाई-बहन उसे रद्द नहीं कर सकते, वे लोग सुरेश्वर को भी, हो सकता है,

यह नहीं समझने देना चाहते कि सुरेश्वर ने उनके मन का सुख, आनन्द, हंसी-खुशी सब कुछ छीन लिया है। ऐसा कुछ जैसे न हो जो प्रकट हो, जो गंदा हो, जिसकी लज्जा उन दोनों भाई-बहनों को मिट्टी में मिला दे। बल्कि यही अच्छा है कि सुरेश्वर देखे कि वे लोग सौजन्य भूले नहीं हैं, न उन लोगों ने कहीं नीचता प्रकट की। न उन लोगों ने कलह किया, न क्रोध या तिक्तता दिखाई। यहां तक कि सुरेश्वर यह बात भी समझे कि वे लोग स्वाभाविक ढंग से घूम-फिर रहे हैं, सैर कर रहे हैं, आश्रम में हैं—जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, या जो कुछ हुआ है उसे उनमें से कोई जैसे महत्व नहीं दे रहा हो।

क्रिसमस के एक दिन पहले दोपहर के वक्त गगन को एकाएक खयाल आया; सुरेश्वर ने उसे न जाने कहां ले जाने की कही थी, किसी मेले में।

अस्पताल से लौटकर नहाना-खाना-पीना खत्म करके हैमन्ती आराम कर रही थी। गगन आकर बोला, "क्या दीदी, तुम सो रही हो क्या ?"

हैमन्ती लिहाफ थोड़े करवट लेटी हुई थी, तकिए पर उसका माथा है, मुंह दूसरी ओर फेरा हुआ था—दिखाई नहीं पड़ रहा था। तकिए की बगल में एक किताब पड़ी हुई है।

आवाज देकर हैमन्ती ने कहा, "नहीं, सोई नहीं हूं।" कहा तो, लेकिन मुंह नहीं फेरा। उसके गले का स्वर उदास है, निरावेग है।

गगन खिड़की की तरफ जाकर खड़ा हो गया जरा, वापस आकर रेडियो का स्विच दबाया, नॉब घुमाया, सितार बज रहा था, रेडियो बन्द किया, फिर खिड़की की ओर हट आया और खड़ा हो गया। इस सब के बीच प्रायः ही नजरें उठाकर वह दीदी को देख रहा था। हेम जिस करवट लेटी हुई थी उसी करवट लेटी हुई है, गगन उसका मुंह नहीं देख पा रहा है।

आखिरकार गगन बैठा, "तो क्या तुम भी कल मेले में जा रही हो ?"

हैमन्ती ने बिना मुंह फेरे ही विस्मय-भरे गले से जवाब दिया, "किस मेले में !"

"क्या पता ! यह तो तुम्हीं लोगों की जानने की बात है।···तुम क्या दीवार देख रही हो ?" अन्तिम वाक्य उसने मजाक करते हुए कहा।

हैमन्ती थोड़ी देर तक चुप रही, उसके बाद करवट बदलकर, चित होकर लेटी, "किस मेले की बात कह रहा था तू···?"

"मुझे नहीं पता। सुरेश भैया ने कहा था। सोचा, तुम जानती हो। किसी मेले में क्या तुम लोगों को स्लाइड दिखाना है ?"

हैमन्ती अब की बार समझ पाई; यह जो यह जानती है, ऐसी बात नहीं, लेकिन उसने सुना है। बोली, "सो मेले में क्या है—?"

"तुम जाओगी क्या ?"

"नहीं, मैं क्यों जाऊंगी !" हैमन्ती ने जैसे उपेक्षा के ही साथ कहा, "वे लोग जाएंगे—।"

"सुरश भैया ने मुझे जाने को कहा था। शायद बड़ा-सा मेला लगता है; नाच-गाच होता है, लोग गधों की पीठ पर चढ़ते हैं···।"

"कहा है, तो चला जा—।" हैमन्ती के कहने का ढंग व्यंग्य जैसा लगा।

"धत्···, मुझे कोई इंटरेस्ट नहीं है उस सब मेले-ठेले में।"

यह नहीं समझने देना चाहते कि सुरेश्वर ने उनके मन का सुख, आनन्द, हंसी-खुशी सब कुछ छीन लिया है। ऐसा कुछ जैसे न हो जो प्रकट हो, जो गंदा हो, जिसकी लज्जा उन दोनों भाई-बहनों को मिट्टी में मिला दे। बल्कि यही अच्छा है कि सुरेश्वर देखे कि वे लोग सौजन्य भूले नहीं हैं, न उन लोगों ने कहीं नीचता प्रकट की। न उन लोगों ने कलह किया, न क्रोध या तिक्तता दिखाई। यहां तक कि सुरेश्वर यह बात भी समझे कि वे लोग स्वाभाविक ढंग से घूम-फिर रहे हैं, सैर कर रहे हैं, आश्रम में हैं—जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, या जो कुछ हुआ है उसे उनमें से कोई जैसे महत्व नहीं दे रहा हो।

क्रिसमस के एक दिन पहले दोपहर के वक्त गगन को एकाएक खयाल आया; सुरेश्वर ने उसे न जाने कहां ले जाने को कही थी, किसी मेले में।

अस्पताल से लौटकर नहाना-खाना-पीना खत्म करके हैमन्ती आराम कर रही थी। गगन आकर बोला, "क्या दीदी, तुम सो रही हो क्या?"

हैमन्ती लिहाफ ओढ़े करवट लेटी हुई थी, तकिए पर उसका माथा है, मुंह दूसरी ओर फेरा हुआ था—दिखाई नहीं पड़ रहा था। तकिए की बगल में एक किताब पड़ी हुई है।

आवाज देकर हैमन्ती ने कहा, "नहीं, सोई नहीं हूं।" कहा तो, लेकिन मुंह नहीं फेरा। उसके गले का स्वर उदास है, निरावेग है।

गगन खिड़की की तरफ जाकर खड़ा हो गया जरा, वापस आकर रेडियो का स्विच दबाया, नॉब घुमाया, सितार बज रहा था, रेडियो बन्द किया, फिर खिड़की की ओर हट आया और खड़ा हो गया। इस सब के बीच प्रायः ही नजरें उठाकर वह दीदी को देख रहा था। हेम जिस करवट लेटी हुई थी उसी करवट लेटी हुई है, गगन उसका मुंह नहीं देख पा रहा है।

आखिरकार गगन बैठा, "तो क्या तुम भी कल मेले में जा रही हो?"

हैमन्ती ने बिना मुंह फेरे ही विस्मय-भरे गले से जवाब दिया, "किस मेले में!"

"क्या पता! यह तो तुम्ही लोगों की जानने की बात है। "तुम क्या दीवार देख रही हो?" अन्तिम वाक्य उसने मजाक करते हुए कहा।

हैमन्ती थोड़ी देर तक चुप रही, उसके बाद करवट बदलकर, चित होकर लेटी, "किस मेले की बात कह रहा था तू···?"

"मुझे नहीं पता। सुरेश भैया ने कहा था। सोचा, तुम जानती हो। किसी मेले में क्या तुम लोगों को स्लाइड दिखाना है?"

हैमन्ती अब की बार समझ पाई; वह जो यह जानती है, ऐसी बात नहीं, लेकिन उसने सुना है। बोली, "तो मेले में क्या है—?"

"तुम जाओगी क्या?"

"नहीं, मैं क्यों जाऊंगी!" हैमन्ती ने जैसे उपेक्षा के ही साथ कहा, "वे लोग जाएंगे—।"

"सुरेश भैया ने मुझे जाने को कहा था। शायद बड़ा-सा मेला लगता है; नाच-गाना होता है, लोग भैंसों की पीठ पर चढ़ते हैं···।"

"कहा है, तो चला जा—।" हैमन्ती के कहने का ढंग व्यंग्य जैसा लगा।

"धत्···, मुझे कोई इंटरेस्ट नहीं है उस सब मेले-ठेले में।"

"तो फिर मत जाना।"

"यही सोचता हूं।...मगर मुश्किल क्या है, जानती हो, नकारने पर भला वे क्या सोचेंगे—इसीलिए तो महा झमेले में पड़ा हूं।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। गगन का संकोच जो कहां है, इसका जैसे थोड़ा-सा अन्दाजा लगा पा रही थी वह।

मन में कोई हिचकिचाहट होने पर जिस तरह से आदमी बेतरतीब ढंग से बात करता है गगन ने उसी तरह से बात की; कहने के पहले जीभ की आवाज की। "तो कुछ-न-कुछ कह दूं, क्यों? तबीयत-वबीयत खराब है, यह कहने से ही चलेगा।"

"मैं क्या कहूं!" हैमन्ती ने ऊपर की ओर नजरें उठाकर कहा।

गगन ने कुछ देर तक फिर बात नहीं की। उसके मन को जो सब बातें आज लगातार कई दिनों से परेशान कर रही थीं, और जिन्हें कह डालने पर उसे राहत मिलती, वे सब बातें न कह पाने के चलते उसे किसी एक प्रकार की अशान्ति थी। सुरेश्वर का साथ भी उसे अब काम्य नहीं था। गगन सब समय दिमाग ठंडा करके बात नहीं कर सकता है, किस प्रसंग में कौन-सी बात उठेगी, गगन दिमाग गरम करके क्या कह डालेगा—यही सब डर या हिचकिचाहट उसे थी। इसके अलावा वास्तव में ही उसका उस देहाती मेले में जाने का आग्रह नहीं है।

गगन ने कहा, "बल्कि मैं सोचता हूं कि मैं कल स्टेशन में जाकर रहूं। वे लोग तो कह रहे थे उस दिन।"

हैमन्ती ने गले के नीचे लिहाफ हटा दिया और इस बार करवट बदली, गगन के मुंह-दर-मुंह होकर रही।

"अवनी बाबू के वहां ठाठ से रहूंगा, हमारे बिजली भैया हैं—, बड़ी धूम-धाम से क्रिसमस मनाएंगे हम।...मुझे, समझी दीदी, तुम्हारा यह आश्रम अब सुहाता नहीं है।"

हैमन्ती समझ पा रही थी कि गगन ठीक जो बात कहना चाहता है उसे वह कह नहीं पा रहा है, न कह पाकर भूमिका बना रहा है।

हैमन्ती बोली, "तू कब कलकत्ता लौट रहा है?"

"पहली तारीख को...।"

"तुम्हारी छुट्टी कब खत्म हो रही है?"

"यही, दो-तीन तारीख को।" गगन ने अपनी जेब टटोलकर सिगरेट निकाली। उसके पहले वह उठकर गया और पानी उड़ेलकर पिया।

हैमन्ती न जाने कब गाल के नीचे हाथ रखकर लेटी थी।

गगन ने सिगरेट पी थोड़ी देर तक, उसके बाद बोला, "समझी दीदी, मैं उस दिन सुरेश भैया से कह रहा था कि बात चाहे जो भी हो, हमारे बीच जैसे गलत-फहमी न हो। मैं कह तो रहा था, लेकिन यह सब कहने का कोई मतलब नहीं होता है। सुरेश भैया को मैं बुरा नहीं कहता, मगर मुझे अब वे अच्छे नहीं लगते हैं। मतलब कि पहले जितने अच्छे लगते थे अब उतने अच्छे नहीं लगते हैं। मैं उन्हें अवायड करना चाह रहा हूं।"

हैमन्ती ने कहा, "पता है।"

गगन ने दीदी के मुंह की ओर ताका। उसे लगा, दीदी, हो सकता है, जरा

और भी ज्यादा जानती, तो अच्छा होता। जानती, तो यहाँ नहीं आती। कैसे बेवकूफों की तरह आई है, अन्धों की नाई!

"कोई अच्छा न लगे, इसमें, हो सकता है, आदमी का स्वार्थ हो—" गगन बोला, "भला क्यों नहीं होगा स्वार्थ। लेकिन, सुरेश भैया मुझे ऐसे नहीं लगे।"

हैमन्ती मौन रही, पैताने का लिहाफ थोड़ा-सा हिला, दोपहरी की धूप हट गई है—न कमरे में कहीं धूप है, न खिड़की पर, न परदे की ओट से कुछ दिखाई पड़ रहा है, सारे मैदान में आज सवेरे से पागल उतरैया बह रही है, उस हवा की आवाज, कुछ चलने की आवाज, कभी कौवे का कांव-कांव, शायद किसी पंछी की चहक सुनाई पड़ रही थी।

गगन ने फिर कहा, "उस दिन मुझे लगा कि सुरेश भैया अपने को ही ज्यादा महत्व देते हैं।...एक आदमी हरदम अपने पावने का हिसाब करे, यह मेरे लिए असह्य है।"

हैमन्ती ने एकाएक कहा, "उस दिन क्या कहा उसने?"

गगन जैसे न चाहकर भी आखिरकार अवांछित प्रसंग पर चला आया हो। आगा-पीछा करते हुए कहा, "क्या कहेंगे भला, तुम्हें तो बताया है मैंने —"

"नहीं, तूने नहीं बताया है। तूने मुझसे छिपाया है।"

"मैंने तो बताया कि सुरेश भैया की बातचीत से ऐसा नहीं लगा कि उनका अब कोई आग्रह है।"

"तू ने क्या कहा, यह तो मैं ने सुना है, मगर उसने क्या कहा, यह तू ने मुझे नहीं बताया है। तेरा मुंह देखकर मुझे उसी दिन सन्देह हुआ था कि ऐसा कुछ उसने कहा है जो तू मुझे बता नहीं पा रहा है।"

"मुझ से सुरेश भैया की इस बारे में बहुत कम ही बातें हुई हैं, विश्वास करो..."

"गगन—" हैमन्ती मानो धैर्यहीन होकर डांट उठी।

गगन ने सिगरेट का टोटा फेंक दिया, बोला, "एक आदमी मुंह से कब क्या कहता है, यह बड़ी बात नहीं है, मुंह की बातों की सचमुच ही उतनी कोई कीमत नहीं है। लेकिन तुमने ठीक समझा था, सुरेश भैया अब वह सुरेश भैया नहीं रहे। प्यार-व्यार उन्हें कुछ नहीं है।... सुख-दु:ख...आनन्द यही सब न जाने क्या कह रहे थे। दरअसल वे कुछ भी नहीं बोल रहे थे, चुप किए थे। मैं ने उनसे पूछा, तो यह सब ज्ञान आपको अब हुआ? जवाब में उन्होंने कहा, नहीं पहले ही हुआ था...। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। ज्ञान अगर पहले ही हुआ था, तो इतने दिनों से इस तरह से धोखा क्यों देते रहे? इसका कोई जवाब नहीं दिया उन्होंने। मामूली बात कही : मुझसे गलती हुई है। पर यह तो न कोई जवाब है, न कैफियत।...खैर, यह एक तरह से अच्छा है, जो होना था, हो गया। वह जो मामा कहा करते हैं—मुकदमे की तारीख से जज की राय भली, सही बात है...।" गगन ने मानो अन्त में अपनी हताशा व क्षोभ दबाने की कोशिश में किसी प्रकार की सांत्वना ढूंढ़ी।

हैमन्ती कुछ नहीं बोली, थोड़ी देर तक लेटी रही, फिर अब की बार उठ बैठी, घुटने मुड़े हुए हैं, कमर से लेकर पांव तक लिहाफ से ढका हुआ है।

बैठे-बैठे गगन बोला, "सुरेश भैया जब आनन्द-वानन्द को लेकर माथा-पच्ची

कर रहे हैं, तो मुझे ऐसा नहीं लगता कि अब तुम्हें यहां रहना चाहिए। मां भी राजी नहीं होंगी।···मैं चला जाता हूं, तुम भी कई दिन बाद आना।"

हेमन्ती ने इस बार भी उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया, कपाल और मुंह की बगल से बेतरतीब बालों के गुच्छों को हाथ से हटा लेने लगी।

गगन ने कैसे अपराधी की भांति एक बार दीदी को देखा कुछेक पल, उसके बाद गरदन ऊंची करके खिड़की के बाहर ताका। अन्त में टालमटोल करता हुआ बोला, "देखो दीदी, कहावत है, प्यार मर जाने के बाद प्यार का स्वांग रचना सांघातिक होता है, उससे बुरा और कुछ हो नहीं सकता है।···मुझ से अगर पूछो तो मैं कहूंगा, सुरेश भैया की वह बात अब नहीं रही, मुझे तो ऐसा ही लगा···; शायद तुम्हारी तरफ से भी अब और कोई···" बात गगन ने खत्म नहीं की।

गगन की आंखों में आंखें डाले हुए थी हेमन्ती। लग रहा था, हेमन्ती मानो अपनी अभ्यस्त दक्ष दृष्टि से गगन की आंखों का सब कुछ देख ले रही थी। दृष्टि तीव्र है, स्थिर है, प्रखर है। गगन रोगी की तरह अपनी आंखें खोले बैठा रहा।

हेमन्ती बोली, "जब तक वह मुंह खोलकर नहीं कह रहा था तब तक क्या तुझे लग रहा था कि उसे प्यार है?"

गगन इस बार मौन रहा, मुंह फेरकर दूसरी ओर ताका।

"और क्या कहा उसने—!···यह नहीं कहा कि मुझसे बड़ा अन्याय हो गया है, तुम लोग मुझे माफ करो, चाची जी से कहना, वे जैसे बुरा न मानें—" व्यंग्य कर-करके हेमन्ती कह रही थी।

गगन ने सिर हिलाया धीरे-धीरे, बोला, "वे अपनी गलती के बारे में कह रहे थे।···एक बात मेरी समझ में नहीं आई, क्या कह रहे थे—एक बार एक घटना से एकाएक उनका सब कुछ कैसा हो गया, झिझक-विझक चली आई···"

"कौन-सी घटना?"

"क्या पता! कुछ बताया नहीं।···तुम्हें कुछ मालूम है?"

हेमन्ती ने सिर हिलाया, नहीं, उसे कुछ नहीं मालूम। लेकिन वह विस्मित हुई थी और सोच रही थी।

उस दिन अवनी के आने में देरी हुई; जब आया, तो तीसरा पहर ढल चुका था। पूस का अपराह्न धूसर हो गया था। प्रायः अंधेरा होने को आया। उत्तरैया भी आज सारा दिन प्रखर रही, बाट-घाट में सनसनाती हुई भागी फिर रही थी। आकाश की धूप दोपहर से ही गंदली-सी हो गई थी, बीच-बीच में बादल जमा हो रहे थे, फिर तिरते जा रहे थे।

गगन बोला, "हम लोग सोच रहे थे, आज अब आप नहीं आएंगे।"

अवनी बोला, "आज तो कहीं जाने की बात नहीं थी, देरी से ही आया। कल छुट्टी है, परसों भी; काम-काज निबटाकर घर लौटा था दोपहर में।"

गगन ने अवनी को अपने कमरे में लाकर बिठाया। बोला, "आज का वेदर कैसा तो है। जाड़ा तो बहुत है, मगर डल है।"

"वर्षा हो सकती है।"

"इस जाड़े में वर्षा होगी—।"

"इस समय जरा-जुरा वर्षा होती है।···अच्छा सुनिए, परसों हम लोग

हाईड्रोइलेक्ट्रिक इंस्टालेशन देखने जा रहे हैं, इंसेक्शन बंगले में जगह मिल जाएगी।"

"वाह, वंडरफुल। उसे देख लेने पर फ़िलहाल मेरा सब कुछ देखना हो जाएगा।" गगन हंसा, "उसी के बाद अपने राम घर का रास्ता लेंगे।"

"कब जा रहे हैं आप ?

"पहली तारीख को···"

"इतनी जल्दी—! सो क्या, और भी कुछ दिन रहिए।"

गगन ने मुस्कराते हुए माथा हिलाया। "नहीं, अब मैं नहीं रह सकूंगा। मुझे आए भी तो दस-बारह दिन हो गए। आप बैठिए, मैं दीदी को बुला लाता हूं।" गगन हेमन्ती को बुलाने गया।

थोड़ी ही देर बाद लौटा गगन। बोला, "मैं तो सोच रहा था कि कल आप लोगों के यहां जाऊंगा। मेरा एक न्योता पावना है।" गगन हंसा।

अवनी ने तब तक सिगरेट सुलगाई थी, जवाब दिया, "चले आइए। कहा हुआ तो है ही।"

"बिजली भैया ने मुर्गी-वुर्गी खिलाने की कही है—"

"बिजली बाबू तो खाना बनाने में माहिर हैं;" अवनी ने हंसकर कहा। "अच्छा, ठीक है, इन्तजाम किया जाएगा, आप लोग चले आइए।"

"दीदी क्या जाएगी ?"

"वे नहीं जाएगी ? क्यों ?"

"पता नहीं। उसका अस्पताल बन्द रहेगा, तो जाएगी। पर मैं तो सवेरे ही भागना चाहता हूं। नहीं तो झमेले में पड़ जाऊंगा।"

अवनी की समझ में कुछ नहीं आया।

गगन ने अपने से ही कहा, "सुरेश भैया वगैरह, कहां किस मेले में जाकर आंख की बीमारी की रोक-थाम सम्बन्धी कोई स्लाइड दिखाएंगे। उन्होंने मुझे जाने को कहा है। धत् उस सब में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं। मैं तो उसके पहले ही भागना चाहता हूं।" गगन ने सरस गले से हंस-हंसकर कहा।

अवनी हंस पड़ा। "तो यह बात है ?"

"आप क्या उस मेले में गए हैं सर ?" कभी-कभी मजाक में गगन की जबान से 'सर' निकल पड़ता है, यह उसकी आदत है।

"नहीं।" अवनी ने माथा हिलाया; उसके बाद बोला, "मेले-मेले में अभी जाना रिस्की है। उस दिन न जाने कहां सुना कि एक ऊटपटांग रोग से किसी मेले में दो आदमी मर गए हैं। क्या पता ! ऑफिस में कौन कह रहा था।···इस समय इधर गांव-वांव में स्मॉल पॉक्स खूब होता है, प्लेग भी, सुना है, होता था।"

इतने में हेमन्ती आई। कमरा बड़ा अंधेरा होता जा रहा है, यह जानकर ही जैसे वह बत्ती लाई थी। उसने बत्ती को नीचे रखा।

गगन बोला, "दीदी, कल तुम्हारा अस्पताल है ?"

"क्यों ?"

"नहीं, तुम्हारा अस्पताल कल अगर नहीं होता, तो कल सवेरे हम स्टेशन चले जाते। बड़ा दिन हम वहीं मनाते।"

"तूने शायद खुद ही पक्का इन्तजाम कर डाला है।"

"सो तो किया है। सुरेश भैया के साथ मेले में जाने से न्योता खाना क्या बुरा है!" गगन हंसने लगा।

हैमन्ती गगन के विस्तर से सटकर बैठी।

अवनी बोला, "तो कल आप लोग आइए।"

हैमन्ती ने अस्पताल की बात नहीं उठाई, सिर एक ओर झुकाकर बोली, "आऊंगी।"

गगन न जाने कैसा हक्का-बक्का हुआ। "और तुम्हारा अस्पताल?"

"वे लोग देखेंगे," हैमन्ती ने संक्षिप्त जवाब दिया, उसका जवाब सुनकर लगा, इस प्रसंग पर और बातचीत करने की उसकी इच्छा नहीं है।

गगन चुप हो गया। अवनी भी बात नहीं कर रहा था। हठात् कैसी एक स्तब्धता उतरी कमरे में।

अन्त में गगन ने ही बात की। "चाय के बारे में कहा है तुमने?"

"नहीं, मालिनी नहीं मिली। देख तो, वह लौटी है या नहीं?"

गगन उठा, कमरे के एक कोने में तिपाई के ऊपर उसका सूटकेस है, सूटकेस के ऊपर दुनिया भर की कमीज-वमीज पड़ी हुई हैं, उसने पूरी बांह वाला पुल ओवर खींचकर पहन लिया, यद्यपि अन्दर उसने तीन सेट कपड़े पहले ही पहन रखे थे। बोला, "मैं इसी समय सुरेश भैया से कह आता हूं कि कल मैं मेले में नहीं जा सकूंगा।" कहकर मालिनी को ढूंढ़ने चला गया।

अवनी ने हैमन्ती के मुंह की ओर ताका, देखा, आंखें फेरीं, उसके बाद फिर ताका। अन्य दिनों की तुलना में हैमन्ती गम्भीर दीख रही थी। अवनी बोला, "आपकी क्या तबियत खराब है?"

हैमन्ती ने आंखें फेरकर ताका। "नहीं तो; क्यों?"

"ऐसा लगा···" अवनी मुस्कराया, "बहुत गम्भीर हैं आप···"

"गम्भीर रहने पर तबीयत खराब जान पड़ती है?"

"पता नहीं, लोग ऐसा कहते हैं, शायद यह आदत है। आप ही इसे ज्यादा समझेंगी, आप डॉक्टर-वैद्य ठहरीं।"

हैमन्ती अन्यमनस्क आंखों से अवनी की कौतुक-भरी मुख-मुद्रा लक्ष्य कर रही थी। अवनी के बारे में उसमें नानाविध गहरा कौतूहल जागता है आजकल। पर अभी अवश्य खास कोई कौतूहल नहीं जाग रहा था, अवनी की ओर निहारती रही, तो भी दूसरा कुछ सोच रही थी। हैमन्ती बोली, "तीसरे पहर से सिर दुःख रहा है; हो सकता है, ठंड लगी हो। आज बहुत ठंड है।"

अवनी ने माथा हिलाया, "हां, बड़ा जाड़ा है; थोड़ा-सा आंधी-पानी आ सकता है।"

हैमन्ती ने ऐसा मुंह बनाया कि लगा, जाड़े की वर्षा उसे रत्ती भर भी पसन्द नहीं।

दोनों ही प्रायः चुप्पी साधे रहे। थोड़ी देर बाद अवनी ने कहा, "गगन बाबू तो चले—"

"आपने गगन को बाबू-बाबू कहकर जैसा बढ़ा दिया—" हैमन्ती ने हल्की होने की कोशिश की, "वह कितना छोटा है, मुझ से भी छोटा है···"

"थोड़े दिनों का परिचय है, ज्यादा दिनों तक रहते, तो हो सकता है, मैं उन्हें गगन कहकर ही पुकारता।"

"कोई बात नहीं, आप उसे अनायास ही गगन कहकर पुकार सकते हैं। आपके पीछे वह बीच-बीच में ऐसी मसखरी करता है।"

"अच्छा, ऐसी बात है?"

हैमन्ती ने हंसने की कोशिश की, पर हंस नहीं सकी। अवनी के सामने सीधे-सादे मुंह से गपशप करना चाहकर भी वह सफल नहीं कर पा रही है। फिर सच-मुच ही दुख रहा है। दोपहर से लगातार वह क्यों जो इतना सोच रही है, आखिर इतना सोचने की क्या बात है। सुरेश्वर के जीवन में तो कितनी ही घटनाएं घट सकती हैं, इससे उसका क्या आता-जाता है!

"मैं आपको एक बात बताना भूल गया हूं—" अवनी एकाएक बोला।

हैमन्ती ने चकित होकर ताका।

अवनी बोला, "मैं पटना नहीं जा रहा हूं।"

हैमन्ती चुप हुई। सुनी के दूसरे ही क्षण उसकी आंखों में विमर्श भाव उभरा। "जाते, तो अच्छा करते; इस तरह से जीवन की उन्नति बरबाद नहीं करते।"

"मेरा जीवन बहुत छोटा है—" अवनी हंसा, "उन्नति अब नहीं चाहता मैं, थोड़ा-सा चैन चाहता हूं।"

"आप यहां चैन से हैं?"

"बहुत कुछ।"

अवनी ने अवश्य पहले भी बहुत बार ऐसा कहा है। हैमन्ती खामोश रही, कुछ सोचा, उसके बाद बोली, "आप सभी, देखती हूं, इस जगह से बहुत चैन पा रहे हैं।" उसकी बात खत्म होकर भी जैसे खत्म नहीं हुई।

अवनी पहले-पहल समझ नहीं सका, बाद में समझा। बोला, "हम में से कौन-कौन सुरेश्वर और मैं। उनकी बात अलग है, मैं तो छोटे-मोटे सुख-चैन से ही जी जाता हूं।"

"सो हो, फिर भी यह जगह का असर है···" हैमन्ती ने परिहास करना चाहा।

अवनी ने पूरी दृष्टि से हैमन्ती को लक्ष्य किया, बोला, "आपको शायद उतना चैन नहीं आया।"

हैमन्ती ने कोशिश की अवनी की तरफ ताकने की, पर किसी प्रकार के एक अजीब डर से ताक नहीं सकी। रोशनी की ओर मुंह किए बैठी रही।

अवनी भी कुछ नहीं बोल रहा था।

आखिरकार हैमन्ती ने अपने आपको मानो किसी परेशानी भरी हालत से बचाने की खातिर कहा, "आज आप चैन-चैन कर रहे हैं, पर बाद में अफसोस करेंगे।"

"क्यों?"

"हाथ आए मौके को ठुकरा रहे हैं, इसलिए।"

अवनी हंसा नहीं, चेहरे पर मुस्कान लाया; कहा, "अफसोस की बात मत कहिए, वह तो मैं लगभग सारा जीवन ही करता जा रहा हूं। अब तो मैं [illegible]

आदी हो गया हूं।" कहकर अवनी कुर्सी से पीठ टिकाकर थोड़ा-सा पसर गया और छत की तरफ ताका। फिर कुछ सोचकर थोड़ी देर बाद बोला, "मौके-बे-मौके दोनों की ही खातिर, देखता हूं, आदमी को अफसोस होता है।··· उसके परे भी कितनी प्रकार के अफसोस हैं—!" अवनी ने मानो बात के अन्त में हंसना चाहा।

हैमन्ती मौन रही। अवनी ने ठीक ही कहा है। अफसोस का क्या अन्त है जीवन में !

जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला अवनी ने, हैमन्ती की ओर ताका, उसके बाद मुंह नीचा करके सिगरेट सुलगाई। "न जाने किसने कहा था—" अवनी ने मुंह उठाकर कहा, "दुनिया बनाते समय विधाता भले मानस को सूझ-बूझ विशेष नहीं थी, अनाड़ी हाथों से बेवकूफों की तरह इस दुनिया को बना डाला है, मोस्ट इम्फरफेक्ट···। बात बुरी नहीं कही है, क्यों ठीक कहता हूं न ? थोड़ा-सा शरीफ की तरह बना पाते, तो इतना अफसोस-वफसोस नहीं होता···।" अवनी अब की बार हंसा। यह हंसी राख-ढके आग जैसी है, ऊपर तो हंसी है, पर भीतर जैसे काहे की आंच हो।

हैमन्ती ने बदन की चादर उतारी और फिर उसे सहेज लिया, अपना यह स्थिर, अटल भाव जैसे उसे अच्छा नहीं लग रहा था। थोड़ा-सा हिलडुल कर बैठी। अन्त में हंसकर बोली, "तो दुनिया की यह बनावट आपको पसन्द नहीं है ?"

माथा हिलाया अवनी ने, "नहीं। किसी भी दिन पसन्द नहीं थी।"

"मगर कुछ कर भी तो नहीं सके आप।"

"हां, मैं कुछ कर नहीं सका, सिर्फ बैठे-बैठे अफसोस करता रहा।"

"क्या पता···! अफसोस करने से भी भला क्या फायदा!" हैमन्ती ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

"कोई फायदा नहीं। बिजली बाबू होते, तो उमर खैयाम सुनाते। मुझे कविता-वविता मालूम नहीं है। लेकिन बीच-बीच में लगता है, किसी दिन छप्पर फाड़कर धम्म से अगर कोई चीज गिर पड़े—कोई अमूल्य रत्न, तो फिर अफसोस नहीं करूंगा।" अवनी हंस रहा था।

गगन आया। कमरे में आकर बोला, "चाय नहीं दी है उसने ? ···तो ला रही होगी।···समझी दीदी, मैं सुरेश भैया से कह आया। कहा, "कल हमारा स्टेशन में निमंत्रण है, हम मेले में नहीं जा रहे हैं।···वेरी बिजी हैं सुरेश भैया, लोग-बाग हैं।—" कहकर कुछ याद हो आने की वजह से गगन ने अवनी की तरफ ताका, "आप ठीक ही कह रहे थे सर, न जाने कहां कैसी एक एपिडेमिक ब्रेक-आउट हुई है। वहां भी सुना मैंने।"

## चौबीस

दूरी पचासेक मील से कुछ ज्यादा है। अवनी दोपहर के लगभग आया था, निकलते-निकलते तीन बजे।

हैमन्ती भी जा रही है। उसके जाने का कुछ ठीक नहीं था; बल्कि बराबर

ही उसने ज्यादा दूर जाने में, बाहर की ठंड में रात को घूमने-फिरने में अनुत्साह दिखाया है। गुरुडिया से इतनी दूरी जोर में तय करके मदौवल के जंगल-झाड़ और पहाड़ों के बीच हाईड्रो इलेक्ट्रिक पावर हाउस देखने का उत्साह उसे नहीं था। इसके अलावा सारी रात वहां गुजारनी होगी। दिक्कत भी थी। फिर भी वह आखिरकार जा रही है।

गत कल, अवनी के घर गगन के साथ बड़ा दिन मनाने जाकर सारा दिन अच्छा ही बीता था। गपशप, हंसी-मजाक, बिजली बाबू के घर घूमने जाना, बहुत दिन बाद हठात् गगन के पल्ले पड़कर ताश खेलना—इन सबने जैसे मन के किसी गुरुभार को सामयिक रूप से बहुत कुछ हल्का कर दिया था। लौटती बार अवनी बोला, "आप भी चलिए कल, साइट बहुत सुन्दर है, बांध से सटे पहाड़ पर इन्सपेक्शन बंगला है, कमाल लगेगा। एक ही रात तो बितानी है। बहुत दिक्कत नहीं होगी। परसों दिन के नौ बजे के अन्दर मैं यथास्थान पहुंचा दूंगा आपको।"

गगन बोला, "चलो दीदी, यही चांस है। बाद में फिर तुम जा नहीं सकोगी।"

हैमन्ती ने तब भी स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा था। आखिरकार वह तो गगन नहीं है कि जाने की सोचने से ही जा सकती है। जैसे कुछ सोचने को था।

आज सवेरे अस्पताल में रोगी नहीं थे; बहुत दिन चढ़ने पर दो रोगी आए: एक की आंख आई थी, दूसरे का मुंह-आंख ठंड से सूज गया था। उसके बाद आया सुरेश्वर, साथ में थे शिवनन्दन जी। दोनों ही जैसे व्यस्त थे; बातें करते-करते आए थे, फिर बातें करते-करते ही चले गए, सुरेश्वर क्यों आया था, कुछ समझ में नहीं आया। मगर लगा, जैसे इस आवा-जाही में हैमन्ती को देख गया।

अस्पताल में बैठे-बैठे हैमन्ती ने स्थिर कर डाला: वह जाएगी। आते समय युगल बाबू से कह आई, कल आने में उसे देर होगी, रोगी आएं, तो वे जैसे उन्हें बिठाए रखें। अस्पताल से लौटकर गगन से बोली,"हम लोग आज नहीं रह रहे हैं, यह तू अपने सुरेश भैया से कह आ।"

रास्ता नया है; इसके पहले हैमन्ती इधर नहीं आई थी। फंसे हुए काले-फीते जैसा रास्ता, रास्ता जितना आगे बढ़ता है उतना ही जैसे वह फीता खुलता जा रहा हो, उतना टेढ़ा नहीं है, साफ-सुथरा है, दाएं-बाएं लहराता प्रान्तर है, दूर पर कहीं पहाड़ों के टीले एक दूसरे से सटे हुए हैं, कहीं पेड़ों से ढके छोटे-छोटे पहाड़ हैं। जाड़े कि मरी धूप पहाड़ की तलहटी को क्रमशः निष्प्रभ करती जा रही थी। छाया उतरी है शहतूत पर, छोटा-मोटा गांव, थोड़ा-बहुत खेत-खलिहान, खेतों में मटर की फसल है, कच्चे कुएं से पानी भर रही हैं बहू-बेटियां, झरबेरी के झुरमुट हैं, दो-एक कुत्ते हैं। शायद एकाध बस चली जा रही थी।

आगे अवनी है, बगल में हैं बिजली बाबू। पीछे हैं हैमन्ती और गगन। सू या न सूं करके भी कई चीजें हो गई हैं। उनमें बिस्तर का इन्तजाम ही प्रधान है, छोटे-मोटे सूटकेस भी हैं। हैमन्ती के वास्ते गगन ने बक्सा से लिया था, और दोनों भाई-बहनों के कुछ गरम वस्त्र। गगन ने भी एक सूटकेस लिया है। पानी और चाय का फ्लास्क, टिफिन केरियर—यह सब बिजली बाबू का इन्तजाम है। ऊपर से बिजली बाबू का एक और भी इन्तजाम था, हैमन्ती आ रही है, यह सुनकर उन्होंने संकुचित व धर्मभीरु होकर पहले ही उसे छिपा डाला था।



देखते-देखते वे लोग बहुत दूर चले आए।

बिजली बाबू बोले, "मिस्तिर सा'ब अब जरा रेस्ट दीजिए। शाम की चाय-बाय पी ली जाए।"

"हम कितने मील आए?" गगन ने पूछा।

"लगभग आधी दूर, यही कोई पच्चीसेक मील—" बिजली बाबू ने जवाब दिया।

"बिजली भैया को तो, देखता हूं, माइलेज तक कंठस्थ हैं," गगन ने हंसकर कहा।

"मैं यहां का देहाती आदमी ठहरा भाई, कहां क्या है, इसका मोटे तौर पर एक ज्ञान न रहने पर कैसे चलेगा।" कहकर बिजली बाबू ने अपना दाहिना हाथ उठाकर दूर एक पहाड़ दिखाया, बोले, "वह पहाड़ है चन्द्रगिरि, यहां के लोग उसे चांदबारी कहते हैं। उसके नीचे से होकर हमें जाना होगा।"

"वह पहाड़ तो नजदीक है," गगन बोला।

"अभी भी छः एक मील दूर है—" बिजली बाबू बोले।

गगन को विश्वास नहीं हुआ, बोला, "अभी भी छः मील दूर है? क्या कह रहे हैं आप!...यहां के मील का हिसाब भी क्या देहाती है?"

बिजली बाबू ने हंसकर जवाब दिया, "पहाड़ चीज ही ऐसी है; लगता है, अब मिला अब मिला फिर भी वह मिलता नहीं।"

बिजली बाबू के कहने के ढंग से गगन जोर से हंस उठा। हैमन्ती भी हंस पड़ी। अवनी ने हंसते-हंसते कहा, "बिजली बाबू, यह उमर खैयाम नहीं है।" कहकर चाय पीने के लिए गाड़ी रोकी।

बिजली बाबू ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "नहीं, यह उमर खैयाम नहीं है। यह है पुराने जमाने का हिन्दी गाना: वह जो दर्शन देकर दर्शन देता नहीं, पकड़ में आकर हाथ पकड़ में आता नहीं। जंगली कारफा है यह।"

अवनी ठहाका मारकर हंस उठा। गगन भी हंसने लगा।

अवनी बोला, "तो बिजली बाबू को पुराना हिन्दी गाना भी मालूम है।"

गाड़ी से उतर पड़े थे बिजली बाबू, रास्ते पर खड़े होकर बदन की कमीज झाड़ते-झाड़ते बोले, "जरा-जुरा मालूम है। अपने पिताजी के मुंह से सुना था मैंने। वे हारमोनियम बजाकर तबले के साथ संगत करके गाया करते थे।" कहकर बिजली बाबू ने गाड़ी के अन्दर हाथ बढ़ाया, हैमन्ती से कहा, "दीजिए तो दीदी, चाय का फ्लास्क। वह जो पीली-सी कपड़े की थैली है, उसके अन्दर प्याले-प्याले हैं।"

गगन भी नीचे उतरकर खड़ा हो गया था। अवनी ने रास्ते पर खड़ा होकर जीप के अगले पहिए को कई बार जूते से ठोकर मार न जाने क्या देख लिया।

हैमन्ती ने चाय के प्याले निकाले। बिजली बाबू का सारा काम कायदे से होता है, कहीं इतनी-सी भूल होने की गुंजाइश नहीं। चाय के प्याले, पानी के गिलास, केले के पत्ते में लपेटे हुए पान। हैमन्ती ने गाड़ी के पिछले हिस्से से पानी का फ्लास्क लिया और प्यालों को धोते-धोते बोली, "उन लोगों ने सब करीने से दिया है न?"

बिजली बाबू हंसे। "यही तो सुख है, कहीं जाने को कहता हूं, तो फिर

परिचित नहीं, मरने के समय मुंह में डालने के लिए गंगाजल तक ये आगे बढ़ा देती है।"

हेमन्ती ने मुस्कराते हुए फटकारा "छि, ऐसा मत कहिए।"

गगन बोला, "आप ऐसे मजे में बिजली भैया कि आपको देखकर मैरेज सम्बन्धी मेरा पैनिक दूर होता जा रहा है।"

"फक्कड़ कहीं का···!" हेमन्ती ने डांटा जैसे।

हंसी-मसखरी के बीच रास्ते पर खड़े होकर चाय पी सबने। पर हेमन्ती नहीं उतरी।

बाट-घाट से धूप ने अब ऊपर जाना शुरू किया है, मानो आकाश ने आकर धरती पर धूप को सुबह से लेकर दोपहर तक सूखने दिया था, और अब दिन ढल जाने की वजह से तेज हाथों से उसे उठाकर अपनी गोद में इकट्ठा कर रहा है।

अवनी आकर गाड़ी पर बैठा, होंठों में सिगरेट है। बिजली बाबू ने पान मुंह में डाला है जीभ से जरा-सा चूना छुलाकर धीरे-धीरे गाड़ी के अन्दर आ गए। गगन की सिगरेट का कश लगाते-लगाते चढ़ गया।

लगभग साढ़े चार बज रहे हैं। धूप लाल रही है, इसीलिए शायद जाड़े की उमरिया ने झकोरे से उसका पीछा करना शुरू कर दिया था। पेड़ों की छाया अभी बड़ी लम्बी है और धरती के रंग के साथ छाया का रंग घुला-मिला हुआ है।

अवनी ने गाड़ी स्टार्ट की।

"कितनी देर लगेगी पहुंचने में?" गगन ने पूछा।

"यही कोई घण्टा भर," अवनी ने कहा; कहकर बिजली बाबू की ओर ताककर बोला, "ज्यादा या क्या तो कहते हैं, यहां से एक कच्चा रास्ता पकड़ने पर शायद शार्टकट होता है।"

बिजली बाबू ने माथा हिलाया, "वह रास्ता बहुत खराब है, मेरा परिचित नहीं है; बल्कि पुराना रास्ता ही अच्छा है।"

गाड़ी ने चलना शुरू किया। थोड़ी दूर आगे जाते ही एक बहुत पतली-सी नदी मिली, नदी में पानी नहीं है, बालू के ऊपर छाया उतरी है, धीरे-धीरे जैसे वनांचल के बीच यह रास्ता खोता जा रहा हो, बड़े-बड़े शाल के पेड़ हैं, अनगिनत हर्रे और नीम के पेड़ हैं। जाड़े की हवा आकर पेड़ों के पत्तों को हर क्षण कंपा रही है, आंवले का जंगल जैसे एकाएक वेग से आकर भागा, अब कहीं गांव-कस्बा नजर नहीं आ रहा है, सिर्फ जंगल है, विचित्र पेड़-पौधे हैं, रास्ते में न तो लोग-बाग हैं, न गाड़ी है, एक निर्जन, निस्तब्ध जगत् में जैसे क्रमशः गाड़ी आगे बढ़ती जा रही हो।

बिजली बाबू ने अपने हाथ से बनाई सिगरेट सुलगाई है। हेमन्ती को जाड़ा लगने लगा था, उसने बदन के कोट को लिपटा लिया। गगन झुककर बाट-घाट देख रहा है, अन्यमनस्क है।

अवनी बोला, "बिजली बाबू, आप अपने कलिग से यह क्लच एक बार दिखलाइएगा तो, बीच-बीच में यह बड़ा डिस्टर्ब करता है···।"

बिजली बाबू ने अवनी के पैर की ओर ताका।

गगन ने एकाएक कहा, "हम लोग क्या पहाड़ के नीचे आ पहुंचे?"

"हां," बिजली बाबू ने जवाब दिया, "और थोड़ा आगे जाते ही दोनों ओर

पहाड़ पड़ जाएंगे, उनके बीच में से होकर रास्ता है।…चन्द्रगिरि की एक कह
है।"

"क्या कहानी है ?"

"अभी तो मैं नहीं कह सकूंगा…चिल्लाना पड़ेगा; बाद में कहूंगा।"

गगन चुप हो गया।

थोड़ी ही देर बाद चारों ओर से पहाड़ों की ओट ऊपर उठी, जैसे वृक्षों
लता-गुल्मों से भरी पत्थर की एक बहुत बड़ी झांपी उनके दोनों ओर हों। ल
लम्बे पेड़ हैं, कुंडली मारे जटाधारी पीपल हैं, ढेर लगायी हुई-सी छाया है, श
किसी सूर्य-किरण की रेखा है, गहरी खाई है, और परिपूर्ण स्तब्धता है;
गाड़ी की आवाज श्वास-प्रश्वास की तरह कानों के परदे में घुली-मिली हुई है

उसके बाद न जाने कब यह झांप खुल जाने लगी, सिर उठाए खड़ी
हटती जा रही है, जंगल-झाड़ विच्छिन्न व दूरवर्ती होता जाने लगा, आगे ढ
है, डूबते दिन के म्रियमाण प्रकाश में झुंड बांधकर पंछी उड़ते जा रहे हैं, नी
फूल की गन्ध-जैसी कैसी एक गन्ध आई, कुछेक जंगली फूल हैं।

गगन इतना मुग्ध व उच्छ्वसित हुआ था कि उसने हठात् गाना शुरू कि
'शायद दिन ढलता जाता है, कानन में आओ तुम लोग आओ…।'

गगन गाने में निपुण नहीं है; फिर भी उसका मोटा भोला-भाला गल
उसके उच्छ्वसित मुग्ध हृदय ने उस गाने को कैसा सुन्दर व जीवन्त बना डाल

बिजली बाबू गरदन पीछे की ओर झुकाकर गाना सुनने लगे। अवनी ने
बार गरदन घुमाई। हैमन्ती घुटने पर कोहनी रखकर गाल पर हाथ रखे व
निहारती रही।

गाना खत्म हुआ तो बिजली बाबू बोले, "वाह !"

गगन को जैसे इस बार शर्म आई। हैमन्ती की ओर पलभर में निहा
बोला, "एकाएक कैसी एक फीलिंग चली आई बिजली भैया, पर मैं गवैया
हूं।"

"भले ही तुम गवैया नहीं हो, मगर तुमने बहुत अच्छा गाया है। देखो भ
गाना है अधकचरे गवैये के लिए; और सुर है पक्के गवैये के लिए।"

गगन कैसा भौंचक्का-सा रहकर बोला, "सो क्या ! इसका मतलब तो
समझ तो नहीं आया।"

बिजली बाबू ने हंसकर कहा, "मतलब तो आसान है। एक है अन्तर
चीज, दूसरी है जंतर की।"



ठीक जैसे गोधूलि के समय मदोवल के नजदीक वे लोग पहुंच गए। कांटे
तारों का बाड़ा लगाया हुआ सरकारी जंगल दोनों ओर है, लगा, एक स
इस जंगल को काटकर मैदान बनाया गया था, फिर नये सिरे से सामने वाले
में पेड़ों की पौदें रोपी गई हैं। छोटे-छोटे पेड़ हैं, सजाए-संवारे हुए, एक स
भागी गई, कुछ पंछी हैं, जाड़े की धूसरता नीचे उतर गई है, आकाश से लुढ़क
गोधूलि का प्रकाश बादलों की ओट में डूबता जा रहा है, जाड़े की ठंडी मु
क्रमशः सख्त होती जा रही है।

देखते-देखते इस जंगल के बीच आदमी का पद चिह्न उभर उठा। पीले

के क्वाटर्स, बड़े-बड़े लोहे के खम्भे, ओवरहेड लाइन, नदी की रेखा, दूसरी ओर पहाड़ों की दीवार। जाते-जाते सरकारी जंगल में गगन को एक हिरन दिखाई पड़ा। उंगली से उस हिरन को दिखाए, इसके पहले ही वह ओझल हो गया।

अवनी ने गाड़ी दाएं घुमाई, उसके बाद फिर बाएं। थोड़ी ही दूर आगे बढ़ते ही आंखों के सामने बांध दिखाई पड़ा। अगल-बगल जैसे अब कुछ नजर नहीं आ रहा हो स्पष्ट रूप से, अंधेरा होता जा रहा है, बत्ती जल रही है, एक दुरन्त, तीक्ष्ण हवा के झोंके ने आकर सर्वांग सिहरा दिया।

बिजली बाबू बोले, "पांचेक साल पहले मैं एक बार आया था मिसिरसा'ब, तब काम चल रहा था। अब तो देखता हूं, हुलिया बदल गया है।"

अवनी बोला, "आप तो आना नहीं चाह रहे थे, मैं जबरन ले आया आपको।"

गगन बोला, "इस्स, यहां आकर सात दिन रहता, तो अच्छा होता। मार्वलस साइट है।···क्या री दीदी, अच्छा लग रहा है न?"

हैमन्ती ने गरदन एक ओर झुकाई। उसे अच्छा लग रहा था।

●

जब तक सब अन्दर थे, लग रहा था, यह एक जासूसी महल हो, जो कुछ दिखाई पड़ता है उससे भी अधिक, जो कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, उसी की चिन्ता जैसे विह्वल करता हो। आम तौर पर लगता है, कुछ उदासीन बड़े-बड़े यंत्र ध्यानी की तरह बैठे हुए हैं, कहीं उनका ध्यान नहीं है, हालांकि उनके भीतरी रहस्य का परिचय सुनने पर विस्मय का अन्त नहीं रहता है। दुर्बोध्य के आगे खड़ा होने पर चौंकने का जो स्वाभाविक आवेग है, गगन उसी आवेग से चौंक व विह्वल हो रहा था। अवनी के लिए विमूढ़ अथवा विस्मित होने का कोई कारण नहीं था। बल्कि पावर-हाउस का छोकरा-सा शिफ्ट इंजीनियर श्रीवास्तव जो कुछ दिखा रहा था और समझा रहा था अवनी उसकी विस्तृत व सरल व्याख्या करता हुआ गगन के कौतूहल को मोटे तौर पर परितृप्त कर रहा था। यंत्र के उस जटिल जगत् से—जहां कैसा एक निरवच्छिन्न गुंजन था, जहां प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष में और अन्तराल में कितना विचित्र कुछ होता जा रहा था, जहां प्रकाशित मंच पर मात्र कुछेक पात्रों ने दैत्य-सदृश सौहार्द्य को हथेलियों पर रखा था—बाहर निकल आया, तो गगन ने कहा, "यह सब देखने पर मनुष्य के प्रति भक्ति बढ़ जाती है। जल-थल भी उसके हाथ में गिरवी रहा।"

तब तक शाम हो चुकी थी। चारों ओर कैसा एक धुंधलका-सा छा गया है, टीले और पहाड़ हैं, पेड़-पौधों का अन्धकार है, कृष्ण-पक्ष की शुरुआत है, चांद निकलता आ रहा है, दूर-दूर पर बत्तियां जल रही हैं, जैसे एक बत्तियों की माला समाम उपत्यका के गले में लटकाई गई हो, हवा की धारदार चोट बदन में लग रही है, पंथ से दाहिनी ओर का बांध आधी रात के बियाबान-जैसा नजर आ रहा था।

हैमन्ती को जाड़ा लग रहा था, गगन ठिठुर गया है। बिजली बाबू ने अपना कान सिर ढक लिया है चादर से। थोड़ी सी चढ़ाई के ऊपर इन्स्पेक्शन ब

गगन ने जाड़े के मारे सिगरेट सुलगाई। बोला, "अन्दर जब तक ही नहीं था कि बाहर ऐसी ठंड है।"

बिजली बाबू ने कहा, "एक तो ऊंची, पहाड़ी जगह है, उस पर यह रोका हुआ पानी; ठंड से बचने का कोई रास्ता नहीं दीख रहा है; जाड़े का रोब रात को सिखाएगा।"

हैमन्ती को लग रहा था, एक स्कार्फ अथवा माथे-गले में लपेटने वाली कोई चीज लिए बिना आकर जैसे उसने गलती की हो। ले लेती, तो अच्छा होता। गाड़ी से उतरकर ही वे लोग सीधे चले आए थे। जो चीज-वस्त थी उसे लेकर बेयरे-खानसामे कमरे में चले गए। बंगले में वे लोग घुसे तक नहीं।...एक चीज हैमन्ती ने लक्ष्य की वह यह कि अवनी की बड़ी मर्यादा है यहां। उसका परिचय—कम-से-कम सरकारी परिचय, हो सकता है, वे लोग जानते हों, खातिरदारी कुछ कम नहीं की। आम लोगों के लिए जो निषिद्ध है, नाना विषयों में जो कड़ाई है, उनमें से कुछ भी उन्हें झेलना नहीं पड़ा। ठाठ से सैर-सपाटे करके सब कुछ देख आये।

रास्ता सुन्दर है, पहाड़ के ऊपर घूम-घूमकर ऊपर चला गया है, दूर-दूर पर बत्तियां हैं, बगल में पेड़-पौधे हैं, नीचे ताकने पर स्टॉफ क्वाटर्स की रोशनी नजर आती है। उस ओर दैत्य-जैसा डैम है।

अवनी बोला, "आपको शायद तकलीफ हो रही है?"

हैमन्ती ने डग भरते-भरते जवाब दिया, "कोई खास नहीं; जरा-सी ठंड लग रही है।"

"अब ज्यादा चलना नहीं होगा, पास ही है..."

"आप यहां बीच-बीच में आते हैं?"

"नहीं, दो-एक बार काम से आना पड़ा था।"

"ये लोग आपको पहचानते हैं..."

"ठीक पूरी तरह नहीं। लेकिन यहां के जो अधिकारी थे मिस्टर मजुमदार उनसे मेरा परिचय था। काम के सिलसिले में ही परिचय हुआ था। गजब के आदमी थे। वे अब यहां नहीं हैं। उनकी बदली हो गई है।"

बिजली बाबू व गगन दूसरी ओर बातें कर रहे थे।

बातें करते-करते वे लोग दूरी तय करके आए और बंगले में ठहरे।

दो कमरे हैं, दोनों ही लगभग मुंह-दर-मुंह हैं। बीच में ढका बरामदा है। कमरों में माल-असबाब की अधिकता नहीं है; तो भी मोटे तौर पर चारपाई, मेज-कुर्सी थी; दीवार में बना रैक है। कमरों से लगा गुसलखाना है। कमरों की खिड़कियों में शीशा और झिलमिली है।

बेयरे-खानसामों ने चीज-वस्त कमरे में लाकर रख दी थी।

चाय का दौर चला पूरब वाले कमरे में। खिड़कियां बन्द हैं, दरवाजा भिड़ा हुआ है, बत्ती जल रही है। कमरे के वातावरण में बहुत कुछ राहत मिली हैमन्ती को।

गरम पानी, रात के खाने-पीने, कमरों में आग रख देने का इन्तजाम इत्यादि की देख-रेख खत्म करके आया, तो अवनी ने कहा, "वे लोग आप लोगों के बिस्तर-बिस्तर बिछा देंगे; गरम पानी दे देंगे गुसलखाने में—आप लोग हाथ-मुंह धोकर थोड़ा-सा आराम कर लीजिए। हम लोग उस कमरे में हैं।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दबी आंखों को लेकर अवनी की तरफ ताकते रहे, बाद में बोले, "दुनिया में यह बड़ा मजेदार खेल है न, मित्तिर सा'ब, पकड़ में आकर भी पकड़ में आता नहीं।"

अवनी बिजली बाबू की आंखों की ओर दो क्षण निहारता रहा, उसके बाद बोला, "सभी खेल मजेदार होते हैं।...जाइए, गरम पानी ठंडा हो जाएगा, घूम आइए, तो बैठिएगा।"

बिजली बाबू फिर कुछ नहीं बोले, गुसलखाने चले गए।

अवनी अन्यमनस्क भाव से कमरे के बीचोंबीच खड़ा रहा।

हैमन्ती के कमरे में बैठकर गप्पें लड़ाई जा रही थीं। कमरे में आग रख गया है बेयरा, खिड़कियां बन्द हैं, दरवाजा भी भिड़ा हुआ है; बाहर के जाड़े की प्रचंडता अब किसी को अनुभव नहीं हो रही थी। गगन थोड़ी गपशप करने के बाद बिजली बाबू का गाना सुनने के लिए उठकर गया। दरअसल गगन बिजली बाबू से थोड़ी-सी हंस-मसखरी करना चाहता है। इसके सिवा, वह आपाद मस्तक ढका हुआ है, उद्देश्य है : बिजली बाबू को खींच लेगा और पश्चिम के ढके बरामदे में जाकर चांदनी में बांध का पानी देखेगा।

अवनी और हैमन्ती मुंह-दर-मुंह बैठे हुए हैं, हैमन्ती बिस्तर पर है, और अवनी नजदीक की कुर्सी पर।

अवनी बोला, "आप भी एक बार बाहर जाकर देखतीं, तो अच्छा होता। इतनी ऊंचाई से सामने का लेक देखने में अभी अच्छा ही लगता। चांदनी में इतना पानी, इर्द-गिर्द पहाड़-जंगल, कुछ अजीब-सा दीखता है।"

"देखूंगी—" हैमन्ती बोली, "अभी उठने को जी नहीं चाह रहा है, आलस आ गया ठंड में।"

"आप दोनों भाई-बहन ही ठंड में बड़े काहिल हो जाते हैं," अवनी ने मुस्कराते हुए कहा।

"आदत नहीं है। गगन की तो बिलकुल ही नहीं है, मुझे तो फिर भी थोड़ा-सा आदी बनने का समय मिला है।" हैमन्ती ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया।

"फिर भी आप आदी नहीं बनी हैं—" अवनी ने मजाक करके कहा।

"नहीं।" हैमन्ती सिर हिलाकर हंस उठी।

अवनी ने नजर नहीं हटाई, हैमन्ती की हंसी देखने लगा। उसके बाद एकाएक बोला, "आप अगर बुरा न मानें, तो मैं एक बात कहूं—"

हैमन्ती निहारती रही, मुंह की हंसी तब भी पुंछ नहीं गई थी।

अवनी बोला, "मुझे आजकल लगता है, इस जगह की आप किसी भी दृष्टि से आदी नहीं बनी हैं।"

हैमन्ती की मुंह की हंसी पुंछ गई; डरपोक की नाईं, एकाएक विचलित हो जाने की भांति उसकी आंखों की कोर और पलकों पर कैसी असहायता का भाव उभरा। नजर झुका ली उसने।

अवनी ने इन्तजार किया, क्यों इन्तजार किया उसने, यह उसे नहीं पता, हो सकता है इस आशा से कि हैमन्ती कुछ कहे; या इस दुविधा से कि हैमन्ती असन्तुष्ट हुई या नहीं हुई ?

"आपने बुरा माना ?"

हैमन्ती ने माथा हिलाया, नहीं, बुरा नहीं माना है।

अवनी थोड़ी देर तक मौन रहा, फिर बोला, "आपसे मैं दोस्त की तरह एक बात कह सकता हूं।···पहले पहल जब आप आई थी—तो कैसी, मतलब कि आप कुछ दूसरी तरह की दीखती थी : मुझे लगा था, आप भी डेडिकेटेड हैं, सुरेश्वर बाबू की तरह, उसी प्रकार की कुछ···। मैं शायद ठीक से समझा नहीं पा रहा हूं, नहीं—" अवनी दुविधा की हंसी हंसा। "सो जो भी हो, आप अब वैसी नहीं लगती हैं।···आपको यहां अच्छा नहीं लग रहा है; आप अनहैपी हैं। अन्धाश्रम में आपका कोई आकर्षण नहीं है। आप डेडिकेटेड नहीं हैं।"

हैमन्ती निस्पन्द बैठी हुई थी; अवनी की ओर निगाह उठाकर नहीं ताक रही थी। उसमें न कहीं क्रोध है, न विरक्ति, न असन्तोष।

अवनी ने कई क्षणों तक प्रतीक्षा की। "मुझे सोचते नहीं बनता कि अपने घर-मकान, मां, भाई को छोड़-छाड़कर आप यहां क्यों आईं ?···अपने सगे-सम्बन्धियों में आप बहुत जीवन्त हैं। ··सुरेश्वर बाबू के काम-काज में आप विश्वास नहीं करतीं, उनकी सेवा-वेवा, दया-धर्म, इस सब में भी आपकी मति नहीं है।···ईसाई ननों को मैंने देखा है, आप नन नहीं हैं।"

हैमन्ती ने अपने पैरों के ऊपर से घास को थोड़ा-सा खींच लिया। उसका ईषत् कुबड़ी होकर मुंह नीचा किए बैठा रहना, उसकी चुप्पी, असहाय सुन्न मुद्रा अभी कैसी बच्चों की-सी दीख रही थी। जैसे इस हैमन्ती में उम्र की दृढ़ता न हो; उसकी वह गंभीरता, पेशे की अलग मर्यादा, व्यक्तिगत संयम व दुराव-छिपाव अब नहीं रहा।

"जहां आपका मन नहीं रमता, जो अच्छा नहीं लगता, जिसमें विश्वास नहीं—वहां आप क्यों आईं, यह मैं नहीं जानता।" अवनी मानो धैर्य खो रहा था।

हैमन्ती ने हठात् मुंह उठाकर ताका, "मैं अब ज्यादा दिनों तक यहां नहीं रहूंगी।"

अवनी को लगा, हैमन्ती के गले के स्वर में जाड़े की हवा की तरह एक ठंडापन उभरा।

"मेरी बातों से गुस्सा किया आपने ?"

"नहीं तो।"

"हो सकता है, मेरा ऐसा कहना उचित नहीं हुआ। फिर भी मैंने कहा।··· आप [illegible] आई हैं, क्यों हैं यहां···"

[illegible]····"

· यह शौक नहीं है।

"तो फिर कुछ सोचकर आई थी मैं।···आप क्या सिर्फ नौकरी के लिए यहां आए हैं ?"

अवनी के मुंह-आंख के ऊपर प्रबल जोर से जैसे किसी ने फूंक मारी, चौंक उठने जैसी हालत हुई अवनी की। हैमन्ती को देखा, "सच्ची बात सुनेंगी ?"

हैमन्ती निहारती रही।

"मैं भाग आया हूं।"

हैमन्ती ने बात नहीं की, लेकिन उसकी आंखों में गहरा
मानो उसकी दृष्टि कह रही थी : आप भाग आए हैं ? मगर

अवनी ने हैमन्ती की आंखों के विस्मय व प्रश्न को लक्ष्य करते-करते कहा, "मुझे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, नौकरी-चाकरी, बन्धु-बान्धव, घर-कुछ नहीं। सब कुछ कैसी एकरसता —जैसा हो उठा था। बहुत थक गया था मैं।" अवनी के चेहरे पर थकान व विरक्ति का भाव उभर रहा था, गले के स्वर में हताशा थी। "समझाना मुश्किल है, मैं ठीक जो क्या समझाना चाहता हूं, मुझे यह भी नहीं मालूम—" अवनी तनिक म्लान हंसी हंसा, "मुझे लगता था, मेरे अन्दर अब कुछ नहीं रहा, सब सूख गया है, या जो कुछ था वह जल-जलकर राख हो गया है। जीवन की यह हालत इतनी बुरी···असह्य होती है···"

हैमन्ती अपलक निहारती रही। मन-ही-मन जैसे समझने की कोशिश कर रही थी।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। आखिरकार अवनी इस विषण्ण स्तब्धता को दूर करने के लिए हिल-डुलकर बैठा, सिगरेट सुलगाई, उसके बाद बोला "मेरे आने के साथ आपके आने का कोई मेल नहीं है। मैं जैसे बहुत कुछ भागकर कहीं सिर छिपाने के लिए आया हूं; आपके साथ तो ऐसी बात नहीं है—मेरी धारणा है कि आप कोई आशा लेकर आई थीं।"

हैमन्ती ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। उसके दीर्घ श्वास की आवाज तो सुनाई नहीं पड़ी; लेकिन उसकी छाती-पीठ का उठना-गिरना लक्ष्य किया जा सका।

थोड़ी देर बाद हैमन्ती ने एकाएक कहा, "चलिए, बाहर देख आएं।"

सपने में देखा हुआ है शायद : कैसी एक अस्पष्ट कोमल आच्छन्नता का जगत् जैसे स्थिर बना हुआ हो। ठंडी चांदनी में लिपटा चराचर है, व्याप्त शून्यता के बीच कोई एक स्तब्ध शान्त विशाल झील जैसे पड़ी हुई हो नीचे, दूर पर रेखा-जैसा पहाड़ी अंचल है, स्लूविश गेट के चरण तले एक विपन्न नदी है। हैमन्ती सूनी दृष्टि से देख रही थी, उसकी चेतना में कहीं शायद ऐसा कुछ था जिसकी एक अद्भुत अनुभूति ने उसे निर्वाक, परम दुःखी, विच्छिन्न व निःसंग बना डाला था। बांध के पानी की ओर नजरें टिकाए हैमन्ती ने लम्बी सांस छोड़ी, जाड़े ने फिर से उसे सिहरा दिया।

अवनी बोला, "कमरे में चलेंगी ?"

हैमन्ती मौन रही। उसके माथे में घूंघट की तरह शाल लिपटाई हुई है, शाल के पाड़ का एक सिरा कपाल के पास सूखे पत्ते की मानिन्द काला-काला-सा दीख रहा था।

अवनी फिर कुछ कहने जा रहा था कि तभी हैमन्ती ने मुंह फेरा।

"चलिए चलें—" हैमन्ती ने कहा, "न जाने कैसा लगता है देखने में—"

"तो रहियेगा और थोड़ी देर ?"

"नहीं। मुझे ज्यादा ठंड नहीं लगानी चाहिए—" हैमन्ती ने लौटने के लिए कदम बढ़ाए। वापस जाते-जाते बोली, "आज आकर मैंने अच्छा ही किया है। नहीं आती, तो कितना कुछ नहीं देख पाती।"

अवनी को लगा, हैमन्ती ने 'कितना कुछ' शब्द को न जाने कैसे कहा।

आधी और पिछली रात के किसी समय अवनी की नींद उचट गई। लगा, न जाने कौन उसे पुकार रहा है। नशे में वह कुछ सुन रहा है या नहीं सुन रहा है, अथवा नींद की खुमारी में सुन रहा है, कुछ उसकी समझ में नहीं आया। कमरा अंधेरा है। बिजली बाबू घोड़ा बेचकर सो रहे हैं, उनके श्वास-प्रश्वास की आवाज सुनाई पड़ रही है।

अवनी ने तकिए से थोड़ा-सा सिर उठाकर सुनने की कोशिश की, कौन उसे पुकार रहा है।

## पच्चीस

गहरी स्तब्धता के बीच अवनी ने कुछ देर तक, उत्कर्ण होकर प्रतीक्षा की; कोई आवाज नहीं आ रही है, कोई पुकार नहीं रहा है। लगा, वह नींद में जाग उठा है, जाग उठते समय लगा था, कोई पुकार रहा है; या सपने में उसने किसी को पुकारते सुना था। हालांकि कोई सपना अवनी को याद नहीं आया। सहसा पुकार सुनकर नींद में जाग उठने की वजह से वह थोड़ा-सा चंचल व विस्मित हुआ था; भ्रम दूर हुआ, तो नि:श्वास छोड़ा।

तकिये पर सिर रखकर पलकें बन्द करके अवनी ने फिर से सोने की कोशिश की। अंधेरे में कुछेक मक्खियों की तरह उसकी पलकों के नीचे, चेतना में न जाने क्या उड़ रहा था; उसके बाद लगा, मक्खियों के उड़ जाने पर राई-जैसी न जाने कौन-सी चीज या एक मुट्ठी तिल उसकी आंख, नाक और कपाल के बीचोंबीच—भवों के नजदीक किसी ने दे मारा। अवनी ने परेशानी महसूस की। कोई बात नहीं है, फिर भी इस मक्खी या राई-जैसी किसी चीज की अनुभूति का आंखों के ऊपर भवों के नजदीक अनुभव करना बेचैनीप्रद है। अवनी ने आंखें खोलीं।

आंखें खोले अंधेरे की तरफ निहारता हुआ वह लेटा रहा। वह याद करने की कोशिश की कि उसने कोई सपना देखा था कि नहीं। किसी सपने की बात उसे याद नहीं आयी: अभी-अभी याद आया कि नींद में किसी एक समय उसने सुरेश्वर को देखा था। सुरेश्वर किसी निर्जन रास्ते से होकर जैसे दनदनाता हुआ पैदल जाते-जाते एकाएक जमीन से ऊपर उठ गया और हाथ-पांव ढीला करके—माथा ऊंचा और पांव नीचा किए—हवा में तिरते एक बहुत बड़े खुले अखबार की तरह तिरता हुआ जाने लगा। हड्डी-पसली-विहीन; रक्त-मांस-शून्य उस अजीब आदमी को देखकर अवनी पहले-पहल भीषण अवाक् हुआ, बाद में 'सा'ब-सा'ब' कहकर पुकारा। बाद का और कुछ अवनी को याद नहीं आया!··· सुरेश्वर ने उसे उड़ती हालत में पुकारा था या देखा था, ऐसा भी अवनी को नहीं लगा।

बदन के कम्बल को गले के ऊपर ठोढ़ी तक खींच लिया अवनी ने। कमरे की हवा जाड़े में मानो जमकर कड़ी बनी हुई है, सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। बिजली बाबू जोर-जोर से सांस ले रहे हैं, उनकी नाक बन्द हो गई है। ह्विस्की की महक कमरे में है या नहीं, अवनी समझ नहीं पाया।

कभी आंखें मींचे, कभी आंखें खोले अवनी लेटा रहा, प्रतीक्षा की, पर नींद हीं आई। अन्त में एक सिगरेट सुलगायी। धीरे-धीरे कई कश लगाकर मुंह में धुआं भर लिया, उसे पिया, फिर जंभाई ली एक बार, उसके बाद करवट बदल-कर लेटा रहा। हाथ की उंगलियों में सिगरेट जल रही है।

ठीक क्यों जो नींद टूट गई, यह अवनी की समझ में नहीं आया, मगर उसे लगा, नींद अब नहीं आएगी। ऊंघाई अथवा आलस्य का कोई भाव नहीं है, न उसकी आंखें मुंदती जा रही हैं, यहां तक कि वह थकान भी अनुभव नहीं कर रहा है। हालांकि न जाने कौन-सी चीज उसे स्थिर नहीं होने दे रही थी, चंचल-चित्त व्यक्ति की तरह वह परेशानी महसूस कर रहा है।

अभी कितनी रात हो सकती है, अवनी ने इसका अनुमान लगाने की कोशिश की। तीन से तो कम नहीं बजा होगा, अवनी ने अन्यमनस्क भाव से हिसाब किया, उन लोगों के लेटते-लेटते लगभग बारह बजे गए थे, तीनेक घंटा वह जरूर सोया होगा, ह्विस्की पीने के बाद और भी अच्छी नींद आनी चाहिए थी। पर अभी वह लगभग कुछ भी अनुभव नहीं कर रहा है।

सूखे गले से कश लगाकर ढेर सारा सिगरेट का धुआं मुंह में भर लिया और अचानक घूंट निगलना चाहा, तो कंठनली में जलन हुई; खांसी आई। अवनी खांसा। निःशब्द, सुनसान कमरे में अपनी खांसी कानों में गूंजी, तो हठात् लगा, उसे किसी दूसरे के गले की आवाज सुनाई पड़ रही है। कई क्षणों के लिए ऐसा लगा, तो भी अवनी ने विशेष कुछ नहीं सोचा, फिर से पलकें बन्द करके लेटे रहने की कोशिश की।

सुरेश्वर फैले हुए एक बड़े अखबार की नाईं हवा में तिरता जा रहा है—यह दृश्य फिर उसे याद आया। और उसी के बाद याद आई हेमन्ती की बात। हेमन्ती निर्बोध है। अवनी को लगा, कलकत्ता से भागते-भागते हेमन्ती एक उड़ते अखबार को लूटने आई थी, ठीक जिस तरह से कुछ बच्चे कटी पतंग के पीछे-पीछे पतंग लूटने भागते हैं, और आखिरकार बहुत भाग-दौड़ करके पतंग न पकड़ पाकर हांफते हुए लौट आते हैं। हेमन्ती के वास्ते दुःख व सहानुभूति बोध की अवनी ने।

सिगरेट का टोटा उंगलियों से फर्श पर गिर गया था, जली सिगरेट के धुएं की गन्ध नाक में लगी, तो अवनी उठूं या न उठूं करता हुआ आखिरकार उठा। अंधेरे में लाइटर जलाकर बत्ती का स्विच देखा, फिर बत्ती जलाई। जली सिगरेट का टोटा बुझाकर गुसलखाना गया।

लौटती बार अवनी ने घड़ी देखी, साढ़े चार बजे हैं। तब तो उसका अनुमान गलत हुआ था। लगभग भोर होती जा रही है। अब थोड़ी ही देर बाद सुबह होगी। फिलहाल क्या किया जाए, कुछ अवनी की समझ में नहीं आया। उसे नींद नहीं आएगी अब, चुपचाप बिस्तर पर लेटे समय बिताने के अलावा कोई उपाय नहीं है। बत्ती को अकारण कमरे में जलाए रखने को भी उसका जी नहीं चाहा।

सूखी खांसी खांसी कई बार, फिर पुलओवर को खींच लिया और बदन में डाला, ठंड लग रही थी। बत्ती बुझाकर फिर बिस्तर पर आया।

कुछ देर तक चुपचाप बिस्तर पर लेटे-लेटे अवनी ने जैसे अस्पष्ट रूप से

अनुभव किया कि जिस परेशानी की वजह से वह जाग उठा है वह परेशानी उसके कलेजे में यहीं इतनी देर तक छिपी हुई थी, अब फिर से दिखाई देने लगी है। ठंड लगने की वेदना-जैसी एक वेदना अवनी अनुभव कर रहा है। यह वेदना पूरे तौर पर शारीरिक हो सकती है, हो सकता है, रात के वक्त ठंड लगी हो। या यह वेदना शारीरिक नहीं भी हो सकती है। कुछ समझ में नहीं आता है।

छाती पर हाथ रखकर अवनी ने वेदना अनुभव की। कब ठंड लगी है, किस तरह से लगी है, उसने इसका अन्दाजा लगाने की कोशिश की, पर लगा नहीं सका। आखिर अपनी वेदना के ऊपर सेंक देने की तरह गरम हाथ रखा, धीरे-धीरे हाथ रगड़ा। हाथ रगड़ते समय अपनी छाती की पसलियों की एक टूटी हड्डी के ऊपर अंगूठा रखे स्थिर बना रहा।

उसकी छाती की पसलियों की एक हड्डी टूटी हुई है, कब टूटी थी, यह याद नहीं है, जरूर खूब छुटपन में, जब उसने कोई खास होश नहीं सभाला था, बाद में टूटती, तो उसे याद रहता। हाड़ के जोड़ पर कुछ दोष तभी से रह गया है, जोड़ वाली जगह थोड़ी-सी ऊंची है, उंगली रखने पर समझ में आता है। असतर्क भाव से हाथ पड़ जाने पर अथवा जोर से कुछ लगने पर दर्द होता है। नहीं, ठीक दर्द नहीं होता है, बल्कि दर्द-सा होता है। हो सकता है, वास्तव में वहां कोई दर्द न हो, तो भी किसी कारण बचपन से ही एक मानसिक वेदना का भाव वहां जमा हो उठा हो। एक बार अवनी को याद हो आया, ललिता बिस्तर के बीच खेल के बहाने उसकी छाती पर माथा रखकर लोट-पोट कर रही थी, एकाएक उसने माथा उठाकर फिर जब माथा रखना चाहा, तो अवनी ने तीव्र वेदना बोध की थी। ललिता से कहा था, इस जगह को बचाकर—। ललिता ने उंगली फेरकर उस जगह को देखा था; उसके बाद में बहुत बार वहां अचानक धक्का मारा था, हाथ की चूड़ियों से आघात किया था, यहां तक कि प्राण पण से मुट्ठी चलाई थी ताकि अवनी को कोई भीषण दर्द हो। आश्चर्य है, अवनी जिसे लुका-छिपाकर बचाना चाहता था, जिस आघात से वह डरता था, ललिता उसे बचाने नहीं देती थी। ललिता के लिए अवनी की यह दुर्बलता क्यों जो सुखकर आनन्द थी, अवनी यह समझ नहीं पाता था। अपने शरीर के अन्यान्य अंग-प्रत्यंग के लिए अवनी को भय या क्लेश नहीं था, ललिता हिंस्र भाव से उन सब अंग-प्रत्यंग को दांतों से काटती तो भी अवनी अनायास सहन कर सकता था।

ललिता की बात से, और छाती की वेदना की विच्छिन्न चिन्ता से अवनी को हठात् लगा कि वह न जाने कैसा होता जा रहा है : पानी में तैरकर खेल दिखाते समय शरीर जैसे भार-रहित होता है और हाथ-पैर-बदन शिथिल होकर तिरता है। थोड़ी देर तक ऐसा लगा, तो भी अवनी फिर स्वाभाविक अनुभव के बीच लौट आया। अपनी ऐसी शिथिल भार-रहित अनुभूति ने उसे सुरेश्वर की बात याद दिलाई। तो क्या सुरेश्वर की भांति वह भी उड़ते असवार की तरह तिरेगा ? अवनी हंसा, मृदु हंसी।

हालांकि, और भी कुछेक पल बाद, अवनी ने दोबारा अनुभव किया कि जगी और सोई हालत में भी वह टूटता जा रहा है, विच्छिन्न हो रहा दो भिन्न अस्तित्व अनुभव करते समय आईने के सामने मुंह-दर-मुंह की बात सोची जा सकती है। पर अवनी ने वैसा कुछ नहीं सोचा, बल्कि

न जाने क्या उसके शरीर के नीचे से ऊपर आकर उसे जकड़ डालने की कोशिश कर रहा है। बचपन में अवनी अपनी मां की एक तसवीर देखा करता था : मां अवश विह्वल युवती होकर पलंग पर लेटी हुई है, और मां के सिर, पैर व पीठ की ओर से कई बड़े-बड़े धूपदान का धुआं मां को जैसे अपनी बांहों में भर ले रहा हो। वह तसवीर मां के थियेटर के रंग-बिरंगे फ्रेम में मढ़ी हुई थी। उस तसवीर के बारे में मां की कमजोरी थी, क्योंकि उस नाटक में मां को भाव-भीनी प्रशंसा और सोने का मेडल मिला था। अवनी को बराबर लगता था कि वह तसवीर मरघट में रचायी चिता-जैसी है। सती होने का कोई भड़कीला दृश्य है।

अवनी ने इस समय फिर से एक सिगरेट सुलगाई। हो सकता है, कोई भी बात न हो, तो भी लाइटर की रोशनी, होंठों की सिगरेट और धुएं की महक से इस क्षण उसने अपने जीवंत अस्तित्व की परख कर ली। फिर चुपचाप, धीरे-धीरे सिगरेट पीने लगा अवनी। फिलहाल उसे अब कुछ नहीं लग रहा था।

कुछ समय मानसिक अस्थिरता में बीता। बेतरतीब, अव्यवस्थित चिन्ता बुद्बुदों की तरह उठ रही थी, किन्तु अवनी उसमें मनोयोग नहीं दे रहा था। क्रमशः सिगरेट खत्म हुई। सिगरेट को फेंक देने के पहले और एक बार ढेर सारा धुआं मुंह में भरते समय सहसा उसने अनुभव किया, न जाने क्या और कुछ जैसे उसके अन्दर से बाहर आने की खातिर छटपटा रहा हो, एक दबी और अनिर्दिष्ट व्याकुलता इतनी देर बाद तीव्र होती जा रही है। फलस्वरूप गले और छाती के पास सांस रुक जाने की वजह से कैसी तकलीफ हो रही है। अवनी ने सिगरेट का धुआं निगल लिया। उसकी छाती की पुरानी टूटी हड्डी वाली जगह में टीस उठी।

अवनी बिस्तर पर उठ बैठा, सिगरेट का टोटा फेंक दिया और उसे बुझा डाला। फिर बैठा रहा कई पल। अंधेरे में उसे लगा, बहुत निकट—प्रायः मुंह के सामने कोई खड़ा है। यहां तक कि उसे लगा, हाथ बढ़ाने पर सामने वाले आदमी को वह छू सकता है। पता नहीं किस कारण अकस्मात् उसके कलेजे में उत्तेजना का ताप संचरित हुआ, क्षण भर के लिए भयभीत और तुरन्त आवेग वश अस्थिर हो उठने की वजह से उसके दिल की धड़कन तेज हो उठी है। उस अंधेरे में अवनी ने हैमन्ती की उपस्थिति अनुभव की।

अवनी को कैसा सन्देह हुआ। सन्देह हुआ कि वह हैमन्ती को सपने में देख कर जाग उठा था। सुरेश्वर की उस अजीब उड़ती हालत को देखने के बाद, या तो उसी विक्षिप्त सपने के साथ जुड़कर या अलग से हैमन्ती को देखा था। जिस तरह से आंखें बन्द किए भवों पर उंगलियां रखकर अवनी कोई जरूरी बात सोचा करता है उसी तरह से आंखें मूंदें उंगलियों से भवों को दबाते हुए सपने के उस दृश्य को याद करने की कोशिश की।

आश्चर्य है, कुछ भी याद नहीं आ रहा है। कुछ भी नहीं। जैसे अवनी अन्धा हो, अन्धेपन के कारण कुछ भी नहीं देख पा रहा है।

अवनी इतनी देर बाद अपने नींद से जाग उठने का कारण जैसे ताड़ पाया। ऐसा होता है, नजरों के सामने ढेर-सारी चीजों के बीच में से किसी चीज के खोने का पता नहीं चलता है, पर हठात् उसके दिखाई न पड़ने पर या खयाल आने पर उसके खोने का पता चल जाता है। हैमन्ती को अवनी ने सपने में देखा था कि

नहीं, अथवा सपने में हैमन्ती ने उसे पुकारा था या नहीं—अवनी याद नहीं कर सका; लेकिन नि:सन्देह अनुभव किया कि उसकी तमाम अस्थिरताओं के बीच हैमन्ती है। यह जो नींद उचट गई है, यह जो उसने सपने के एक टुकड़े में सुरेश्वर को बदन-हाथ-पैर को ढीला किए हवा में तिरते देखा है, यह जो ललिता की बात और अपनी छाती की टूटी हड्डी की वेदना की बात भी उसे याद आ रही है—यह सभी कुछ हैमन्ती के चलते है। बिस्तर पर लेटे-लेटे उसका तरह-तरह की अजीबोगरीब बातें सोचना, एक-एक बार एक-एक तरह का लगना, नींद न आना, अस्थिरता बोध होना—तमाम कुछ के पीछे हैमन्ती है।

खोई हुई चीज के मिल जाने पर जैसी राहत की सांस ली जाती है, अवनी ने बहुत कुछ वैसी ही राहत की सांस ली। उसकी उत्तेजना, अस्थिरता कम होने को आई। प्राय: शान्त, स्थिर होकर बैठा रहा कुछ देर तक।

बैठे-बैठे अवनी मन-ही-मन हैमन्ती को सामने बिठाए रखकर एक काल्पनिक कथोपकथन तैयार कर रहा था :

"तो फिर आप लौट जाएंगी ?" अवनी कह रहा था।

"हां, मैं लौट जाऊंगी।"

"सुरेश्वर शायद आपको बड़े आशा-भरोसे से लाया था।"

"फिर किसी और को लाएगा।"

"किसी डॉक्टर को···"

"हां···"

"मगर आपको ठीक उस तरह से शायद सुरेश्वर नहीं लाया था।"

"क्या पता। अपने स्वार्थ से लाया था।"

"मुझमें पहले-पहल तरह-तरह का कौतूहल था; बाद में देखा—आप उसे प्यार करके ही आई थीं।···आप लोगों का बहुत पुराना परिचय है···।"

"हां, बहुत पुराना!"

"प्यार है?"

हैमन्ती ने जवाब नहीं दिया।

अवनी शायद समझ पाया। बोला, "सुरेश्वर को मैंने आकाश में उड़ते देखा। सपने में। आपने सर्कस में ट्रापिज का खेल देखा है? ट्रापिज का खेल दिखाने वाले जिस तरह से हाथ उठाकर पैर सीधा करके छलांग लगाते हैं, बहुत कुछ उसी ढंग से सुरेश-महाराज आकाश से होकर उड़ रहे थे।···बड़ा मजेदार सपना था।"

हैमन्ती ने जवाब नहीं दिया; मगर लगा कि उसने उस वर्णन का उपभोग किया।

अवनी हंसा; हंसते-हंसते हठात् उसने कैसा आक्रोश अनुभव किया सुरेश्वर के प्रति। बोला, "एक उड़ते आदमी को पकड़ने की खातिर भाग-दौड़ करना बचपना है, निरा खेल है।···मेरी धारणा है, ऐसा खेल किसी काम का नहीं होता।"

"मैं अब ऐसा खेल नहीं खेलती हूं।"

"तो आप वापस जा रही हैं?"

"हां—।"

अवनी ने तनिक सोचा। "और रह नहीं सकतीं?"

"नहीं, क्या होगा रहकर!"

"सुरेश्वर के अन्धाश्रम में रहने की बात मैं नहीं कह रहा हूं।···दूसरी बात भी है।"

हैमन्ती ने नजरें उठाकर निहारा। निहारती रही। उसकी दोनों आंखें फैलीं; रसीली हो उठीं, घनी अंधेरी आंखों के अन्दर अति दूर पर बिजली की कौंध की तरह आंखों की पुतलियों में पल भर के लिए रोशनी उभरी।

अवनी बोला, "आप मुझे अच्छी लगती हैं।"

"जानती हूं," हैमन्ती ने अस्फुट स्वर में जवाब दिया।

अवनी चंचल हुआ, अस्थिरता बोध की। "तो फिर मत जाइए।"

हैमन्ती ने जैसे सोचा थोड़ा-सा, फिर न जाने क्या कहा, इतने धीमे और लड़खड़ाते गले से कि अवनी को सुनाई नहीं पड़ा। उसे लगा, हैमन्ती ने कहा: "आपको क्या लगता है, मैं रह सकती हूं?"

अवनी फौरन सिर हिलाकर कहने जा रहा था, हां—आप रह सकती हैं; यह कहना चाहा, तो भी कह नहीं सका, न जाने कैसी बाधा आई, बात जीभ से ऊपर रुकी रही।

हैमन्ती उसकी ओर अपलक निहार रही है। अवनी परेशानी महसूस कर रहा था। जो बाधा उसके मुंह को अपने हाथ से दबाए सख्त होकर पड़ी हुई है उस बाधा को हटाने के लिए उसने जी तोड़ कोशिश की: जैसे झटका मारकर इस गंदे हाथ को हटा देना चाहा, पर हटा नहीं सका। हटा नहीं सका, तो बेहद क्रोध और घृणा से ललिता व कुमकुम की तरफ ताका। वे दोनों न जाने कब निःशब्द अवनी के अनजाने में निकट आ गए थे।

अवनी चुप रहा; हैमन्ती इन्तजार कर रही है। इतनी देर जैसे उसके लिए प्रत्याशित नहीं हो।

मैं दगाबाज, ठग या धूर्त नहीं हो सकता, अवनी ने अस्थिर भाव से माथा हिलाया, ठगना मुश्किल है। आखिरकार अवनी ने कहा, "मेरी पत्नी थी, बेटी थी, पत्नी के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मैं डिवोर्स ले लूंगा।"

"बेटी है आपके!"

"हां, उसका नाम है कुमकुम।···कुमकुम को···" अवनी ने व्याकुल आंखों से हैमन्ती की ओर ताका। मानो कहना चाहा, कुमकुम बच्ची है, वह कलकत्ता में अपनी मां के पास है, गैर हिफाजत में है, तरह-तरह की कठिनाइयों के बीच है, उसकी मां उसे बरबाद कर दे रही है, कुमकुम देखने में बड़ी सुन्दर है: छरछरी है, गोरी है, उसके गले का स्वर बहुत मीठा है; पास रखने पर, हिफाजत करने पर, अच्छी शिक्षा देने पर···। पागलों की तरह और भीषण अस्थिरता के बीच अवनी यह सब सोचते-सोचते या कहने के वास्ते व्याकुल हुआ, तो भी आखिरकार कुछ कह नहीं सका।

हैमन्ती ने कहा, "अपनी बेटी को आप छोड़ नहीं सकते?"

अवनी को कैसा एक अजीब दुःख हुआ। जिसे उसने पकड़कर नहीं रखा है, उसे छोड़ने की बात नहीं उठती है। फिर भी बेटी को छोड़ देने की बात सोचना कुछ भिन्न है। तो क्या उसे अस्वीकार करना होगा? मगर अवनी के लिए यह संभव नहीं है।

हैमन्ती बोली, "आप तो कह रहे थे कि आपके अन्दर कुछ नहीं है, सूख गया

है—जल-जलकर राख हो गया है…"

"ऐसा ही लगता था।"

"तो अभी भी लगता है?" हेमन्ती ने स्निग्ध सुन्दर ढंग से हंसकर कह
अवनी चुप रहा। मुंह नीचा किए कुछ सोच रहा था। उसके बाद जब
उठाई,—तो हेमन्ती फिर दिखाई नहीं पड़ी।

●

सूनी दृष्टि से अवनी कुछ देर तक बैठा रहा। कल्पना में हेमन्ती आ
चली गई है। हालांकि अवनी को लग रहा था, इस आवा-जाही के बीच है
हठात् जैसे उसकी छाती की पुरानी वेदना वाली जगह पर परम महानुभ
हाथ फेर गई हो।

कुएं में मुंह झुकाकर देखने की तरह अवनी अपने हृदय को देखने की क
कर रहा था। एक समय उसे लगा था कि प्रखर ताप से, समूह गरमी से जै
का पानी सूख जाता है और अन्दर, गहराई में पानी की सतह भी सूखती
है उसी प्रकार उसका तमाम हृदय आर्द्रताहीन व शुष्क हो गया था। कहीं
प्रकार की आर्द्रता नहीं थी। हालांकि अभी लग रहा है, न जाने कैसे उसके
मनान्त हृदय में कुछ आर्द्रता पैदा हुई है। हो सकता है, इस आर्द्रता की सम्भ
कुछ थी, अवनी ने ख्याल नहीं किया था। सम्भवतः अभी वह आर्द्रता जल
की भांति चू-चूकर क्रमशः थोड़ी-सी संचित हुई है। हो सकता है, उसके लिए
यह सजीवता अनुभव करना सम्भव हो रहा हो।

किसी आश्चर्यजनक सान्त्वना की तरह, सुख की तरह अवनी प्रसन्नता
कर रहा था।

दरवाजा खोलकर बाहर आया अवनी। अभी तुरन्त शायद पौ फ
चारों ओर कुहासा है, कुहासे और ओस की हर सतह पर भोर का उजास
हो रहा है, ठंड कंपा रही है, अभी भी साफ कुछ नजर नहीं आ रहा है,
और धुंधलके से ढका हुआ है।

जाड़े से सुन्न होकर कांपते-कांपते अवनी कई पग आगे बढ़कर गगन के
की ओर आया। दरवाजे-खिड़कियां बन्द हैं। गगन वगैरह अभी भी सो
अवश्य घंटा भर समय है। उसके बाद लौटना होगा। ठीक धूप निकलने
अवनी निकलना चाहता है।

कमरे के नजदीक खड़ा होकर बन्द दरवाजे की तरफ निहारते समय
को नजर आया, दरवाजे के नीचे से होकर रोशनी आ रही है। तो क्या
और हेमन्ती उठ पड़े हैं। या कि बत्ती जलाए रखकर ही सोए थे? या
तो हो सकता है कि इस क्षण कोई जाग उठा हो। अवनी ने
और इतनी सरदी है कि अवनी कांप उठा फिर। गगन के कमरे
रही है। तो क्या वे लोग जाग उठे हैं? कौन जाने, हो सकता
जगह में उन्हें नींद न आई हो, गगन को या हेमन्ती को।

कमरे के अन्दर से कोई आहट नहीं आ रही थी। अवनी
दोनों ही जगे हुए हैं!

दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया अवनी, आया-

इतनी ठंडी हो गई थीं कि जोर से दस्तक नहीं दी जा रही थी। अबकी बार अवनी ने मुट्ठी से दरवाजे पर दस्तक दी।

"कौन ?" भीतर से हैमन्ती का गला सुनाई पड़ा।

"मैं हूं।"

हैमन्ती ने दरवाजे की सिटकनी उतारी; आवाज सुनाई पड़ी अवनी को।

दरवाजा खोल दिया हैमन्ती ने। उसने सिर, गले और सीने पर गरम चादर लिपटाई हुई है।

"बत्ती को जलती देखकर मैंने पुकारा," अवनी बोला, "सुबह हो गयी है।" कहकर हैमन्ती के भोर के वक्त के बासी चेहरे की ओर ताका। सुबह के इस चेहरे पर रात का, तकिए का, नींद का, या हो सकता है, जागरण का कैसा एक अजीब स्वाद लगा हुआ है।

"हां, मैं जागी हुई थी। घड़ी देखी है मैंने।"

"तो आप सोई नहीं ? नींद नहीं आई ?" अवनी ने कहा। कहते समय नजर आया, उसके शब्दों के साथ-साथ मुंह से धुआं निकल रहा है।

"बस, थोड़ी सी आई थी।...बहुत ठंड है, अन्दर आइए।"

चौखट के पास से अवनी ने अन्दर कदम रखा। "गगन बाबू तो खूब सो रहे हैं।...आपको क्या नई जगह में नींद नहीं आती है ?"

"थोड़ी-सी आई थी। परेशानी हो रही थी। ठंड भी बहुत है।"

"तो आप सारी रात जगी हुई थीं—?"

"नहीं बीच-बीच में सोई थी।"

"तब तो तकलीफ ही हुई।"

"नहीं, तकलीफ किस बात की ?"

"मुझे भी अच्छी नींद नहीं आई; बहुत देर से जगा हुआ हूं।" अवनी ने हैमन्ती की आंखों की ओर ताका। लगा, जैसे वह यह समझने की कोशिश कर रहा हो कि हैमन्ती के अच्छी नींद न आने या जगी रहने का कोई दूसरा कारण है या नहीं।

बिस्तर का थोड़ा-सा हिस्सा साफ करके हैमन्ती ने मानो बैठने लायक इंत-जाम किया। बोली, "हम लोग कब निकलेंगे ?"

"छः साढ़े छः बजे के अन्दर।"

हैमन्ती ने हाथ में घड़ी पहन ली थी, समय देखा। साढ़े पांच बज चुके हैं।

चुप्पी छायी रही। गगन सोये-सोये बर्राया।

"बाहर अभी बहुत ठंड है, नहीं तो यहां की सुबह देखती—" हैमन्ती बोली, "आप बैठेंगे नहीं ?"

"अभी बैठने से कोई फायदा नहीं, जाने का आयोजन करना होगा।"

"बिजली बाबू उठे हैं ?"

"नहीं।...उन्हें उठाने में समय लगेगा शायद—" अवनी हंसा।

हैमन्ती हंसी। "गगन भी बड़ा आलसी है, जाड़े में इसे बिस्तर से कोई नहीं उठा सकता।"

अवनी ने सूनी कुर्सी और हैमन्ती के बिस्तर की तरफ ताका। वे दोनों ही खड़े हैं, कमरे में बत्ती जल रही है, बाहर सुबह हो रही है, यह समझ में नहीं

आता है, यहां रात जैसा सब कुछ है। अवनी ने कहा, "बस मैंने एक मजेदार सपना देखा," कहकर हंसा, "सुरेश्वर बाबू···"

बात सुनने के पहले ही हैमन्ती ने बाधा देते हुए कहा, "आपके गले के पास यह क्या हुआ है ?"

गरदन के पास हाथ रखा अवनी ने।

"वहां नहीं, और भी उधर गरदन की ओर।"

"क्या पता।"···अवनी ने दूसरी जगह हाथ रखा।

हैमन्ती सामने आगे बढ़ी और झुककर बोली, "बत्ती की तरफ मुड़िए तो।"

अवनी ने बत्ती की ओर मुंह किया।

हैमन्ती ने देखा, उसके बाद धीरे से उंगली उठाकर दाग की बगल में गले की चमड़ी के पास रखी। अवनी ने ठंडी, हालांकि कोमल उंगली का स्पर्श अनुभव किया।

"किसी चीज ने काटा है ?"

"कुछ याद नहीं कर पा रहा हूं।"

"दुखता है ?"

अवनी ने उंगली उठाकर दर्द अनुभव करना चाहा, हैमन्ती की उंगली से छू गई, तो उसकी उंगली रुकी। "नहीं, लेकिन कुछ जलन सी हुई।"

हैमन्ती ने हाथ उतारा। दो पल ताक-ताककर अवनी का मुंह-आंख देखा। "हो सकता है, कुछ न हुआ हो।"

"कीड़े-वीड़े ने काटा होगा···"

"शायद।···कुछ लाल-लाल-सा दीख रहा है। मेरे पास क्रीम है, लगा लीजिएगा जरा-सा।"

अवनी मुस्कराया। "लगा लूंगा।"

हैमन्ती सामने से हट गई और दरवाजे की ओर निहारा, फिर निहारती रही कई पल, उसके बाद बोली, "उजाला हो गया है।"

अवनी घूमकर खड़ा हो गया। उजाला दरवाजे के चौखट तक आ गया है।



गुरुडिया लौटते-लौटते लगभग साढ़े नौ बजे। लट्ठा के मोड़ पर आकर गाड़ी घुमा लेते समय अवनी ने पूछा था, कितना बजा ?

घड़ी देखकर समय बताया बिजली बाबू ने, नौ बजकर पन्द्रह मिनट।

अपार पूस की धूप, ओस-सूखी सोंधी गन्ध, शाल और पलाश की पौधों को झकझोरती उतरैया, कई मुट्ठी फतिंगे जैसे पूरे रास्ते अगल-बगल भागे आए। दोनों हाथ फैलाए उस बाट-घाट और ओस की सजीवता को लेकर गाड़ी अन्धाश्रम के अन्दर आकर खड़ी हो गई।

बिजली बाबू उतरे, अवनी उतरकर खड़ा हो गया। गगन भी उतरा है।

उतरते-उतरते हैमन्ती को नजर आया, थोड़ी दूर पर एक खुली बैला को घेरे भीड़-सी लगी हुई है। बिजली बाबू और अवनी उधर निहार रहे गगन गाड़ी के अन्दर से अपना होल्डाल और सूटकेस निकाल ले रहा था।

गाड़ी की आवाज से भीड़ के बहुत-से लोगों ने इधर ताका। मालिनी दिखाई पड़ी। मालिनी हैमन्ती को देख पाई, तो तेज कदमों से आ रही थी।

पास आकर मालिनी रुंधे गले से बोली, "मनोहर छुट्टी लेकर मेले में गया था न हेम दीदी, परसों लौटने की बात थी, पर परसों नहीं लौटा था। कल भी नहीं लौटा था। आज इतनी देर बाद उसे पता नहीं कौन लोग लेकर आए हैं। वह बेहोश पड़ा हुआ है। बदन शायद आग की तरह गरम है।"

"क्या हुआ है ?"

"पता नहीं। वे लोग कह रहे हैं, इस रोग से मेले में बहुत लोग मर रहे हैं, यहां हर जगह···।" मालिनी विह्वल है, भयभीत है, विचलित है, "भैया एक कमरा खाली कराने गए हैं, उसे रखने के लिए।"

हैमन्ती ने अवनी की तरफ ताका। अवनी और बिजली बाबू ने नजरें मिलाईं। अवनी बोला, "तो क्या यह वही एपिडेमिक है ?"

## छब्बीस

पूस खतम हुआ और माघ आ गया था। बीच में कई दिन बादल छाये रहे, थोड़ी-बहुत वर्षा भी हुई थी, जाड़ा थोड़ा-सा दब गया था; उसके बाद फिर आकाश साफ हुआ और धूप निकली, तो माघ के कड़ाके के जाड़े ने सब कुछ जैसे दांतों तले दबा रखा। पूस के जाड़े में कहीं कुछ चंचलता थी, पर माघ में सभी कुछ अचंचल है, अपरिणत है। उतरैया में अब उतना अल्हड़ झोंका नहीं है, लगातार एक ही दिशा में बह रही है; पेड़ों के पत्ते झड़ने लगे थे, धूप के ताप में भी जाड़े का चूरा जैसे लिपटा हुआ हो; सवेरे घास को डुबो देनेवाली शबनम रात में ओस और कुहासा। सब कुछ मानो अवश कर दिया जा रहा था।

गगन लौट गया है; उसके जाने के बाद दो-एक सप्ताह गुजर गए। जाते समय गगन थोड़ी-सी चिन्ता लेकर गया है। उसके रहते-रहते ही मनोहर का निधन हो गया। मनोहर को क्या हुआ था, कुछ समझ में नहीं आया था, न कुछ पकड़ में आया था। सभी कह रहे थे कि वह मेले से लायी हुई बीमारी थी। और भी कई आदमियों के मरने की खबर कानों में पहुंच रही थी। कोई कह रहा था, दबा चेचक है, कोई कह रहा था, प्लेग है। पर इनमें से कोई भी बात सही नहीं थी। वह बीमारी कुछ अजीब थी। जाने से पहले गगन ने हैमन्ती से कहा था, तुम्हारे यहां यह कैसी बीमारी-बीमारी शुरू हुई ! सावधानी से रहना। हम लोग बड़ी दुश्चिन्ता में रहेंगे। खास कुछ समझो तो कलकत्ता चली आना। वैसे भी तो तुम्हारे अब यहां रहने का कोई मतलब नहीं होता है।

कलकत्ता लौटने के दिन गगन अवनी से मिलने के लिए अवनी के घर गया था, साथ में थी हैमन्ती। अवनी तब प्राय: शय्याशायी था; उसकी वे गले-गरदन के नजदीक वाली छोटी-छोटी लाल-लाल फुंसियां आखिरकार 'हार्पिस' में बदल गई थीं, वे पीठ के बहुत बड़े हिस्से तक फैल गई थीं। हैमन्ती ने बहुत कुछ ऐसा सन्देह किया था पहले पहल। जब तक गगन था, स्टेशन जाता-आता था, अवनी की बीमारी की खबर वही लेकर आता था। हैमन्ती भी गई एक दिन, दवा-दारू लिख दे आई। बाकी इलाज कर रहा था स्टेशन का बहरा डॉक्टर।

गगन जाने से पहले अवनी से कह गया था : दीदी को जरा देखियेगा, जैसा तता हूं उससे तो डर लगता है। हालत खराब समझें, तो उसे और आश्रम में ने मत दीजिएगा, सीधे कलकत्ता भेज दीजिएगा। वह बड़ी जिद्दी है। और ात् खास कुछ देखें, तो कम-से-कम उसे यहां ले आइएगा। हैमन्ती गगन की ल में ही खड़ी थी : सभी कुछ सुना, पर कुछ बोली नहीं।

गगन के जाने के ठीक बाद ही अन्याश्रम का बूढ़ा तिलुवा बीमार पड़ा। त कुछ एक ही प्रकार की बीमारी-सी लग रही थी। मनोहर जवान जिस्म का , इसलिए इस अजीब बीमारी से कई दिनों तक लड़ा था, पर तिलुवा लड़ नहीं ा, वह बूढ़ा हो गया था, पहले ही धक्के में शरीर के कल-पुर्जे बिगड़ गए और टिलता पैदा हुई, आखिर चल बसा था न्यूमोनिया में।

फिलहाल और एक आदमी बिस्तर पर पड़ा हुआ है—वह जाएगा या रहेगा, छ समझ में नहीं आ रहा है। यह सब चिकित्सा हैमन्ती के करने की बात नहीं। आंख की डॉक्टर है, फिर भी बाध्य होकर उसे इस अजीब बीमारी का इलाज करना पड़ रहा है : यथासाध्य इलाज कर तो रही है—मगर समझ नहीं पा ी है कि अच्छा कर रही है या बुरा कर रही है। आंख का एक छोटा-सा अस्प- ल है, साधारण चिकित्सा की व्यवस्था प्रायः नहीं है, न दवा-दारू ही है। फिर चिकित्सा होती है।

सुरेश्वर ने एक दिन कहा, "हेम, यह बीमारी क्या सचमुच ही छूत-की-सी ती है तुम्हें ?"

गरदन हिलायी हैमन्ती ने, "ऐसा ही तो लगता है। बूढ़े तिलुवा को जिस ह से बीमार मनोहर की तीमारदारी करते छूत लगी, उससे भी ऐसा लगता ।"

"आखिर यह कौन-सी बीमारी है ?"

"क्या पता ! कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"फिर भी···तुम्हें क्या लगता है ?"

"अन्दाज से बीमारी नहीं बताई जा सकती है। मैं ठहरी आंख की डॉक्टर, सबका खास कुछ नहीं समझती।"

"इतने दिन पढ़ाई-लिखाई की तुमने —" सुरेश्वर जैसे हताश हुआ। वह कुछ नना चाह रहा था। उसकी यह व्यग्रता स्वाभाविक है। उसे लगता था, हैमन्ती न-से-कम कुछ-न-कुछ अनुमान लगा सकेगी। ऐसा क्यों लगता था, यह उसे ीं मालूम। हो सकता है, इसलिए कि और कहीं से कुछ जानने का उपाय नहीं ; या सुरेश्वर सोचता था कि हेम कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज में इतने दिनों क पढ़ी है, उसके लिए यह बीमारी जानना सम्भव है। हो सकता है, यह सब भी ई बात नहीं हो : अन्याश्रम के अन्दर इस बीमारी के घुस पड़ने की वजह से वह रा रहा था; यदि ऐसा ही हो—लोग जैसा कह रहे हैं—यह एक नया उपद्रव इलाके में दिखाई पड़ा है, तो कैसे, किस तरह से आश्रम के लोगों को निरापद ा जाए, सुरेश्वर को यह दुश्चिन्ता दिखाई पड़ी थी। इसके अलावा यहां ऐसा नहीं है जिससे किसी अन्य रोग की चिकित्सा हो सकती है। साधारण बुखार- ार, यहां तक कि इस समय यहां जो हुआ करता है—खसरा—इस सबसे ई भय-चिन्ता नहीं थी। लेकिन अभी जो कुछ सुनने में आ रहा है, उससे

घबराए बिना उपाय नहीं है।

हेमन्ती पर सुरेश्वर को भरोसा करना पड़ रहा था। आखिर यह कौन-सी बीमारी है? यह बीमारी क्या छूत की है? सचमुच ही एपिडेमिक दिखाई पड़ी? यदि यह एपिडेमिक ही हो, तो फिर क्या किया जाए, बता सकती हो? कैसे यहां के लोगों को निरापद रखूं? किस तरह से उन्हें बचाऊं? आखिर इस बीमारी का इलाज भी कैसे किया जाएगा? दवा-दारू कहां हैं? यह किस प्रकार की छूत की बीमारी है?—इस प्रकार के प्रश्न और चिन्ता उसे चिन्तित कर रही थी, और परामर्श के लिए हेमन्ती के मुंह की तरफ निहारते रहना पड़ रहा था।

"प्लेग-सा लगता है तुम्हें?" सुरेश्वर ने पूछा और एक दिन।

"नहीं-नहीं।" हेमन्ती ने माथा हिलाकर कहा।

"तो! आखिर यह ऐसी कौन-सी बीमारी है?"

"पता नहीं। कितनी तरह की बीमारियां हैं। हर समय हर बीमारी समझ में भी नहीं आती है। बीच-बीच में एकाध अजीब बीमारी भी आती है···"

सुरेश्वर फिर कुछ नहीं बोला।

हेमन्ती ने अपने बूते भर सोचा है, सोचकर देखा है, यह विचित्र रोग उसके ज्ञान से परे है। रेटीनाइटिस, केराटाइटिस, ग्लूकोमा—यह सब होता, तो वह बता सकती थी, लेकिन इस रोग के बारे में वह क्या जानती है, भला क्या बता सकती है! यदि किताबी विद्या से सन्देह करना हो, तो हेमन्ती सन्देह करेगी कि यह 'मोनो न्यू क्लोसिस' है; हालांकि पूरे तौर पर यह मोनो न्यू क्लोसिस नहीं है; बल्कि इसमें 'स्कार्लेटिनर' का भी लक्षण मिलता है। इन दोनों रोगों के बारे में उसकी कोई अभिज्ञता नहीं है। रहने की बात भी नहीं है। दूसरे रोग के एकाध रोगी को तो उसने फिर भी देखा है, पर पहले रोग के रोगी को उसने कतई नहीं देखा है। मनोहर के समय कुछ भी समझ में नहीं आया था, और बूढ़े तिलुवा के समय कोई बीमारी ताड़ी जाए, इसके पहले ही वह न्यूमोनिया से गुजर गया। फिलहाल जो पड़ा हुआ है, गिरजा, उसे ही देखकर हेमन्ती को ऐसा लग रहा है। लेकिन उसका यह अनुमान गलत हो सकता है, होना ही स्वाभाविक है। इस सब रोग से आदमी भोगता है, लेकिन शायद ही मरता है। पहला रोग तो आमतौर पर कमसिनों को होता है।···पर यह सभी कुछ तो उसका एक निरा अनुमान है, खुद भी तो उसे सैकड़ों सन्देह हैं। इसके अलावा अभी तक जो कुछ सुनने में आ रहा है उसमें कितनी अफवाह और कितनी सच्चाई, यह तो कोई नहीं जानता। हो सकता है, इधर के इस उस मेले में दस-बीस आदमी मरे हों, मगर वे लोग किस बीमारी से मरे हैं, यह कौन बताए! जाड़े से दो-चार बूढ़े-बूढ़ियां अनायास ही मर सकते हैं: जैसी ठंड है उसमें मेले के खुले मैदान में कुछ प्रायः निर्वस्त्र गरीबों को रात की बर्फीली ठंड में जो न्यूमोनिया नहीं हुआ था, भला यही किसे मालूम! जैसा खाना लोग मेले में खाते हैं उससे भी दो-पांच आदमी मर सकते हैं, इसमें अचरज क्या! उस पर सुनने में आ रहा है कि कहीं-कहीं चेचक शुरू हो गया है, यदि चेचक शुरू हुआ हो, तो ऐसा भी तो हो सकता है कि मेले में जाकर किसी को बुखार आया था, घर लौटा था चेचक लेकर और घर आकर बाद में दम तोड़ दिया था। आखिर कौन यह जानने जा रहा है कि क्या हुआ था? यह तो शहर नहीं है, न यहां डॉक्टर-वैद्य ही हैं, न इलाज ही

होता है। बिखरी हुई आबादी है, छोटे-छोटे गाँव हैं, कहीं दस-बीस घर हैं, कहीं कुछ ज्यादा लोग रहते हैं; एक गाँव की खबर दूसरे गाँव में पहुँचने में देर लगती है—ऐसी हालत में ठीक-ठीक कुछ जानने का उपाय नहीं है। बेचारे [illegible] क्या कहते हैं, यह कोई काम की बात नहीं है। यह बीमारी [illegible] नहीं है, इस बीमारी ने महामारी का रूप धारण किया है, यह सब [illegible] ही कहते हैं। वे कहते हैं, इसीलिए मान लेना होगा।

मनोहर कुछ इस तरह से मरा कि बीमारी पकड़ में ही नहीं आई। हैमानी स्तम्भित व विस्मित हुई थी, तो भी बीमारी के बारे में उसने अपनी कोई राय नहीं बनाई थी। उसके बाद गया बूढ़ा निमूवा। निमूवा की बीमारी भी पकड़ी नहीं गई—मगर [illegible] प्राथमिक [illegible] मनोहर के से होंगे, यद्यपि निमूवा आखिरकार न्यूमोनिया से मरा। इस बार भी कुछ समझ में नहीं आया हैमानी के। अपने आपको उसने बड़ा असहाय महसूस किया।

मेले से बीमारी दिखाई पड़ी है, यह अफवाह तो [illegible] में पहुँची थी [illegible] के किसी-किसी के भी, पर उस अफवाह पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था। मनोहर के मरने के बाद अफवाह की हवा और भी जोर से [illegible] चली। बूढ़े निमूवा के मरने के बाद सभी डर गए थे। उसके बाद बीमार पड़ा है [illegible]। [illegible] में अभी एक दबा आतंक दिखाई पड़ता है। सुरेश्वर भी बड़ा विचलित है, [illegible] भी। ऐसा आतंक होना स्वाभाविक है: [illegible] में दो आदमी पन्द्रह-बीस दिनों के अन्दर फट-से मर गए, एक और बिस्तर पर पड़ा हुआ है—यह क्या [illegible] और आतंक के लिए कम है!

सुरेश्वर बाकायदा घबराकर एक दिन [illegible] जी को साथ लेकर [illegible] गया। वहाँ सरकारी अस्पताल है, डॉक्टर है, हेल्थ-डिपार्टमेंट है। [illegible] बोला, बीमारी की खबर हेल्थ-डिपार्टमेंट वालों के कानों में पहुँची है, उन लोगों ने खोज-खबर लेना शुरू किया है। सरकारी अस्पताल में इस प्रकार के [illegible] रोगी आए थे। उनमें से दो का देहान्त हो गया है, एक बचा है, और एक [illegible] रहा है अभी भी। यह बीमारी कुछ अजीब है, यह [illegible] बीमारी है, कोई [illegible] नहीं पा रहा है। कोई कहता है, यह [illegible] है, तो कोई इसे दूसरी बीमारी बताता है।

और भी दस-पन्द्रह दिन इसी तरह से गुजरे। [illegible]

उसके बाद अच्छी तरह समझ में आया कि यह बीमारी [illegible] महामारी के रूप में ही यह इस इलाके में दिखाई पड़ी है। [illegible] था, पर अभी कम-से-कम लगता है कि यह बीमारी [illegible], पर संक्रामक रोग की तरह ही यह फैली है। [illegible] है, विभिन्न जगहों से व्यापारी आते हैं, [illegible] इस मेले में आते हैं, कुछ दूसरी [illegible] दिखाने वाले [illegible] इस मेले में [illegible] करने वालों का दल आता है, नौटंकी का [illegible] है। [illegible] पहले इस बीमारी को कोई आने [illegible], उसके बाद [illegible] यह फैली है और [illegible]

बीमारी जान-लेवा बनकर फैल जाती, दूर-दराज में विच्छिन्न, बेतरतीब ढंग से फैली गांव-कस्बे की आबादी है, हो सकता है, इसीलिए इस बीमारी के फैलने में देर हो रही थी। एक तरह से यह अच्छा है, और दूसरी तरह से बुरा। बुरा इस लिए कि शहर-नगर होता, तो एक हलचल मचती, म्युनिसिपैलिटी का ध्यान टूटता, डॉक्टर-वैद्य दौड़-धूप करते, सरकार की दृष्टि पड़ती। उससे सौ में से दस मरते, बाकी नब्बे को बचाने की कोशिश होती। पर यह जगह न तो शहर है, न म्युनिसिपैलिटी, न यूनियन बोर्ड, कहीं-कहीं नाम के लिए शायद पंचायत है, डॉक्टर-वैद्य का नामोनिशान नहीं है, अतः कहां किस देहात में कौन मर रहा है, कौन-सी बीमारी हो रही है, इसकी खबर रखे, तो कौन रखे। सरकार का ध्यान भी इतने दिनों तक नहीं पड़ा है। निढाल होकर कौन क्या देख रहा है, कुछ भी समझ में नहीं आता है। सुनने में आ रहा है कि हाकिम शायद मेला-वेला बन्द करने का हुक्म देंगे। हेल्थ-डिपार्टमेंट के लोगों ने कुछ मुर्दा-फरोशों को जुगाड़ किया है और उन्हें कुछ ब्लिचिंग पाउडर और मच्छड़ मारने वाली दवाएं देकर कुछेक गांवों-कस्बों में भेज दिया है। साथ-ही कुछेक टीका लगाने वाले भी निकले हैं। चेचक का टीका लगाने। चेचक का टीका ये लोग कोई खास नहीं लगवाते हैं, टीका लगाने वालों को देखने पर घर छोड़कर खेतों में भाग जाते हैं, बहू-बेटियां रोना-धोना शुरू करती हैं, बच्चे चूहों की तरह छिप जाते हैं।

शिवनन्दन जी से यह सब खबर मिल रही थी। एक दिन उन्होंने बताया, इस अंचल में हैजे-चेचक की महामारी होते पहले उन्होंने देखा है, महामारी आती है, जैसे टिड्डियां आ रही हों; पहले-पहल फतिंगों की तरह पांच-दस पता नहीं कहां से छिटककर आते हैं, न तो कोई खयाल करता है, न समझता ही है, उसके बाद देखते-देखते एकाएक बड़ी-बड़ी बूंदों वाली वर्षा की भांति टिड्डियों का एक झुंड आ धमकता है; रोक-थाम करने के लिए दौड़-धूप शुरू होती है, मगर तब तक आकाश को छाते हुए एक अन्तहीन बादल की नाईं वे लोग आ चुके होते हैं। उस भयंकर दृश्य की ओर निहारकर फिर कुछ करने की मजाल नहीं होती है लोगों की।

बात शिवनन्दन जी ने शायद ठीक ही कही थी, महामारी आकाश को छा लेनेवाली टिड्डियों के बादल की तरह ही आ धमकी। गांव-गवंई से अन्धाश्रम में आंख दिखाने के लिए आनेवाले रोगियों की संख्या भी क्रमशः कम हो गई है। अभी दो-एक आदमी यद्यपि आते हैं। तब तक माघ खत्म होता जा रहा है।

उस दिन, दिन ढले सुरेश्वर आया। हेमन्ती घर के सामने मैदान में चहल-कदमी कर रही थी, मालिनी थी इतनी देर तक, नजदीक में अभी-अभी कमरे में गई है।

सुरेश्वर आकर बोला, "मैं तुम्हारे ही पास आया।"

हेमन्ती रुक गई थी। वह समझ नहीं पाई कि वह रुकी रहे, चले या कि कमरे में जाए। सुरेश्वर क्यों आया है, यह जानने को उसका खास कोई आग्रह नहीं था। आजकल बीच-बीच में ही सुरेश्वर को उसके पास आना पड़ रहा है, तकाजा हो, जरूरत हो—यह सभी कुछ है सुरेश्वर का; यह बीमारी आश्रम में नहीं घुसती, तो सुरेश्वर को हेमन्ती की जरूरत नहीं पड़ती; सुरेश्वर मुसीबत में पड़ा है, हेमन्ती भी आज एकाएक जरूरी आदमी हो उठी है। हेमन्ती ऐसा नहीं

समझती कि इसका कोई मूल्य है, उसे अच्छा भी नहीं लगता ? । बल्कि कभी-कभार वह कौतुक अनुभव करती है, उपहास करने की इच्छा जागती है, वितृष्णा आती है ।

सुरेश्वर बोला, "अभी भी शाम नहीं हुई है, चलो, जरा टहलें ।" कहकर कदम बढ़ाए सुरेश्वर ने ।

हैमन्ती भी बाध्य होकर डग भरने लगी ।

चलते-चलते सुरेश्वर ने कहा, "एक खबर सुनी है तुमने ?"

यहां की सभी खबर रोग-महामारी की मृत्यु की है । हैमन्ती ने कोई उत्साह बोध नहीं किया । बल्कि उसे विरक्ति हो रही थी । न जाने क्यों आज दोपहर से वह अवनी की प्रत्याशा कर रही थी । छः-सात दिनों के अन्दर अवनी फिर नहीं आया था । आज वह आएगा, ऐसा लग रहा था ।

सुरेश्वर बोला, "सुना कि पटना से कुछ डॉक्टर-वॉक्टर आ रहे हैं, वॉलेंटियर भी आ सकते हैं । तम्बू डालकर रहेंगे । सो जल्दी आ जाएं, तो अच्छा हो, क्यों, ठीक कहता हूं न ? ये लोग तो हर काम में लेटलतीफ होते हैं ।"

हैमन्ती चुपचाप चलने लगी । कौन लोग आएंगे, कब आएंगे, कहां-कहां खेमा गाड़ेंगे—इनमें से कोई भी बात जानने के लिए वह व्यग्र नहीं है । यदि डॉक्टर, नर्स, वॉलेंटियर, दवा-दारू आदि आए, तो अच्छा ही होगा, आना चाहिए—इतना ही वह सोच सकती है, इससे ज्यादा और कुछ नहीं । सुरेश्वर की तरह, वह क्या चातक की नाईं पटना के डॉक्टरों के वास्ते दिन गिनेगी ?

"शिवनन्दन जी कह रहे थे—" सुरेश्वर बोला, "अब कहीं मेला लगने नहीं दिया जा रहा है, पुलिस जाकर दर-दुकानें उठा दे रही है । न जाने कहां सारी की सारी मिठाइयां फेंक दी हैं । जबरदस्ती खींचकर खपच्चियों की ठठरियों और छाजनों को जला दिया है ।"

मन-ही-मन हैमन्ती बोली : अच्छा ही किया है । अभागे कहीं के ! मरते हैं, फिर भी मेले में जाते हैं, और आकर वे मिठाइयां खाते हैं । लेकिन सुरेश्वर क्या ये ही सब बातें कहने के लिए उसके पास आया है ? हैमन्ती को ऐसा नहीं लगा कि पटना से डॉक्टर आ रहे हैं, पुलिस मेला बन्द कर दे रही है—ये सब तुच्छ बातें सुनाने के लिए या उन्हें लेकर गप लड़ाने के वास्ते सुरेश्वर आया है ।

अन्धाश्रम का फाटक पार करके वे लोग जामुन के पेड़ के नीचे वाली जगह के सामने आकर खड़े हो गए । गोधूलि उतर रही थी । हैमन्ती लट्ठा की तरफ वाले कच्चे रास्ते को पकड़कर चलने लगी । जाड़ा मरता जा रहा है, फिर भी बड़ी ठंड है अभी भी । धूल से बाट-घाट धूसर था, रोशनी की कमी और छाया के चलते छोटी-छोटी झाड़ियां काली-काली-सी दीख रही थीं ।

चलते-चलते सुरेश्वर ने इस बार कहा, "कलकत्ता से कोई चिट्ठी आई है हेम ?"

हैमन्ती ने मुंह उठाया और गरदन घुमाकर ताका । इतनी देर के बाद जैसे सुरेश्वर के आने का कारण वह समझ पाई ।

"हां, कई दिन पहले आई है," हैमन्ती बोली ।

थोड़ी देर तक इन्तजार करके सुरेश्वर ने कहा, "मुझे आज मदन की एक चिट्ठी मिली ।"

हैमन्ती ने मुंह उठाकर सुरेश्वर को नहीं देखा; बिना देखे ही अन्दाजा लगा सकी कि गगन ने क्या लिखा होगा। अन्यमनस्क भाव से आकाश में गोधूलि के बादलों को देखते-देखते डग भरने लगी।

सुरेश्वर थोड़ी देर तक मौन रहा, बाद में बोला, "गगन को तुमने कुछ लिखा था ?"

हैमन्ती ने गरदन फिराकर सुरेश्वर से कहा, "किस बारे में क्या लिखूंगी मैं !"

"यहां की बीमारी-बीमारी के बारे में ?"

"यह तो गगन खुद ही देख गया है।"

"मगर तब यह बीमारी इधर इतने जोरों से नहीं फैली थी।" सुरेश्वर ने जो प्रतिवाद किया, ऐसी बात नहीं, तो भी लगा कि वह कहना चाह रहा है, गगन जब गया था तब ऐसा कुछ नहीं हुआ था जिससे कोई खास डरने लायक हालत हुई थी। हैमन्ती की समझ में आया कि गगन ने बहुत डरकर कुछ लिखा है।

सुरेश्वर ने बाट-घाट देखते-देखते कहा, "गगन ने तुम्हें कलकत्ता भेज देने की बात लिखी है।"

हैमन्ती ने पहले-पहल मुंह नहीं फेरा, जैसे चल रही थी उसी तरह धीरे-धीरे चलने लगी, बाद में मुंह उठाकर सुरेश्वर को देखा। गगन ने जो कोई अन्याय नहीं किया है इस सम्बन्ध में हैमन्ती को सन्देह नहीं था। उस बेचारे को दुश्चिन्ता और सोच-फिकर तो हो ही सकती है; उस पर यदि मां और मामा सब कुछ सुनें, तो कलकत्ता के घर में बड़ी घबराहट छा गई होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

"गगन की चिट्ठी पढ़कर मुझे लगा—" सुरेश्वर बोला, "तुमने कुछ लिखा है।···यहां की हालत जैसी हो गई है,—देखा, उसे लगभग सभी कुछ मालूम है।"

हैमन्ती ने न जाने क्यों विरक्ति बोध की। सुरेश्वर के कहने के ढंग से उसे लग रहा था, हैमन्ती ने जैसे चोरी-चोरी गगन को डरा देने लायक कुछ लिखा है। वितृष्णा अनुभव की हैमन्ती ने, सुरेश्वर की ओर कुछेक पल के लिए ताका, फिर मन-ही-मन विरक्ति के साथ बोली : तुम्हें क्या यह लग रहा है कि मैंने यहां से भागने की नीयत से गगन को सब कुछ लिखा है ? और गगन ने मेरे कहे अनुसार तुम्हें लिखा है ?

बदन की गरम चादर को करीने से ओढ़ते-ओढ़ते हैमन्ती ने विरक्त गले से कहा, "तुम्हें ऐसा लगे, तो भला मैं क्या कर सकती हूं ! मगर मैंने वैसा नहीं लिखा है।" कहकर तनिक रुकी हैमन्ती, फिर बोली, "एक साधारण बुद्धि मुझमें है : कलकत्ता में उन लोगों को परेशान करने से क्या फायदा !"

हैमन्ती के गले के स्वर में विरक्ति व अप्रसन्नता अनुभव करके सुरेश्वर ने हैमन्ती की तरफ ताका। जैसे थोड़ा-सा शरमिन्दा हुआ हो, बोला, "सो तो सही बात है; मैं भी तो यही सोच रहा था कि जो लोग दूर हैं, वे न तो कुछ जानते हैं, न देखते हैं, फिर बेकार का उन्हें डराकर परेशान करने से क्या फायदा।···पर गगन बहुत डर गया है, चाची जी को भी क्या उसने भला कुछ नहीं बताया होगा।···आखिर गगन को इतनी बातें मालूम हुई कैसे।"

हैमन्ती को इतनी देर बाद सन्देह हुआ, अवनी ने जरूर गगन को लिखा होगा।

सुरेश्वर बोला, "तो गगन ने तुम्हें कुछ नहीं लिखा है ?"

उसकी बात उतने ध्यान से नहीं सुनी हैमन्ती ने। वह अवनी की बात सोच रही थी : सोच रही थी, गगन को सविस्तार किसी ने कुछ लिखा हो, तो अवनी ने ही लिखा होगा। उसके लिए लिखना सम्भव है। हैमन्ती ने सोचा, यह बात सुरेश्वर को बताए क्या ? बाद में लगा, रहने दिया जाए, नहीं कहेगी। हालांकि हैमन्ती को बुरा लग रहा था; सुरेश्वर ने, हो सकता है, मन-ही-मन सोच रखा कि हैमन्ती कुछ छिपा रही है।

थोड़ी देर इन्तजार करके सुरेश्वर ने फिर कहा, "गगन ने तुम्हें कुछ नहीं लिखा है, हेम ?"

"कलकत्ता जाने की बात ?"

"हां।" सुरेश्वर ने सिर हिलाया।

"लिखी है।"

सुरेश्वर चुप्पी साधे रहा, मानो प्रतीक्षा कर रहा हो कि हैमन्ती को और भी कुछ कहना हो, तो कहे। पर हैमन्ती कुछ नहीं बोल रही थी। आकाश में गोधूलि खत्म होने को आई, पश्चिमी आकाश में अन्धकार का ज्वार आ रहा था, थोड़ी-सी बची-खुची लाली की आभा के ऊपर कालिमा की छाया थी। सिर के ऊपर से होकर कोई नि.संग पंछी भयभीत होकर उड़ता जा रहा था।

हैमन्ती ने इस नि.शब्दता में कैसी जड़ता बोध की। आसन्न संध्या की भांति किसी चीज का विषण्ण भार उसे आच्छन्न किए जा रहा था। हैमन्ती बोली, "शाम हो गई; चलो लौटें। जाड़ा लग रहा है।"

अन्यमनस्क भाव से सुरेश्वर ने कहा, "हां चलो, लौट चलें।"

लौटती बार हैमन्ती ने कहा, "गगन जब गया था, तभी उसे बड़ी चिन्ता हुई थी।"

"पता है। उसने मुझसे कहा था।"

"अभी की हालत तो और भी खराब है।...मैंने उसे परेशान करने लायक कुछ नहीं लिखा है; लेकिन चारों ओर बहुत बीमारी-वीमारी चल रही है अभी-ऐसा कुछ लिखा था मैंने। हो सकता है, इसी से और भी परेशान हो उठा हो। खासकर मां..."

सुरेश्वर उसकी बातों को मनोयोग से सुन रहा था या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया। कुछ बोल नहीं रहा था। चुपचाप दोनों और भी थोड़ी दूर तक चले आए। देखते-देखते कैसा अंधेरा होने को आया। दूर पर नदी की ओर सन्नाटे में पुल पर शायद कोहरे ने जमा होना शुरू किया था।

सुरेश्वर बोला, "तुमने जाने के मामले में कुछ तय किया है ?"

हैमन्ती के पांव ठिठककर स्थिर हो गए, बायां पांव बढ़ाकर वह खड़ी हो गई, दायां पांव फिर उठा नहीं सकी। सुरेश्वर की ओर ताका, सुरेश्वर दो पग आगे बढ़कर खड़ा हो गया था। एकाएक न जाने कैसे एक आक्रोश व घृणा ने हैमन्ती को थोड़ी देर के लिए न कुछ देखने दिया, न सोचने दिया। जीवन में शायद और कभी भी ऐसी तिक्तता उसने अनुभव नहीं की थी। सुरेश्वर अत्यन्त नीच, कपटी

र्ही लग रहा था। आखिर क्या सोचता है सुरेश्वर ? उसने क्या यह सोच है कि हैमन्ती ने भाग जाने की खातिर कदम बढ़ा रखा है।

ुरेश्वर खड़ा हो गया था। हैमन्ती को आता न देखकर इन्तजार कर रहा

ाखिरकार हैमन्ती ने कदम बढ़ाए।

ुरेश्वर बोला, "हेम, मैं कुछ दिनों से सोच रहा था कि तुमसे कुछ बात ···गगन के रहते-रहते ही कहने की सोचा था। पर कह नहीं सका। उसके क ऐसी स्थिति आ गई।"

ृमन्ती थोड़े तेज कदमों से चलने की कोशिश कर रही थी, जैसे सुरेश्वर का उसे अब पसन्द नहीं आ रहा था, सहन नहीं हो रहा था। तेज चलने की ा करते समय उत्तेजना में आकर हैमन्ती का शरीर कांप रहा था, पग ीब ढंग से पड़ रहे थे।

ृमन्ती ने धुन में आकर तिक्त गले से कहा, "जाने के दिन के बारे में मैंने ी कुछ तय नहीं किया है, कल-परसों के अन्दर करूंगी।"

ुरेश्वर हैमन्ती का क्रोध और तिक्तता अनुभव कर पा रहा था। थोड़ी देर सने बात नहीं की। बाद में बोला, "तुम और भी कुछेक दिन रहो, तो हो।"

ृमन्ती का मन किया कि रुके, सुरेश्वर के निर्लज्ज मुंह का रंग-ढंग एक बार हे : क्यों ? तुम्हारे इस आश्रम में फिर कौन बीमार पड़ेगा, उसका इलाज करने के लिए क्या ?

ुरेश्वर ने जैसे पहले ही कुछ सोच रखा था, अभी वही समझाने की कोशिश हा है—कुछ इस ढंग से कह रहा था, "मैंने एक डॉक्टर की तलाश की है, पटना में उमेश बाबू को लिखा है, रांची में शिवनन्दन जी के एक भाई हैं, उनसे भी कहा है। सोचा था, अखबार में एक विज्ञापन दूं—पटना के रों में। कलकत्ता से डॉक्टर लाने से कोई फायदा नहीं होगा, वे लोग इस रह नहीं सकेंगे। गगन के रहते-रहते ही यह सब मैंने सोचा था। हो सकता मामले में मैं अब तक मन दे सकता था, कोई-न कोई इन्तजाम तो होता, एकाएक इस बीमारी के आने से सब कुछ गड़बड़ा गया।···मुझे और थोड़ा- ाय चाहिए।"

ुरेश्वर की बातों में न कोई दुराव-छिपाव था, न आवेग, न रहस्य, बल्कि सीधी-सादी, सरल काम की बातें थीं वे। अपनी असुविधाओं, समस्याओं, क कि जरूरतों के बारे में भी वह सचेत था; अपना स्वार्थ प्रकट करने में सी प्रकार का संकोच नहीं हुआ।

मन्ती के लिए यह निर्लज्जता असह्य हुई जैसे। बोली, "आखिर तुम मुझे मझते हो ?"

ुरेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया—चलने लगा।

मन्ती भी चल रही थी। बोली, "तुम्हारी सुविधा-असुविधा समझकर मुझे होगा ?"

ुरेश्वर ने न जाने क्या कहने की कोशिश की; पर हैमन्ती ने उसे कहने नहीं वितृष्णा और क्रोध से प्रायः उन्मत्त होकर हैमन्ती ने कहा, "यहां इस

एपिडेमिक के बीच मैं आखिर क्यों रहूंगी ? क्या लाभ है मेरे रहने से ? अगर आज मुझे बीमारी हो, तो कौन देखेगा मुझे ? तुम ?"

सुरेश्वर हैमन्ती के गले के स्वर में बेचैनी महसूस कर रहा था, बोला, "हैम, तुम दिमाग गरम कर रही हो। जरा शान्त होकर सोचो।" कहकर सुरेश्वर ने मानो हैमन्ती को दिमाग ठंडा करने के लिए थोड़ा-सा समय दिया, बोला, "यह बीमारी तुम्हें, मुझे, मालिनी को—यहां के किसी भी आदमी को हो सकती है। फिर नहीं भी हो सकती है। हम कुछ नहीं जानते। अगर हम लोगों को हो, तो तुम देखोगी; और अगर तुम्हें हो, तो हम लोग क्या तुम्हें नहीं देखेंगे ?"

*"तुम लोग !" हैमन्ती ने मानो उपहास करते हुए हंसने की कोशिश की।*

सुरेश्वर अप्रतिभ नहीं हुआ, बोला, "हम लोग तो डॉक्टर नहीं हैं, मगर इलाज का इन्तजाम तुम्हारी बारी में नहीं होगा, क्या ऐसा ही तुम्हें लगता है।"

अन्धाश्रम के फाटक के सामने आ पड़े थे वे लोग।

सुरेश्वर बोला, "मनोहर, तिलुवा, गिरजा की बारी में तुमने भरसक कोशिश की थी। एक को तो तुमने बचा लिया है···"

"तो क्या इसके चलते मैं तुम लोगों के पास गिरवी रह गई हूं।"

"नहीं-नहीं, ऐसा क्यों होगा ! अभी इस स्थिति में तुम इतने लोगों का भरोसा हो।"

"तुम्हारे अन्धाश्रम के लोगों का, तुम्हारा ?"

"हां, हम लोगों का।"

"इससे मुझे कोई गरज नहीं। तुम्हारे अन्धाश्रम के किसी को क्या हुआ, इसमें मेरा क्या आता-जाता है ?"

"हैम···" किसी बच्चे के मुंह से बेवकूफी-की-सी कोई बात सुनकर उसे सुधारते समय जैसे हंसा जाता है सुरेश्वर उसी तरह हंसा, बोला, "हैम, यह तुम्हारे गुस्से की बात है। आदमी के लिए आदमी ही करता है, एक के रोग-शोक में दूसरा सोचता है।"

*"मैंने नहीं सोचा था। मैं तुम्हारे यहां के किसी की भी बात नहीं सोचती।"*

"तुमने उन लोगों के लिए उनकी बीमारी के समय सोचा था।"

"उसे सोचना नहीं कहते। मैंने अपना कर्तव्य किया था। कोई उपाय नहीं था, इसलिए किया था।"

"इस तरह से क्या कोई दुनिया में जी सकता है ?"

"जीने की बात क्यों उठती है ! तुम्हारा यह आश्रम मेरी दुनिया नहीं है।" हैमन्ती ने कठोर गले से कहा, "आखिर तो मैं एक डॉक्टर हूं, यहां और कोई डॉक्टर-वैद्य नहीं है, इसीलिए बाध्य होकर मुझे अपना कर्तव्य करना पड़ा है।"

"तो उन लोगों के लिए तुम्हें कोई ममता नहीं हुई थी ?"

"नहीं।"

"नहीं ?"

"पता नहीं; हो सकता है, दु:ख हुआ था, अथवा कष्ट···"

"तो तुमने सिर्फ डॉक्टरों की नीति मानी है ?"

"इसके सिवा और क्या मानूंगी ! इस सब आश्रम-वाश्रम में अन्धों के

व स्वार्थी लग रहा था। आखिर क्या सोचता है सुरेश्वर? उसने क्या यह लिया है कि हेमन्ती ने भाग जाने की खातिर कदम बढ़ा रखा है।

सुरेश्वर खड़ा हो गया था। हेमन्ती को आता न देखकर इन्तजार कर था।

आखिरकार हेमन्ती ने कदम बढ़ाए।

सुरेश्वर बोला, "हेम, मैं कुछ दिनों से सोच रहा था कि तुमसे कुछ बा कहूं।...गगन के रहते-रहते ही कहने की सोचा था। पर कह नहीं सका। उस बाद एक ऐसी स्थिति आ गई।"

हेमन्ती थोड़े तेज कदमों से चलने की कोशिश कर रही थी, जैसे सुरेश्वर क साथ उसे अब पसन्द नहीं आ रहा था, सहन नहीं हो रहा था। तेज चलने की कोशिश करते समय उत्तेजना में आकर हेमन्ती का शरीर कांप रहा था, पग बेतरतीब ढंग से पड़ रहे थे।

हेमन्ती ने धुन में आकर तिक्त गले से कहा, "जाने के दिन के बारे में मैंने अभी भी कुछ तय नहीं किया है, कल-परसों के अन्दर करूंगी।"

सुरेश्वर हेमन्ती का क्रोध और तिक्तता अनुभव कर पा रहा था। थोड़ी देर तक उसने बात नहीं की। बाद में बोला, "तुम और भी कुछेक दिन रहो, तो अच्छा हो।"

हेमन्ती का मन किया कि रुके, सुरेश्वर के निर्लज्ज मुंह का रंग-ढंग एक बार देखे, कहे : क्यों? तुम्हारे इस आश्रम में फिर कौन बीमार पड़ेगा, उसका इलाज करने करने के लिए क्या?

सुरेश्वर ने जैसे पहले ही कुछ सोच रखा था, अभी वही समझाने की कोशिश कर रहा है—कुछ इस ढंग से कह रहा था, "मैंने एक डॉक्टर की तलाश की है, हेम। पटना में उमेश बाबू को लिखा है, रांची में शिवनन्दन जी के एक भाई डॉक्टर हैं, उनसे भी कहा है। सोचा था, अखबार में एक विज्ञापन दूं—पटना के अखबारों में। कलकत्ता से डॉक्टर लाने से कोई फायदा नहीं होगा, वे लोग इस जगह रह नहीं सकेंगे। गगन के रहते-रहते ही यह सब मैंने सोचा था। हो सकता है, इस मामले में मैं अब तक मन दे सकता था, कोई-न कोई इन्तजाम तो होता, मगर एकाएक इस बीमारी के आने से सब कुछ गड़बड़ा गया।...मुझे और थोड़ा-सा समय चाहिए।"

सुरेश्वर की बातों में न कोई दुराव-छिपाव था, न आवेग, न रहस्य, बल्कि एकदम सीधी-सादी, सरल काम की बातें थीं वे। अपनी असुविधाओं, समस्याओं, यहां तक कि जरूरतों के बारे में भी वह सचेत था; अपना स्वार्थ प्रकट करने में उसे किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ।

हेमन्ती के लिए यह निर्लज्जता असह्य हुई जैसे। बोली, "आखिर तुम मुझे क्या समझते हो?"

सुरेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया —चलने लगा।

हेमन्ती भी चल रही थी। बोली, "तुम्हारी सुविधा-असुविधा समझकर मुझे चलना होगा?"

सुरेश्वर ने न जाने क्या कहने की कोशिश की; पर हेमन्ती ने उसे कहने नहीं दिया। वितृष्णा और क्रोध से प्रायः उन्मन्त होकर हेमन्ती ने कहा, "...

आज मुझे बीमारी हो, तो कौन देखेगा मुझे ? तुम ?"

सुरेश्वर हैमन्ती के गले के स्वर में बेचैनी महसूस कर रहा था, बोला, "हैम, तुम दिमाग गरम कर रही हो। जरा शान्त होकर सोचो।" कहकर सुरेश्वर ने मानो हैमन्ती को दिमाग ठंडा करने के लिए थोड़ा-सा समय दिया, बोला, "यह बीमारी तुम्हें, मुझे, मालिनी को—यहां के किसी भी आदमी को हो सकती है। फिर नहीं भी हो सकती है। हम कुछ नहीं जानते। अगर हम लोगों को हो, तो तुम देखोगी; और अगर तुम्हें हो, तो हम लोग क्या तुम्हें नहीं देखेंगे ?"

"तुम लोग !" हैमन्ती ने मानो उपहास करते हुए हंसने की कोशिश की।

सुरेश्वर अप्रतिभ नहीं हुआ, बोला, "हम लोग तो डॉक्टर नहीं हैं, मगर इलाज का इन्तजाम तुम्हारी बारी में नहीं होगा, क्या ऐसा ही तुम्हें लगता है।"

अन्धाश्रम के फाटक के सामने आ पड़े थे वे लोग।

सुरेश्वर बोला, "मनोहर, तिलुवा, गिरजा की बारी में तुमने भरसक कोशिश की थी। एक को तो तुमने बचा लिया है···"

"तो क्या इसके चलते मैं तुम लोगों के पास गिरवी रह गई हूं।"

"नहीं-नहीं, ऐसा क्यों होगा ! अभी इस स्थिति में तुम इतने लोगों का भरोसा हो।"

"तुम्हारे अन्धाश्रम के लोगों का, तुम्हारा ?"

"हां, हम लोगों का।"

"इससे मुझे कोई गरज नहीं। तुम्हारे अन्धाश्रम के किसी को क्या हुआ, इसमें मेरा क्या आता-जाता है ?"

"हैम···" किसी बच्चे के मुंह से बेवकूफों-की-सी कोई बात सुनकर उसे सुधारते समय जैसे हंसा जाता है सुरेश्वर उसी तरह हंसा, बोला, "हैम, यह तुम्हारे गुस्से की बात है। आदमी के लिए आदमी ही करता है, एक के रोग-शोक में दूसरा सोचता है।"

"मैंने नहीं सोचा था। मैं तुम्हारे यहां के किसी की भी बात नहीं सोचती।"

"तुमने उन लोगों के लिए उनकी बीमारी के समय सोचा था।"

"उसे सोचना नहीं कहते। मैंने अपना कर्तव्य किया था। कोई उपाय नहीं था, इसलिए किया था।"

"इस तरह से क्या कोई दुनिया में जी सकता है ?"

"जीने की बात क्यों उठती है ! तुम्हारा यह आश्रम मेरी दुनिया नहीं है।" हैमन्ती ने कठोर गले से कहा, "आखिर तो मैं एक डॉक्टर हूं, यहां और कोई डॉक्टर-वैद्य नहीं है, इसीलिए बाध्य होकर मुझे अपना कर्तव्य करना पड़ा है।"

"तो उन लोगों के लिए तुम्हें कोई ममता नहीं हुई थी ?"

"नहीं।"

"नहीं ?"

"पता नहीं; हो सकता है, दुःख हुआ था, अथवा कष्ट···"

"तो तुमने सिर्फ डॉक्टरों की नीति मानी है ?"

"इसके सिवा और क्या मानूंगी ! इस सब आश्रम-वाश्रम में अन्धों के बीच

तुम्हारा कोई आदर्श हो सकता है, विश्वास हो सकता है। मेरा इस सब में विश्वास नहीं है।"

"जानता हूं," सुरेश्वर ने संक्षेप में कहा।

हैमन्ती क्षण भर के लिए चुप रही, तो भी धुन में आकर बोली, "तो फिर अब तुम्हें क्या कहना है ! अब मुझे जाने दो।"

सुरेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया। बातें करते-करते वे लोग अन्धकार में हैमन्ती के कमरे के पास खड़े हो गए थे। अंधेरा हो गया था। मालिनी ने बत्ती जला रखी है, ऐसा लगा, उसके कमरे में बत्ती जल रही थी, हैमन्ती के कमरे का दरवाजा भिड़ा हुआ था।

कमरे के सामने आकर हैमन्ती खड़ी नहीं हुई, फिर भी क्षण भर के लिए उसके पांव रुके थे, जैसे उसे लगा था; सुरेश्वर यहीं से विदा लेगा। पर सुरेश्वर गया नहीं, हैमन्ती के बगलगीर होकर चलने लगा। बरामदे में चढ़ी तो हैमन्ती को मालिनी दिखाई नहीं पड़ी। कमरे में आकर भिड़ा हुआ दरवाजा खोला। अन्दर बत्ती जल रही थी।

सुरेश्वर कमरे में आकर चौखट के पास थोड़ा-सा रुका। हैमन्ती आगे बढ़कर मेज के पास खड़ी रही, उसके बाद शायद खयाल आने की वजह से बत्ती की लौ बढ़ा दी।

इधर-उधर ताककर सुरेश्वर खिड़की की तरफ कुर्सी के पास आया और बोला, "हेम, तुम बड़ी उत्तेजित हो गई हो। शान्त होकर बैठो जरा। इस तरह से तो मैं तुमसे कोई बात नहीं कह सकूंगा।"

हैमन्ती जैसे जानबूझकर ही सुरेश्वर की ओर पीठ किए थी। उसमें जो उत्तेजना है, इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन सुरेश्वर उसे अच्छा नहीं लग रहा था। उसके तमाम व्यवहारों में आज एक ऐसे हिसाबी, चालाक, प्रभुत्वपरायण और सुविधावादी की शक्ल उभर उठी थी कि हैमन्ती को असह्य घृणा हो रही थी। आश्चर्य है, इस आदमी ने अन्दर-ही-अन्दर इतना सोचा था : सोचा था कि हैमन्ती को हटाकर नया डॉक्टर लाएगा, डॉक्टर के वास्ते चिट्ठी लिखी थी, विज्ञापन ने की बात सोची थी, सभी कुछ लगभग ठीक-ठाक है—हालांकि हैमन्ती को सकी भनक तक नहीं मिलने दी थी। महज एक बीमारी ने फैलकर सब कुछ गड़-ड़ा दिया, वरना अब तक, हो सकता है, सुरेश्वर को नया डॉक्टर जुट जाता। विनम्रता से कहता : "हेम, मैंने सोचकर देखा, तुम्हें यहां दिक्कत हो रही है, म बल्कि कलकत्ता लौट ही जाओ।"

कुर्सी पर बैठते-बैठते सुरेश्वर बोला, "बैठो, दो बातें करें।"

हैमन्ती नहीं बैठी, बोली, "मैं ठीक हूं।"

"तुम्हारे नहीं बैठने से मुझे बुरा लग रहा है। बैठो।"

हैमन्ती बाध्य होकर बैठी।

सुरेश्वर थोड़ी देर तक कुछ नहीं बोला, बाद में बोला, "तुम जब आई थीं, तो ुमसे पूछा था, तुम रह सकोगी? तुमने कहा था, तुम रह सकोगी। बाद में मुझे या, तुम, हो सकता है, आखिरकार न रह सको। मैंने तो तुमसे पहले भी कहा यहां तुम्हारा मन यदि आकृष्ट न हो, तो मैं तुम्हें जबरन पकड़कर नहीं ।...तुम चली जाना, मैं तो तुम्हें रोक नहीं रहा हूं। मैंने कई दिन और भी

हो ? असहिष्णु होने का तो कोई कारण नहीं है।"

हैमन्ती नजरें उठाकर ताके बिना रह नही सकी। सुरेश्वर इस तरह से बातें कर रहा है, जैसे हैमन्ती का यहां आना, रहना, जाना—इनमें से कोई भी उनको परवाह करने लायक नहीं हो; जैसे ये सब एक गणित हों—यदि जोड़ने से हल न हो, तो घटा दिया जाए। किस तरह से कैसे निर्विकार भाव से एक आदमी ऐसा कह सकता है, हैमन्ती को सोचते नहीं बन रहा था। कपाल की धमनियों और दिमाग में कैसा एक जोरों का कष्ट हो रहा था।

"तुम्हारे लिए—" हैमन्ती ने कुछ कहना चाहा, तो शब्द खो डाले : उसकी आंखों की दृष्टि तीव्र व तमाम चेहरा नीला पड़ने की तरह काला-सा होता जा रहा था। कुछेक पल निहारती रहने के बाद हैमन्ती बोली, "तुम्हारे लिए जीवन जैसे हवाई चीज हो, पर मेरे लिए ऐसा नहीं है।"

"हवाई चीज ?" सुरेश्वर ने अपने मन से बोलने की तरह से कहा, कहकर जिज्ञासु की भांति देखता रहा। "तुम्हारी बात मैंने अच्छी तरह नहीं समझी, हेम।"

हैमन्ती के गले का स्वर थोड़ा-सा खुरदुरा और तीक्ष्ण होता जा रहा था, गले के नीचे एक शिरा सूजी हुई थी। हैमन्ती बोली, "नहीं समझे, तो मत समझो; मैं भी तो बहुत कुछ नहीं समझ सकी।" हैमन्ती ने नजरें हटाकर दूसरी ओर ताका।

सुरेश्वर स्थिर होकर बैठा रहा, कुछ सोच रहा था। हैमन्ती के अन्तिम वाक्य का अर्थ वह समझ पा रहा है। हालांकि कहने लायक कुछ भी जैसे ढूंढ़े नहीं मिल रहा हो। सिर दुखने लगा था। आज सारा दिन कैसा अच्छा नहीं लग रहा था, शरीर अलसा रहा था।

हैमन्ती ने कहा, "अन्धों की सेवा करने में तुम्हें सुख मिलता है, मुझे नहीं। तुमने क्यों मुझे अपने शतरंज का मोहरा बनाया है, मैं नहीं जानती।"

सुरेश्वर आहत हुआ। उसकी आंखों में थोड़ी देर के लिए आघात और वेदना का, चेहरे पर विषण्णता का मैला दाग उभरा। यह शिकायत सच्ची हो, न हो, उसे कुछ नहीं कहना है। किन्तु हेम जिस तरह से ऐसा कह रही है, उस तरह से सोचने में सुरेश्वर को कष्ट हो रहा था। सुरेश्वर ने मृदु और दुखित स्वर में कहा, "अपनी गलती मैंने मान ली है, हेम। लेकिन, तुमने जो क्यों ऐसा कहा, मैं समझ नहीं पाया। मैंने क्या तुम्हें सचमुच ही शतरंज का मोहरा बनाया है ?"

"और क्या !" हैमन्ती ने गरदन बाईं ओर झटकार कर कहा, वह मुद्रा दुःख की थी, हालांकि थी उपहास की।

दोनों ही मौन हो गए उसके बाद। कमरे के अन्दर कैसी जनहीनता की निस्तब्धता पैदा हो रही थी, बत्ती की रोशनी फीकी सफेद थी। जाड़ा क्रमशः गहराता जा रहा था, कभी हैमन्ती का, तो कभी सुरेश्वर का दीर्घ निःश्वास सुनाई पड़ रहा था। बेगानों की तरह, अपरिचितों की भांति दोनों बैठे रहे।

अन्त में सुरेश्वर ने कहा, "हेम, मैं तुम्हें शतरंज का मोहरा बनाऊंगा, ऐसा मैंने सोचा नहीं कभी भी। मुझे लगता था, तुमने छोटी उम्र में आदमी के दुःख का पहलू देखा है, खुद भी तुम्हें उस असहायता का स्पर्श मिला है, हो सकता है तुम साधारण दुनिया के घेरे से बाहर आने में आपत्ति न करो।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। मन हुआ, कहे, तुमने क्या सोचा था, यह तुम्हारी बात है, मेरी नहीं। मैंने कभी भी तुमसे यह नहीं कहा था कि मैं साधारण दुनिया से बाहर जाना चाहती हूं। न तो मैंने ऐसा कहा था, न मैंने तुम्हें वैसा कोई अनुमान लगाने ही दिया था। हालांकि तुमने मुझे ऐसे स्पष्ट रूप से किसी दिन यह समझने नहीं दिया था कि मेरी सिर्फ तुम्हारे अन्धों के अस्पताल की डॉक्टर बनकर रहने के लिए जरूरत है। कब मैंने बीमारी में भोगा था, कब मैं दुःख में पड़ी थी, उसके लिए मुझे अपना तमाम जीवन तुम्हारे इस आश्रम के अन्धों-दुखियों की सेवा में खर्च करना पड़ेगा ! कैसे तुम्हें ऐसा लगा कि मेरा जीवन तुम्हारे शोक मिटाने की सामग्री है ? अच्छा, शोक नहीं कहा, तुम्हारे अभिमान को चोट पहुंचेगी, बल्कि तुम्हारा आदर्श ही कहूं, अपने आदर्श के लिए मेरे जीवन को तुम लगाम पहनाकर, पट्टी बांधकर दौड़ा नहीं दे सकते। मैं अलग हूं, मेरा मन अलग है, मैं तुम्हारी तरह अन्धों को गोद में लेकर जीवन बिताना नहीं चाहती।··· तुमने तो मुझे ठगा है, तुमने किसी दिन मुझे स्पष्ट करके यह नहीं बताया कि तुम मुझे अब प्यार नहीं करते, इस प्यार में तुम्हें सुख नहीं मिलता। हम जैसे साधारण लोगों को प्यार करने में भले ही तुम्हें सुख न मिलता हो, किन्तु क्यों तुमने स्पष्ट रूप से पहले मुझे यह नहीं बताया ? किस हिसाब से तुमने यह समझ लिया कि तुम्हारा सुख मेरा सुख होगा ? तुम्हारी इच्छा मेरी इच्छा होगी ? तुम्हारी आस पुराने के लिए मुझे अपना जीवन क्यों बरबाद करना होगा ? असली बात क्या है, जानते हो, वह जो कहावत है, जो रीत निभाता है, वह क्या प्रीत नहीं निभाता ! उसी प्रकार जो अन्धों का अस्पताल खोलता है, जो दीन-दुःखियों को आश्रय देता है वह क्या भला अपने लिए जरा छोटा-सा घर नहीं बसा सकता है ? दया-धर्म संसार में बहुत-से लोगों ने किया है, अस्पताल बनवाने के लिए घर-मकान, रुपया-पैसा बहुतों ने दिया है, यदि तुम जीवन निछावर करने की बात पूछते हो, तो वह भी बहुतों ने किया है, मगर उसके चलते उनका अपना जरा घर रखना रुका नहीं था।···मैं बड़ी हो गई हूं, मैं अच्छी तरह समझ सकती हूं, मुझे तुमने अपने आश्रम के लिए नहीं ठुकराया है, अन्य कोई कारण है, गगन जैसा कह रहा था। लेकिन वह क्या है, मैं नहीं जानती; तुमने उसे छिपा रखा है।

हैमन्ती दूसरी ओर मुंह फेरे स्थिर हालांकि सूनी दृष्टि से निहारती हुई इतनी बातें सोच रही थी। सुरेश्वर भी बहुत देर तक दूसरी बात सोच रहा था। अन्त में हैमन्ती की तरफ निहारा, निहारता रहा कुछ देर तक, अन्त में कोमलता से पुकारा "हेम—"

हैमन्ती ने सुनकर भी अनसुनी कर दी।

सुरेश्वर ने प्रतीक्षा की, बाद में कहा, "मैंने अपने स्वार्थ के लिए चाहा था या नहीं, मैं नहीं जानता; लेकिन एक बात सही है, वह यह कि मैं सोचता था कि तुम मेरा सहारा बनोगी।"

हैमन्ती ने थोड़ा-सा मुंह फेरा, "तुमने बहुत कुछ सोचा है; जब जो सोचा है, अपनी ओर निहारकर सोचा है।···खैर, ये सब बातें मुझे अब अच्छी नहीं लगती हैं। छोड़ो इन बातों को।"

सुरेश्वर को लगा, उत्तेजना के अन्त में हैमन्ती क्लान्त हो गई है। उसके मुंह आंख में कैसी अवसन्नता उभर उठी थी। हो सकता है, और भी कुछ कहना था

सुरेश्वर को, कम-से-कम कह पाता, तो अच्छा होता, हालांकि कहने को जी नहीं चाह रहा था। चुपचाप बैठा रहा सुरेश्वर, अशान्ति-सी लग रही थी, कहीं जैसे कोई गहरी तकलीफ रह गई, कहा नहीं जा सका, कह नहीं सका; कहना सम्भव नहीं हुआ।

हैमन्ती ने एकाएक कहा, "तुम जो चाहते हो, यहां तुम्हें सब कुछ मिला है, पर मुझे कुछ नहीं मिला है।···मगर इस उम्र में इसे लेकर झगड़ने से लाभ क्या!"

"मैंने क्या चाहा है, हेम?"

सुरेश्वर के गले के स्वर में जो कातरता थी, अर्थ था, हैमन्ती ने उसे सुना, किन्तु अनुभव नहीं किया। बल्कि विरक्त हुई। बहुत दिनों से उसे लगा है कि सुरेश्वर यह कहेगा; कहेगा—कारण, अपने बारे में सुरेश्वर को बहुत अधिक मोह है। हैमन्ती का जी चाहा, कहे: तुमने प्रतिष्ठा और सम्मान चाहा है; तुमने अधिकार चाहा है; तुम्हारे अन्दर क्षमता पाने की भूख है; इस आश्रम में तुम्हारा आधिपत्य मैंने देखा है।···साधारण लोगों की दुनिया में तुम्हारी ये सब आशाएं पूरी नहीं होतीं, तुम विफल होते। इसी डर से तुम भाग आए हो, भाग आकर इस जंगली इलाके में अपनी दुनिया बनाई है, और अपनी आशा-अभिलाषाएं पूरी कर रहे हो। तुम्हारी मजाल नहीं थी कि खुली दुनिया के मैदान में खड़े होकर इतना कुछ पाओ। तुम डरपोक हो, तुमने खुद अपने आपको को धोखा दिया है और आज सांत्वना पाकर जिन्दा हो।

इतनी बातों में से कोई भी बात हैमन्ती ने नहीं कही। बल्कि सैकड़ों दुःखों के बीच भी कैसी म्लान हंसी-हंसी, फिर थोड़े-से व्यंग्य-भरे गले से बोली, "क्यों, अपना यही बड़ा सुख।"

सुरेश्वर स्थिर, शांत होकर बैठा रहा। व्यंग्य से वह आहत हुआ है या नहीं कुछ समझ में नहीं आया।

कुछ देर तक फिर कोई बात नहीं हुई।

सुरेश्वर अन्त में उठकर खड़ा हो गया। "गगन को उसकी चिट्ठी का ... जवाब तो देना होगा।"

"मैं दे दूंगी।"

"मुझे भी उसे एक चिट्ठी देनी चाहिए।"

"देना।"

"क्या लिखूं?"

"तुम्हारी जो मर्जी हो, लिखना।"

सुरेश्वर धीरे-धीरे कमरे के बाहर आया। बाहर आया, तो अनु... उसे बहुत जाड़ा लग रहा है। जाड़े के मारे अंग-अंग में रोंगटे खड़े हो गए कांप रहा है, होंठ थरथरा रहे थे। दांत भींचे सुरेश्वर ने। सिर बहुत ... था।

सुरेश्वर तेज कदमों से अपने कमरे में जाने की कोशिश कर रहा था।

# सत्ताईस

अगले दिन सवेरे मालिनी भागते-भागते आई, चेहरे पर घबराहट छाई हुई है, दोनों आंखों में व्याकुलता है; ऐसे पागलों की तरह आई है कि उसके कंधे के ऊपर कपड़ा नहीं है, छाती की बगल से भी साड़ी गिर गई थी, आंचल को किसी तरह से दोनों हाथों में इकट्ठा करके पकड़े हुए है।

"हेम दीदी, भैया को बहुत बुखार आ गया है," भागते-भागते आकर मालिनी ने कहा।

"बुखार!" हैमन्ती के कलेजे में न जाने कहां एक भयंकर डर की चोट लगी और कलेजा धक्-से कर उठा और धड़ककर पेंडुलम की भांति डर के मारे हिलने लगा। हैमन्ती विमूढ़ दृष्टि से कुछेक पल निहारती रही, फिर भयभीत गले से बोली, "बुखार! कब बुखार आया?"

"रात से बुखार आया हुआ है," मालिनी बोली।

हैमन्ती के हाथ-पैर जैसे थोड़े कांप रहे थे। मालिनी की विह्वलता ने उसे डरा दिया था। कुछ ख्याल किए बिना ही बोली, "कितना बुखार है?"

कितना बुखार है, यह मालिनी नहीं जानती है। बोली, "बदन तो बहुत गरम है।"

"तुमने देखा है?"

माथा हिलाया मालिनी ने, उसने देखा है। उसकी धारणा है, बदन जला जा रहा है।

हैमन्ती अस्पताल जाने के लिए इत्मीनान से तैयार हो रही थी। आजकल जल्दी अस्पताल जाने की जरूरत नहीं पड़ती है, रोगी ही प्रायः नहीं आते हैं। हैमन्ती ने कुछेक क्षण न जाने कैसी विमूढ़ता में बिताए; उसके बाद स्टेथिस्कोप ढूंढ़ लिया और बोली, "चलो देखूं।"

बरामदे में आकर हैमन्ती ने पूछा, "क्या कर रहा है वह? लेटा हुआ है?"

"बिस्तर पर तकिए से उठंगकर बैठे हुए थे?" मालिनी ने कहा। इतनी देर बाद जैसे खयाल आने की वजह से बेतरतीब हुए कपड़े को संभाल लेने की कोशिश की मालिनी ने।

हैमन्ती को लगा, तब तो बुखार शायद उतना ज्यादा नहीं है, बुखार ज्यादा होता, तो वह क्या बैठा रह सकता था! आखिर क्या हुआ एकाएक? मनोहर, बूढ़े तिलुवां की तरह कुछ अगर हो तो—अशुभ चिन्ता लौ की नाईं जैसे भक-से जल उठी हो और तब से कांप रही हो। ऐसा सोचने में सर्वांग सुन्न होता जा रहा था।

मैदान में उतरकर तेज कदमों से चलते-चलते हैमन्ती ने कहा, "बदन और मुंह पर कुछ देखा तुमने?"

"नहीं।"

"कुछ बताया उसने? कोई तकलीफ-वकलीफ होती है?"

"सिर दुखता है, बदन-हाथ में दर्द होता है।"

हैमन्ती ने और कुछ नहीं पूछा। उसकी तकदीर में क्या आखिरकार यहां

रहना है ? कल रात को उसने स्थिर कर डाला था कि दो-एक सप्ताह से ज्यादा अब वह नहीं रहेगी। और नहीं रुकूंगी। इन पंद्रह-बीस दिनों के अन्दर सुरेश्वर अगर कर सकें, तो इन्तजाम कर लें। आज उसने मदन को चिट्ठी लिखने की भी ठानी थी, हालांकि यह कैसी बाधा आ टपकी !

मालिनी बगलगीर होकर जा रही थी; जाते-जाते कुछ सोच रही थी, रुआंसे गले से बोली, "मेरा तो सिर पीटने को जी चाहता है। इतने लोगों के रहते भैया को ही आखिरकार बीमारी हुई, हेम दीदी ? क्या होगा अब, कौन जाने !"

मालिनी की बचकानी भावुकता पर कान देना उचित नहीं, फिर भी हैमन्ती ने सोचा : सोचा, सुरेश्वर को यदि कुछ हो, तो इस आश्रम का क्या होगा ? भला क्या रहेगा ? सुरेश्वर को बाद देकर मालिनी वगैरह की कल्पना नहीं की जा सकती है। मात्र एक आदमी है, हालांकि उसकी परेशानी ही जैसे सब कुछ हो। हैमन्ती को न जाने कैसी वेदना बोध हो रही थी। मन से इस चिन्ता को दूर हटाने के लिए और हताशा दबाने की कोशिश में हैमन्ती ने कहा, "इतनी परेशान होने की क्या बात है, चलो पहले देखूं तो। बुखार आने से ही क्या बुरा सोचना चाहिए।"

मालिनी ने बड़बड़ाकर कुछ कहा, उसकी बात अच्छी तरह से सुनाई नहीं पड़ी, लगा कि वह भगवान की शरणापन्न हो रही है। दाहिने हाथ की ढीली मुट्ठी बार-बार ललाट से छुलाने लगी, होंठ हिल रहे थे।

सुरेश्वर के कमरे के बरामदे में कदम रखते समय हैमन्ती का सर्वांग कांप उठा, हाथ पांवों में हठात् कैसी अवशता आई, कलेजा धक-धक कर रहा था। भरतू बेवकूफों की तरह खड़ा है दरवाजे पर।

सुरेश्वर बिस्तर पर लेटा हुआ है, कम्बल से गला तक ढका हुआ है। कदमों की आहट से आंखें खोलकर ताका उसने।

हैमन्ती ने सुरेश्वर को लक्ष्य किया। लक्ष्य करते समय उसके दो प्रकार के मनोभाव हुए। पहले उसे लगा, वह जिस सुरेश्वर को देख रही है, वही सुरेश्वर उसका अति अन्तरंग व प्रिय था, जिसके साथ उसके सम्बन्ध टूट जाने के बाद भी कहीं जैसे एक बन्धन है, दायित्व है। सुरेश्वर उसे व्याकुल, विचलित व भावुक बना डालता था, बाद में थोड़ी देर बाद, बिस्तर के सिरहाने आकर, झुककर सुरेश्वर के मुंह की ओर निहारते समय उसकी आंखों के ऊपर से कुछेक क्षण पहले वाला सुरेश्वर न जाने कहां अदृश्य हो गया, बदले में उसे एक बीमार दिखाई पड़ रहा था। विलीन होते धुए की तरह पहले वाला आवेग, हो सकता है, थोड़ा-सा था, लेकिन अभी वह हैमन्ती को उतनी कातर अथवा विह्वल नहीं कर रहा था। सुरेश्वर का मुंह लक्ष्य करते-करते हैमन्ती ने हाथ बढ़ाया, "कब बुखार आया ?"

"आधी रात को—" सुरेश्वर ने कहा, "कहकर कम्बल के नीचे से अपना हाथ बाहर निकाल दिया।

हैमन्ती ने जतन से, जरा ज्यादा वक्त लगाकर नब्ज देखी। "एकाएक आया ?"

"कल सारा दिन ही तबियत अच्छी नहीं लग रही थी। शाम के वक्त बहुत जाड़ा लग रहा था।"

सुरेश्वर के कपाल पर एक बार हाथ रखा हैमन्ती ने, देखा। "थर्मामीटर है यहां ?"

"नहीं," सुरेश्वर ने मुस्कराने जैसा मुंह बनाया, "था एक, पर टूट गया है।"

हैमन्ती ने मालिनी को थर्मामीटर लाने भेजा। उसके कमरे में थर्मामीटर है, अस्पताल जाने की जरूरत नहीं।

"देखूं, छाती···" लपेटे हुए स्टेथिस्कोप को खोलते-खोलते हैमन्ती ने कहा।

छाती-पीठ देखी हैमन्ती ने, फिर जीभ देखी सुरेश्वर की। "अभी भी जाड़ा लगता है ?"

"कभी-कभार।"

"सिर में बहुत दर्द है ?"

"हां, सिर बड़ा दुख रहा है।"

"और क्या तकलीफ है—?"

"बदन-हाथ में दर्द होता है, कमर-पीठ दुखती है।"

हैमन्ती कुछ सोच रही थी, बोली, "देखूं तुम्हारा बदन-पाठ देखूं और एक बार।"

सुरेश्वर ने सवेरे कुर्ता पहना था, कुर्ता उतारा; हैमन्ती ने अपने हाथों से सुरेश्वर की गंजी उठाई और उसके बदन-पीठ को बारीकी से देखा। देखते समय अकस्मात् उसे लगा, सुरेश्वर के बदन की चमड़ियों पर जैसे उम्र की निष्प्रभता आई हो, रंग बहुत सांवला हो गया है।

सुरेश्वर ने फिर करीने से बदन ढक लिया और बैठा।

हैमन्ती बोली, "देखो, कहीं चिकेन पॉक्स न हो।"

"चिकेन पॉक्स !"

"दो-तीन दिन बीते बिना कुछ समझना मुश्किल है। नहीं तो, और कुछ नहीं है; यह सर्दी-बुखार-सा लग रहा है।"

सुरेश्वर कुछेक क्षण हैमन्ती की आंखों की ओर निहारता रहा। बाद में बोला, "यहां मुझे बुखार-बुखार पहले कभी नहीं आया था। पिछले साल एक बार दमा-सा हुआ था। कल ही से कैसा दम फूंक रहा है, फिर से दमा तो नहीं न होगा ?"

हैमन्ती ने हां—ना कुछ नहीं कहा। मुंह देखने से लग रहा था, अभी वह बहुत कुछ निश्चिंत है। मालिनी ने जिस तरह से जाकर खबर दी थी, उससे तो डरने की ही बात थी।

सुरेश्वर ने खिड़की की ओर निहारते-निहारते निःश्वास छोड़कर मुंह फेरा थोड़ा-सा, बोला, "हेम, मुझे सचमुच ही शर्म आ रही है; बुखार आने के बाद कैसा लगा था कि तुम्हें फिर शायद परेशान करना पड़ा···। कुछ भी तो कहा नहीं जा सकता है; बुखार को आता देखकर दुश्चिन्ता ही हुई थी। अभी अच्छा ही लग रहा है, सर्दी-बुखार कोई खास बात नहीं है।"

हैमन्ती ने बातें सुनीं। उसे लगा, सुरेश्वर अब परेशान होने की बात भी सोचता है। क्यों ? उसने क्या यह सोचा था कि खास कुछ होने पर हैमन्ती रुक जाएगी ? तो हैमन्ती को अब न रोक रखने की ही इच्छा हुई है सुरेश्वर की।

हैमन्ती ने क्या स्थिर किया था, यह बात यहां उठाने की जरूरत नहीं समझी

उसने। सुरेश्वर का यह बुखार अभी तक जैसा लग रहा है, मामूली है; इस बुखार के लिए उसके रुकने का कोई कारण नहीं है। गगन को अनायास ही हैमन्ती कल-परसों तक चिट्ठी लिख सकेगी।

सुरेश्वर बोला, "मैंने आज ही गगन को चिट्ठी लिखने की सोची थी।··· तुम जल्दी ही जा रही हो, यह उसे बता देता।"

हैमन्ती ने मुंह फेरकर सुरेश्वर को देखा। तो फिर तुमने भी यह सोच लिया है आखिरकार! खैर, अच्छा है; अच्छा ही हुआ। यहां कौतुक या परिहास करना शोभा नहीं पाता है, नहीं तो, हेमन्ती, हो सकता है, पूछती, तो फिर तुम्हारे डॉक्टर का इन्तजाम हो गया है।

"कल—" सुरेश्वर बोला, "मैं तुमसे और भी कई दिन रहने की बात कह रहा था। बाद में कमरे में वापस आया, तो मुझे लगा, सचमुच ही तुम्हें और रहने को कहना उचित नहीं।"

हैमन्ती दूसरी ओर निहार रही थी, सीधे मुंह फेरकर सुरेश्वर को नहीं देखा—कनखियों से पल भर के लिए एक बार देख लिया। तो क्या सुरेश्वर ने अभिनय करना भी सीखा है! बल्कि कल, सुरेश्वर का अपने स्वार्थ की बात सोचना भी ऐसा कटु नहीं लग रहा था हैमन्ती को; पर अभी लग रहा है। अभी लग रहा है, सुरेश्वर विनीत और उदार होने की कोशिश कर रहा है, इस उदारता में कृत्रिमता है, विनय में अक्षमता है। क्या जरूरत थी तुम्हें यह सब बात बताने की! तुम्हें क्या लगा, नहीं लगा, इसमें मेरा जाना नहीं रुक रहा है। मैं वापस जा रही हूं। नितान्त तुम्हारा मुंह रखने की खातिर और भी दस-पन्द्रह दिनों तक हूं। उसके बाद और नहीं रहूंगी।

सुरेश्वर तकिए के सहारे अध लेटा हुआ बोला, "कल तुमने ठीक ही कहा था, हेम। यहां रहने पर तुम्हें बीमारी-बीमारी हो सकती है; तुम्हें बीमारी-बीमारी होने पर उसकी जिम्मेवारी मेरे सिर आ जाएगी। अगर तुम्हें कुछ हो जाए तो। इस बीमारी का कुछ भी जब ठीक नहीं है, तो तुम्हारे जीवन की जिम्मेवारी मुझे नहीं लेनी चाहिए। ··मैं जो दे नहीं सकूंगा उसे अब नहीं लूंगा।"

खिड़की की चौखट को छूकर धूप का पाव थोड़ा-सा आगे बढ़ गया है, दो-तीन गौरैया एक दूसरे के बदन में चोंच मारती और चें-चें करती-करती कमरे में घुसीं, चक्कर खाए, और फिर फड़फड़ाती हुई उड़ गईं। जाते समय पता नहीं किसका एक पर गिर गया, वह पर हवा में तिरते-तिरते सुरेश्वर के बिस्तर पर आकर गिरा।

सुरेश्वर की अन्तिम बातें हैमन्ती के कानों में खटकीं, जैसे बहुत कुछ लिखने के बाद रबर से और सब मिटाकर अन्त के कुछेक शब्द छोड़ दिए गए हों, और लगातार कोई उनके ऊपर पेंसिल फेरकर उन्हें मोटा कर रहा हो। सुरेश्वर ने आखिर क्या कहना चाहा? तो क्या जीवन की जिम्मेवारी की बात उठाकर उसने बड़ी सावधानी और चोरी से एक ताना दिया हैमन्ती को? आखिर उसने क्या समझाना चाहा? सुरेश्वर सिर्फ जीवन नहीं, और भी कुछ—जैसे कि प्यार—नहीं दे सकेगा, इसलिए प्यार नहीं लेगा!

अपने ऊपर हठात् कैसी विरक्त हुई हैमन्ती। लगा, वह बच्चों की तरह जो जो सोच रही है। प्यार की बात अब नहीं उठती। कैसा प्यार! सुरेश्वर को ही

क्या अब प्यार करती है हैमन्ती ? नहीं। देने-लेने की बात अप्रासंगिक है।

हैमन्ती ने विरक्ति के बीच ही कहा, "मैंने अपने जाने का मोटे तौर पर समय तय कर डाला है।"

सुरेश्वर ने मानो उसकी बात सुनकर भी परवाह नहीं की। बोला, "हेम, मैंने कल तुमसे कहा था कि तुम्हें मैंने शतरंज का मोहरा नहीं बनाया है। पर रात को मैंने सोचकर देखा है, तुमने अनुचित बात नहीं कही है, ठीक ही कहा है। सच-मुच ही तो, अपना स्वार्थ साधने के अलावा तुम्हें मैं क्यों लाता !" थोड़ी देर तक चुप्पी साधी सुरेश्वर ने, बाद में कहा, "कल तुम्हारी बहुत-सी बातों ने मुझे चोट पहुंचाई थी, हेम। क्या पता, तुमने कहा था, इसीलिए चोट पहुंचा थी। मन बड़ा भारी हो गया था।···खैर, अच्छा ही हुआ है। अपने आपको बीच-बीच में दूसरों की आंखों से भी देखना चाहिए।" सुरेश्वर ने अबकी बार हंसने की कोशिश की। वह थका जा रहा था, बात के अन्त में कुछेक बार हांफा, जुकाम से गला भारी बना हुआ है।

हैमन्ती परेशानी महसूस करके उठकर खड़ी हो गई। मालिनी थर्मामीटर लाने जाकर खो गई क्या ! थर्मामीटर उसे ढूंढ़े नहीं मिल रहा है ? क्या मुश्किल है, हैमन्ती ने तो बता ही दिया है कि मेज के ऊपर सिलाई करने के बक्से के अंदर थर्मामीटर है। फिर भी नहीं पा रही है वह ! मेरी बात ध्यान से मालिनी ने सुनी है कि नहीं, कौन जाने ! ऐसा ही उसका स्वभाव है। या कौन जाने थर्मामीटर लाने के मौके में और भी सात जगहों मे सुरेश्वर की बीमारी की खबर पहुंचाकर आ रही है कि नहीं ! हैमन्ती अस्थिर होकर खिड़की की ओर गई।

हैमन्ती की चंचलता लक्ष्य कर रहा था सुरेश्वर। बोला, "तुम्हें देरी होती जा रही है, न !"

"मैं अस्पताल जा रही थी।" खिड़की के पास से हैमन्ती बोली, गले का स्वर मृदु और विरक्ति भरा होने के बावजूद कैसा उदासीन है।

"तो फिर तुम जाओ, मालिनी आएगी तो मैं बुखार देखकर तुम्हें खबर भेजूंगा।"

"देखूं और थोड़ी देर।···रोगी-वोगी भी तो कोई खास नहीं आता है, आज-कल···" हैमन्ती को मैदान में मालिनी दिखाई पड़ी। वह भागी-भागी आ रही है। "वह रही मालिनी, आ रही है"—हैमन्ती बोली।

थोड़ी ही देर बाद मालिनी आई। उसका मुंह देखने से लगा कि उसने कोई अपराध कर डाला है। हैमन्ती ने हाथ बढ़ाकर थर्मामीटर लिया, "इतनी देर लगाई तुमने ?" कहते समय हाथ के थर्मामीटर का केस देखकर ही समझ पाई कि यह थर्मामीटर उसका नहीं है।

मालिनी ने मुंह नीचा किए अपराधी की भांति कहा, "आप वाला थर्मामीटर हाथ से गिर कर टूट गया।"

हैमन्ती को गुस्सा नहीं करना चाहिए था; फिर भी उसे कैसा गुस्सा आया। हड़बड़ाकर लाते समय जो मालिनी ने हाथ से थर्मामीटर गिराया है, इसमें संदेह नहीं। आखिर इतना छटपटाने की क्या बात है ! सुरेश्वर को बुखार आया है, इसके चलते तुम जो बिलकुल दिग्भ्रमित होती जा रही हो, जैसे अब तुम्हारे हाथ-पांव में जोर नहीं हो।

अस्पताल के थर्मामीटर का इस्तेमाल करने से पहले हैमन्ती का मन हिचकिचाया या नहीं, कौन जाने, हैमन्ती ने थर्मामीटर को पोंछ-पाँछ लिया और सुरेश्वर की तरफ बढ़ा दिया।

बुखार चढ़ा एक सौ एक डिग्री। छिटपुट ज्यादा; पर यह कोई खास बात नहीं है।

हैमन्ती ने सुरेश्वर की ओर माथा ताकते हुए कहा, "मालिनी के हाथ में दो-एक दवाएं मैं दे देती हूं; थोड़े में ही सावधान होना अच्छा है।" कहकर मालिनी को लाने के लिए बाहर चली गई। जाते समय सावधान कर दे गई कि वह जैसे ठंड न लगाए।

बाहर आकर मैदान से होकर घर में पैदल आते-आते हैमन्ती को अभी और उतनी दुश्चिन्ता नहीं हो रही थी। बल्कि थोड़ी देर पहले जो भीषण आतंक का भाव आया था उसके दूर हो जाने की वजह से जैसे मन स्थिर करके सोच पा रही थी, आँखों से देख पा रही थी। मैदान में अपार धूप है। घास पर की ओस सगभग सूखने को आई, आकाश नीला है, आश्रम के दो-एक आदमी सुरेश्वर के कमरे की ओर जा रहे हैं, उनके कानों में यह खबर जो पहुंच गई है, इसमें कोई सन्देह नहीं; खेत-घर की तरफ कई अन्धे धूप ला रहे हैं, पता नहीं कौन लोग सब्जी के खेतों को शायद सींच रहे हैं, कोनाकोनी बहने वाली हवा में गन्ध तिरती हुई आ रही है, फूलेफ सूखे पत्ते उड़कर आ रहे हैं, हो सकता है, वे दूर पर के सेमल के पेड़ के पत्ते हों।

एक बात सोचकर हैमन्ती को बड़ा ही अचरज हो रहा था। वह यह कि सुरेश्वर आज शुरू से लेकर आखिर तक किस तरह से निःशेष भाव से सब स्वीकार करता गया। कल उसकी दूसरी तरह की बात-चीत थी, दूसरे प्रकार की युक्ति थी, दूसरे प्रकार का प्रतिवाद था; यहां तक कि कल वह क्षुब्ध भी हुआ था, आज सवेरे एकदम अलग बात-चीत थी; लगा, वह रातोंरात बदल गया है। सुरेश्वर जो रातोंरात दूसरा आदमी नहीं हो गया है, यह सही बात है, या उसका बात-चीत में इतना बदल जाना जो स्वाभाविक है, ऐसी भी बात नहीं है, फिर भी हैमन्ती को लगा – सुरेश्वर चाहे जितना ही छिपाने की कोशिश करे, थोड़ी सी चोट तो उसने खाई है। आज सवेरे उसने जो कुछ किया, वह है बहुत कुछ शिष्ट ढंग से विदा-पर्व निपटाना : तू-तू मैं-मैं, बहस किए बिना, मनमुटाव और भी बढ़ाए बिना किसी को विदा देते समय हम लोग जैसे विनम्रता से 'अच्छा-अच्छा' किया करते हैं उसी तरह। सुरेश्वर का यह स्वभाव है; वह विरोध के अन्त तक जाना नहीं चाहता है, उसके पहले ही विरोधी से कतरा जाता है। इस स्थिति में, हैमन्ती की धारणा है, सुरेश्वर ने अपने स्वभाव के माफिक काम किया है। इसके सिवा वह यह समझ पाया है कि ज़ोर देकर कहने लायक उसे कुछ नहीं है, एक भी ऐसा सही कारण वह नहीं दिखा सकेगा जो उसके आचरण का समर्थन करेगा।

हैमन्ती को कैसा एक अजीब सुख और दुख हो रहा था। सुख हो रहा था यह सोचकर कि सुरेश-महाराज को वह आहत व नाराज कर सकी है; भले ही वह उसे सबक न सिखा सकी हो, पर उसे कम से-कम शर्मिन्दा व कुण्ठित तो कर सकी है। फिर भी तो सारी बातें—हैमन्ती के मन में जो थीं, जो सोचती है हैमन्ती—वह नहीं सकी; उसके मन में जो आत्ममोह, भीरुता, अहंकार और

क्या अब प्यार करती है हेमन्ती ? नहीं। देने-लेने की बात अप्रासंगिक है।

हेमन्ती ने विरक्ति के बीच ही कहा, "मैंने अपने जाने का मोटे तौर पर समय तय कर डाला है।"

सुरेश्वर ने मानो उसकी बात सुनकर भी परवाह नहीं की। बोला, "हेम, मैंने कल तुमसे कहा था कि तुम्हें मैंने शतरंज का मोहरा नहीं बनाया है। पर रात को मैंने सोचकर देखा है, तुमने अनुचित बात नहीं कही है, ठीक ही कहा है। सचमुच ही तो, अपना स्वार्थ साधने के अलावा तुम्हें मैं क्यों लाता !" थोड़ी देर तक चुप्पी साधी सुरेश्वर ने, बाद में कहा, "कल तुम्हारी बहुत-सी बातों ने मुझे चोट पहुंचाई थी, हेम। क्या पता, तुमने कहा था, इसीलिए चोट पहुंचा थी। मन बड़ा भारी हो गया था।···खैर, अच्छा ही हुआ है। अपने आपको बीच-बीच में दूसरों की आंखों से भी देखना चाहिए।" सुरेश्वर ने अबकी बार हंसने की कोशिश की। वह थका जा रहा था, बात के अन्त में कुछेक बार हांफा, जुकाम से गला भारी बना हुआ है।

हेमन्ती परेशानी महसूस करके उठकर खड़ी हो गई। मालिनी थर्मामीटर लाने जाकर खो गई क्या ! थर्मामीटर उसे ढूंढ़े नहीं मिल रहा है ? क्या मुश्किल है, हेमन्ती ने तो बता ही दिया है कि मेज के ऊपर सिलाई करने के बक्से के अंदर थर्मामीटर है। फिर भी नहीं पा रही है वह ! मेरी बात ध्यान से मालिनी ने सुनी है कि नहीं, कौन जाने ! ऐसा ही उसका स्वभाव है। या कौन जाने थर्मामीटर लाने के मौके में और भी सात जगहों मे सुरेश्वर की बीमारी की खबर पहुंचाकर आ रही है कि नहीं ! हेमन्ती अस्थिर होकर खिड़की की ओर गई।

हेमन्ती की चंचलता लक्ष्य कर रहा था सुरेश्वर। बोला, "तुम्हें देरी होती जा रही है, न !"

"मैं अस्पताल जा रही थी।" खिड़की के पास से हेमन्ती बोली, गले क स्वर मृदु और विरक्ति भरा होने के बावजूद कैसा उदासीन है।

"तो फिर तुम जाओ, मालिनी आएगी तो मैं बुखार देखकर तुम्हें भेजूंगा।"

"देखूं और थोड़ी देर।···रोगी-वोगी भी तो कोई खास नहीं आता है, कल···" हेमन्ती को मैदान में मालिनी दिखाई पड़ी। वह भागी-भागी आ रही है। "वह रही मालिनी, आ रही है"—हेमन्ती बोली।

थोड़ी ही देर बाद मालिनी आई। उसका मुंह देखने से लगा कि उ· अपराध कर डाला है। हेमन्ती ने हाथ बढ़ाकर थर्मामीटर लिया, "· लगाई तुमने ?" कहते समय हाथ के थर्मामीटर का केस देखकर ही · कि यह थर्मामीटर उसका नहीं है।

मालिनी ने मुंह नीचा किए अपराधी की भांति कहा, "आप वाल· हाथ से गिर कर टूट गया।"

हेमन्ती को गुस्सा नहीं करना चाहिए था; फिर भी उसे कैसा हड़बड़ाकर लाते समय जो मालिनी ने हाथ से थर्मामीटर गिराय· नहीं। आखिर इतना छटपटाने की क्या बात है ! सुरेश्वर को इसके चलते तुम जो बिलकुल दिग्भ्रमित होती जा रही हो, जैसे पांव में जोर नहीं हो।

"अभी तो सौ दियी है।"

अवनी चुप रहा।

"आपने मुझे जो नीचा दिखाया है—" हैमन्ती ने थोड़ा-सा हंसकर कहा, तिरस्कार भी जैसे हो।

"मैंने आपको नीचा दिखाया ! क्यों ?"

"गगन को आपने चिट्ठी लिखी है ?"

"लिखी है।" अवनी अवाक् हो रहा था।

"गगन ने फिर उसे लिखा है।···उसने सोचा, मैंने गगन को लिखा है।"

"नहीं, मैंने लिखा था।···यहां बहुत पैनिक है। सुनता हूं, यहां रोज ही दो-चार आदमी मरते हैं।" अवनी ने चिन्तित मुंह से कहा।

"आपने क्या जो लिखा, उसने सोचा—मैंने यहां से भाग जाने के लिए व्यग्र होकर गगन को लिखा है।" हैमन्ती जैसे अभी भी इस विषय में अपने क्षोभ को पूरे तौर पर भूल नहीं पाई हो।

अवनी ने हैमन्ती को देखते-देखते इस बार जेब से सिगरेट निकाली। सिगरेट सुलगा ली और बोला, "गगन ने आपको कलकत्ता भेज देने के लिए लिखा है ?"

"हां।"

"मैंने यही लिखा था।"

हैमन्ती ने इस बार कौतुक करके ही कहा, "गगन तो भला आपको मेरा गार्जियन बना दे गया है, मैं तो भला कुछ कह नहीं सकूंगी।"

हो सकता है, अवनी ने इस कौतुक का उपभोग किया, "गार्जियन की रिस्पॉंसिबिलिटी बहुत ज्यादा होती है।···लेकिन ऐसी बात नहीं। आप क्या सारी स्थिति जानती हैं ?"

"क्या ?"

अवनी अब की बार नहीं हंसा, बोला, "यहां से चारेक मील दूर पर एक गांव है, मोटे तौर पर बड़ा-सा ही है, उस गांव में तीनेक दिनों के अन्दर पांच आदमी मर गए, कितने जो भोग रहे हैं, कौन जाने !···बात उड़ा देने वाली नहीं है। बिजली बाबू से मुझे खबर मिलती है, उनकी बसों के ड्राइवर-कंडक्टर तो सारे इलाके में रोज घूमते हैं, उनकी खबर पर विश्वास किया जा सकता है।···आप नहीं जानतीं, किसी-किसी गांव से लोग भाग रहे हैं।"

हैमन्ती ने सुना। हो सकता है, अवनी की चिन्ता अकारण नहीं हो, लेकिन, गगन को क्या उसने ये सब बातें भी लिखी हैं ! सर्वनाश; तब तो—कुछ कहा नहीं जा सकता है—किसी तरह से मां के कानों में बात पहुंचेगी, तो या तो चिट्ठी पाते ही वापस जाने का टेलीग्राम आएगा, या गगन को ही मां भेज देगी उसे लिवा ले जाने के लिए। हैमन्ती ने आंखें उठाकर कहा, "सर्वनाश, आपने क्या गगन को यह लिखा है ?"

"थोड़ा-सा लिखा है," अवनी हंस पड़ा और जवाब दिया।

हैमन्ती दो पल अवनी के मुंह की ओर निहारती रही, फिर बोली, "तो इसीलिए !···अब समझ में आ रहा है कि गगन ने क्यों इतनी जल्दी मचाई है।"

अवनी कुछ बोला नहीं, कश लगाकर धीरे-धीरे नाक-मुंह से धुआं निकालने लगा।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद हैमन्ती बोली, "मैं तो जा रही हूं।"

अवनी निहारता रहा, कोई खास विस्मित होने लायक कोई बात जैसे नहीं हो, हालांकि विश्वास-अविश्वास की दुविधा है दृष्टि में। "आप जा रही हैं?"

"हां—" माथा हिलाया हैमन्ती ने।

"कब?"

"पन्द्रहेक दिनों के अन्दर ही।" कहकर हैमन्ती और भी कुछ कहने के वास्ते होंठ खोले निहारती रही; बाद में पता नहीं क्या सोचकर कुछ नहीं बोली।

"सुरेश्वर को यह मालूम है?"

"हां,—उसे मालूम है।"

"उन्होंने कुछ कहा नहीं?"

"पहले तो उसने और भी कुछ दिनों तक रहने की बात कही थी, मगर बाद
में फिर कुछ नहीं कहा।" हैमन्ती थोड़ी-सी तिरछी होकर मेज की तरफ झुकी
और बत्ती की लौ ठीक करने लगी। रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही है, आंख-
नाक-ठोड़ी उजागर हो गई थी, बालों का जूड़ा, गरदन, पीठ छाया में है। सीधी
होकर बैठते-बैठते अब की बार बोली, "पहले जाने के बारे में मैंने कुछ तय नहीं
किया था, न कुछ बताया ही था, लेकिन बाद में उसका रंग-ढंग देखकर मुझे बुरा
लगा। मुझे और भी पहले चला जाना चाहिए था, महज—" हैमन्ती एक गई
थोड़ी-सी झोंक में आकर, थोड़ा-सा क्रोधवश उसने ऐसा कह डाला है। कल ही
वह यह भूल नहीं पा रही है : सुरेश्वर ने कैसे यह समझ लिया कि हैमन्ती प्रा
– भय से भयभीत होकर भागना चाह रही है, क्यों सुरेश्वर ने हैमन्ती को
डॉक्टर की तलाश की बात की भनक तक नहीं मिलने दी। अपने आपको कम
क्रम इस मामले में इतना अपमानित व आहत बोध किया है हैमन्ती ने कि गु
अभिमान और असम्मान के दुःख को वह जैसे हरगिज भूला नहीं पा रही
अन्य किसी को यह सुनाने के लिए उसमें अन्दर से एक उत्तेजना थी। अव
अपने व्यक्तिगत विषय की हैमन्ती पहले कभी भी चर्चा नहीं करती थी,
बाद में उसने कभी-कभी अपनी नाराजगी जतायी थी, तो भी उस नाराज
सुरेश-महाराज थे, आश्रम था—सुरेश्वर नहीं था। उसके बाद, हो सक
प्रकारान्तर से सुरेश्वर भी आया हो, फिर भी स्पष्ट रूप से ताड़ लेने को कं
नहीं रहती थी। इन दिनों, खासकर उस दिन, मदोवल के उस इंस्पेक्शन
अवनी ने जैसे और कोई अस्पष्टता रखे बिना ही सुरेश्वर की बात उ
हैमन्ती ने बाधा नहीं दी थी, बाधा दे नहीं सकी थी। उस दिन के बाद
बात को अब छिपाने की कोशिश करना अकारण है; अटपटा है, इसीलिए
आवाज़ से वे लोग—अवनी या हैमन्ती—बात नहीं उठाते हैं, वरना
आज अब कोई बाधा अनुभव नहीं करते हैं।

आज, अभी हैमन्ती ने सुरेश्वर के व्यवहार का प्रसंग क्रोधवश
डालने के बाद यह अनुभव किया कि अवनी से पूरे तौर पर ऐसा कह
हिचकिचाहट या संकोच नहीं हो रहा है। बल्कि कहने की इच्छा
अच्छा लग रहा है। हैमन्ती बोली, "मैं जल्दी चली जाऊं, यह उसकी
थी। और भी कुछ दिनों तक रहने को कहा था उसने।…आश्रम

किसी को बीमारी-वीमारी हो, इसीलिए मुझे रखना चाहा था।...सभी अपना-अपना हित देखते हैं।"

अवनी हैमन्ती के आचरण में उत्तेजना और नाराजगी अनुभव कर पा रहा था। पर कुछ बोला नहीं।

हैमन्ती ने एकाएक कहा, "आप लोगों के सुरेश-महाराज नया डॉक्टर ला रहे हैं।"

"कहा उन्होंने?" अवनी ने जैसे बात की बात कही।

"कल कहा उन्होंने। बहुत दिनों से ही शायद खोज-ढूंढ़ कर रहे हैं—" हैमन्ती के होंठों की कोर सिकुड़ने को आई, आंखों में कैसा उपहास छलक रहा था। "अवश्य मुझे किसी ने यह नहीं बताया था, मगर भीतर-ही-भीतर चिट्ठी लिखने और विज्ञापन देने की बात भी उन्होंने सोच रखी थी। महज शायद इस बीमारी के आ जाने की वजह से सब गड़बड़ा गया। वरना, अब तक उन्होंने मुझे भगा दिया होता।" बात के अन्त में हैमन्ती ने व्यंग्य करके हंसने की कोशिश की, हंसी, हालांकि वह हंसी करुण दिखी।

अवनी क्या कहे, कुछ सोचते नहीं बना। हैमन्ती के कहां चोट पहुंची है, इसका अन्दाजा लगाने की कोशिश की, तो समझ पा रहा था: हैमन्ती के सम्मान को चोट पहुंची है। उसके सम्मान को चोट पहुंचना असम्भव नहीं है। यह अक्षम है, इस अपराध से सुरेश्वर निश्चय नए डॉक्टर की तलाश नहीं कर रहा है, बल्कि वह हैमन्ती को रख नहीं सकेगा, या हैमन्ती नहीं रहेगी, यही समझकर, हो सकता है, वह नए डॉक्टर की तलाश कर रहा था; मगर हैमन्ती को यह न बताकर सुरेश्वर ने अच्छा नहीं किया है। अवश्य अवनी ने सोचा, सुरेश्वर बताता, तो क्या हैमन्ती प्रसन्न होती?

हैमन्ती को शांत व सुस्थिर करने की आशा से अवनी ने थोड़ा हंसकर हल्के गले से कहा, "नहीं, वे आपको नहीं भगाते। वे इतने सूझ-बूझ-हीन नहीं हैं। आप नहीं रहेंगी, यही समझकर वे एक इन्तजाम कर रहे थे, और क्या?"

हैमन्ती लापरवाही के साथ मुस्कराई।

थोड़ी देर तक फिर चुप्पी छाई रही। अवनी ने अन्त में कहा, "सुरेश्वर बाबू को एक बार देख आना जरूरी है।...चलिए, चलेंगी क्या?"

"चाय पीकर नहीं जाइएगा? बैठिए जरा मैं चाय बनाकर लाती हूं—मालिनी शायद इधर नहीं है।" हैमन्ती बोली। थोड़ी-सी अन्यमनस्क है, शायद इतनी देर बाद उसे खयाल आया कि वह बहुत असन्तुष्ट हो गई थी, अपने आपको संयत करने की कोशिश कर रही थी अब।

हैमन्ती उठ रही थी, अवनी ने बाधा दी, बोला, "अभी रहने दीजिए—मुलाकात कर आऊं आकर चाय पिऊंगा। आप चलेंगी?"

माथा हिलाया हैमन्ती ने, "नहीं। मैं तीसरे पहर भी गई थी। आप घूम आइए।"

अवनी ने कुछेक क्षण प्रतीक्षा की, मानो अन्त तक हैमन्ती अपनी राय बदल सकती हो। बाद में उठकर खड़ा हो गया और बोला, "तो फिर मैं घूम आऊं।"

सुरेश्वर के कमरे के बरामदे में छोटी-मोटी भीड़ छंट गई है, उन लोगों में से कोई सीढ़ी पर है, कोई बगीचे में है, कोई बरामदे में है—अवनी आ पहुंचा।

शिवनन्दन जी तब भी बरामदे में खड़े थे। अवनी से आंखों का परिचय है, परे हटकर राह छोड़ी और नमस्कार किया। अवनी ने माथा थोड़ा-सा नीचा करके प्रति-नमस्कार किया, हाथ नहीं उठाया। "कैसे हैं सुरेश्वर बाबू ?"

"अच्छे हैं," शिवनन्दन जी ने जवाब दिया।

कमरे की तरफ पग बढ़ाते-बढ़ाते अवनी ने सुना कि शिवनन्दन जी बरामदे से उतरते-उतरते न जाने क्या कह रहे हैं दूसरों से; लगा, वे किसी विषय में कुछ परेशान हैं और छंटी भीड़ के किसी को कुछ समझाने की कोशिश कर रहे हैं। किसी को कहीं से लाने-न-लाने की बात-सी ही लगी।

बिचले कमरे में लालटेन जल रही थी। अवनी कुछेक पग आगे बढ़ आया और पुकारा, "सुरेश्वर बाबू।"

बगल वाले कमरे से सुरेश्वर ने आवाज दी, और लगभग फौरन ही मालिनी अन्दर के बरामदे से कमरे में आई। तो मालिनी इसी मकान में है।

मालिनी कुछ बोली नहीं, मगर ऐसा भाव किया जैसे अवनी को राह दिखाती हुई सुरेश्वर के कमरे में पहुंचा दे रही हो।

सुरेश्वर बिस्तर पर उठकर बैठते-बैठते बोला, "आइए।"

अवनी कमरे के बीच में आकर बोला, "क्या हुआ सा'ब, आप भला बुखार में क्यों पड़ गए ?···कैसे हैं ?"

"अच्छा हूं।" बुखार में पड़कर सुरेश्वर जैसे परेशानी में पड़ा हो, कुछ इसी तरह से हंसा जरा-सा, बोला, "बैठिए। मालिनी, वह कुर्सी···" सुरेश्वर मालिनी से कुर्सी आगे बढ़ा देने को कह रहा था; उसके पहले ही अवनी ने खुद कुर्सी खींच ली।

"तो खूब ठंड-वंड लगाई है···" अवनी ने बैठते-बैठते कहा, "यह कोल्ड फिवर है।"

मालिनी कमरे से निकलकर चली गई।

सुरेश्वर ने बिस्तर की बगल से मोटी गरम चादर खींच ली और ओढ़ी, पैताने में कम्बल है। शायद वह लेटा हुआ था, अवनी का गला सुनाई पड़ा, तो उठ बैठा है। बोला, "हेम तो कहती है, कि यह सर्दी-बुखार है। पर मुझे तो लग रहा है कि यह गठिये का बुखार है"—कहकर सुरेश्वर ने अपनी बीमारी के प्रसंग को और भी लघु करने की कोशिश की, "बूढ़ा हो गया हूं, गठिया हो गया है। जोड़-जोड़ में दर्द है···" मुस्कराया। "आप लोगों की क्या खबर है ? बिजली बाबू कैसे हैं ?"

"अच्छे हैं," अवनी ने कहा, उसे लगा कि सुरेश्वर का मुंह-आंख बड़ा सूजा हुआ है।

"आप लोगों की तरफ अभी भी यह बीमारी-बीमारी फैली नहीं है ?"

"एकाध आदमी को यह बीमारी हुई है, इसे शुरुआत कह सकते हैं।"

सुरेश्वर कुछ इस तरह से निहारता रहा कि लग रहा था, जैसे उसने सोचा था कि वह कोई अच्छी खबर सुनेगा, हालांकि बुरी खबर सुनी।

अवनी बोला—"इस एरिया में इसी बीच कम-से-कम अस्सी-नब्बे आदमी इस रोग से मर चुके हैं। लेकिन देख रहे हैं न, किसी को कोई परवाह नहीं।··· इसी तरह से यह बीमारी चलेगी—और भी एक-डेढ़ सौ लोग मरेंगे, उसके बाद

अपने आप रुकेगी। तब तक एक नेचरल इम्यूनिटी ग्रो हो जाएगी लोगों में।"

"सुनता हूं, पटना से कुछ डॉक्टर-वाक्टर आ रहे हैं—"

"आ रहे हैं···! आएं तो पहले···" अवनी ने जैसे इस बात को कोई महत्त्व नहीं दिया।

सुरेश्वर थोड़ी देर तक खामोश रहा, फिर बोला, "शिवनन्दन जी खबर-वबर रखते हैं, वे बता रहे थे कि डॉक्टर आएंगे, जल्दी ही आएंगे।···हो सकता है, इसी हफ्ते के अन्दर आएं।"

"तो आप यह विश्वास करते हैं कि डॉक्टर आएंगे ?"

"विश्वास तो करना ही पड़ता है।"

"आप जरा अधिक विश्वास करने वाले हैं।"

"विश्वास के बिना चलता नहीं है।···या तो किसी आदमी पर या किसी चीज पर तो विश्वास करना ही पड़ता है।"

"और धोखा भी तो खाना पड़ता है। धोखा नहीं खाना पड़ता है ?" अवनी ने सुरेश्वर की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से ताका।

सुरेश्वर अवनी की दृष्टि में उसकी बातों का अर्थ, हो सकता है, समझ पाया। बोला, "बहुत-से लोग ऐसा ही समझते हैं।"

"आप ऐसा नहीं समझते हैं ?"

सुरेश्वर ने धीरे से सिर हिलाया, नहीं,— वह ऐसा नहीं समझता है। बोला, "आप जिस प्रकार के धोखा खाने की बात कर रहे हैं, मैं वैसी कोई बात नहीं सोच रहा हूं।"

अवनी का जी चाहा कहे, आपको, हो सकता है, ऐसा भी तो लग सकता है कि आप किसी को धोखा नहीं दे रहे हैं!

अवनी ने सुरेश्वर के अस्वस्थ, हालांकि संयत धीर-स्थिर मुख-भाव को लक्ष्य करते-करते कहा, "मुझे बीच-बीच में लगता है, आपने हमारे जीवन को बहुत कम देखा है।···आपने कभी भी न कुछ खोया है, न पाया है।"

"कुछ नहीं खोया है मैंने ?"

"नहीं, खास कोई चीज नहीं खोई है आपने—; जिस चीज के खोने पर आदमी उसके नुकसान की कीमत समझता है, कम-से-कम वैसी कोई चीज नहीं खोई है आपने।"

सुरेश्वर अपलक अवनी के मुंह की ओर निहारता रहा। उसकी आंखों की पुतलियां क्षण भर के लिए चमकीली हो उठी थी, जैसे उन्हें चिनगारियों का स्पर्श मिला था, बाद में वह चमक मर गई, दृष्टि में अन्यमनस्कता और वेदना का भाव आया। पलकें झपकाकर सुरेश्वर ने दूसरी तरफ ताका। उसके बाद शान्त गले से मृदु स्वर में बोला, "आपने ठीक ही कहा है, कोई बड़ी चीज खोए बिना आदमी अपने आपको समझ नहीं सकता है। उसे दुःख और यंत्रणा का बोध नहीं होता है।···" फिर थोड़ी देर तक मौन रहा; उसके बाद एकाएक कहा, "आपने क्या कुछ खोया है···"

"मेरी बात अलग है—" अवनी बोला, "जनम से ही मैं हार का खेल खेल रहा हूं।···आदत पड़ गई है।" कहने के बाद उसने कौतुक अनुभव करने का स्वांग रचकर हंसने की कोशिश की।

सुरेश्वर ने मुंह फेरकर ताका। "तब तो आप खराब खिलाड़ी हैं।" सुरेश्वर ने भी हंसने की कोशिश की।

"मैं बिलकुल रद्दी खिलाड़ी हूं।...ए बैड प्लेयर विद ए बैड लक सर।" अवनी इस बार थोड़े जोर से हंस उठा।

सुरेश्वर मानो हंसे बिना रह नहीं सका। हंसी रुकी, तो बोला, "बीच-बीच में आपके साथ बात करने को खूब जी चाहता है।...आज शरीर में उतनी ताकत नहीं है। किसी दूसरे दिन अगर..." कहते-कहते सुरेश्वर रुका, सोचा, उसके बाद बोला, "अवनी बाबू, आपसे कुछेक बातें कर सकता, तो अच्छा होता। किसी दूसरे दिन..."

सुरेश्वर की बात खत्म हो, इसके पहले ही शिवनन्दन जी आए। सुरेश्वर की ओर निहारते रहे। चिंतित हैं। उन्हें कुछ कहना है। जरूरी बात है। पर अवनी के चलते जैसे कह नहीं पा रहे हों।

अवनी उठ पड़ा।

## अट्ठाइस

दो-एक दिनों के बाद की बात है।

अवनी गुरुडिया आ रहा था, साथ में थे बिजली बाबू। सुरेश्वर की बीमारी के बारे में सुनकर बिजली बाबू ने आना चाहा था। आज आते समय बस-ऑफिस से अवनी ने उन्हें अपने साथ ले लिया है।

तीसरा पहर ढल चुका था; जाड़े की हवा शायद आज सारा दिन ही रह-रहकर दिशा भूल करके दक्षिण से होकर आ रही थी, कई झकोरे आते हैं और फिर थम जाते हैं, हवा में सिहरन है, जाड़े की धार नहीं है, जैसे गुनगुनी हो। फागुन के मुंह-दर-मुंह आकर हवा शायद झिझकती हुई कभी माघ, तो कभी फागुन का मन रखे बह रही थी। रास्ता सूखे पत्तों से भरा हुआ है, दोनों किनारे असंख्य झड़े पत्ते हैं, गरगल के पेड़ों की फुनगियां प्राय: निष्पत्र होने को आईं, बाट-घाट में धूल उड़ रही है, झाड़ियां मटमैली हैं, बिजली बाबू को न जाने कब झाड़ियों से झड़बेरी की गन्ध मिली, तो उन्होंने सांस खींचकर गन्ध ली।

जाने-जाने को होकर भी तीसरा पहर कुछ देर तक था, उसके बाद अपराह्न समाप्त हुआ।

बिजली बाबू बोले, "जाड़ा अब गया मित्तिर सा'ब; बस और कुछ दिनों तक है।"

अवनी ने मुंह से कुछ नहीं कहा, दो-एक बार गरदन हिलाई धीरे से, अर्थात् हां; जाड़ा जा रहा है।

बिजली बाबू ने दियासलाई की तीली से दांत कुरेदकर तीली फेंक दी। इन दिनों पान के साथ वे जो नया जर्दा खा रहे हैं वह नशे के लिए सुविधाजनक नहीं है, मगर उसकी महक अच्छी है। अपने मुंह की खुशबू जैसे अपने आपको ही बीच-बीच में अन्यमनस्क कर देती है। बिजली बाबू शायद कई क्षणों तक मुंह बाये वही

धुलबू से रहे थे, उसके बाद अपने बचपने पर खुद ही मुग्ध मन्द मन्द हँस पड़े। बोले, "मिलिटर साहब, जरा पान-वान की आदत डालिए।'''ओंठों को आपने बिलकुल विधवा के होंठ बना रखा—।"

अवनी ने हँसकर जवाब दिया, "पान की आदत तो मेरी है, बिजली बाबू।"

बिजली बाबू अपनी गलती जैसे फौरन समझ पाकर हँस पड़े। बोले, "अरे नहीं नहीं, वह तो ठहरा जल-पान, और यह है पान-पान।" कहकर बिजली बाबू हँसते ही रहे; बाद में फिर बोले, "पान के कितने भेद हैं, पता है?"

अवनी ने माथा हिलाया; उसे नहीं पता।

बिजली बाबू ने एक शेर पढ़ा, उसका थोड़ा-सा हिस्सा हिन्दी का लगा, बाकी हिस्सा उर्दू-उर्दू होगा। बोले, "आयुर्वेद के अनुपान की तरह नाना अनुपान हैं पान के; अनुपान मिलाने पर किसी पान में गम-गुण मिलता है, तो किसी पान में गन्ध-गुण।" कहकर हँसने लगे।

बिजली बाबू के तमाम विषयों का ज्ञान बीच-बीच में अवनी को चौंका देता है। फिलहाल वह उतना चौंका नहीं, "पान-वान में तो आप काफी ज्ञानी हैं।"

"यह ज्ञान-व्यान नहीं है, यह तो ठहरा अपना जमाना शौक। आप समझदार होंगे, तो समझेंगे।"

इस परिहास का अवनी ने उपभोग किया या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया।

बिजली बाबू थोड़ी देर तक जैसे अवनी के जवाब के इन्तजार में रहे, उसके बाद मुस्कराते हुए बोले, "मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगी मिलिटर साहब, मगर मैंने जो कुछ कहा—वह है [illegible] बात।"

अवनी हँसा नहीं; सामने-सामने एक गाड़ी आ रही है, [illegible]; [illegible] की ओर नजरें गयीं उसकी।

बिजली बाबू जेब से सिगरेट केस निकाल रहे थे।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हीं होता, तो जीने का कोई सुख नहीं होता।"

अवनी ने कहा, "सो तो सही बात है, आपको देखकर ही मैं यह अच्छी तरह फ सकता हूं।"

"बस, आप तो सिर्फ देखते ही हैं, कोई सबक-वबक तो लेते नहीं।" बिजली बू बड़े जोर जोर से हंसे। हंसी रुकी, तो बोले, "एक बात कहूं, मित्तिर 'व ?"

"कहिए।"

"आप तो भला सुरेश महाराज नहीं हैं कि बरहमचारी होकर हर्रे खाकर ड़े रहेंगे आजीवन। बहुत बड़े भी हो गए आप, आधी उमर तो कबके ढल गई, अब जरा मतलब समझिए कि गृह-सुख नाम का भी तो एक शब्द है।"

"गृह-सुख···!" अवनी ने कौतुक-भरे स्वर में कहा।

"हसिए मत, मित्तिर सा'ब, दुनिया में आए हैं, तो सुख-दुःख, रोग-शोक, आराम-विश्राम इन सभी की जरूरत है; आप न चाहें तो भी ये आपको नहीं बख्शेंगे। इसके अलावा स्नेह ममता है।"

अवनी चुप रहा। बिजली बाबू जो अब चुहलबाजी नहीं कर रहे हैं, यह अच्छी तरह समझ में आ रहा था। दिन-पर-दिन बिजली बाबू के साथ एक ऐसा लगाव हो गया है कि वे घनिष्ठ मित्र की भांति अब बहुत-सी बातें बेझिझक कह सकते हैं, कहने में संकुचित नहीं होते हैं।

बिजली बाबू ने कहा, "मैं बीच-बीच में सोचता हूं मित्तिर सा'ब, कि आप तो बड़े विचित्र आदमी हैं।"

अवनी ने गरदन फिराकर ताका, "मैं विचित्र आदमी हूं! क्यों?"

"आप विचित्र तो हैं ही! देख रहा हूं न!···आप चाहते, तो आम आदमी जो चाहता है, जिससे सुख-शान्ति पाता है, लगभग सभी कुछ पा सकते थे, हालांकि आप ऐसे बनजारे बने रहे कि जैसे आपको कुछ भी नहीं जुटा हो। यह क्या शौक है! पर ऐसी बात भी तो नहीं है।"

अवनी ने तुरन्त उनकी बात का जवाब नहीं दिया, बाद में कहा, "आप जरा ज्यादा सोचते हैं बिजली बाबू।"

बिजली बाबू बुझी सिगरेट को फिर से सुलगाने लगे, गाड़ी लगभग लट्ठा के मोड़ पर आ पहुंची।

सिगरेट सुलगाकर बिजली बाबू ने कहा, "मित्तिर सा'ब, मैंने किसी दिन आपकी फैमिली के मामले में बात नहीं उठाई थी।···दो-एक बातें पूछूंगा, अप-राध क्षमा करेंगे।"

अवनी खामोश रहा। बिजली बाबू ने जो यह प्रसंग किसी दिन नहीं उठाया था, ऐसी बात नहीं, लेकिन स्पष्ट करके किसी दिन कुछ कहा नहीं था, प्रकारान्त से एकाध बार उन्होंने उस विषय का उल्लेख किया था।

बिजली बाबू बोले, "तो क्या आप अपनी पत्नी को कतई पसन्द नहीं कर हैं?"

"नहीं। मेरी पत्नी नहीं है—एक समय थी; अभी वह किसी और की प है···"

"मित्तिर सा'ब!"

"यह गुस्से की बात नहीं है बिजली बाबू—; सचमुच ही बात ही ऐसी है। कलकत्ता में मेरे दो-एक दोस्त हैं; उनमें से एक के साथ मेरा चिट्ठी-पत्री से सरके है। मैंने बिना जाने ऐसा नहीं कहा है।"

बिजली बाबू कुछ देर तक निर्वाक बने रहे, बाद में बोले, "आपके जीते जी वे भला कैसे दूसरे आदमी की पत्नी हो सकती हैं ?"

"हो सकती है—" अवनी ने सबकी बार जैसे जान-बूझकर ही थोड़ा-सा परिहास करने की कोशिश की, "गैर-कानूनी पत्नी बनने में कोई अड़चन नहीं होती है।…मगर बात ऐसी नहीं हमारे बीच अब कोई सम्बन्ध नहीं है न होगा—; अतः उसके लिए किसी और की पत्नी बनने में कोई अड़चन नहीं है।"

हाथ की सिगरेट को होंठों में डालकर भी बिजली बाबू कश नहीं लगा सके, वह फिर बुझ गई है। मुंह के पास से हाथ उतारकर बोले, "आपने जो क्या कहा था उस बार, डाइवोर्स…वही हो गया है क्या ?"

अवनी ने सिर हिलाया। "नहीं। हुआ नहीं है। होगा। मैंने कलकत्ता में अपने दोस्त को डिवोर्स का इन्तजाम करने को लिखा है।"

बिजली बाबू के लिए जैसे यह प्रसंग वेदनादायक हो उठा था। थोड़ी देर तक न जाने क्या सोचा, बोले, "मिसिर सा'ब, आपको मैं बहुत कुछ पहचानता हूं, पर इस मामले में मैं आपको पहचान नहीं सका। अपनी पत्नी को आपने प्यार नहीं किया था ?"

"नहीं।"

"आप दोनों का ब्याह सम्बन्ध तय करके कराया गया था ?"

"नहीं, नहीं। सम्बन्ध तय कौन करता, मुझसे किसी का भी सम्बन्ध नहीं था।…मैंने खुद ही उससे ब्याह किया था।"

"पसन्द करके, प्यार करके ?"

"पसन्द करके तो किया ही था !"

"प्यार करके नहीं ?"

"नहीं।"

अवनी गाड़ी को धीमी करता जाने लगा, रास्ते के बीचोंबीच से एक भैंस भागी जा रही है; मात्र डेढ़ेक सौ गज दूर सट्ठा का मोड़ है।

बिजली बाबू जैसे किसी भ्रम में पड़ गए थे। मिसिर सा'ब जो क्या कह रहे हैं ! अभी कहते हैं, पसन्द करके ब्याह किया था, अभी कहते हैं, प्यार करके ब्याह नहीं किया था। पसन्द करते समय क्या प्यार नहीं था ! बिना प्यार के पसन्द ! तो वह क्या था ?

"मिसिर सा'ब,—" बिजली बाबू ने गले का स्वर नीचा करके धीरे धीरे कहा, "आपने शायद कहीं गलती की थी। प्यार के बिना क्या पसन्द होती है !"

अवनी ने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। ललिता उसे क्यों पसन्द आई थी, कहां ललिता में आकर्षण था, विस्तार से यह बताने का आग्रह भी अवनी को नहीं हुआ। हालांकि एक जवाब की भी शायद जरूरत थी। अवनी ने कहा, "हां, मैंने गलती की थी, जवानी की गलती…।"

बिजली बाबू ने कान लगाकर उसकी बात सुनी, हो सकता है, कुछ सोच रहे थे। छाया गहराई और अंधेरा हुआ, सट्ठा का मोड़ पार करके दुर्घटना के

रास्ते पर चली जा रही है, थोड़ी दूर पर—शायद पचास-साठ गज की दूरी पर कोई शव-यात्रा चली जा रही है। 'रामनाम सत्य है'···'रामनाम सत्य है'···की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, वह ध्वनि प्रायः झींगुरों को झीं-झीं की तरह तिरती हुई आ रही है। क्रमशः वह निकट होने लगी, ध्वनि तेज हो रही है; अवनी ने गाड़ी की गति धीमी की, शव-यात्रा और भी नजदीक आ गई है, रास्ते को छोड़ कर मैदान में उतर रही है, 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि गूंज रही है···गाड़ी बगल से होकर हेडलाइट की रोशनी से शव-यात्रा को भिगोकर चली गई। बिजली बाबू ने सिर झुकाकर मृतक के प्रति नमस्कार करके श्रद्धा दिखाई, यह उनकी आदत है। निःश्वास छोड़कर अपने मन से बात करने की तरह से बोले, "एक और गया !"

गाड़ी और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ आई, तो 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि फिर सुनाई पड़ी। लालटेन की रोशनी हिल रही है पीछे; मैदान को पार करके वे लोग नदी की ओर चले जा रहे हैं।

बिजली बाबू ने अबकी बार कहा, "मित्तिर सा'ब, पत्नी तो खैर आपकी पसन्द-नापसन्द की बात थी, लेकिन बेटी ? वह तो भला आपकी पसन्द का मुंह जोहकर दुनिया में नहीं आई थी, किस्मत से मिली थी आपको। आखिर उसे क्यों छोड़ आए ?"

अवनी इस प्रश्न की प्रत्याशा कर रहा था। बिजली बाबू जिस दिन पहली बार कुमकुम की बात जान पाए थे उसी दिन से उनके मन में कहीं जैसे एक प्रबल आपत्ति थी, और दो-चार बार उन्होंने जो प्रकारान्तर से अवनी से शिकायत नहीं की थी, ऐसा नहीं। वे खुद सन्तानहीन हैं, सन्तान के प्रति इस अवहेलना ने जैसे उन्हें बहुत ज्यादा आघात पहुंचाया हो, मर्माहत किया हो।

अवनी बोला, "कुमकुम को उसकी मां ने तब नहीं छोड़ा था।"

"उसे जबरन क्यों नहीं ले आए ?"

बिजली बाबू की हार्दिकता व उष्णता अवनी अनुभव कर पाया; वे जो आवेग-प्रवण हो उठे हैं, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु अवनी कहे तो क्या कहे ! कैसे बिजली बाबू को यह समझाए कि वह कुमकुम को क्यों नहीं ला सका ! बिजली बाबू को समझाने के लिए वह इस प्रसंग को संक्षेप में नहीं बता सकेगा। अवनी को खास कोई इच्छा भी नहीं हुई। अवनी थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर अन्त में बोला, "ऐसा नहीं हो सकता है बिजली बाबू। दिक्कत थी।" कहकर रुका; बाद में फिर बोला, "कुमकुम को लाने की मेरी इच्छा है।···"

बिजली बाबू निहारते रहे। जैसे इन्तजार कर रहे थे।

अवनी कुछ सोच रहा था, सोचते-सोचते बोला, "डिवोर्स के मुकदमे में क्या होगा, मैं नहीं जानता। मतलब कि कोर्ट से किसे बेटी दी जाएगी, कौन जाने। जेनरली मां को ही बेटी दी जाती है।·· यहां अवश्य मेरा एक ऑबजेक्शन है, और रहेगा···। देखूं···क्या होता है !"

बिजली बाबू फिर कुछ नहीं बोले। अवनी का मुंह देखकर उन्हें लगा, हो सकता है, वह अपनी बेटी के बारे में कुछ सोच रहा हो।

देखते-देखते बड़ा अंधेरा होने को आया। पतला कोहरा धुएं की नाईं हिल रहा है, गाड़ी की रोशनी में कभी-कभी वह झींसी-सा दीख रहा था; घास के मैदान में

महक उठी है, तारे खिले हैं आकाश में, हवा बड़ी सुस्त हुई है। इस स्तब्धता में जैसे बहुत दूर की हवा 'रामनाम सत्य है' का गुंजन लाई।

अवनी ने गाड़ी रोककर एक सिगरेट सुलगाई। बिजली बाबू ने भी नरम सिगरेट ली अवनी की।

फिर से गाड़ी ने चलना शुरू किया, तो बिजली बाबू ने आगा-पीछा करते हुए कहा, "मिस्तिर सा'ब, मेरा मन एक बात कहता है। कहूं?"

अवनी ने कश लगा लिया और सिगरेट को बाएं हाथ की उंगलियों में रखा। बिजली बाबू इस बार क्या कह सकते हैं, अवनी जैसे इसका अन्दाजा लगा पा रहा था। हैमन्ती की बात कहेंगे क्या! बिजली बाबू को उसने यह प्रसंग उठाने नहीं दिया, उसे डर लगा, सोचे वे क्या कहेंगे, क्या पूछेंगे, कौन जाने!

अवनी बोला, "गुरेश-महाराज के आश्रम में नया डॉक्टर आ रहा है, आपको पता है क्या?"

"नया डॉक्टर!" बिजली बाबू ठगे-से रह गए।

"हैमन्ती चली जा रही हैं—" अवनी ने कहा। बिजली बाबू को अब तक उसने यह बात नहीं बताई थी।

बिजली बाबू अचरज में नहीं पड़े। बोले, "वे जो नहीं रहेंगी, यह तो मैंने समझा था, मिस्तिर सा'ब। लेकिन नया डॉक्टर आ रहा है, यह मुझे पता नहीं था। कौन आ रहा है?"

"पता नहीं। सुनता था कि नए डॉक्टर की तलाश हो रही है।"

"अच्छा है!" बिजली बाबू बोले, कहकर लम्बा-सा निःश्वास छोड़ा।

निविड़ नीरवता छाई हुई है; गाड़ी चल रही है।

"गगन से मेरी तरह-तरह की गपशप हुआ करती थी—" बिजली बाबू ने थोड़ी देर बाद कहा, "मैंने थोड़ा-सा जाना-सुना है, मिस्तिर सा'ब।···आदमी की मति ही ऐसी होती है। नहीं नहीं, मैं उन्हें दोष नहीं दे रहा हूं। लेकिन यह भी तो कैसा एक प्रकार का प्यार है। हम लोग कहा करते थे प्रणय, आप लोग कहते हैं प्यार। कौन जाने आप लोगों का आजकल का प्यार कैसा है! यह तो उस गाने की तरह है। 'अमृत की गगरी तूने आलस में डुबोई'···"

अवनी के पता नहीं क्या जी में आया, हंसकर कहा, "आप अपने घर में अब एक दिन फेयरवेल का इन्तजाम कीजिए।"

धीरे-धीरे माथा हिलाया बिजली बाबू ने, जैसे समझना चाहा—यह तो सही बात है, वे जाएं, इसके पहले उन्हें तो एक दिन घर लाना ही चाहिए। होंठों में सिगरेट रखकर एक के बाद एक कई कश लगाए; अन्त में सिगरेट हटाई और मृदु हंसकर बोले, "यह तो खैर होगा एक दिन मिस्तिर सा'ब, मगर आप? तो क्या आप भी फेयरवेल दे रहे हैं?"

अवनी मौन रहा; बिजली बाबू की तरफ ताका नहीं, थोड़ी अधिक मात्रा में मनोयोग देकर सामने का रास्ता देखने लगा जैसे। उसके बाद अकारण दो-एक बार हॉर्न बजाया।

बिजली बाबू ने थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की, फिर अन्त में बोले, "आपके स्वभाव में उतना जोर नहीं है, मिस्तिर सा'ब। मर्दों की कलाइयों में जोर होना

चाहिए, मुट्ठी से पकड़िएगा, तो फिर छोड़िएगा नहीं। ढीली मुट्ठी से कुछ नहीं होता है।"

अवनी कुछ नहीं बोला। बिजली बाबू मर्दों की कलाइयों की ही बात जानते हैं, ज्यादा कुछ नहीं जानते। ललिता को पकड़ते समय उसकी कलाइयों में जोर था, मगर क्या हुआ, ललिता को वह रख सका, या कि रखने को जी चाहा! फिर भी, अवनी ने सोचा, उसके चरित्र में बराबर यह चीज है—कमजोरी; वह ऐसा नहीं कर सकता है—वह पकड़कर नहीं रख सकता है; उसकी मुट्ठी—एक ललिता की बारी में थोड़ी-सी सख्त हुई थी—नहीं तो, हरदम ढीली रहती है, कमजोर रहती है। आखिर क्यों?

अन्धाश्रम के अन्दर गाड़ी घुस पड़ी।

हैमन्ती के कमरे के नजदीक गाड़ी रोकी अवनी ने। बोला, "मैं थोड़ी देर बाद जा रहा हूं बिजली बाबू। आप क्या आएंगे या सुरेश-महाराज के पास जाएंगे?"

"आप आइए, मैं जाता हूं," बिजली बाबू बोले; कहकर गाड़ी से उतरने लगे।

अवनी भी उतर पड़ा। बिजली बाबू ने बदन की चादर को झाड़-झूड़कर फिर से करीने से ओढ़ा, ओढ़कर आगे बढ़ गए। अवनी दो क्षण खड़ा रहा, फिर हैमन्ती के कमरे की तरफ पग बढ़ाए।

सामने का मैदान पार करके बरामदे के निकट आया, तो कमरे के अन्दर रोशनी दिखाई पड़ी। दरवाजा खुला हुआ है, परदा लटक रहा है। हैमन्ती कमरे में ही है।

बरामदे के ऊपर आया, तो हैमन्ती दिखाई पड़ी, गाड़ी की आवाज से दरवाजे का परदा हटाए आकर खड़ी हो गई है।

अवनी समीप आकर बोला, "बिजली बाबू आए हुए हैं, सुरेश्वर बाबू को देखने गये।"

हैमन्ती ने परदा हटा लिया, अवनी ने कमरे में कदम बढ़ाया।

हैमन्ती कमरे में बैठे-बैठे क्या कर रही थी, कुछ समझ में नहीं आता है। रेडियो बन्द है; पोथी-किताबें भी कहीं खुली नहीं हैं; बीच-बीच में ऊन लेकर बुनने बैठती है,—ऊन का गोला है, पर बुनने की सलाई तो कहीं दिखाई नहीं पड़ रही थी। बिस्तर साफ-सुथरा है, कहीं कोई सलवट नहीं है, वह लेटी हुई थी, ऐसा भी तो नहीं लगा।

अवनी बोला, "क्या कर रही थीं आप?" कहकर हैमन्ती के मुंह की तरफ ताका। "कैसे हैं सुरेश्वर बाबू?"

"अच्छा है?"

"बुखार उतरा है?"

"हां; कल ही से अब बुखार नहीं है।"

"खैर, आपकी एक बहुत बड़ी दुश्चिन्ता दूर हुई।"

हैमन्ती ने ताका। अवनी ने क्या उसका परिहास किया? चेहरा देखने से तो ऐसा नहीं लगा कि अवनी ने परिहास करके कुछ कहा है। हैमन्ती बोली, "मुझे कोई खास दुश्चिन्ता नहीं थी।"

हेमन्ती के गले के स्वर में ठीक कठोरता तो नहीं थी, लेकिन कमी एक दमाई थी, जैसे अवनी की बात उसे पसन्द नहीं आई हो। अवनी बैठा। बैठकर हेमन्ती को लक्ष्य किया; कैसी सूखी-सूखी और थकी-सी दीख रही है, मानो असन्तुष्ट हो।

"और क्या खबर है—?" अवनी बोला। तो क्या हेमन्ती एक साधारण-सी बात से असन्तुष्ट हुई? पर खास कुछ सोचकर तो अवनी ने यह नहीं कहा था।

"खबर अच्छी नहीं है," हेमन्ती ने जवाब दिया।

अवनी की समझ में कुछ नहीं आया। "क्यों? ऐसी क्या बात है?"

हेमन्ती ने तुरन्त उसकी बात का जवाब नहीं दिया; बिस्तर के पास जाकर बैठी, बत्ती की ओर निहारती रही कुछेक क्षणों तक, उसके बाद अवनी की ओर ताका। बोली, "यहां फिर एक रोगी आया है, उसकी हालत अच्छी नहीं है।"

अवनी तो विस्मित; न जाने कैसा विमूढ़ हुआ। तो इस आश्रम में फिर वह रोग घुसा क्या!

हेमन्ती ने कहा, "आदमी में एक साधारण सूझ-बूझ होती है, यहां के लोगों में वह नहीं।"

"वह वही एपिडेमिक है?"

"हां।"

"किसे हुआ?"

"यहां का कोई नहीं है! खान-घर में हरीकिशन नाम का एक आदमी है, वह उसका भाई है। नदी के उस पार रहता था। उसे ले आया गया है।"

"यहां?"

"तो और कहां जाएगा! यही तो कूड़ाखाना है।"

"कब लाया गया है उसे यहां?" कहते ही अवनी को याद हो आया, उस दिन वह जब सुरेश्वर से मिलने गया था, तो बाहर के टूटे जमघट में शायद इसी रोगी को लाने-लिवाने की बात हो रही थी। शिवनन्दन जी सम्भवतः इसीलिए उतने परेशान थे। हो सकता है, उस दिन अवनी जब चला आया था, तो शिवनन्दन जी उसी विषय में कुछ कहने आए थे। अवनी ने कहा, "उस दिन मैं जब सुरेश्वर बाबू को देखने गया था, तो शायद एक ऐसी बातचीत चल रही थी।"

माथा हिलाया हेमन्ती ने। "दूसरे दिन दिन चढ़ने पर बैलगाड़ी से नदी पार करके उसे लिवा लाया गया था।"

अवनी समझ नहीं पाया कि वह क्या कहे।

हेमन्ती ने विरक्त मन से कहा, "इन लोगों के दिमाग में जो क्या है, मुझे तो सोचते नहीं बनता। सूझ-बूझ होने पर कोई इस तरह से वैसे रोगी को यहां लाता है!"

"आखिर एक ऐसा रिस्क उन्होंने क्यों लिया?"

"दया दिखाने के लिए।"

"मगर यहां··· ! यह तो जेनरल अस्पताल नहीं है···"

"यह तो कुछ भी नहीं है।"

"तो आपने कुछ नहीं कहा?"

"मेरे कहने के भरोसे वे लोग नहीं थे।" हेमन्ती क्रोध और विरक्ति से

असहिष्णु हो उठी थी। मनुष्य को साध्य-असाध्य का ज्ञान होना जरूरी है, सुरेश्वर को यह ज्ञान नहीं है। वह यह नहीं जानता है कि उसकी क्षमता कितनी है और अक्षमता कितनी अधिक है।

अवनी बोला, "इस रोग को फिर से आप लोग आश्रम में फैलाएंगे।"

"मैं नहीं वे लोग फैलाएंगे।"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आखिर इससे क्या फायदा हुआ ?"

"कुछ नहीं।···दया से पसीज कर उन्होंने अपना महत्व दिखाया।"

"बल्कि टाउन ले जाकर उसे सरकारी अस्पताल में भर्ती कर दे सकते थे।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। आदमी यदि निर्बोध हो, कुछ न समझे, तो उसे कौन समझाये ! यहां जिसकी चिकित्सा नहीं होगी, यहां जिसकी चिकित्सा होना सम्भव नहीं, उसे यहां रखने से क्या लाभ ? वैसे भी जो मरता उसे यहां लाकर भी तो तुम लोग मार ही रहे हो। आंखों के सामने मनोहर मरा, बूढ़ा तिलवा मरा—यह तुम लोगों ने नहीं देखा ? तो ? 'पर गिरजा तो बचा है, हेम···' हां, वह बचा है, लेकिन सो नसीब के जोर से, हैमन्ती के हाथ अच्छा होने की वजह से नहीं। सुरेश्वर यह सब समझ कर भी नहीं समझेगा। 'क्या करूं हेम, वे लोग बहुत कह-सुन रहे हैं।'

सुरेश्वर की यह हठधर्मी अवनी को भी पसन्द नहीं आ रही थी। कैसे एक व्यक्ति ऐसे निर्बोध की तरह काम करता है, कौन जाने ! नितान्त दायित्वहीन नहीं होता, तो इस तरह से मरणासन्न, संक्रामक रोगी को नहीं लाता। हैमन्ती के रुष्ट उठने का संगत कारण है: वह आंख की डॉक्टर है, यह अस्पताल भी तो आंख देखने का है, यहां चिकित्सा की व्यवस्था कुछ नहीं है, फिर भी क्यों तुम रोगी लाये ?

असन्तुष्ट होकर अवनी ने कहा, "वे अपनी मर्जी से काम किया करते हैं।··· उचित-अनुचित का बोध भी शायद उन्हें सब समय नहीं रहता है।"

हैमन्ती बोली, "दया दिखाना बहुत आसान है; उसने सिर्फ दया दिखाना सीखा है—दया लेना नहीं।···मैंने हजारों बार कहा है, यह सब मैं नहीं कर सकती मैं यह सब समझती नहीं, मैं जो नहीं जानती उसकी जिम्मेवारी मैं अपने सिर नहीं ले सकूंगी। फिर भी···। आदमी के जीवन को लेकर यह खिलवाड़ मुझे अच्छा नहीं लगता।"

अवनी निहारता रहा। हैमन्ती की आंखों में एक ऐसी असहायता और अक्षमता उभर उठी थी कि लग रहा था, वह मानो किसी अपराध से अपराधी होने के भय से शंकित बनी हुई है। सम्भवतः यह दायित्व उसके लिए दुःसह भार-सा लग रहा है। अपनी अक्षमता से वह पीड़ित है, परेशान है।

अवनी ने कुछ सोचा, "उस आदमी की हालत अभी कैसी है ?"

"अच्छी नहीं है।"

"उसकी उम्र कितनी होगी ?"

"यही कोई पच्चीसेक साल।"

"किसी तरह से उसे टाउन के अस्पताल में नहीं ले जाया जा सकता था ?"

"उसे वहां ले जाया जा सकता, तो अच्छा होता। पर चालीस मील का लम्बा

तकलीफ-देह सफ़र है। भला कौन ले जाएगा ?"

"कल सवेरे मैं एक इन्तजाम कर सकता हूं।"

"क्या इन्तजाम करेंगे आप ? आप उसे पहुंचा आयेंगे ?"

अवनी ने अन्यमनस्क भाव से कहा, "ऐसा ही सोचता हूं।"

हैमन्ती कई पलों तक निहारती रही, बाद में बोली, "नहीं।
है, यह जिम्मेदारी उसकी है। रास्ते में रोगी के मरने पर दोष
आपको।"

अवनी ने सोचा, कहा, "यहां इस तरह से रोगी पड़ा
बचेगा ! इसके अलावा मुझे डर लग रहा है, अगर आपको कुछ
बीमारी यहां भी तो फैल जा सकती है।"

अवनी के गले के स्वर में ऐसा कुछ था जिसने हैमन्ती को
दुर्बल व अभिभूत किया। सुरेश्वर ने किसी दिन यह चिन्ता नह
यह नहीं सोचा था कि हैमन्ती भी उसकी चपेट में आ सकती है।
ढेर-सारी अच्छी-अच्छी बातें कही थीं, पर काम में हैमन्ती के जीव
महत्व नहीं दिया था।

अवनी सिगरेट सुलगा रहा था। हैमन्ती ने लाइटर की लौ दे
के धुएं की गंध मिली। वह न जाने कैसी बेहोश-सी थी कुछ देर
तो बोली, "मुझे कुछ नहीं होगा। डॉक्टरों को बीमारी नहीं ह
हंसने की कोशिश की। उसके बाद बत्ती की ओर निहारा, नि
कुछ देख रही हो; अन्त में बोली, "अब तो थोड़े ही दिन रहना
करने से लाभ नहीं।..."

"मगर इस तरह से रहने से भी तो आपको शान्ति नहीं मि

"नहीं। लेकिन...दो-चार दिनों के अन्दर ही मेरी जि
जाएगी।"

अवनी कुछ समझ नहीं पाया, निहारता रहा।

हैमन्ती बोली, "क्या जो कहते हैं—मेडिकल रिलीफ—वही
एक डॉक्टर, नर्स, दवा-दारू। आप लोगों के सुरेश-महाराज ने य
अस्पताल खोलने के लिए कमरे दिए हैं। वे लोग आएंगे, रहें
मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं रहेगी।"

अवनी यह विश्वास नहीं कर पा रहा था, "यह अफवाह है

हैमन्ती ने सिर हिलाया, "नहीं, यह अफवाह नहीं है।...
हो टाउन से सरकारी लोग-बाग आए थे गाड़ी से। बातचीत के
तक थी।"

अवनी को हठात् उस स्टेशन वैगन की बात याद हो आई,
में जिसे उसने देखा था। अवनी बोला, "आते समय मैंने एक सरक
देखा था। तो वे लोग उसी गाड़ी से आए थे क्या ?"

हैमन्ती ने गरदन हिलाई। वे लोग उसी गाड़ी से आए थे।

दोनों ही उसके बाद मौन हो गए।

"अभी कुछ दिनों के लिए तो हो ही रहा है।···पहले जान, बाद में आंख···।" हैमन्ती म्लान हंसी हंसी।

सिगरेट का टोटा फेंक दे, इसके पहले अवनी ने एक लम्बा-सा कश लगा लिया; बोला, "तो अब शायद आप वापस जा सकती हैं।"

"हां, अब मैं वापस जा सकती हूं।"

"तो कब जा रही हैं आप ?"

"इस्स,···आप तो मुझे भगाने के लिए हाथ धोकर पीछे पड़े हुए हैं।"

अवनी ने न जाने क्या कहना चाहा, तो भी कह नहीं सका। और कैसी शर-मिदगी और जड़ता महसूस की। अन्त में संभाल लिया और हंसकर बोला, "नहीं, आप कब जा रही हैं, यह जानना जरूरी है, हमें आपको एक फेयरवेल देना है।"

हैमन्ती हंसी नहीं, अन्यमनस्क भाव से निहारती रही।

## उनतीस

कई दिनों के अन्दर वे लोग आ गए : दो कमसिन डॉक्टर, दो मेल-नर्स; दो सिस्टर, एक अधेड़ किस्म का कम्पाउंडर, एक भंगी। और आई थी पैंकिंग बॉक्स की पेटियों में दवा-दारू; साथ ही कई टीन फिनायल, ब्लिचिंग पावडर, कई नई लालटेनें, एक पैट्रोमेक्स, मैदान में तानने के लिए तम्बुएं—यही सब। सदर से हाकिम आए थे, साथ में था शायद सिविल सर्जन; देख-रेख कर गए। एक सरकारी वैन भी जरूरी चीज-वस्त और दवा-दारू लेकर चक्कर लगा गया।

सब्जी-बाग की ओर थोड़ी-सी खुली जगह में दो बड़े-बड़े खपरैल कमरे थे; एक समय वहां बेंत-बेंत रहता था। वहां बेंत और रस्सी का काम-काज करते थे अन्धे, पर अभी बेंत का काम होता है दूसरे कमरे में, दोनों कमरों को साफ-सुथरा करवाकर, किसी-किसी जगह खपड़े बदलवाकर वहां अस्पताल बनवाया गया; दसेक मूंज की खटिया बिछाई गई, नजदीक में और कोई कमरा नहीं था; पुराने तांत-घर के एक ओर डिसपेंसरी बनाई गई। पहले जिस दालान में आंख के रोगी दो-चार दिन रहते थे वह दालान सूना पड़ा हुआ था अब; डॉक्टरों, मेल नर्सों और कम्पाउंडर के रहने की वहां जगह बनाई गई। दोनों सिस्टरों में से एक आई है मिशनरी से, वह आदिवासी-वादिवासी होगी, काली-सी ठिगने डील-डौल वाली है, दूसरी बिहारी लड़की है—नाम है पारवती, उम्र ज्यादा-से-ज्यादा पच्चीसेक वर्ष होगी, लम्बी छरहरी तांबई शक्ल-सूरत, चेहरे पर चेचक के दाग हैं। दोनों सिस्टरों को हैमन्ती की बगल में रहने की जगह दी गई, गगन जिस कमरे में था वह कमरा छोड़ दिया गया था।

अन्धाश्रम में आंख का रोगी अब नहीं आ रहा था। आंख का अस्पताल बन्द कर दिया गया है फिलहाल। युगल बाबू ने अस्पताल के ऑफिस में ताला लगाकर दूसरे काम में मन दिया है। तांत-घर में अन्धों का काम-धाम बहुत ही थोड़ा है; बेंत की बुनाई-वुनाई और रस्सी का काम अब नहीं हो रहा है।

गुरुडिया के अन्धाश्रम का जीवन जो अब स्वाभाविक ढंग से नहीं चल रहा

है, यह समझना कष्टकर नहीं था। सुबह और दोपहर में बसें भी अब नियमित नहीं आती हैं, यात्री नहीं हैं, रोगी भी नहीं आते हैं; जामुन के पेड़ के नीचे वाली जगह में भीड़ नहीं लगती दोपहर में, अन्धाश्रम जैसे परित्यक्त होकर पड़ा हुआ हो।

नया अस्पताल खुलने के साथ-ही-साथ बैलगाड़ी पर चढ़ाकर शिवनन्दन जी ने दो मरणासन्न रोगियों को लाकर हाजिर किया किसी गाँव-गंवई से। दूसरे दिन एक और आया। तांत-घर के हरिकिशन का भाई इस बीच चल बसा। बहुत कोशिश से भी बेचारे को बचाया नहीं जा सका। एकदम आधी दुपहरी में जब हवा और धूल के घुलने-मिलने से एक अंधड़-सा छा गया था—देहात के लोग-बाग हरिकिशन के भाई की लाश को कन्धे पर लिए जामुन के पेड़ के नीचे वाली जगह से होकर 'रामनाम सत्य है' करते-करते चले गए।

आश्रम के अन्दर कैसी एक सनसनी-सी जमा होती जा रही थी। मनोहर और बूढ़े तिलवा के देहान्त के बाद एक ऐसी सनसनी छाई थी, उसके बाद वह दूर हो रही थी धीरे-धीरे, अभी फिर वैसी ही सनसनी छाई। किसी-किसी की आंखों में आतंक है तो कोई कैसा संत्रस्त है। एक समय यह जगह आश्रम-सी ही लगती थी, एकान्त, निरुद्वेग, शान्त, सहज एक जीवन था; पर अब लगता है, यह सचमुच ही कोई अस्पताल है: भय है, संत्रास है, उद्वेग है, दुश्चिन्ता है। सब्जी-बाग की गन्ध के बदले फिनायल और ब्लिचिंग पाउडर की तेज गन्ध है; हवा में रह-रहकर ब्लिचिंग पावडर का सफेद चूरा उड़ रहा था।

●

उस दिन अबेर की नींद में सो गई थी हैमन्ती, नींद टूटी, तो आंखें खोलकर देखा, तीसरा पहर ढलता जा रहा है, कमरे के अन्दर रोशनी कम हो गई है और छाया ने जमा होना शुरू कर दिया है। बाहर मालिनी के गले की आवाज सुनाई पड़ रही थी। अबेर में सोने की वजह से आलस्य आ गया था, लेटे-लेटे कई बार जंभाई ली हैमन्ती ने, आंखें निंदासी हैं, कुछ छलछलाई-सी, जैसे थोड़ा-सा पानी भर आया हो। बिस्तर पर उठकर बैठने के पहले हैमन्ती तकिए पर फैले अपने बालों के गुच्छों को ढीली मुट्ठी से गले के पास लाई और दो पल लेटी रही। उसने सपने में गगन को देखा था; गगन उसे पुकार रहा था—ऐ, ऐ, ऐ दीदी—और ट्रेन के डिब्बे की खिड़की से मुंह निकाले हुए थी हैमन्ती, प्लेटफार्म पर माल असबाब उतारा जा रहा था, कुली चढ़ रहे थे। हैमन्ती उठने की सोच रही थी, हालांकि भीड़ में उठ नहीं पा रही थी।

सपने की बात याद करते-करते हैमन्ती उठकर बैठी। पैरों के कपड़े सहेजकर उतरी, पानी पिया। पानी पीकर खिड़की के पास आकर खड़ी हुई, तो नजर आया, धूप प्रायः पेड़ों की फुनगियों पर जाकर चढ़ गई है; सूखी और थोड़ी-सी गरम हवा बह रही है, गत कल अथवा आज ही शायद फागुन पड़ा है, हवा की सरसराहट गूंज रही थी बीच-बीच में, सामने वाले कनेर के झुरमुट की पत्तियां धूल से लाल हो गई हैं, खिड़की के परदे में एक सूखा बरगद का पत्ता आकर अटका हुआ है।

खिड़की के सामने थोड़ी देर तक खड़ी होकर, आलस्य में डूब कर उंगलियों से जैसे बालों की लटें छुड़ाई हैमन्ती ने, फिर एक बार और जंभाई ली। सपने की

बात फिर याद हो आई। और कई दिन बाकी हैं, उसके बाद सचमुच हावड़ा स्टेशन पर गगन को देख पाएगी हैमन्ती।

दरवाजा खोलकर बाहर आई, तो दिखाई पड़ा, बरामदे के नीचे मैदान में खड़ी होकर मालिनी और पारवती गप्पें लड़ा रही हैं। पारवती हंस रही थी, मालिनी गाल पर हाथ रखे न जाने क्या कह रही है। हैमन्ती गुसलखाने चली गई।

गुसलखाने से लौटते समय भी हैमन्ती ने देखा, वे लोग गपशप कर रही हैं। उसकी तरफ मालिनी की नजर पड़ी थी। ठीक से कुछ समझ में नहीं आता है, फिर भी आज कुछ दिनों से ही जैसे हैमन्ती को लग रहा है, मालिनी अब पहले की तरह 'हेम दीदी, हेम दीदी' नहीं करती है। पहले मालिनी जैसे बहुत अनुगत थी हैमन्ती की; पर अब उतनी अनुगत नहीं है। हो सकता है, मालिनी ने सोच-कर देखा हो कि जो आदमी चला जाएगा उसकी तरफ उतना झुकने से कोई फायदा नहीं। या मालिनी यह अच्छी तरह समझ पाई है कि उसके भैया से हेम दीदी की अनबन होने की वजह से हेम दीदी चली जा रही हैं; मन-ही-मन में हो सकता है उसके चलते थोड़ा-सा गुस्सा, थोड़ा-सा असन्तोष हो।

कमरे में आते समय कुछ सोचकर हैमन्ती रुकी। मालिनी को पुकारा।

मालिनी पारवती से अपनी बात खत्म करके पास आकर खड़ी हो गई।

हैमन्ती बोली, "आज अब चाय-वाय नहीं पिलाओगी क्या ?"

"आप सो रही थीं, इसलिए मैंने नहीं पुकारा"—मालिनी बोली, "मैं चाय बनाकर लाती हूं।"

"मैं सो गई थी—" हैमन्ती ने कहा, "आखिर तुम पुकार तो सकती थीं।"

मालिनी ने कोई जवाब नहीं दिया। चाय बनाकर लाने गई। पारवती तब भी मैदान में खड़ी थी।

कमरे में आई हैमन्ती। आंख-मुंह में ठंडे पानी का स्पर्श अच्छा लग रहा था, कई दिनों के अन्दर ही जैसे मौसम कैसा बदल गया हो, एक सूखापन आया है। इस तरह से चलने पर देखते-देखते गरमी पड़ जाएगी। हो सकता है, गरमी पड़ जाने पर यह बीमारी भी न रहे। या तब तक बीमारी चली जाएगी।

मुंह पोंछकर हैमन्ती ने बाल संवारने के लिए कंघी हाथ में ली और खिड़की के सामने जाकर खड़ी हो गई। हवा से पेड़ों के पत्ते अनवरत टप-टप झड़ते जा रहे हैं; अभी तो पेड़-पौधे बड़े वीरान-से दीखते हैं, दिन चढ़ गया है, मैदान की घास कहीं-कहीं पीली होती जा रही है।

खिड़की से होकर बाहर ताकती हुई हैमन्ती अन्यमनस्क भाव से बाल बाहने लगी। धूप तेजी से भाग रही है, एकदम पेड़ों की फुनगियों पर धूप की एक पतली लहर अभी भी है, धरती पर अब धूप दिखाई नहीं पड़ रही है। आज कई दिनों से हैमन्ती बिलकुल चुपचाप रहती है, कोई काम-धाम नहीं है, सारा दिन और रात हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती है। कैसा आलस्य महसूस हो रहा है, सुस्ती छाती जा रही है, बीच-बीच में बहुत बुरा लगता है। कामों के बीच अपनी चीज-वस्त को जरा-जुरा करके करीने से सहेज लेती है। ऐसी कोई चीज-वस्त नहीं है कि सहेजते-सहेजते समय बीत जाए, फिर भी इत्मीनान से निढाल होकर जितना-सा समय बिताया जा सके, कुछ इस तरह से वह अपनी चीज-वस्त सहेज रही है।

अभी जैसी स्थिति है उसमें हैमन्ती चाहे, तो कल-परसों भी चली जा सकती
करने को कुछ नहीं है, रहना भी अर्थहीन है, अकारण है। फिर भी जो पां
दिन उसे रहना पड रहा है, ऐसा वह जैसे नितान्त संकोचवश कर रही हो
को चिट्ठी लिख दी गई थी पहले ही, उसी के मुताबिक वह जा रही है।
सिवा, यहां ऐसी स्थिति में वे सब आए और फौरन हैमन्ती चली गई—य
ही आंखों में खटकनेवाला होता, लगता, उसने भागकर जान बचाई।'''उन
ने जैसे यह सोच लिया हो कि इन मुसीबत के दिनों मे हैमन्ती भी उन
बहुत बड़ी सहारा है। थोड़ी-सी मदद, किसी न किसी प्रकार की मदद हैम
मिलेगी। कुछ भी कहा नही जा सकता है, यदि अस्पताल के दोनो ही
रोगियों से भर जाएं, या और भी एक कमरा रोगियो के वास्ते जरूरी हो
तो उतने रोगियों को संभालने में हैमन्ती भी थोड़ी-सी मदद कर सकेगी।
बातें उन्ही लोगों ने कही हैं।'''भद्रता और संकोचवश हैमन्ती ने उन
यह स्पष्ट करके नही कहा है कि उसका इस सबसे कोई लेना-देना नहीं
कलकत्ता चली जा रही है; अवश्य अस्पष्ट रूप से उसने यह बताया
विषय में खुद उसे बताने को कुछ नहीं है, सुरेश्वर ही बताएगा, यह जि
उसकी है।

मालिनी चाय लेकर आई। तब तक हैमन्ती ने ढीला जूड़ा बांध लिया
मालिनी बोली, "आज वे आएंगे क्या, हेम दीदी ?"
वे मतलब कि अवनी, हैमन्ती समझ पाई; बोली, "क्यो ?"
"नही – वे आते तो'''" मालिनी ने शायद झिझक अथवा शर्म से
आना-कानी की। अन्त मे बोली, "घर मे मां बड़ी फिकर करती है, हेम
यहां तो बीमारी-बीमारी है। अगर वे आएं, तो जरा उनसे कह दीजिएग
अच्छी हूं। मेरे भाई से वे आफिस मे यह कह देंगे, तो मा फिकर नही करेग
हैमन्ती ने गरदन हिलाई, बोली, "अगर वे आए, तो मैं उनसे कह दूंग
मालिनी चली गई।

चाय पीते-पीते हैमन्ती ने अवनी की बात सोची। अवनी क्या आज आ
उस दिन के बाद वह फिर नही आया है। कहा था, कोई ऊपर वाला
आएगा। साथ मे और भी सारे लोग रहेंगे—थोड़ा-सा घूमना पड़ेगा। आ
भग छः-सात दिन हो गए, अवनी का काम जो खत्म नहीं हुआ होगा,
नहीं लगता है। फिर भी वह क्यो नही आ रहा है, कौन जाने ' कही गया
कि किसी काम से अटक गया है, कुछ समझ मे नही आ रहा है। चाय पी
अन्यमनस्क भाव से हैमन्ती अवनी की बात सोच रही थी, उसके बाद कुछ
हो आने की वजह से हंस पड़ी। उसके आने पर यह कहना होगा: 'क्या, अ
फेयरवेल का इन्तजाम कर रहे थे। क्या ? क्या दे-दा रहे हैं, बताइए, पह
लूं।' इस हल्की कल्पना ने कुछेक क्षणो तक मन को बड़ा कौतुक-भरा कि
बाद मे वह न जाने कैसी विषण्ण होती जाने लगी।

उसे अच्छा नहीं लग रहा था। कमरे के अन्दर छाया का रंग पेंसिल
की तरह काला व गहरा हो जाए, इसके पहले ही हैमन्ती बाहर चली आई,
पर एक पतली चादर है, दोपहर वाली सफेद साड़ी ही उसने पहन रखी है

जा रहे हैं, अल्हड़ दखिना वह रही है, कुएं से पानी निकलने पर कूड़ चलने की आवाज सुनाई पड़ती है, इधर कुछेक गेंदे के फूल हैं, चहचहाहट हो रही है, नीम के पेड़ की तरफ गौरेये का एक झुंड उड़ गया।

चलते-चलते वह लगभग नीम के पेड़ के नीचे वाली जगह तक चली गई, पहले इस समय अंधेरा हो जाया करता था, ओस पड़ती थी, पर अभी ओस नहीं पड़ रही है, न ठंड है, वाट-घाट भी नजर आ रहा है। मिशनरी से आई हुई वह सिस्टर और पारवती दिखाई पड़ीं, नदी की तरफ वाले रास्ते से होकर चलते-चलते वापस आ रही हैं।

हैमन्ती विपरीत दिशा में—लट्ठा की तरफ वाले रास्ते को पकड़कर चलने लगी। आकाश में कहीं अब नीलापन नहीं है, पश्चिम में थोड़ी लाली-सी है अभी भी, सूरज डूब जाने के बाद जैसे बादलों पर छाई हुई हो बचखुची रोशनी वह इसी दम पुंछ जाएगी। इस दृश्य ने कैसी वेदना दी। वह विषण्णता जैसे दूर नहीं हो रही हो। बीच-बीच में लग रहा है, यहां से चले जाते समय हैमन्ती न जाने क्या छोड़े जा रही है। कुछ खयाल किए बिना हैमन्ती चलने लगी, चलते-चलते एका-एक गुनगुनाकर न जाने क्या गाने की कोशिश की, हालांकि गा नहीं सकी।

पर ऐसा क्यों लगता है! वह तो वास्तव में कुछ छोड़कर नहीं जा रही है। विफल, हताश और ऊबकर ही तो वह चली जा रही है—, फिर भी ऐसा क्यों लग रहा है।

रोशनी खत्म हुई तो अंधेरा हो जाते समय हैमन्ती लौट रही थी, तब उसे गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी, दूर पर। रोशनी पड़ रही थी रास्ते पर।

अवनी आ रहा है। अवनी आ रहा है, इस कल्पना ने हठात् जैसे इतनी देर की निराशा को दूर किया। बीच रास्ते से हट गई हैमन्ती, और सहसा उसे खयाल आया कि वह यदि और भी थोड़ा-सा मैदान की ओर हट जाए, तो अवनी उसे नहीं देख पाएगा। गाड़ी की रोशनी के बाहर छिपने की खातिर मानो बच्चों की तरह हैमन्ती मैदान में उतरी, और मैदान में उतरकर जल्दी-जल्दी हट जाने लगी।

गाड़ी नजदीक आई, बिलकुल नजदीक। चली ही जा रही थी जैसे, जाते-जाते रुक गई। दिखाई पड़ गया है अवनी को।

हैमन्ती हठात् कैसी लज्जित हुई। अपने बचपने के चलते संकुचित होकर धीरे-धीरे निकट आई।

"आप उधर कहां जा रही थीं?" अवनी ने पूछा।

जवाब देने का कोई खास आग्रह नहीं दिखाया हैमन्ती ने; गाड़ी से सटकर खड़ी हो गई।

"आइए—" अवनी ने गाड़ी पर चढ़ने को कहा।

थोड़ी दूर जाना था, पैदल भी जा सकती थी हैमन्ती; फिर भी गाड़ी पर चढ़ी।

"आप मैदान में क्यों उतर गई थीं?" अवनी ने फिर पूछा।

"यों ही; मैदान में जरा टहल रही थी।"

"मगर आपने तो नहीं न बुलाया मुझे?" अवनी ने कहा।

हैमन्ती ने सोच-विचारकर कहा, "भला बुलाने की क्या बात थी; मैं भी तो लौट रही थी।…"

गाड़ी ने फिर से चलना शुरू किया।

"ये कई दिन आप क्या मेरे फेयरवेल का इन्तजाम कर रहे थे?" हैमन्ती ने कहा, गले में थोड़ा-सा परिहास है, थोड़ी-सी गंभीरता है।

अवनी पहले-पहल समझ नहीं पाया था, बाद में समझ पाया, तो हंसा। बोला, "नहीं, अभी भी नहीं किया है।···सोचता हूं यह बिजली बाबू के सिर थोप दूं।"

"अपने सिर का बोझ पराए के सिर डालते हैं। बड़े चालाक आदमी हैं तो आप।" हैमन्ती बोली, कहकर हंसी। अवनी भी हंसने लगा।

देखते-देखते अन्धाश्रम के फाटक के पास गाड़ी आ धमकी। हैमन्ती बोली, "आपका वह ऊपर वाला आया था?"

"आया था।"

"बहुत व्यस्त थे काम-काज में आप?"

"नहीं तो; ऊपर वाला तो एक ही दिन रहकर भागा।···एपिडेमिक का डर दिखाकर भगाया मैंने।" अवनी हंसा।

"तो फिर कहां रहे ये कई दिन?"

"मेरा एक दोस्त आया था," अवनी बोला, "कलकत्ता से।"

हैमन्ती ने ताका, पर कुछ बोली नहीं।

गाड़ी को हैमन्ती के कमरे के पास रोका अवनी ने; गाड़ी रोककर स्टार्टर बन्द किया। बत्ती बुझाई।

हैमन्ती उतरी, अवनी भी उतर पड़ा।

"यहां नया अस्पताल खुला है, जानते हैं?" हैमन्ती बोली।

"नया अस्पताल!···ओ, वही···जिसके बारे में आप कह रही थीं।···कहां?"

हैमन्ती ने उंगली से सब्जी के बाग की ओर दिखाया। यहां से कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। पैट्रोमेक्स आज उधर जल रहा है।

"डॉक्टर-वॉक्टर आया है?"

"हां; डॉक्टर हैं, नर्स हैं, सिस्टर हैं, दवा-दारू है···। इन्तजाम अच्छा ही हुआ है।"

"और रोगी?"

"आ रहा है। अभी चार रोगी हैं। दस बेड हैं।"

"अच्छा, उसका क्या हुआ? वो जो छोकरा आया हुआ था?"

"वो हरिकिशन का भाई!···मर गया बेचारा।"

अवनी ने मुंह फेरकर ताका; आहत व व्यथित हुआ। चुप्पी छायी रही। वह हैमन्ती का बगलगीर होकर बरामदे में आया। मालिनी का गला सुनाई पड़ रहा है, उसके कमरे में कोई है, बात कर रहा है जोर-जोर से।

हैमन्ती ने अपने कमरे के सामने आकर दरवाजे की कुंडी खोली। मालिनी कमरे में बत्ती जलाकर रख गई है। बत्ती की लौ मद्धिम है, थोड़ा धुंधलका-सा छाया हुआ है कमरे में; हैमन्ती आगे बढ़कर आई और बत्ती की लौ बढ़ा दी, खिड़कियां खुली हुई हैं, हवा आ रही थी।

अवनी बोला, "सुना है कि हमारा भी एक कुली मर गया। कुलियों के कैम्प

में था, तबियत खराब होने की वजह से घर गया हुआ था, वहीं मर गया।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली; कहने को कुछ है नहीं। अवनी खड़ा है।

थोड़ी देर बाद हैमन्ती बोली, "मुझे कैसा लग रहा है, यह बीमारी अब धीरे-धीरे जाएगी।"

"जाएगी!"

"अब तो जाएगी ही! दो-एक महीने होने चले।···इतने दिन किसी ने परवाह नहीं की, वरना इतनी फैलती नहीं। अब चेत हुआ है। हाय राम, आप खड़े रहे जो, बैठिए···" कहकर जो बात अधूरी रह गई थी उसे फिर से छेड़ा, "इतने दिन बाद बड़ी लगन लगी है। इसके अलावा, यह बीमारी बिलकुल अटपटी है, अजीब है, वाइरस से ही हो रही है शायद। शुरू-शुरू में पकड़ में आने पर मरने का डर नहीं है। कम्प्लिकेशन हो जाने पर ही मुश्किल होती है।"

अवनी बैठा। बोला, "तो क्या आप अपनी राय बदल रही हैं?"

"नहीं तो। क्यों?"

"आपकी बात सुनकर ऐसा लग रहा है," अवनी हंसा, "एकाएक इतना अभय दे रही हैं—"

"नहीं, नहीं।" हैमन्ती ने माथा हिलाया। "मैं तो वैसे भी जा रही हूं।"

अवनी अबकी बार कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही। हैमन्ती बिस्तर के एक ओर बैठी हुई है।

अन्त में अवनी बोला, "सुरेश्वर अभी क्या कर रहे हैं? उनका कार्य-कलाप फिलहाल क्या है?"

"अभी तो वे बहुत व्यस्त हैं। बस, यहां नए अस्पताल की व्यवस्था कर रहे हैं···रहने और रुपये का प्रबन्ध कर रहे हैं। इसके अलावा सुनती हूं, शिवनन्दन जी को इधर-उधर भेज रहे हैं, जैसे गांव-देहात में किसी को बीमारी हो, तो वह फौरन यहां चला आए।"

अवनी ने सुना। सुनते-सुनते जेब से सिगरेट का पैकेट निकला। "उस दिन मैं आपके यहां से उनके पास गया था, बिजली बाबू थे, मेरा मिजाज न जाने क्यों अच्छा नहीं था, थोड़ी-सी कहा-सुनी हो गई!···"

हैमन्ती ने अवनी का आंख-मुंह लक्ष्य किया। लगा, अवनी ने उस दिन की कोई नाराजगी अथवा तिक्तता आज अब मन में नहीं रखी है।

"किस बात को लेकर कहा-सुनी हुई?" हैमन्ती ने जानना चाहा।

अवनी ने उस बात का जवाब नहीं दिया। बोला, "उन्होंने दुनिया में कुछ देखा नहीं है। बिलकुल अन्धे हैं।"

हैमन्ती कुछ बोली नहीं, बल्कि कौतुक-भरी आंखों से निहारती रही, मानो दुनिया के बारे में अवनी की कितनी अभिज्ञता है, यह जानने का कौतूहल वह अनुभव कर रही थी।

अवनी ने सिगरेट सुलगायी; थोड़ा-सा मुस्कराया और बोला, "वे शायद मन-ही-मन नाराज ही हुए हैं। मुझे बाद में जरा-सी लाज ही आ रही थी।"

"उस एक तुच्छ बात से ही वह नाराज होगा···"

"नहीं, एक नहीं; और भी न जाने क्या मैंने कहा था।" कहकर अवनी जैसे अपने उस दिन के व्यवहार पर लज्जित होकर हंसा। उसके बाद कहा, "मुझे एक

बार सुरेश-महाराज के पास आना होगा···"

"माफी मांगने—?" हैमन्ती ने परिहास करके कहा।

"नहीं—" अवनी सरल मन से हंसा, "माफी मांगने नहीं। उन्हें कुछ रुपये देने हैं···"

"रुपए?" हैमन्ती विस्मित हुई।

"मुझे लगता है, उन्हें कुछ रुपए की कमी हो गई है; उन्होंने बिजली बाबू को बताया था। मैं रुपये लाया हूं।"

"आप क्या आश्रम को दान दे रहे हैं?"

"मैं! नहीं, मैं दान क्यों दूंगा? मुझे रुपया कहां है! ये रुपये तो बिजली बाबू ने दिए हैं।···वे खुद आकर देते, तो अच्छा होता। पर वे आ नहीं सके।"

"ओ!" हैमन्ती ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया।

अवनी ने सिगरेट की राख झाड़नी चाही, तो राख उसकी पतलून पर गिरी, उसने उसे झाड़ लिया। बोला, "एक बार, इस आश्रम को बनवाते समय सुरेश्वर बाबू ने कुछ चन्दे के लिए मुझसे कहा था, पर मैंने नहीं दिया था।···तब यह सब मुझे पसन्द नहीं आता था।···चन्दे-वन्दे के लिए फिर कभी भी मुझे कुछ नहीं कहा था उन्होंने।···ये रुपये शायद उन्होंने उधार लिए। हमारी स्टेशन की तरफ उनके कुछ मारवाड़ी भक्त हैं।"

हैमन्ती मौन रही।

अवनी ने थोड़ी देर प्रतीक्षा की, फिर कहा, "ये रुपये खुद बिजली बाबू के दिए हुए हो सकते हैं—, पता नहीं। पर मुझे तो उन्होंने यह नहीं बताया। शर्म से शायद।"

"क्या पता!" हैमन्ती ने परिहास करते हुए कहा, "आपके ही दिये हुए हो सकते हैं; और आप यह शर्म से नहीं बता रहे हैं।"

"नहीं-नहीं," अवनी ने माथा हिलाया जोर से, "ये मेरे दिये हुए नहीं हैं।"

"इतनी नहीं-नहीं करने की कोई बात नहीं है। आपने दिया ही है, तो क्या हुआ—" हैमन्ती हंस उठी, "आखिर आप तो भले काम में दे रहे हैं न।"

अवनी भी हंसा। "तब मैंने नहीं दिया था, यह सही बात है, लेकिन अभी अगर सुरेश-महाराज मुझसे कहते, तो हो सकता है, मैं उनकी भरसक मदद करता।"

"आप उनकी मदद करते!···तब तो आप भी, देखती हूं, उनके भक्त हैं।"

"मैं उनका भक्त तो नहीं हूं। फिर भी वे किसी-किसी मामले में मुझे अच्छे लगते हैं।"

"तो पहले वह आपको अच्छा नहीं लगता था—"

"पहले इतना परिचय नहीं था। मैं उन्हें उतना जानता नहीं था। अभी मोटे तौर पर मैं एक धारणा बना सकता हूं।" अवनी ने धीर-स्थिर गले से कहा, वह थोड़ा-सा अन्यमनस्क है। "दोष जो उनमें नहीं है, मैं यह नहीं कहता, दोष है उनमें, कम-से-कम मेरी दृष्टि से। फिर भी आदमी वे अच्छे हैं।"

हैमन्ती ने आखिरी बार जैसे परिहास करने की कोशिश की, "इतनी सरा-हना—"

"सुरेश-महाराज की निन्दा भी तो मैंने कुछ कम नहीं की है, बरा-बुरा सरा-

में था, तबियत खराब होने की वजह से घर गया हुआ था, वहीं मर गया ।"

हैमन्ती कुछ नहीं बोली; कहने को कुछ है नहीं । अवनी खड़ा है ।

थोड़ी देर बाद हैमन्ती बोली, "मुझे कैसा लग रहा है, यह बीमारी अब धीरे धीरे जाएगी ।"

"जाएगी !"

"अब तो जाएगी ही ! दो-एक महीने होने चले ।···इतने दिन किसी ने परवाह नहीं की, वरना इतनी फैलती नहीं । अब चेत हुआ है । हाय राम, आप खड़े रहे जो, बैठिए···" कहकर जो बात अधूरी रह गई थी उसे फिर से छेड़ा, "इतने दिन बाद बड़ी लगन लगी है । इसके अलावा, यह बीमारी बिलकुल अटपटी है, अजीब है, वाइरस से ही हो रही है शायद । शुरू-शुरू में पकड़ में आने पर मरने का डर नहीं है । कम्प्लिकेशन हो जाने पर ही मुश्किल होती है ।"

अवनी बैठा । बोला, "तो क्या आप अपनी राय बदल रही हैं ?"

"नहीं तो । क्यों ?"

"आपकी बात सुनकर ऐसा लग रहा है," अवनी हंसा, "एकाएक इतना अभय दे रही हैं—"

"नहीं, नहीं ।" हैमन्ती ने माथा हिलाया । "मैं तो वैसे भी जा रही हूं ।"

अवनी अबकी बार कुछ नहीं बोला । थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही । हैमन्ती बिस्तर के एक ओर बैठी हुई है ।

अन्त में अवनी बोला, "सुरेश्वर अभी क्या कर रहे हैं ? उनका कार्य-कलाप फिलहाल क्या है ?"

"अभी तो वे बहुत व्यस्त हैं । बस, यहां नए अस्पताल की व्यवस्था कर रहे हैं···रहने और रुपये का प्रबन्ध कर रहे हैं । इसके अलावा सुनती हूं शिवनन्दन जी को इधर-उधर भेज रहे हैं, जैसे गांव-देहात में किसी को बीमारी हो, तो वह फौरन यहां चला आए ।"

अवनी ने सुना । सुनते-सुनते जेब से सिगरेट का पैकेट निकला । "उस दिन मैं आपके यहां से उनके पास गया था, बिजली बाबू थे, मेरा मिजाज न जाने क्यों अच्छा नहीं था, थोड़ी-सी कहा-सुनी हो गई ! ···"

हैमन्ती ने अवनी का आंख-मुंह लक्ष्य किया । लगा, अवनी ने उस दिन की कोई नाराजगी अथवा तिक्तता आज अब मन में नहीं रखी है ।

"किस बात को लेकर कहा-सुनी हुई ?" हैमन्ती ने जानना चाहा ।

अवनी ने उस बात का जवाब नहीं दिया । बोला, "उन्होंने दुनिया में कुछ देखा नहीं है । बिलकुल अन्धे हैं ।"

हैमन्ती कुछ बोली नहीं, बल्कि कौतुक-भरी आंखों से निहारती रही, मानो दुनिया के बारे में अवनी की कितनी अभिज्ञता है, यह जानने का कौतूहल वह अनु-भव कर रही थी ।

अवनी ने सिगरेट सुलगायी; थोड़ा-सा मुस्कराया और बोला, "वे शायद मन-ही-मन नाराज ही हुए हैं । मुझे बाद में जरा-सी लाज ही आ रही थी ।"

"उस एक तुच्छ बात से ही वह नाराज होगा···"

"नहीं, एक नहीं; और भी न जाने क्या मैंने कहा था ।" कहकर अवनी जैसे अपने उस दिन के व्यवहार पर लज्जित होकर हंसा । उसके बाद कहा, "मुझे एक

हना की, तो हर्ज क्या है !" अवनी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

फिर कोई कुछ नहीं बोला। दोनों ही चुप्पी साधे रहे। हैमन्ती बैठे-बैठे थक गयी, तो उठी, "बैठिए, देखती हूं, मालिनी है कि नहीं, चाय पीकर जाइए।"

हैमन्ती चली गयी। अवनी बैठा रहा। खिड़की से शाम की ठंडी हवा आ रही है, बाहर कहीं चूं-चूं करके एक कीड़ा बोल रहा है, पेड़ों के पत्तों की मृदु मरमराहट हो रही है, अवनी अन्यमनस्क है, सूनी दृष्टि से हैमन्ती के बिस्तर की तरफ ताकता हुआ जैसे कुछ सोच रहा था।

हैमन्ती वापस आई।

"मालिनी कह रही थी—" हैमन्ती बोली, "आफिस में उसके भाई को एक खबर दे देने के लिए, वह यह कि वह अच्छी है। उसकी मां बहुत फिकर करती है, यहां बीमारी-बीमारी है···"

अवनी ने ताका, हैमन्ती को देखा। "वह घर नहीं जाती है ?"

"जाती है; लेकिन अभी तो वह जा नहीं पा रही है।"

"क्यों ? वह क्या करती है ?"

"और क्या करेगी भला, बस, काम-काज। अपने भैया की देख-भाल करती है···" हैमन्ती ने जैसे थोड़ा-सा व्यंग्य किया।

अवनी समझ पाया। पर कुछ बोला नहीं।

हैमन्ती बैठी। दो-एक क्षण चुप रही। उसके बाद बोली, "मैं अगले रविवार को जा रही हूं। मैंने गगन को चिट्ठी लिख दी है।"

"अगले रविवार को···कौन-सी तारीख पड़ती है उस दिन ?"

"यही कोई उन्नीस-बीस तारीख होगी—" हैमन्ती ने हिसाब किया, हिसाब करके सुधार लिया और कहा, "उन्नीस तारीख है उस दिन।"

अवनी ने मानो मन-ही-मन दिन-तिथि सोच ली। बोला, "जाने के पहले उधर आइये एक दिन।"

"फेयरवेल लेने ?" हैमन्ती मुस्करायी।

अवनी भी चेहरे पर मुस्कान लाया। "कुछ ऐसा ही समझिए।"

"जाऊंगी। बिजली बाबू की पत्नियों से मिले बिना जाने पर बुरा दिखेगा।"

"तो कब आइएगा ?"

"परसों भी जा सकती हूं।"

"जा सकती हूं क्यों, आइए। परसों ही आइए।"

"आजकल तो बस अपनी मर्जी के मुताबिक आती है। पैसेंजर नहीं रहने पर दोपहर में आती ही नहीं है।"

"किसी भी बस से चले आइए। पर सवेरे आयें, तो अच्छा हो।···हम लोग फेयरवेल के लिए फूलों का गुलदस्ता और माला-वाला ठीक किए रखेंगे।" अवनी ने मजाक करके हंसते-हंसते कहा।

हैमन्ती ने भवों पर बल डालकर ताका। फिर मुस्कराती हुई बोली, "कलकत्ता जाते-जाते सारे-के-सारे फूल सूखकर झड़ जाएंगे। गगन को मैं यह विश्वास नहीं दिला सकूंगी कि मेरा फेयरवेल हुआ था।"

अवनी जोर-जोर से हंसने लगा। बाद में कहा, "मैं भी तो कलकत्ता जा रहा हूं।" उसने कुछ इस ढंग से कहा कि जैसे जरूरत पड़ने पर वह गगन के आगे

गवाही दे सकता है।

"तो आप भी जा रहे हैं ! पर कब ?"

"अभी थोड़ी देरी है। मैं अगले महीने जाऊंगा।"

"ऑफिस के काम से ?"

"ऑफिस···! नहीं; कलकत्ता में हमारे ऑफिस का कुछ नहीं है, हमारा सब कुछ पटना में है।" कहते-कहते अवनी रुका, पहले फर्श की तरफ ताका, बाद में छत की ओर। लगा, वह दूसरे प्रसंग पर आकर थोड़ी-सी परेशानी में पड़ रहा है।

मालिनी की पद चाप गूंज रही थी बरामदे में; वह चाय लिए कमरे में आई।

हैमन्ती ने उठकर मालिनी के हाथ से चाय का प्याला लिया, लेकर अवनी की ओर बढ़ा दिया।

मालिनी चली गई, तो हैमन्ती अपनी जगह पर आकर बैठी। बस अवनी ने चाय की चुस्की ली है। उसका चेहरा अभी कैसा गम्भीर और अन्यमनस्क सा दीख रहा था।

हैमन्ती बोली, "लेकिन आप कलकत्ता क्यों जा रहे हैं ? घूमने ?"

अवनी कुछ बोला नहीं, माथा हिलाया धीरे से, नहीं; घूमने नहीं।

हैमन्ती सप्रश्न दृष्टि से निहारती रही।

अवनी मुंह फेरकर दरवाजे की ओर निहार रहा था। कलकत्ता से कमलेश आया था। चिट्ठी में सब नहीं कहा जा सकता था, बहुत-सी बातें थीं। ललिता अब पूरे तौर पर एक दूसरे के साथ रह रही है। कुमकुम को मायके में रख दिया है, मौसी-मामा के पास। वह आती है कभी-कभी। उसके नाम का रुपया लेती है। ललिता यह समझ गयी है कि कुमकुम एकाएक बाप की लाडली हो गई है: 'आखिर है तो शैतान की बेटी न, बित्ता भर होने से क्या होगा, छिपी रुस्तम है।' कमलेश से ललिता ने और भी बहुत कुछ कहा है: 'छोड़ो-छोड़ो, बनो मत। मुझे मालूम है, यह हरामजादी अपने लाडले बाप को चिट्ठी लिखा करती है।···तुम तो अपने दोस्त की जासूसी कर रहे हो। मैं बार में जाकर शराब गटकती हूं, यह सब तुमने कहा है। बेटी को यह पता चल गया है, तो मेरी बला से। मैंने उसे कोख में धारण किया था, तो क्या हुआ है, मुझमें उतनी मां की नखरेबाजी नहीं है। मैं नहीं होती, तो अन्य कोई तुम्हारे उस गुनवंत दोस्त की बेटी को अपनी कोख में धारण नहीं करती। मैं परवाह नहीं करती, जाओ, जाओ, अपने दोस्त को लिख देना···डाइवोर्स का इन्तजाम करे···मैं एडलटरेस हूं··· हां-अच्छा करती हूं, मैं दूसरे मर्द के साथ रहती हूं। रहूंगी, रहूंगी। ले आए बाप अपनी बेटी को। बेटी एक बार पहचाने कि कैसा है बाप। कुत्ता है वह, उसके खानदान का अता-पता नहीं है, जिसकी मां थियेटर की पुतरिया थी, और बाप···'

झन-सी आवाज हुई। चौंक उठा अवनी। उसके हाथ से चाय का प्याला फर्श पर गिरकर, टूटकर बिखर गया है।

हैमन्ती चौंक उठी थी। टूटे प्याले, बिखरी चाय और अवनी के चकित विह्वल भाव को देखते-देखते हैमन्ती हक्की-बक्की होकर बोली, "क्या हुआ ?"

अवनी के कपाल पर पसीना चुहचुहा उठा था। गले के पास वाले हिस्से में भी पसीना है। वह झटपट उठकर खड़ा हो गया और पतलून के ऊपर से चाय को झाड़कर गिराने लगा; फिर जेब से रूमाल निकाला। शर्मिंदा है, काठ का मारा-

है। "एकाएक कैसा हाथ···। बड़ी गरमी है ···।" अवनी ने कपाल···मुंह
छ डाला। जरूरत से ज्यादा विह्वल हो जैसे।

"तबीयत खराब लग रही है?"

"नहीं-नहीं।" मुंह पोंछकर अवनी ने अपने आपको संभाल लेने की कोशिश
, "कुछ समझ में नहीं आया—एकाएक कैसा···?"

"सिर चकरा गया?"

"नहीं।"

"दूसरी तरफ ताकते हुए आप क्या इतना सोच रहे थे?"

"कुछ नहीं। कोई खास बात नहीं सोच रहा था?"

"वाह, आप सोच तो रहे थे—"

"वैसी कोई सीरियस बात नहीं सोच रहा था। एकाएक पुरानी बात याद हो
ई···" अवनी ने भरसक संयत व स्वस्थ होने की कोशिश की। "छिः-छिः यह
ने क्या कर डाला, प्याला-व्याला तोड़ दिया।" अवनी लज्जित है।

"कमीज-पतलून पर आपने जो ढेर सारी चाय गिराई—" हैमन्ती उठकर
नी उड़ेल देने गई।

"दाग तो मिट जाएगा।" अवनी ने कहा।

"दाग मिट जाए, तो अच्छा है। लेकिन ऐसा दाग मिटता नहीं है।"

अवनी ने ताका, हैमन्ती की दृष्टि को लक्ष्य किया। लगा, हैमन्ती का विस्मय
कौतूहल मानो और भी गहरा गया है।

पानी से चाय का दाग मिटाते-मिटाते अवनी ने कहा, "मैं सुरेश्वर बाबू के
हां से घूम आऊं। रुपया जब तक उन्हें दे नहीं पा रहा हूं, मैं चैन नहीं पा रहा
।"

हैमन्ती ने गरदन एक ओर झुकाकर कहा, "तो जाइये।"

अवनी चला गया।

## तीस

निःशब्द बरामदे को पार करके मैदान में उतर आया अवनी। मालिनी सीढ़ी
के नजदीक अंधेरे में खड़ी थी, अवनी ने उसे लक्ष्य नहीं किया। मैदान में उतरकर
कुछेक कदम थोड़ी तेजी से चलकर आने के बाद अपनी चंचलता के बारे में मानो
सचेत होकर भरसक संयत होने की कोशिश की। चारों ओर गौर से देखा, लगा,
जैसे चांद निकला हो, अथवा निकल रहा हो, थोड़ी-सी चांदनी दिखाई पड़ रही है,
दिखाई पड़ रही है पेड़ों और झाड़ियों की छाया, अन्ध-कुटीर की ओर से बिलकुल
देहाती गले से एक गाने-जैसा सुर तिरता हुआ आ रहा है। अपने मन से चहल-
कदमी करने की तरह वह धीरे-धीरे चलने लगा, चलते-चलते एक सिगरेट
सुलगाई।

चाय का प्याला जो कैसे हाथ से गिर गया, यह अवनी की समझ में नहीं आ
रहा था। अभी भी इस मामूली-सी घटना के चलते उसे परेशानी और शर्म आ

रही थी। अवनी को लगा, सम्भवतः वह बहुत अधिक अन्यमनस्क हो गया था, चाय का प्याला एक ओर झुक गया था बिलकुल, उसके बाद किसी तरह से गरम चाय छलककर उसके हाथ पर गिरी, तो उसने हाथ से प्याला छोड़ दिया था। प्याले के फर्श पर गिरकर टूट जाने की वजह से वह इतना लज्जित व परेशान हो गया था कि उसे लगा कि इतने अन्यमनस्क होने की कोई कैफियत वह हैमन्ती को नहीं दे सकेगा। उसे आशंका हो रही थी कि हैमन्ती अत्यन्त विस्मित होकर, कौतूहल अनुभव करके या किसी बात का सन्देह करके उसे लक्ष्य कर रही है। बहुत कुछ जैसे झांकने के ढंग से अवनी को अकेले में देख रही हो,—ऐसा लगा। लाज और परेशानी से, थोड़ी-सी गोपनीयता प्रकट हो सकती है, इस चिन्ता से उसे पसीना आना शुरू हुआ था। अवश्य, अवनी को अभी लगा कि ललिता ने कमलेश से जो बातें कही थीं, उनके याद आ जाने की वजह से वह उस क्षण थोड़ा-सा उत्तेजित और क्रुद्ध भी हुआ था। ललिता एक पंजाबी या सिन्धी सेल्स मैनेजर के साथ 'बार'-'बार' घूमकर, शराब गटककर, कपड़े-लत्ते खोलकर लोटती है या नहीं, या उस सेल्स मैनेजर के गले में बाहें डालकर, टांग-पर-टांग चढ़ाये बिस्तर पर सोती है कि नहीं,—इस सब मामले में अवनी का कोई आग्रह नहीं है, न गुस्सा ही है। किन्तु ललिता ने जो अन्य बातें कुमकुम के बारे में कमलेश से कही थीं अथवा अवनी के बारे में कही थीं, उनसे अवनी उन्मत्त हो सकता है, और हुआ है। अपने आपको

ललिता अभी भी उसके बाप के बारे में विषाक्त बनाए रखना चाहती है। इतनी वितृष्णा और विद्वेष अभी भी ललिता में नहीं होना चाहिए। जो होना था वह हो चुका है; उसके बाद ललिता अपनी मर्जी के मुताबिक, मौज-मस्ती से दिन गुजार रही है; उसके सुख और संभोग में कोई बाधा नहीं डाल रहा है; वह अपने मन-पसन्द जीवन की ओर हट गई है; फिर भी, अकारण क्यों ललिता बेटी को अपनी तरह गन्दी, भद्दी और फूहड़ बनाना चाहती है—यह अवनी समझ नहीं पाता है। आदमी के मन में घृणा कितनी तीव्र हो सकती है, कैसे भीषण ढंग से वह भूत-प्रेत की तरह हावी हो सकती है, और उसके फलस्वरूप आदमी कितना पागल हो सकता है ललिता इसका उदाहरण है।

अवनी ठिठककर खड़ा हो गया। गौर से देखा, वह चलते-चलते सब्जी-बाग की ओर चला आया है। सामने एक पेट्रोमैक्स जल रहा है। अवनी समझ पाया, नये अस्पताल के ऑफिस के सामने वह आ गया है। खड़े-खड़े कुछेक क्षणों तक देखा: पतले लम्बोतरे बरामदे के बीचोबीच ढालवां छप्पर की लकड़ी में उस बत्ती को लटकाकर रखा गया है; रोशनी उतनी जोरदार नहीं है, बरामदे और सामने के मैदान के थोड़े-से हिस्से में रोशनी पड़ रही है, नीली-सी रोशनी। बरामदे में कोई दिखाई पड रहा है; ऑफिस की खिड़कियां बन्द हैं, पर दरवाजा अभी भी खुला है; कोई आवाज नहीं आ रही थी। अवनी को लगा, इस बत्ती को सम्भवतः आने-जाने की सुविधा के लिए रखा गया है। हवा से बीच-बीच में एक तेज गन्ध आ रही थी, यह गन्ध फिनायल या लायजल की हो सकती है। यह गन्ध अवनी को अच्छी नहीं लगी। दोनों कमरे इतने शान्त, निःशब्द और सुनसान हैं कि अवनी

को लगा, कुछेक लोग जैसे बत्ती जलाकर किसी चीज के डर से निःशब्द बैठे हुए हों।

अवनी ने सिगरेट का टोटा फेंक दिया और अब की बार मुड़ा। पीछे से पैट्रो-मेक्स की रोशनी की थोड़ी-सी आभा आ रही थी; थोड़ी दूर आगे बढ़ आया, तो फिर अंधेरा है, अंधेरे पर बहुत पतली चांदनी छाई हुई है। अवनी फिर अपनी विह्वलता के बारे में सोचने लगा : आजकल बीच-बीच में लगता है कि अपने जीवन की गोपनीयता के बारे में वह बड़ी घबराहट महसूस करता है और सतर्क हो रहा है। पहले यह सब नहीं था, इतना तो हरगिज नहीं था। आत्मसम्मान बोध भी अभी जैसे अभिमान-जैसा हो उठा हो। ललिता के साथ जब उसे रहना पड़ता था तब ललिता ने ऐसी बहुत-सी बातें कही थीं जिनसे आत्मसम्मान नहीं रहता है; हालांकि अवनी उस समय कोई खास सनक नहीं उठता था, बल्कि उपेक्षा करता था, एक जवाबी जवाब देता था—कठोर, कड़वा जवाबी जवाब। हो सकता है, तब जवाब देने का मौका था; इसीलिए इतनी चोट नहीं पहुंचती थी; आजकल चोट पहुंचती है। लगता है, उसे कोई दीवार से सटाकर खड़ा करके जैसे बेरहमी से नोच-खसोट और दांतों से काटकर, मुंह पर थूककर चला जा रहा हो—और वह जवाबी कुछ नहीं कर पा रहा है, नतीजतन गुस्सा और भी बढ़ता है, आक्रोश होता है।

नहीं, यह सब कुछ नहीं है—अवनी ने सिर हिलाया; आक्रोश, गुस्सा-वुस्सा सब बेकार का है। दरअसल वह अब अपने जीवन की इन सब गोपनीयताओं को लेकर कभी कातर, कभी शंकित, तो कभी शर्मिंदा हो जाता है। एक-एक समय लगता है, जैसे कोई उसके दोनों हाथों में हथकड़ियां पहनाकर उसे कहीं ले जा रहा हो, और रास्ते में खड़े होकर हेमन्ती, गगन और सुरेश्वर उसे देख रहे हैं; अपना मुंह दोनों हाथों से उसने ढक लिया है अवश्य, फिर भी हथकड़ियों की ढीली जंजीर गालों को अनवरत रगड़ती जा रही है। उसने अपना मुंह ढक लिया है, तो भी वह जो अपने आपको छिपा पा रहा है, ऐसी बात नहीं, फिर भी आंखें चार हो जाने के डर से या उनकी विस्मित धिक्कार-भरी दृष्टि को सहन करने की ग्लानि से वह बचना चाह रहा है, इसलिए उसने मुंह ढका है।

लेकिन ठीक क्यों जो हेमन्ती के आगे अपनी यह गोपनीयता प्रकट करने की इच्छा उसकी होती है, अवनी यह नहीं जानता है। मां क्या थी, पिता कौन थे, थे, किस तरह से वह पला-बढ़ा है—ये सब बातें और ललिता और कुमकुम की बात वह हेमन्ती को बता पाता, तो अच्छा होता। उसका पूरा परिचय हेमन्ती नहीं जानती है। अभी तक एक दुराव-छिपाव रह गया है। हेमन्ती की तरफ से ऐसा कुछ नहीं है, जो कुछ था—सुरेश्वर के साथ उसका रिश्ता—वह अवनी को मालूम हो चुका है।

तुम ये सब बातें बताने के लिए आखिर इतने परेशान क्यों हो ? अवनी ने मानो बुदबुदाकर अपने आप से यह पूछा। और तुरन्त उसे एक सहज जवाब मिला। यह जवाब सहज था, तो भी उससे उसका जी नहीं भरा। कुछेक कदम चलकर आया, तो वह कोई दूसरी बात कहने जा रहा था कि तभी नजदीक में किसी का गला सुनाई पड़ा, न जाने किसने पुकारा : अवनी रुका, गौर से देखा, सुरेश्वर है।

खुले मैदान के बीच से होकर सुरेश्वर आया, थोड़ी दूर पर था शायद। अवनी

ने खयाल करके देखा, वे लोग आश्रम के मैदान के बीच में खड़े हैं।

नज़दीक आकर सुरेश्वर बोला, "इधर कहां···?"

"बस, ज़रा-सी चहलकदमी कर रहा था—" अवनी बोला, कहकर कुछ सोचकर फिर बोला, "आपका नया अस्पताल देख आया।"

सुरेश्वर ने कदम बढ़ाये, बगलगीर होकर अवनी भी चलने लगा। सुरेश्वर बोला, "किसी तरह से झटपट एक इन्तजाम किया है···"

चलते-चलते अवनी ने जैसे थोड़ा-सा मजाक करके ही कहा, "मुझे तो पहले यह विश्वास नहीं हुआ था कि डॉक्टर-वॉक्टर आएगा। खैर, आखिरकार आया है। आखिर आप ही की बात सही निकली।"

सुरेश्वर कुछ नहीं बोला।

मैदान में हल्की चांदनी खिल उठी है, हवा से तेज गन्ध अब नहीं आ रही थी। कुछेक गेंदे के फूलों का एक गोलाकार झुरमुट है; उस झुरमुट की बगल से होकर सीधे मैदान को पार करके वे लोग सुरेश्वर के कमरे की ओर आगे बढ़ने लगे।

"आप ही के पास जाता मैं," अवनी ने कहा, "बिजली बाबू ने कुछ रुपये भेजे हैं।"

सुरेश्वर ने गरदन घुमाकर अवनी को देखा। जैसे कहना चाहा, रुपया आप लेकर आए, बिजली बाबू कहां हैं?

अवनी बोला, "वे ज़रा काम-काज से रुक गए हैं, वरना वे आते।"

"उनके घर की सारी खबर अच्छी तो है?"

"बुरा तो कुछ नहीं सुना है मैंने।"

दोनों ही उसके बाद एकाएक कैसे मौन हो गए। हवा का झकोरा आया, थोड़ा ठंडा-सा—मरे जाड़े की हवा है, हालांकि सूखी है; दूर के पेड़-पौधों में थोड़ी-सी मरमराहट हुई। बाट-घाट में कहीं कोहरा नहीं है, ओस की धुंध भी नजर नहीं आ रही है, आकाश साफ है।

"कल यहां एक आदमी की हालत ज़रा बिगड़ गई थी—" सुरेश्वर बोला, "आज दोपहर से अवश्य हालत बड़ी अच्छी है। मैं उसी की खोज लेने गया था डॉक्टर के पास।"

अवनी ने सुना। सुरेश्वर के नए अस्पताल या रोगियों की बात वह अब नहीं सोच रहा था। यहां तक कि बिजली बाबू के उसके हाथों रुपया भेजने की वजह से सुरेश्वर असन्तुष्ट या नाराज हुआ है कि नहीं—अवनी यह भी नहीं सोच रहा था। वह अन्यमनस्क भाव से चल रहा था और हैमन्ती की बात सोच रहा था। सुरेश्वर से हैमन्ती के बारे में उसकी कोई खास बातचीत कभी भी नहीं हुई थी। या जो बातचीत हुई थी वह हैमन्ती के डॉक्टरी में हाथ अच्छा होने की। अभी अवनी को यह जानने का कौतूहल हो रहा था कि सुरेश्वर हैमन्ती के बारे में फिलहाल क्या सोचता है! उसे कोई शिकायत है या नहीं! शिकायत होना स्वाभाविक है। अथवा सुरेश्वर अपनी भूल के बारे में कितना सचेत है, यहां तक कि वह अनुतप्त है कि नहीं!

यथासम्भव स्वाभाविक गले से अवनी ने कहा, "वे तो चली जा रही हैं।"

सुरेश्वर ने उसकी बात सुनी, पर कोई जवाब नहीं दिया।

अवनी ने थोड़ा-सा इन्तजार किया, कहा, "आपकी ही मुश्किल हुई···"

सुरेश्वर इस बार भी मौन रहा। अवनी समझ पाया कि सुरेश्वर इस प्रसंग की चर्चा करना नहीं चाहता है। शायद, अवनी को अब की बार लगा कि उसने गलती की है; या तो सुरेश्वर इस व्यक्तिगत प्रसंग को उठाने का आग्रही नहीं है, या वह पराजित पक्ष है, इसलिए इस प्रसंग से लज्जा अनुभव कर रहा है।

अवनी ने कैसी परेशानी महसूस की। बेवकूफों की तरह यह प्रसंग उसने क्यों उठाया! चुप्पी छाई रही। जैसे थोड़ा-सा शर्मिंदा और कुंठित होकर अवनी चल रहा था।

सुरेश्वर के कमरे के नजदीक वे लोग पहुंच गए थे। आज कहीं कोई नजर नहीं आ रहा है, केले के झुरमुट की तरफ कुछेक जुगनू उड़ रहे थे, एक टिमटिमाती लालटेन भी जैसे सुरेश्वर के बरामदे में रखी हुई हो।

घर के समीप पहुंचकर सुरेश्वर ने एकाएक कहा, "हेम बहुत दिनों से ही जाने की कह रही थी, मैंने ही उसे रोक रखा था।"

अवनी ने ताका, सुरेश्वर के गले के स्वर की पड़ताल करने की कोशिश की। पर कुछ समझ में नहीं आया, यह समझ में नहीं आया कि सुरेश्वर मन-ही-मन विरक्त है या नहीं अथवा उसे कोई शिकायत है कि नहीं।

वे लोग बाग के बीच से होकर आए और कमरे की सीढ़ी पर कदम रखा।

अवनी बोला, "आपको फिर, देखता हूं, एक डॉक्टर ढूंढ़ना होगा···।"

"ढूंढ़ रहा हूं।" सुरेश्वर ने अन्यमनस्क भाव से जवाब दिया।

कमरे में आने के पहले सुरेश्वर ने चौखट के पास से लालटेन उठा ली थी; कमरे में आकर उसे मेज पर रखा। लौ थोड़ी-सी बढ़ा दी। बोला, "बैठिए।···मैं आ रहा हूं।" कहकर बगलवाले कमरे में चला गया। अवनी ने कुर्सी खींच ली और बैठा।

बगलवाले कमरे में सुरेश्वर के चलने-फिरने की आहट सुनाई पड़ रही थी। ऐसा नहीं लगा कि इस घर में और कोई है। भरतू भी शायद नहीं है। अवनी ने बैठे-बैठे अन्यमनस्क भाव से एक सिगरेट सुलगाई। हैमन्ती का प्रसंग उठाकर उसने बेवकूफी की है, ऐसा पहले लगा था, पर अब लगा कि इसमें बेवकूफी की कोई बात नहीं हुई है। बल्कि यह न कहने पर सुरेश्वर सोच सकता था कि सब कुछ जान-बूझकर भी वह कुछ न जानने का स्वांग रच रहा है। हैमन्ती के पास जिसकी इतनी आवा-जाही है, वह क्या यह नहीं जानता है कि हैमन्ती कलकत्ता चली जा रही है! वह जरूर जानता है, और जानकर भी उसने बात नहीं उठाई। सौजन्यवश अथवा बातों के सिलसिले में भी एक बार ऐसा कहना स्वाभाविक था। फिर भी अवनी ने क्यों नहीं कहा?

ऐसा भी तो हो सकता है, अवनी ने सोचा, कि सुरेश्वर, शायद, मन-ही-मन ऐसी भी धारणा बना सकता है कि हैमन्ती को कलकत्ता वापस भेजने में अवनी का थोड़ा-सा हाथ है। शायद, अवनी और हैमन्ती के बीच जैसी घनिष्ठता हुई है उसमें अवनी का कुछ स्वार्थ हो सकता है; स्वार्थ के चलते और सुरेश्वर व उसके अन्धाश्रम के प्रति अवनी की वितृष्णा होने के कारण हैमन्ती को उसने और भी नाराज कर दिया है। ऐसा एक सन्देह अवनी को पहले भी हुआ था, मगर उसने परवाह नहीं की थी। परवाह करता भी तो क्या होता, उसके लिए करने को कुछ

नहीं था। आज, अभी अवनी को लगा कि सुरेश्वर ने जैसे उसे इस मामले में कहीं जिम्मेदार ठहरा रखा हो। यह कल्पना अवनी को बुरी लग रही थी। उसने इतने दिनों तक गुप्त रूप से सुरेश्वर के विरुद्ध कोई धूर्तता या षड्यंत्र किया है—इस प्रकार की कल्पना भी असह्य है।…अवनी ने कुछ नहीं किया है, कुछ नहीं; फिर भी यदि सुरेश्वर ने ऐसा कुछ सोच लिया हो, तो अन्याय है। अवनी कैसा क्षुब्ध हुआ।

सुरेश्वर आया; बोला, "भरतू नहीं है; जरा चाय का पानी चढ़ा दे आया।"

अवनी बड़ा अन्यमनस्क हो गया था, एकाएक जैसे होश आया, सुरेश्वर को बैठते देखा।

सुरेश्वर ने कहा, "हेम शायद दो-चार दिनों के अन्दर ही जाएगी।"

"वे अगले रविवार को जाएंगी," अवनी ने कहा, कहकर निहारता रहा।

"हां, शायद।"

अवनी की समझ में नहीं आया कि सुरेश्वर जान-बूझकर उदासीनता दिखा रहा है या नहीं। नहीं तो उसे यह जानना चाहिए था कि हैमन्ती कब जा रही है।

सुरेश्वर जैसे कुछ कहने जा रहा था, अवनी ने बाधा दी, बाधा देकर कहा, "उनके चले जाने की वजह से आपका नुकसान नहीं होगा?"

"पहले पहल तो होगा।"

"नहीं, कोई खास नुकसान नहीं होगा—" अवनी किसी तरह से जैसे प्रसंग के बीच आना चाह रहा था, "आप शायद बड़ी आशा करके उन्हें लाए थे। आप यों ही एक डॉक्टर जुटाकर लाए थे—ऐसा मुझे नहीं लगा है।"

सुरेश्वर ने फौरन कोई जवाब नहीं दिया, उसके चेहरे के भाव में भी कोई खास परिवर्तन नजर नहीं आया अवनी को। बाद में सुरेश्वर ने कहा, "हां, आशा तो थी। मगर क्या किया जाए—, हेम रह नहीं सकी।" कहकर सुरेश्वर थोड़ी देर तक रुका, फिर जैसे हैमन्ती के अपराध के भार को कुछ कम करने की खातिर बोला, "कलकत्ता में हेम के घरवाले भी तो उनके बिना नहीं रह पा रहे हैं।"

अवनी मनोयोग देकर लक्ष्य कर रहा था कि सुरेश्वर किस तरह से इस प्रसंग को टाल जाने की कोशिश कर रहा है। सीधे वह कुछ कहना नहीं चाहता है। सुरेश्वर की आंख-मुंह लक्ष्य करते-करते अवनी ने सिगरेट का बाकी हिस्सा खत्म करके टोटे को खिड़की से फेंक दिया।

अवनी ने कहा, "मैंने तो सुना है कि आपकी ही इच्छा से शायद उन्होंने डॉक्टरी पढ़ी थी… !"

"किसने कहा? हेम ने?"

"नहीं, गगन ने।"

"हां,—कुछ ऐसा ही समझिए। मेरा आग्रह था, पर उसकी भी अनिच्छा नहीं थी। हेम बड़ी बुद्धिमती है, परिश्रमी है। इत्मीनान से विचार करके देख भी सकती है। डॉक्टर के रूप में अच्छी ही है। इसके अलावा उसकी अभिज्ञता थोड़ी है; बस, अभी-अभी तो पास करके निकली है। दो-चार साल बाद और भी अच्छी होगी…"

अवनी निराश हुआ; सुरेश्वर से हैमन्ती के विषय में वह कुछ नहीं कहलवा सकेगा। कहने पर भी सुरेश्वर जो कहेगा वह कुछ मामूली होगा, मानो हैमन्ती

के चरित्र और डॉक्टरी के बारे में सर्टिफिकेट दे रहा हो। अवनी के लिए भी और कुछ कहना सम्भव नहीं है। फिर भी आखिरी बार जैसे थोड़ी-सी झोंक में आकर अवनी ने कहा, "आपने शायद कहीं थोड़ी-सी गलती कर डाली थी।"

सुरेश्वर ने ताका।

अवनी बोला, "मेरी धारणा है कि आपने ठीक एक आंख का डॉक्टर नहीं चाहा था यहां, बल्कि और भी कुछ आशा की थी आपने।"

सुरेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया। उसका चेहरा देखने से ऐसा नहीं लगा कि वह असन्तुष्ट है।

अवनी ने कहा, "अपने इस आश्रम के लिए आपको जितनी माया है, उन्हें उतनी माया नहीं थी। मुझे लगा है, आप तो डेडिकेटेड हैं, पर वे डेडिकेटेड नहीं हैं।"

"हेम बड़ी कर्त्तव्यपरायण है···" सुरेश्वर ने धीरे से कहा।

"हां, लेकिन आपकी तरह इस सब सेवा-वेवा में उन्होंने अपने आपको निछावर नहीं किया है।"

"नहीं—" सुरेश्वर ने माथा हिलाया; उसके माथा हिलाने में हैमन्ती के बारे में विरक्ति या अभिमान नहीं उभरा। बोला, "सब का स्वभाव तो एक-सा नहीं होता है; हेम का स्वभाव अलग है।"

"आपने शायद अपने स्वभाव के लायक किसी को चाहा था।"

"क्या पता!" सुरेश्वर अब की बार थोड़ा-सा शरमिंदा दीखा।

"दुनिया में यह एक मजा देखता हूं," अवनी बोला, "बहुत-से लोग अपनी गरज को दूसरे की गरज समझ लेते हैं।···"

सुरेश्वर, हो सकता है, कुछ कहता, किन्तु आखिरकार अपने आपको संयत किया। उसके बाद जैसे बात को हल्की करने की खातिर हंसकर कहा, "गरज के पीछे दुनिया दीवानी है।···बैठिए, चाय का पानी शायद उबल गया होगा। मैं चाय ले आऊं।" धीरे से उठकर खड़ा हो गया सुरेश्वर, कुर्सी हटाकर चला गया।

अवनी की समझ में नहीं आया कि सुरेश्वर आज इतना निस्पृह और उदासीन क्यों दीख रहा है? आमतौर पर सुरेश्वर बहुत कुछ निस्पृह है, किन्तु किसी-किसी समय, विशेषत: साधारण बात-चीत में वह कोई खास निस्पृह नहीं रहता है, यह हैमन्ती का प्रसंग है, इसीलिए क्या सुरेश्वर इतना उदासीन है? या, हैमन्ती चली जा रही है—इससे सुरेश-महाराज के स्वाभिमान को काफी ठेस पहुंची है, इसीलिए अपनी विफलता और आघात को संभालने के लिए वह उस प्रकार की उदासीनता का आश्रय ले रहा है।

अवनी की इच्छा हुई थी कि हैमन्ती के वापस जाने के मामले में सुरेश्वर का मनोभाव क्या है, वह इसका एक अन्दाजा लेगा। उसने तरह-तरह से सुरेश्वर को ठोंक-बजा करके भी देखा, वह प्राय: गूंगा बना हुआ है; न कुछ कह रहा है, न कहेगा। सुरेश्वर का सही मनोभाव समझ में आएगा, ऐसा भी नहीं लग रहा है। हालांकि, अवनी सुरेश्वर के प्रति अब सहानुभूति भी बोधकर रहा था। कुछ भी हो, यह सही बात है कि सुरेश्वर बड़ी आशा-भरोसा करके ही हैमन्ती को लाया था। उसने सिर्फ यह सोचकर नहीं देखा था कि उसका वैराग्य हैमन्ती के चरित्र में नहीं है। बगलवाले कमरे में सुरेश्वर चाय तैयार करते-करते हठात् गुनगुना

उठा। अवनी ने कान लगाकर सुनने की कोशिश की, और कौतूहल अनुभव किया, तो क्या सुरेश्वर गाना गाना जानता है? सुरेश्वर जो गाना गा रहा है, यह भी सही बात नहीं है, वह एक सुर गुनगुना रहा है।

अवनी ने घड़ी देखी : साढ़े सात बजे हैं। रुपए की बात उसे खयाल आई। जेब से लिफाफे में मुड़े हुए रुपए निकाले। इश्योर के पुराने लिफाफे में रुपयों को भर दिया है बिजली बाबू ने, ऊपर उन्हीं का नाम लिखा हुआ है, पोस्ट-ऑफिस की मुहर है। पांच सौ रुपए सुरेश्वर ने कर्ज लिए, बिजली बाबू ने कम-से-कम ऐसा ही कहा। ये रुपए बिजली बाबू कर्ज लेकर लाए हैं, या कि उन्होंने खुद ही दिए हैं—इस विषय में अवनी को सन्देह है। सुरेश्वर जो किस तरह से ऐसे रुपए कर्ज लेता है, और भला कैसे इन्हें चुकाता है, कौन जाने। आश्रम के पीछे हर महीने इतना खर्च करते जाना क्या आसान बात है!

सुरेश्वर दोनों हाथों में दो प्याले चाय लिए हुए कमरे में घुसा, उसका दाहिना हाथ अवनी की ओर बढ़ा हुआ है।

अवनी उठकर आगे बढ़ गया और चाय ली, चाय लेते समय याद आया, थोड़ी देर पहले वह हैमन्ती के कमरे में चाय का प्याला तोड़कर आया है। अकारण इस बार जैसे थोड़ा-सा सतर्क हुआ।

बैठते-बैठते अवनी ने मुस्कराकर कहा, "आप सा'ब गाना-वाना भी गाते हैं क्या?"

"नहीं मैं गाना-वाना नहीं गाता हूं, बस, कभी कभार जरा साध जागती है," सुरेश्वर ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया।

"तो क्या अभी साध जगी थी?"

सुरेश्वर हंसा थोड़ा-सा, बोला, "एक दोहा याद आ गया।" कहकर थोड़ी देर रुका, फिर कैसे आवेश-भरे गले से कहा, "पेड़ों के पत्ते, लोगों की मति, आकाश के बादल तुम्हारी मुट्ठियों में कैद नहीं हैं; अपनी मुट्ठियों में सिर्फ तुम्हीं कैद हो।"

अवनी ने चाय की चुस्की ली; चुस्की लेकर तृप्ति की आवाज की। "वाह चाय तो आपने गजब की बनाई है।"

"आपके घर में तो और भी अच्छी चाय पी थी मैंने।"

अवनी को लगा कि सुरेश्वर की बात में एक प्रच्छन्न इंगित है, जैसे वह कहना चाह रहा हो, कि अवनी के घर में कीमती चाय है, यहां नहीं है। हाथ बढ़ाकर मेज पर से रुपए का लिफाफा उठा लिया अवनी ने, और उसे सुरेश्वर की ओर बढ़ा दिया, "ये रहे पांच सौ रुपए।"

सुरेश्वर ने लिफाफा लिया, लेकर बगल में रखा।

अवनी ने एकाएक कहा, "इस आश्रम के पीछे आपने कुल जमा कितने रुपए लगाए सा'ब?"

सुरेश्वर ने घूर-घूरकर अवनी का चेहरा देखा, उसके बाद सहज ढंग से मुंह पर मुस्कान लाया, बोला, "हिसाब नहीं किया है मैंने।"

"क्यों, आपके आश्रम में तो हिसाब की बही है।"

"है तो। पर उस हिसाब में दूसरे पांच आदमियों के रुपए भी हैं।"

"तो फिर यह पुण्य भी अकेले आपका नहीं है, पांच आदमियों का है।" अवनी ने हंसकर कहा।

सुरेश्वर भी मंद-मंद हंसा, फिर, चाय पीने लगा।

अवनी जरा-सा पीठ टिकाकर बैठा, फिर सिगरेट सुलगाई। न जाने क्या सोच रहा था, अन्यमनस्क है। सोचते-सोचते सहसा बोला, "सुना है कि आप बड़े धनी घर के लड़के हैं।"

"यह भला किसने कहा ? गगन ने ?" हल्के से जवाब दिया सुरेश्वर ने।

"गगन क्यों कहेगा, बिजली बाबू ने कहा है, हेमन्ती ने भी कहा है…"

"उन लोगों ने बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहा; हम थे गांव के आदमी, पिताजी की कुछ जमीन-जायदाद थी।"

"जमींदारी थी ?"

"नहीं, कोई खास जमींदारी नहीं थी।"

"कहां घर था आप लोगों का ?"

सुरेश्वर ने अपने गांव का नाम बताया।

अवनी ने चाय की एक बड़ी-सी चुस्की ली, और प्याला नीचे उतारकर रखा, फिर एक लम्बा-सा कश लगाया; उसके बाद कहा, "आपके मां-बाप बहुत धार्मिक थे क्या ?"

"धार्मिक !" सुरेश्वर कैसा विस्मित हुआ था। उसे अपने मां-बाप की बात याद आई। बोला, "क्यों, आप यह क्यों पूछ रहे हैं ?"

"नहीं, बचपन से वैसे क्लाइमेट में पलने-बढ़ने पर बहुतों पर ऐसी झक सवार हो जाती है।" अवनी ने हल्के ढंग ने हंस-हंसकर कहा।

सुरेश्वर भी हंसा। कुछ सोचकर बोला, "मेरा बचपन ज्यादा अकेले में ही गुजरा था। मां को तरह-तरह का डर लगा रहता था। मुझे निगरानी में रहना पड़ता था।"

"तो बचपन से ही आप सुबोध बालक थे !" अवनी हंसा, "घर के अन्दर ही आप बड़े हो उठे, दुनिया नहीं देखी आपने।"

सुरेश्वर ने अवनी की आंखों में आंखें डालीं। अवनी ने मानो सचमुच ही यह सोच लिया है कि उसने दुनिया नहीं देखी है।

"आपने तो जीवन को ही नहीं पहचाना, सा'ब।" अवनी ने फिर कहा, नि:श्वास छोड़ा।

सुरेश्वर की समझ में नहीं आया कि अवनी की एक ऐसी धारणा कैसे हुई है कि दुनिया में कुछ भी उसने नहीं देखा है। दुनिया में किसे देखना कहते हैं ? किस नज़र से देखने पर देखना होता है ? जीवन के किस पहलू पर निगाह डालने पर उसे देखा जा सकता है ?

सुरेश्वर बोला, "आपकी यह बात मैं अच्छी तरह समझ नहीं सकता हूं। आखिर जीवन को किस नज़र से देखना होगा ?"

अवनी ने सुरेश्वर के प्रश्न को कोई महत्व नहीं दिया, हल्के से कहा, "आदमी की नज़र से ?"

"मैं तो पेड़ नहीं हूं।"

"मगर आप हमारी तरह भी नहीं हैं।"

"फर्क थोड़ा-सा होता है, नहीं होता है ? आप और बिजली बाबू क्या एक-से हैं ?"

"हम दुनिया के आदमी हैं, आम आदमी का दोष-गुण, फर्क हममें है। आप हमारे वर्ग में नहीं आते।" अवनी ने इस बार भी थोड़ा-सा परिहास करते हुए कहा।

सुरेश्वर ने चाय के प्याले की बाकी चाय खत्म की। उसके बाद शांत आंखों से मंद-मंद हंसते हुए कहा, "अच्छा, अवनी बाबू, तो आप लोगों की नजर से जीवन कैसा है।"

अवनी बहुत कुछ आलस्य-भरी आंखों से ताक रहा था, सिगरेट का धुआं मुंह में भरा हुआ है। धुआं निगल लिया अवनी ने, फिर जोर के मामूली-से धक्के से धुआं बाहर की हवा में उछाल दिया। थोड़ी देर तक कोई जवाब नहीं दिया। बाद में मजाक करते हुए कहा, "फूलों की सेज नहीं है···।" कहकर सुरेश्वर की ओर कई पल निहारता रहा, मानो समय दिया सुरेश्वर को, अन्त में बोला, "आप भाग्यवान हैं, मेरा भाग्य आपकी तरह होता, तो क्या होता, कुछ कहा नहीं जा सकता है, लेकिन मैं आपकी भांति महाराज होता, तो मुझे अफसोस होता। हम—जैसे आदमी को दुनिया के पाप-ताप में जलना पड़ता है, सा'ब, यह दुनिया कोई खास सुख की जगह-सी नहीं लगती।"

सुरेश्वर ने सुना। कहा, "यह दुनिया क्या सुख-भरी है ?"

"मैं तो जानता हूं कि यह दुनिया दुःख-भरी है।"

"मैं भी यही जानता हूं। दुःख-भरी है यह दुनिया।"

"यह जानकर भी आप सुखी हैं।"

"नहीं; मैं सुखी नहीं हूं—" सुरेश्वर ने धीरे-धीरे कहा।

"तो क्या आप दुखी हैं ?

"हर आदमी दुःखी है।"

"ये सब ठहरी दार्शनिक बातें। मिनिस्लेश बर्ट्रा···।" अवनी बोला। उसका हल्का और हंसी-मजाक का भाव नष्ट होता जा रहा था।

सुरेश्वर बोला, "मनुष्य की नियति की बात यदि सोचें, तो क्या ऐसा नहीं लगता है कि बिना दुःख के उसकी परिणति नहीं है ? यह विश्व बहुत प्रबल है, उसकी तुलना में हम में कितनी शक्ति है ! हम कितने असहाय हैं !"

अवनी ने जैसे सहसा कोई आवेग अनुभव करना शुरू किया था, और वेदना-सी महसूस हो रही थी उसे। बोला, "आप दुःख के बारे में कुछ नहीं जानते हैं। किताबें पढ़ कर, हाथजोड़ कर कोई दुःख को नहीं पहचान सकता।···आप यदि सभी दर्शन की रटी-रटाई बातें करें और कहें कि संसार दुःखमय, मोहमय-शोकमय है, तब तो वह दूसरी बात है। वह है धार्मिक दुःख। आप में कहीं कोई दुःख-सुख है, मैं तो ऐसा नहीं देखता।"

सुरेश्वर विरक्त या क्षुब्ध नहीं हुआ। बोला, "आपने दुःख को कहां पहचाना है ?"

"क्यों, अपने ही जीवन में।"

"मैंने भी तो अपने जीवन में उसे पहचाना होगा।"

"नहीं—" अवनी ने सिर हिलाया, उसे विश्वास नहीं हुआ। बोला, "आप तो सम्पन्न परिवार में, खुशहाली में जन्मे हैं सा'ब, दनदनाते हुए जीवन बिताया है, बदन में कांटे नहीं चुभे हैं। आप तो भाग्यवान व्यक्ति हैं···"

सुरेश्वर नजरें उठाकर निहार रहा था। अवनी के चेहरे का भाव कैसा उत्तेजित है, तिक्त है, यहां तक कि व्यंग्य-भरा है। सुरेश्वर बोला, "खुशहाली में तो मैं पैदा हुआ हूं, मगर हमारे परिवार में कोई कांटा नहीं था, यह अपने कैसे जाना ?"

"यह समझ में आ जाता है। मेरी तरह आपकी सौरी गन्दी नहीं थी।"

सुरेश्वर ने अपलक देखा अवनी को। कहा, "मेरी मां ने आत्महत्या की थी। सुख-भरे परिवार में कोई आत्महत्या करता है ?"

अवनी न जाने कैसा चौंक उठा। पलकें नहीं गिरीं। निस्पन्द होकर ताकते-ताकते अन्त में अस्फुट स्वर में बोला, "आत्महत्या !"

सुरेश्वर स्थिर दृष्टि से निहारता रहा।

थोड़ी देर बाद न जाने कैसा आत्म संवरण-हीन होकर अवनी बोला, "आत्म-हत्या करना फिर भी अच्छा है। लेकिन मेरी मां थियेटर की मशहूर औरत थी। अपने पिता के श्राद्ध के समय मैंने सिर मुड़ाया था। यद्यपि वह मेरा पिता नहीं था।"

सुरेश्वर ने हठात् कैसे निष्ठुर की भांति कहा, "मेरा पितृ परिचय भी गौरव-पूर्ण नहीं है। उनकी उपपत्नी थी, दूसरी सन्तान थी।"

अवनी स्तब्ध है, निर्वाक है; अपलक सुरेश्वर को देख रहा था। लगा, सुरेश्वर मानो उससे कह रहा हो, आपको और क्या कहना है ? और भी कोई दुःख-दुर्भाग्य की बात है ?

## इकतीस

अवनी को गए बहुत देर हो चुकी है।

अवनी के जाने के बाद मालिनी आई थी खाना लेकर; खाना रखकर कमरे के कुछेक फुटकल काम निबटाए, बाहर के दरवाजे-खिड़कियां बन्द किए, बन्द करके चली गई। जाते समय भी देखा कि सुरेश्वर चिट्ठी-पत्री लिख रहा है, बाहर से दरवाजा निःशब्द खींच दिया और गई। भरतू छुट्टी लेकर घर गया हुआ है, इस समय उसके गांव-घर में खेती का कुछ काम करता है; उसके लौटते-लौटते तीनेक सप्ताह लग जाएंगे। भरतू के न रहने की वजह से और सुरेश्वर की तबीयत खराब होने के बाद से मालिनी ही मोटे-तौर पर सुरेश्वर की देखभाल कर रही है। दूसरे दिन मालिनी जब खाना लेकर आती थी, आकर छोटे-मोटे काम-काज निबटाती थी, तो सुरेश्वर उससे दो-चार बातें करता था। सस्नेह व सकौतुक कभी आश्रम की अन्दरूनी खबर— क्या रसोई-वसोई बनी, किसे क्या खाने को दिया जा रहा है, डॉक्टरों के लिए क्या इन्तजाम हुआ, इत्यादि पूछता था; कभी बाकायदा विस्मय प्रकट करके कहता था—"हां री मालिनी, अपने कमरे के सामने बेर के पेड़ में इस बार मैंने एक भी बेर नहीं देखा, क्या बात है, बता तो ?" तो कभी भला हैमन्ती की बात पूछता था।···पर आज खाना रखने आई, तो मालिनी ने देखा, भैया काम कर रहे हैं। दो-एक हुंकारियां भरने के अलावा कुछ भी नहीं बोले। मुंह-आंख गम्भीर-सा लगा, व्यस्त दीखे। फिर

एक समय बहुत-ही अन्यमनस्क-से लगे, जैसे कितना क्या सोच रहे हों। खाना में आज थोड़ी-सी देरी भी हुई थी। मालिनी हाथ का काम निबटाकर गई।

मालिनी के चले जाने के थोड़ी देर बाद सुरेश्वर लिखना खत्म करके उ रात के वक्त ही साधारणतः सुरेश्वर चिट्ठी-पत्रों लिखने का काम निबटा र है, अवनी को थोड़ी दूर तक पहुँचाकर वापस आ करके सुरेश्वर थोड़ी देर तक चाप बैठा हुआ था। कुछ करने को जी नहीं चाह रहा था। मन चंचल हुआ बाद में मानो मन को संयत व स्थिर करने के लिए रोज के नियमानुसार चिट्ठी-पत्री लिखने बैठा। दो साधारण चिट्ठियां और पटना में उमेश बाबू एक चिट्ठी लिखी। उसके बाद उठा। रात हुई है; इस समय तक वह स लिया करता है।

घर के अन्दर के बरामदे में हाथ धोने आया, तो सुरेश्वर ने देखा कि चांदनी आ गई है, वह हवा में रात और जाड़े का स्पर्श भी अनुभव कर रह शायद रात होती जाने की वजह से ओस गिर रही है, चारों ओर सन्नाटा है, के पत्तों पर शायद हवा की आवाज दीर्घ श्वास की तरह गूंज रही है।

सोने के कमरे में आकर खाने बैठा सुरेश्वर। मालिनी ने फर्श पर अ बिछा कर, पानी उड़ेल करके रखा है; गोल जालीदार ढक्कन के नीचे खाना दूध का कटोरा भी गरम करके ढककर रख गई है। खाने के नाम पर च पतली-पतली रोटियां हैं, शायद मालिनी ने उन्हें अपने हाथों सेंका है, सिम हुआ आलू है—गोलमिर्च के चूरे से साना हुआ, मटर और टमाटर से बनाई एक तरकारी है।

खाने बैठा, तो सुरेश्वर ने फिर अवनी की बात सोची। अवनी से जैसे सी ढेर सारी बातें हो सकती थीं, पर नहीं हुई। दो-चार मामूली बातें अ अवनी ने कही थीं बाद में। वे कोई खास बातें नहीं थीं, न उनमें ताप था, न कुलता थी। शायद एकदम अकल्पनीय अवस्था के मुंह-दर-मुंह खड़ा होकर विह्वल व विमूढ़ हो गया था; क्या कहे न कहे, क्या सोचे, यह वह तय नहीं पा रहा था; आदमी की बद्धमूल धारणा अप्रत्याशित रूप से आलोड़ित होने जैसा होता है। अवनी जैसे आसानी से और कुछ नहीं सोच ले पा रहा था। वार ऐसा भी लगा कि वह यह सब विश्वास नहीं कर पा रहा है, सोच रहा है शिकस्त देने के वास्ते सुरेश्वर झूठ बोल रहा है। अविश्वास और क्रोध उस दृष्टि में उभर उठा था, लेकिन वह सामयिक था। विश्वास किए बिना उसे उप नहीं था। अत्यन्त निराश हो जाने की तरह तब अक्षम होकर वह अपने ही ऊ विरक्त हो रहा था। अवनी के आचरण को डींग नहीं कहा जा सकता है, सुरेश के आगे वह डींग नहीं मार रहा था—फिर भी, जीवन के बारे में, जीवन के दु व तिक्तता के बारे में अवनी में न जाने कैसा एक अहंकार का भाव था, अव उस अहंकार को लेकर शायद लड़ने आया था, पर आकर देखा कि उसका अ कार अर्थहीन है। अपनी विफलता के चलते वह परेशान, लज्जित व काठ मारा-सा हो गया।

सुरेश्वर को लगा था, यदि अवनी तब उतना विमूढ़ व विक्षुब्ध नहीं होता, हो सकता है, वह और भी कुछ कहता। कुछ कहने का आवेग उसकी दृष्टि

उभर उठा था, वह उत्तेजित हुआ था। किन्तु आघात और निराशा ने अवनी को परेशान व निर्वाक् कर डाला।

अवनी के चरित्र में, सुरेश्वर ने जितना उसे पहचाना है, एक प्रकार का क्रोध व विरक्ति है जो बहुत कुछ आत्मग्लानि—जैसी है। यह आत्मग्लानि उसे बीच-बीच में निर्दय बनाती है, उत्तेजित व असंयत करती है। सुरेश्वर की समझ में नहीं आया कि अपने बारे में गुप्त रूप से अवनी में जो हीन-भावना है उससे यह मानसिक तिक्तता पैदा हुई है या नहीं। हो सकता है, यह अन्यतम कारण हो।

खाना खत्म हुआ था सुरेश्वर का, वह उठ पड़ा। बरतनों को एक ओर हटाकर रखा। बरतन हटाकर रखते समय नजर आया, मालिनी ने कई चम्मच चीनी भी रख दी थी, दूध के कटोरे की बगल में कांच के छोटे-से बरतन में वह चीनी पड़ी ही रही।

बाहर गया था, मुंह-हाथ धोकर लौटा सुरेश्वर, बैठक का दरवाजा बन्द किया था पहले ही—बैठक की टाट की सिलिंग के सूराखों में कई गौरैयों ने घोंसला बनाया है, वे रात को बीच-बीच में फड़फड़ा उठती हैं। उनके फड़फड़ाने-जैसी एक आवाज हुई। सोने के कमरे में एक खिड़की खुली हुई है, हवा आ रही थी। सुरेश्वर मुंह में दो लौंग के दाने डालकर खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। मैदान में नरम चांदनी छिटकी हुई है, थोड़ी-सी ओस गिरी है रात में, चारों ओर सन्नाटा है, निस्तब्धता है। दूर की ओर ताकने पर ओस और चांदनी से नहाया मैदान जलाशय-सा दीख रहा था। नजदीक और दूर की फूलों की झाड़ियां और पेड़-पौधे मानो सोये हुए हों।

दूर मैदान की ओर ताका, तो सुरेश्वर को एकाएक लगा, जाते समय अवनी उतने होश में नहीं था, शायद वह हेम से मिलकर भी नहीं गया है। अस्थिर चित, विमर्ष और अन्यमनस्क दशा में अवनी यदि सीधे गाड़ी में जाकर बैठा हो, तो वह उसी दशा में चला गया होगा। इतना अस्थिर मन लिए उस खुली जगह से होकर बाट-घाट को पार करके अवनी चला गया, यह सोचकर सुरेश्वर को थोड़ी-सी दुश्चिन्ता हो रही थी।

खिड़की से हट आया सुरेश्वर। कमरे के अन्दर कुछेक पग चला। घड़ी देखे बिना भी समझ में आता है कि रात हुई है। मालिनी मसहरी लगाकर उसे ठटरी के ऊपर उठाकर रख गई है। सुरेश्वर ने मसहरी के कोनों को और भी जरा खींच लिया, खींचकर मसहरी गिराकर बिस्तर के हर ओर खोंस लिया। फिर बत्ती बुझाकर आया लेट गया।

रात को अभी भी जाड़ा है, कम्बल ओढ़ते-ओढ़ते जैसे थोड़ा जाड़ा लगने लगा, रोंगटे खड़े हो गए। लेटे-लेटे उसने इस सिहरन को दबा लिया। बहुत सम्भव है कि सर्दी-बुखार के बाद उसके शरीर की कमजोरी अभी भी पूरे तौर पर दूर नहीं हुई हो, थोड़े ही में जाड़ा महसूस हो रहा है।

अन्धकार में पलकें बन्द किए लेटे-लेटे सर्वांग कैसा अवश होने को आया, स्नायुओं में मानो कोई चेतना नहीं रही, बिस्तर का स्पर्श भी महसूस नहीं हो रहा था; लगा उसकी चेतना निष्क्रिय हो गई है। हठात्, ऐसे क्षण में, तन्द्रा में पल-भर में सुरेश्वर ने सपना देखा। सपना देखा : पलंग पर मां की लाश है, सिरहाने बीनू मौसी मां के पैरों से लिपटकर रो रही है; मां के सिरहाने निर्मला चुपचाप

बैठकर माँ के मुंह की ओर अपलक निहार रही है; और पलंग की पाटी के पास पिताजी खड़े हैं। पिताजी के हाथ में एक बहुत बड़ी फुलझड़ी है—बहुत कुछ पिताजी की शौक की कमजोरी छड़ी-जैसी; फुलझड़ी जल रही है—उसके मुंह से रुपहली चिनगारियाँ और चमकीली आभा झड़ रही है। फुलझड़ी की रोशनी में माँ का सर्वांग दिखाई पड़ रहा था; मुंह और गले को छोड़कर माँ का सभी कुछ ढका हुआ था। गले में एक थोड़ा-सा नीला दाग है, नीला का कण्ठहार पहने माँ सो रही हो।

यह सपना क्षण-भर दर्शन देकर जैसे विलीन हो गया। तन्द्रा भी दूर हो गई थी। सुरेश्वर ने अन्धकार में आँखें खोलीं, तो उसे और कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

अपनी माँ को सपने में, बहुत दिन हुए नहीं देखा था सुरेश्वर ने। आज देख पाया, तो उसे बहुत अच्छा लग रहा था। जैसे एकाएक वह लड़कपन में लौट गया था और बालक की भाँति माँ के पलंग की तरफ भागा जा रहा था; नजदीक आकर सुरेश्वर समझ पाया और देख पाया कि माँ पलंग पर लेटी हुई नहीं है—बल्कि माँ की लाश लिटाई हुई है। वह आहत हुआ। बाद में सुरेश्वर एक-एक करके निर्मला, बीनू मौसी और पिताजी को देख पाया। देखने के बाद वह अब बालक नहीं रहा, फिर वयस्क हो गया।

यह सपना विचित्र था। माँ की मृत्यु के समय बीनू मौसी या निर्मला के रहने की बात नहीं थी। बीनू मौसी उन लोगों के पास नहीं थी, माँ ने उसे बहुत पहले ही छुट्टी दे दी थी घर-गृहस्थी से, उसे तीर्थ पर भेज दिया था। यहाँ तक कि माँ की मृत्यु की खबर भी देरी से मिलने की वजह से बीनू मौसी श्राद्ध के समय नहीं आ सकी थी। फिर भी सपने में माँ की लाश के सामने बीनू मौसी न जाने कैसे पहुंच गई।

निर्मला के साथ माँ का किसी प्रकार का सम्पर्क होने की बात ही नहीं उठती है। माँ की बात निर्मला ने कुछ सुनी थी बस, सुरेश्वर ने ही उसे बताया था। वही निर्मला जाने कैसे माँ के सिरहाने आकर बैठी, कौन जाने? सपने में तो सभी कुछ सम्भव है। फिर निर्मला भी बहुत अशोभनीय नहीं दीख रही थी। और जो सबसे अधिक अजीब अशोभनीय था वह थे पिताजी। पिताजी जो कैसे एक छड़ी जैसी लम्बी फुलझड़ी जलाकर माँ के पलंग के सामने खड़े रहे, कौन जाने। आखिर पिताजी क्या दिखाना चाह रहे थे?

सुरेश्वर ने जैसे यह सोचने की कोशिश की कि पिताजी किस वेश में खड़े थे। पर याद नहीं कर सका। कलकत्ता का काम निबटाकर जब पिताजी घर लौटते थे, तो उनकी पोशाक में कुछ हेर-फेर होता था। कीमती सिल्क का कुर्ता, फरासडांगे की धोती, हाथ में छड़ी, पैरों में चमचमाते पम्प शू। एक बार पिताजी जब कलकत्ता जाकर महीने-भर बाद लौटे, तो उनके लौटने के दूसरे ही दिन सबेरे माँ को उनके सोने के कमरे से फाँसी लगी हालत में निकालकर लाना पड़ा था। पिताजी तब भी अपने कमरे में बिस्तर पर सोए हुए थे, आकाश में उस दिन सबेरे से ही काले-काले बादल छाए हुए थे, वर्षा हो रही थी, वर्षा रुकती थी और फिर होती थी। झकोरा आ रहा था। बादल गरज रहे थे।

सुरेश्वर अपनी माँ की मृत्यु और आनुषंगिक घटनाओं को विच्छिन्न ढंग से याद कर रहा था और सोच रहा था। गाँव के घर में माँ का आना सम्भवतः पूर्व-

मुखी था, खिड़की खोलने पर नदी का एक हिस्सा दिखाई पड़ता था, और दिखाई पड़ते थे आदिगन्त फैले धान के खेत—नदी के उस पार। मां के कमरे में पुराने जमाने के भारी-भारी काफी माल-असवाव थे। जव मां के दिमाग की गड़वड़ी शुरू हो गई तो मां अपनी मर्जी से सारे सामानों को एक-एक करके अपने कमरे से निकाल देने लगी; एक वहुत वड़े विलायती कांच के आईने, सोने के पलंग और गहनों के सन्दूक को छोड़कर मां के कमरे में और कुछ नहीं था आखिरकार। पानदान और सोने की दांत खुरचने की तीली भी रहती थी। मां को रूप का अहंकार नहीं था, फिर भी वह वहुत अप्रकृतिस्थ हो जाती थी, तो आईने के सामने खड़ी होकर अपने उस असामान्य रूप को खुद ही देखती थी, किसी-किसी समय तो कोई लज्जा भी नहीं रखती थी। पिताजी ऐसे समय आस-पास कहीं दिखाई नहीं पड़ते। अवश्य पिताजी ने मां के साथ दाम्पत्य सम्वन्ध नहीं रखा था; पारिवारिक सम्वन्ध रखा था। दिन के वक्त पिताजी के खाते समय शाम तक में मात्र एक वार मां पिताजी के सामने आकर वैठा करती थी और तभी जो भेंट-मुलाकात और वातचीत हुआ करती थी पति-पत्नी में।

इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि मां ने अप्रकृतिस्थ अवस्था में आत्महत्या की थी। किन्तु सुरेश्वर को वाद में यह सन्देह हुआ था कि मां ने जिस दिन आत्महत्या की थी उस दिन पिताजी कलकत्ता से वापस आने के वाद रात को मां के कमरे में गए थे और मां व पिताजी के वीच किसी प्रकार का कलह हुआ था। वहुत सम्भव है कि मां उस दिन यह जान पाई थी कि कलकत्ता में पिताजी की उपपत्नी की कोख से जन्मी एक और सन्तान है। मां के अहंकार और सम्मान को हो सकता है, आभिजात्य को इससे चोट पहुंची थी। यद्यपि पिताजी के सुखभोग के विषय में मां ने अवहेलना दिखाई थी, अन्य रमणी के साथ पिताजी को रहने दिया था, फिर भी मां पिताजी की इस दूसरी सन्तान को सहन नहीं कर सकी थी। पिताजी ने मां से क्या कहा था, क्या कलह हुआ था, यह सुरेश्वर नहीं जानता है। यह सभी कुछ उसका अनुमान है। आत्महत्या के वाद मां के कमरे का दरवाजा अन्दर से खुला हुआ था, और पिताजी जो मां के कमरे में गए थे, उसके प्रमाण के रूप में पिताजी का सिगरेट-केस मां के कमरे में पड़ा हुआ था। वाद में श्राद्ध के वाद पिताजी ने जिस दिन मां की तसवीर के सामने खड़े होकर आंसू वहाए थे उस दिन पिताजी ने अपने अनजाने में जैसे कलह के सम्वन्ध में कुछ कह डाला था। सुरेश्वर को छोड़कर और किसी के यह जानने की वात नहीं है। सुरेश्वर ने भी तव यह अच्छी तरह नहीं समझा था।

पिताजी जो क्यों एक ऐसी हालत में फुलझड़ी जलाए खड़े रहे, यह सुरेश्वर की समझ में नहीं आ रहा था। तो क्या मां की मृत्यु पिताजी के लिए उत्सव का विषय हुई थी? वच्चों की तरह हर्ष दिखाकर पिताजी फुलझड़ी जलाते हैं? वस्तुतः मां की मृत्यु से पिताजी का लाभ या हानि कुछ भी नहीं हुआ था। जीते जी भी मां पिताजी के लिए वाधा नहीं थी, मरकर भी उसने पिताजी की कोई वाधा दूर नहीं की थी। मां के न रहने पर पिताजी ने जो एक वार विवाह किया था या कलकत्ता में रखी उपपत्नी को पत्नी की मर्यादा देकर घर लाए थे, ऐसी वात भी नहीं। तो फिर ऐसा क्या आनन्द का कारण हुआ जिससे पिताजी फुलझड़ी जलाए मां की मृत्यु-शय्या की वगल में खड़े रहे!

सपने का अर्थ ढूंढ़ निकालने के लिए सुरेश्वर के अस्थिर या व्याकुल होने का कोई कारण नहीं था। वह व्याकुल नहीं हो रहा था। फिर भी यह अजीब अटपटा दृश्य उसे थोड़ी-सी परेशानी में डाल रहा था। और थोड़ी-सी बेतरतीब चिन्ता के बाद उसे लगा, पिताजी जैसे मां की तरफवाला दृश्य दिखाने की खातिर हाथ में फुलझड़ी लिए खड़े थे, फुस्स-फुस्स करके रूपहली चिनगारियां बिखेरती हुई जो चमकीली रोशनी जल रही थी पिताजी उस रोशनी से मां को पहचनवा दे रहे थे; 'यह रही तुम्हारी मां, मूर्ख है, घमंडी है, पागल है; मरना जानती है, जीना नहीं जानती। उसका तमाम जीवन इसी तरह से बीता है—पलंग पर बाल फैलाए लेटकर, दासी के हाथों महावर रचवाकर। तुम यह मत सोचो कि बीनू रो रही है, बीनू तो तुम्हारी मां के पांवों में महावर रचा रही है।'

इस कल्पना से सुरेश्वर का जैसे उतना जी नहीं भरा। उसने दूसरा कुछ सोचना चाहा, सोचते समय देखा, इस सपने में पिताजी एक अलग हिस्सा हैं और मां, निर्मला और बीनू मौसी दूसरा हिस्सा हैं; पिताजी जीवन का वह हिस्सा हैं—जहां जीवन का अर्थ है: भोग, मौज-मस्ती, सुख, अपव्यय, असंयम, स्वार्थपरता, नीचता—यहां तक कि निष्ठुरता। मां, निर्मला और बीनू मौसी—जीवन का दूसरा हिस्सा हैं, जहां है मूर्खता, अभिमान, अहंकार, निराशा, वेदना, सहिष्णुता, स्नेह, प्रेम—यहां तक कि आत्मनिग्रह।

सुरेश्वर अब की बार जैसे बहुत कुछ सन्तुष्ट हुआ। पिताजी ने जो जीवन का भोग किया था और भोग करने में विवेक में कहीं पाया नहीं पाई थी, इसमें सन्देह नहीं। लम्बे अरसे तक पिताजी नहीं जिए थे, जब तक वे जिन्दा थे उन्होंने अपने आपको फुलझड़ी की तरह जला डाला था। उसके लिए पिताजी को न तो कोई पछतावा था, न दुःख। यहां तक कि पिताजी ने अपनी उपपत्नी और उस सन्तान के लिए भी कोई माया-ममता अनुभव नहीं की थी, उन लोगों के वास्ते न वे कुछ रख गए, न उन्हें कुछ दे गए। भोग का विषय, वस्तु व उसकी परिणति की तरह उन्होंने उन्हें देखा था। पिताजी के चरित्र में नीचता और निष्ठुरता की भी सीमा नहीं थी।

मां की लाश की बगल में निर्मला और बीनू मौसी जो क्यों बैठी हुई थीं—इस बार सुरेश्वर यह समझ पाया, तो अब अवाक् नहीं हो रहा था। मां की बगल में वे लोग फबती हैं, यद्यपि ये लोग एक नहीं हैं। स्वतंत्र और अलग हैं, तो भी इस हिस्से में जीवन का विषाद और विफलता है, शोक व क्रन्दन है। मां की आत्महत्या, निर्मला की मृत्यु—ये एक-सी नहीं हैं, मां का भाग्य और विडम्बना या निर्मला का भाग्य एक-सा नहीं है; मां में निर्मला की वह अद्भुत उदासीनता, निर्लिप्त सहिष्णुता और ईश्वर-विश्वास नहीं था। बीनू मौसी तो बिलकुल भोली-भाली थी, स्नेह और ममता के अलावा उसमें न रूप था, न चरित्र। उसने सुरेश्वर का सन्तान की तरह लालन-पालन किया था; फिर भी बीनू मौसी दुःखी थी! दुःखी थी, कारण, बीनू मौसी ने सारे जीवन में भी अपने लिए कुछ नहीं पाया था।

सहसा स्वप्न-विषयक कल्पनाएं गड्ड-मड्ड होकर मन से हट गईं, वे कल्पनाएं मन से हट गईं, तो अवनी की बात याद हो आई सुरेश्वर को। और न जाने कैसे अनजाने में ही उसने अवनी को सपने के दृश्य में खड़ा करना चाहा, तो

क अवनी के लिए कहीं स्थान नहीं हो रहा है। पिताजी की वगल में अवनी को ड़ा नहीं किया जा सकता है—यद्यपि पिताजी के चरित्र की एक चीज अवनी है; वह है अपचय—जीवन का अपचय करने की कामना। निर्मला, मां और न् मौसी की तरफ भी अवनी को नहीं रखा जा सकता है, यद्यपि अवनी में कहीं ोई गहरी वेदना व निराशा है। अवनी उन लोगों जैसा नहीं है, कहीं जैसे अलग ी।

सुरेश्वर को एकाएक लगा, अवनी उसके पिता की उपपत्नी का पुत्र हो सकता ा, ऐसा होता, तो अचम्भे में पड़ने लायक कुछ नहीं होता; यद्यपि अवनी उसके पता की उपपत्नी का पुत्र नहीं है, उसके पिता की उपपत्नी थियेटर की अभिनेत्री हीं थी। भाग्य की दृष्टि से दोनों स्थितियों में एक सादृश्य है, वस, इतना ही।

अवनी उसे दुनिया और जीवन पहचनवाने आया था। सुरश्वर ने मानो थोड़ी- ी विह्वलता बोध की। कातर हुआ। मैंने जीवन में कुछ नहीं देखा है? लड़कपन जिन्हें देखा है वे लोग तो मेरे जीवन के वाहर नहीं थे, न उनमें से कोई इस ुनिया के वाहर था। मेरे लिए कोई अलग व्यवस्था नहीं हुई थी दुनिया में, मैं ाग्यशाली नहीं था, दुनिया की ढेर सारी गन्दगियों, फूहड़पन और हृदयहीनता मेरा जन्म से परिचय है।

वचपन से मैं अकेला था, मेरा कोई साथी नहीं था, मैं मां की निगरानी में शिशु की भांति वड़ा हो उठा था। मां को हरदम यह डर लगा रहता था कि मैं मौत मरूंगा। पता नहीं क्यों, मां के मन में यह धारणा पैदा हुई थी। पिताजी ी मुझसे शत्रुता कर सकते हैं—मां ऐसा भी सोचती थी। फलस्वरूप पिताजी के ाथ मेरा पिता-पुत्र का सम्वन्ध किसी भी दिन हार्दिक नहीं हुआ था। उस दृष्टि े मुझे पितृहीन या पिता का पालित-पुत्र भी कहा जा सकता है। मां भी मेरी साथी नहीं थी। मेरे ऊपर मां की दृष्टि थी, वस, हृदय नहीं था। एक दिन मां जाड़े की दुपहरी में धूप में वाल फैलाए वैठकर पानदान वगल में रखे ताश खेल रही थी। मैं नजदीक में खरगोश का पिंजड़ा लिए वैठकर खेल रहा था, वह खर- गोश न जाने कैसे पिंजड़े में से वाहर निकल आया और दालान से होकर दन- दनाता हुआ भागा; मैं भागकर उसे पकड़ने जा रहा था; मां ने कहा, 'कहां जा रहा है तू?' मैंने कहा, 'मेरा खरगोश भाग गया है।' मां वोली, 'भाग गया है, तो भागने दे उसे, तू मत जाना। मैं दूसरा खरगोश मंगा दूंगी।'···मां जव तक जिन्दा थी किसी भी दिन उसने मुझे खुद मेरी अपनी चीज को पकड़कर रखने और चुन लेने नहीं दिया था। मां के आंचल के नीचे हो उठने के सिवा मुझे कोई स्वाधी- नता नहीं थी, न मुक्ति थी। मैं जो छुटपन में थोड़ा-सा निर्जीव, संगीहीन और डरपोक था वह मां के चलते। मां के देहान्त के वाद मेरे आस-पास फिर दीवार नहीं रही, पिताजी ने मुझे अवाध स्वाधीनता दी थी, कारण, हमारे वीच कोई गहरा व हार्दिक सम्वन्ध न रहने की वजह से पिताजी के लिए तव मुझे स्वाधी- नता दिए विना उपाय नहीं था। मैं जीवन के उस ओर नहीं जा सका—जहां अनगिनत लोग स्नान-यात्रा में चले जा रहे हैं, जहां का पानी गन्धक-कूप की भांति डव-डव करके उवल रहा है। सुयोग और सामर्थ्य होने के वावजूद मैं उल्लास से दूर रहा हूं।

कल्पनाएं वेतरतीव हो गईं, तो सुरेश्वर मानो एकाएक कैसे एक व्यवधान में

झिझक आया। थोड़ी देर तक फिर उसमें कोई उत्साह नहीं रहा, बहुत दूर पर बैठे उदास होकर निहारते रहने की तरह वह अतीत की ओर निहारता रहा, विशेष रूप से उसने कुछ देखा नहीं। निहारते-निहारते असम्बद्ध ढंग से वह यह-वह याद कर और दो-चार आदमियों को जैसे देख पाया; पर कहीं उसका दिल नहीं जमा, सिर्फ एक पुराना दोस्त दिवाकर याद आया; याद आया, दिवाकर कहा करता था : "मैं रोज रात को एक बार लाइफ की बैटरी चार्ज करा लेता हूं, समझे; सवेरे बिलकुल न्यू बैटरी साला कम आममाम करनी होगी'''।" सुरेश्वर याद कर पाया, कलकत्ता में हॉस्टल से बी० ए० पढ़ते समय दिवाकर एक दिन कहां भाग गया, महीने भर बाद पता चला कि वह भद्रेश्वर की ओर रेल से कटकर मर गया था। कैसे, किस कारण यह सब घटा था किसीने नहीं जाना। किन्तु दिवाकर के जीवन में यह दौड़ ज्यादा दिनों तक नहीं टिकी।

सुरेश्वर अपनी जवानी में दिवाकर की कोटि का नहीं था, लेकिन वह दिवाकर—जैसा ही सरल और जीवन्त था, शिष्ट व नम्र था। दिवाकर उसे प्यार करता था, कहा करता था : "तू बड़ा सावधान है, यू आर ए कैट'''तुझे साला कभी भी कुछ नहीं होगा। अरे सावधान राही, एक बार तो राह भूलो—; पोयेट ने कहा है, राह भूलने को, और साला तू है कि बिलकुल सीधी राह चला जा रहा है।"

हो सकता है, दिवाकर ने ठीक ही कहा था, सुरेश्वर सावधान था। सावधान का मतलब यह नहीं कि वह जीवन के बाहर-बाहर था। उसे कभी भी यह नहीं लगा था कि जीवन से खेलकर वह कुछ पा सकता है। उसने मधुर, सन्तुष्ट और शिष्ट रहना चाहा था और जीवन के प्रति उसमें आवेग था आम लोगों का-सा। उसके दोस्त उसे बराबर प्यार करते थे, शिक्षक लोग उससे स्नेह करते थे, हेम के घर में सभी उसे पसन्द करते थे।

इस तरह से जवानी की प्रारम्भिक अवस्था बीती, उसके बाद उसे फिर से गांव के घर में जाकर रहना पड़ा, पिता का निधन हो गया, परिवार में वह एकदम अकेला था, जमीन-जायदाद थी, कलकत्ता से पिता की उपपत्नी उस जमीन-जायदाद पर हक जताकर चिट्ठी देती, मुकदमा करने की धमकी देती। सुरेश्वर कलकत्ता चला आया फिर।

जीवन का यह अध्याय भी सुख-दुःख से, कभी क्षोभ से, तो कभी रोमांच से भरा हुआ था। सम्पत्ति की समस्या मिटानी पड़ी, इसलिए सुरेश्वर को कभी क्षोभ नहीं हुआ था, उसने स्वेच्छा से जो कुछ देना था, दिया था। उसके बाद हेम'''हेम की बीमारी'''

सुरेश्वर को यहां फिर मानो बाधा मिली और वह कल्पना थोड़ी-सी बेतरतीब हो गई। हेम की बीमारी, जीवन-मृत्यु का वह द्वंद्व, हेम की वह असहायता, उसके परिवार पर वह आकस्मिक वज्रपात—यह सब अभी अति दूर के अस्पष्ट दृश्य-सा हो गया है। यह अस्वीकार करने से लाभ नहीं कि तब उस उम्र और हालत में सुरेश्वर हेम के प्रति आकृष्ट हुआ था। जवानी के उस प्रेम ने उसे उद्वेलित किया था, हेम के लिए उसकी दुश्चिन्ता का अन्त नहीं था। हेम का साहचर्य, साथ और हेम को चंगा करना उसका एकमात्र काम्य विषय था। हेम जब चंगी हो उठी, तो सुरेश्वर के जीवन में एक ऐसा स्वाद आया था जिसे पहले कभी भी

उसने अनुभव नहीं किया था। हेम का तन-मन जैसे उसका था, हेम का निःश्वास मानो उसके श्वास-प्रश्वास के साथ घुला-मिला था, हेम का हृदय जैसे उसके हृदय में शामिल था।

ऐसा नहीं लगा था कि यह सुख, यह स्वाद, यह आनन्द किसी दिन निराशा लाएगा।—हालांकि न जाने क्या हुआ, कि हेम फिर उसके आनन्द का कारण बनी नहीं रही। न जाने क्या नहीं है, न जाने क्या खो गया है, न जाने कहां कुछ शून्यता रहती जा रही है—एक ऐसा भाव था मन में। अवसाद महसूस होता था। लगता, यह प्रेम क्या मुझे सब कुछ दे सकता है? आखिर क्यों ऐसा होना शुरू हुआ था, सुरेश्वर यह नहीं जानता है। उसे सिर्फ लगता, कहीं जैसे एक झूठ हो। या तो उसके मन में या इस प्रेम में।

ऐसे समय निर्मला से उसका परिचय हुआ। निर्मला ने उसके परिपक्व युवा मन को न जाने कहां ले जाकर खड़ा कर दिया। अखिल विश्व में इतना दुःख, वेदना, फरेब, बीमारी और विफलता है जिसकी शायद परिसीमा नहीं है; फिर भी आदमी किस भरोसे जिए? क्यों जिए? निरर्थक जीने में कोई सांत्वना है? निर्मला कहा करती थी : है, कुछ तो है; ढूंढ़कर देखो न कि क्या मिलता है!

निर्मला के सम्पर्क में आकर सुरेश्वर अपने चरित्र की नकली साज-सज्जा को पहचान सका था, यह अनुभव कर सका था कि वह कितना अकर्मण्य है, कहां उसका स्वार्थ है, क्या भीषण उसका अहंकार है, उसमें कितनी भीरुता है, कितनी अवज्ञेय उसकी उदारता है। जीवन के साथ अपने निष्क्रिय सम्बन्ध को ढूंढ़ निकाल पाया, तो सुरेश्वर तब दुःखी हुआ था।

अंधेरे में न जाने किसने सहसा कहा, "निर्मला ने तुम्हें क्या दिया था?"

सुरेश्वर को अंधेरे में प्रायः निःश्वास—जैसे सुर में यह प्रश्न उसके कान के पास सुनाई पड़ा। सुनकर वह न विस्मित हुआ, न विभ्रान्त। निर्मला ने उसे क्या दिया था, यह क्या बताया जा सकता है!

"निर्मला ने तुम्हें दुनिया से, जीवन से, प्यार से दूर नहीं हटा दिया था?"

सुरेश्वर को अब की बार जैसे हंसी आई। निर्मला ने ही तो आखिरकार सुरेश्वर को जीवन में जितना कुछ देना था, दिया था।

उसने मुझे इस वृहत् संसार में अकस्मात् जैसे फेंक दिया और चली गई। मैं अकेला हूं, मैं निराश्रय हूं, मुझे न तो कोई सांत्वना है, न साहस है, न उद्देश्य है। तो क्या मूल्य है इस जीवन का? क्यों मैं जिऊं? मुझे क्या मिल सकता है?

इस शून्यता और अविश्वास के बीच मैंने अपने जीवन का अर्थ तलाशना चाहा था। कलकत्ता छोड़कर मैं चला गया। वह जो—पागल ढूंढ़ता फिरता है पारस पत्थर - उसी तरह। मैं साधु-संन्यासियों, फकीरों, विद्वानों, बुद्धिमानों, धर्म-प्रतिष्ठानों – नाना जगहों में घूमा था। पर मुझे कोई सांत्वना नहीं मिली थी। ऐसा कुछ नहीं मिला था मुझे कि जिससे लगता हो कि मेरा हृदय जुड़ाया। हालांकि मैं यह अनुभव करता था कि निर्मला का लगाया हुआ वह अन्तिम अबीर अब मेरे कपाल पर दिव्य चुम्बन की भांति आंका हुआ है। कुछ मुझे पाना ही होगा।

अन्त में एक दिन मुझे अपने जीवन का अर्थ समझ में आया।

"वह क्या है?"

सुरेश्वर अब की बार हंसा जैसे, बोला : आज मुझे सोने दो
सुरेश्वर की पलकें बन्द होने को आई थीं।

## बत्तीस

सवेरे की ही बस से हैमन्ती चली आई थी। आते समय मुर्शिदाबाद से ... मोड़ तक पैदल आकर बस पकड़ी थी। रास्ता और सवेरा इतना मनोरम व स्निग्ध लगा था कि पैदल चलने की थकान उसने अनुभव नहीं की थी, बल्कि आते समय आँखें फाड़-फाड़कर देखा था और यह अनुभव किया था कि जाड़ा जैसे पीछे मुड़-मुड़कर ताकते-ताकते बहुत दूर चला गया हो, अब वह नजर नहीं आ रहा है; उसके बदले वसन्त आ गया है। वसन्त का एक अस्पष्ट गुंजन जैसे अनुभव किया जा रहा था।

स्टेशन आकर हैमन्ती ने देखा, वह थाएली, इसलिए वे लोग आज इन्तजार कर रहे हैं। वह सीधे बिजली बाबू के ही घर गई। मझली दीदी, बिजली बाबू की छोटी बहू, बाट जोहे बैठी हुई थीं, बैठक में आईं और उसका हाथ थामे उसे खींचती हुई ले गईं: "आइए भई, मैं सवेरे से चातक बनकर बैठी हुई हूं।" फौरन बिजली बाबू के पास पेंसिल से लिखी पुर्जी गई मझली दीदी की।

सारी सुबह और दुपहरी बिजली बाबू के ही घर में गुजरी। आवभगत में कहीं कोई कोताही नहीं हुई। मझली दीदी ने जो किया हुलस, उससे लगा, जैसे दूर देश से कोई रिश्तेदार आई हो घर में, आई है दुपहर और फिर चली भी जाएगी कई घंटे बाद—उतने समय में जितनी आवभगत की जा सके, करें। "हाय राम, यह आप क्या कहती हैं भई, ऐसी सिल्क की साड़ी को सारा दिन पहन कर बरबाद क्यों करेंगी, मैंने साड़ी निकाल रखी है, पहनिए उसे", "बाल भी खूब घने हैं, थोड़ा न मैं आपके बालों में शैम्पू कर देती हूं, जरा भी देर नहीं लगेगी, देखते-देखते बाल सूख जाएंगे" "क्या सुन्दर बाल हैं आपके..." हैमन्ती किसी भी बात में कोई खास आपत्ति नहीं कर पाई। आपत्ति नहीं कर पाई, कारण, कम ही सही, तो भी मझली दीदी से जितना परिचय है, जितने दिन भेंट-मुलाकात हुई है उसमें हैमन्ती यह समझ पाई थी कि उन्हें नकार करके परे हटाकर नहीं रखा जा सकता है। फिर यहां आकर तो मझली दीदी को और भी जैसे नजदीकी आदमी बना लिया है। इसके अलावा, एक समय था जब हैमन्ती का परिचय था अन्धाश्रम के डॉक्टर के रूप में, केवल कर्मठता से इस पारिवारिक अन्तरंगता से वह अपने आपको दूर हटाकर रख सकती थी, पर वह कर्मठता भी अब नहीं है, न परिचय ही रहा है। मझली दीदी की आवभगत, अन्तरंगता हैमन्ती को नापसन्द भी नहीं हुई; बल्कि बहुत दिन बाद वह इस पारिवारिक जीवन का स्वाद व स्पर्श पाकर खुश हुई, मन स्निग्ध लगा।

बिजली बाबू की बड़ी बहू को दूर-दूर रहते ही हैमन्ती ने देखा था पहले; ...

खास नहीं देखा था। परिचय था, तो भी कभी भी उन्होंने हैमन्ती के साथ बैठकर सरसी दीदी की तरह गपशप नहीं की थी, दो-चार मामूली बातें करके अपने काम में चली गई थीं। देखने में आया, आज उन्होंने पूजा-पाठ और घर-गृहस्थी के समय से दो पल बचाकर हैमन्ती से बात-चीत की।

हैमन्ती को बराबर ही मन-ही-मन कौतूहल था: छोटी के साथ बड़ी का ऊपर से जैसा सद्भाव है भीतर से भी क्या वैसा ही सद्भाव है? इस जनाना कौतूहल ने बहुत समय हैमन्ती को व्यग्र किया था, किन्तु समझने या अन्दाजा लगाने लायक मौका कभी भी नहीं आया था। मेल-जोल होता, तो भी जो यह आसानी से समझ में आ जाता, ऐसी बात नहीं; फिर भी कौतूहल था हैमन्ती को। आज उसे लगा कि बड़ी अर्थात् सरसी दीदी की बड़ी बहन ने पति की देखभाल की जिम्मेदारी और घर-गृहस्थी का भार सभी कुछ बहन के हाथ में दे दिया है जैसे घर में बहू के आने पर बेटे का भार मां बहू के ही हाथों दे देती है। यह सोचने में हंसी आती है अवश्य, पर मजा भी आता है; मगर बात बहुत कुछ वैसी ही है। सरसी दीदी के हाथों बिजली बाबू को सौंपकर वे परे हट गई हैं। उनका अलग कमरा है; वे अकेले रहती हैं। उस कमरे में जितना जो कुछ है सब-के-सब जैसे किसी पुराने यादगार की तरह रख दिए गए हों, अब जो इस्तेमाल में आने लायक नहीं हैं। बिजली बाबू की उठती जवानी की तसवीर, ब्याह के बाद खींची हुई दोनों की तस्वीर, यहां तक कि मखमल का राधाकृष्ण—ये सभी-के-सभी पुराने संग्रह हैं; नया कुछ नहीं है। एक आदमी के सोने भर के लिए बिस्तर है, मात्र एक तकिया है। देवी-देवताओं की तसवीरों से दीवार का बहुत बड़ा हिस्सा भरा हुआ है—शायद ये ही उनकी नई हैं, और कुछ नहीं। पर सरसी दीदी के कमरे की शक्ल अलग है, वहां का माल-असबाब और साज-सज्जा भिन्न है, समूचे पलंग पर बिस्तर बिछा हुआ है, बेलबूटेदार सुजनी है, शीशे की आलमारी में तरह-तरह की छोटी-छोटी चीजें हैं, गुड़ियां हैं, सरसी दीदी की बड़ी-सी तसवीर है, बिजली बाबू का एक समय का संग्रह—हिरन के सींग इत्यादि—हैं। कमरे में गद्दीदार आरामकुर्सी है, ड्रेस स्टैंड पर तहाये हुए कपड़े-लत्ते हैं— धोती-साड़ी-गंजी-ब्लाउजों का घालमेल है। काठ की छोटी-सी अलमारी के ऊपर फूलदान है, शंख है, निकेल के फ्रेम में मढ़ी बिजली बाबू की तसवीर है। समझ में आ जाता है कि इस कमरे में हर कहीं दाम्पत्य जीवन का स्पर्श है, पर उस कमरे में दाम्पत्य का कुछ नहीं है। हैमन्ती को लगा, जो बड़ी हैं वे बड़ी ही बनकर रह गई हैं, छोटी नहीं बनी हैं; दुःख हो, वेदना हो, फिर भी उन्होंने अशान्ति नहीं की है। सरसी दीदी की मन-ही-मन जो बड़ी बहन के प्रति कृतज्ञता कितनी है, भले ही यह समझ में न आए पर यह समझ में आया कि बड़ी बहन की जिधर उंगली उठती है सरसी दीदी के कदम उधर चल पड़ते हैं।

खाना-पीना खत्म होने में देर हुई। अवनी आया था; बिलकुल धोती-कुर्ता पहने। खाना-पीना खत्म होने पर वह चला गया; कह गया कि वह घर पर ही रहेगा। दोपहर में लेटे-लेटे सरसी दीदी से ढेर-सारी बातें हुईं, घर की बात, मां, मामा और गगन की बात। सरसी दीदी को कितना कौतूहल है! एक बार मजा लेती हुई बोली, "आप क्या भई इसी तरह रहेंगी? सिर्फ आंखें देखेंगी, किसीकी आंखों में समाएंगी नहीं?" हैमन्ती हंस पड़ी थी, "देखूं!"···दोपहर खत्म होने

गो आया, तो हैमन्ती उठी, बोली, "अब मैं चलूंगी।"

आते समय बड़ी बहू ने उसे अपने कमरे में लाकर बिठाया। दो पल, दो-चार बातें कीं। अन्त में एकाएक बोली, "सरसी को मैं एक बार कलकत्ता भेजूंगी। तुम उसे सबसे अच्छे डॉक्टर से दिखा देना, दिखा दे सकोगी न?···अभी भी तो समय है।"

हैमन्ती ने पहले पहल भले ही न समझा हो, पर बाद में बड़ी की आंखों की ओर ताककर इसका अर्थ समझा। सिर एक ओर झुकाया, हां, दिखा सकूंगी। लेकिन मन विषण्ण होने को आया।

सरसी दीदी बैठक तक पहुंचा देने आईं, तो उसे ज़रा किनारे खींचकर ले गईं और पूछा, "कान में क्या कहा गई, दीदी ने?"

हैमन्ती ने मुस्कराकर कहा, "कुछ तो नहीं।"

"झूठ बोलने से क्या फायदा भई, सच-सच बताइए।"

"सच कहती हूं, उन्होंने कुछ नहीं कहा है। आपको कलकत्ता जाना है घूमने···"

"कलकत्ता जाऊंगी मैं!" सरसी ने आंखें सिकोड़कर हैमन्ती को देखते-देखते जैसे सारा रहस्य समझ लिया। बोलीं, "बला से! खाक जाऊंगी मैं!···"

बिजली बाबू ने थोड़ी दूर तक उसे पहुंचा दिया। तीसरे पहर के वक्त उन्हें पस-ऑफिस में रहना पड़ता है। थोड़ी दूर तक पहुंचाकर उन्होंने विदा ली। जाते समय कह गए, हो सका तो शाम के लगभग वे अवनी के घर आएंगे।

साइकिल पर चढ़कर बिजली बाबू चले गए। बस, अभी-अभी तो तीसरा पहर हुआ है, दिन ढल गया है, धूप है—सरसी जाती धूप, अल्हड़ हवा बह रही है, थोड़ी-सी गरमी और ताप इस समय आजकल अनुभव किया जा सकता है। हैमन्ती को सूखापन और गरमी महसूस हो रही थी; थोड़ी-सी थकान महसूस हो रही है; सारी दुपहरी गप्पें लड़ाते गुजरी है, आलस्य जमा हो गया हो जैसे। जमाई आई। सरसी दीदी का चेहरा जैसे मन के ऊपर तिरता हुआ चला जा रहा हो, बिलकुल बिजली बाबू जैसा ही स्वभाव है, हंसी-मसखरी से भरा हुआ। गोल-चेहरा, मुस्कराती-सी दोनों आंखें, नाक में पोत के दाने-सा लौंग, दोनों होंठ हर-दम पान के रस से लाल रहते हैं, घूंघट सरकता नहीं कभी। सरसी दीदी बड़ी हो गई हैं, उससे कुछ बड़ी ही हैं, शरीर भी भारी हो गया है, फिर भी सरसी दीदी में अभी भी जैसे छोटी उम्र की चंचलता मरी नहीं है। अब, हो सकता है, किसी दिन भेंट न हो—फिर भी हैमन्ती को लगा, सरसी दीदी का चेहरा बीच-बीच में उसे याद आएगा। और, हैमन्ती ने सोचा, सचमुच ही यदि सरसी दीदी कलकत्ता जाएं, तो वह उन्हें भरसक अच्छे डॉक्टर से दिखा देगी। बड़ी बहू का चेहरा भी याद आया। सचमुच सब कुछ होते हुए भी जैसे इस परिवार में किसी चीज की कमी एक दबी वेदना की तरह रह गई हो। हैमन्ती थोड़ी-सी उदास और विषण्ण हुई।

कटहल और नीम के पौधों के झुरमुट को पार करके टाइल्स-छाये छोटे से घर की बगल से होकर जाते समय हैमन्ती को एकाएक याद हो आया: इस रास्ते आज वह आखिरी बार आ रही है, फिर कभी वह यहां नहीं आएगी, रास्ते में खड़ी हो गई और नज़रें उठाकर चारों ओर एक बार देखा, बरगद के पत्ते झड़ रहे हैं,

ड़ा आम का पेड़ है, पंडुक बोल रहा था कहीं, मैना आकर मिठाई की
ामने पत्ते ठूंग रही है, थोड़ी दूर पर देहाती मिठाई वाले की दुकान है,
ये उड़ रही हैं, कुत्ता लेटा हुआ है एक ओर, चर्र-चों की आवाज करती
ाड़ी हिल-डुलती आ रही है। देखते-देखते इस क्षण हैमन्ती का हठात्
र्घश्वास निकला : यह है यह सब कुछ छोड़कर जाने का दुःख।
ला रास्ता पकड़कर आगे बढ़ी तो हैमन्ती फिर बड़े रास्ते पर पड़ी। उसके
पास छोटा-सा बवंडर उड़ रहा था, नाक-मुंह में धूल का थपेड़ा लगा।
बाद है रेल का फाटक, दोनों ओर फसल-कटा सूना मैदान है, कंकड़ बिखरा
ीचा रास्ता है। और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ आई, तो अवनी के घर के
क आ गई।

फाटक खोलकर घुसते समय बरामदे में कोई दिखाई नहीं पड़ा हैमन्ती को।
वे में नए गोल-गोल पत्थर फैलाए गए हैं, आवाज गूंज रही थी। अवनी क्या
हुआ है ? पर इस अबेर में तो उसके सोने की बात नहीं है।

हैमन्ती के बरामदे में चढ़ते ही अवनी कमरे से बाहर निकल आया। "मैंने
सोचा कि आप शायद वहीं से गईं।" मजाक करके ही कहा अवनी ने।

हैमन्ती ने हंसकर जवाब दिया, "सच है, मेरे लाख उठना चाहने पर भी वे
ग तो मुझे उठने ही नहीं दे रही थीं।"

बैठक में आकर हाथ का बैग रखा हैमन्ती ने फिर बैठते-बैठते कहा, "पानी
पलाइए। आज बहुत प्यास लगती है।" कहकर न जाने क्या सोचकर बोली,
"थोड़ी-सी गरमी लग रही है, न ?"

अवनी महिन्दर को पानी ला देने की बात कहने गया। हैमन्ती निढाल होकर
बैठी। थकान और आलस्य महसूस हो रहा था। अभी जैसे झपकी-सी आ रही हो,
दो पल आंखें मूंदे लेटे रहने को जी चाह रहा था। सारी दुपहरी गप्पें लड़ाते गुजरी
है। खाकर उठने में भी देरी हुई थी, उस पर ऐसी गरमी पड़ते समय शरीर में वैसे
भी अवसाद आता है। बैठे-बैठे हैमन्ती ने जंभाई ली।

महिन्दर पानी दे गया। हैमन्ती ने पानी पीकर लम्बी-सी राहत की सांस
ली।

अवनी आया। बैठते-बैठते मुस्कराकर बोला, "हां, तो बताइए, फेयरवेल
कैसा हुआ ?"

"बढ़िया ! कमाल का।" हैमन्ती मुस्कराई।

"आखिर कुछ मिला-उला ?" अवनी ने मजाक करते हुए कहा, कहकर
सिगरेट सुलगाई।

हैमन्ती दो पल निहारती रही, आंखों में स्निग्ध मुस्कान है; न जाने क्या
सोचा, बोली, "हां, मिला है।" कहकर हाथ बढ़ाकर बैग खींच लिया। उसके बाद
रूमाल निकालकर कपाल और गला पोंछा।

अवनी बोला, "आपने जिस ढंग से उसे खींच लिया तो लगा कि आप शायद
कुछ निकालकर दिखाएंगी।"

हैमन्ती हंस पड़ी। बाद में बोली, "वे लोग आदमी बड़े अच्छे हैं।" कहकर
तनिक रुकी, फिर थोड़े उदास गले से बोली, "क्या पता चली जा रही हूं, इसी-
लिए या नहीं, सब कुछ कैसा लग रहा है। शायद किसी जगह को छोड़कर जाते

समय ऐसा होता है। ऐसा नहीं होता है ?" [illegible]

अयनी बोला, "मन भारी है ?"

"तो हो सकता है, मन ही भारी हो।"

अयनी कुछ बोला नहीं, मुंह से [illegible] [illegible]
बिखेरने लगा।

"कलकत्ता जाकर अभी [illegible]
फिर मेरी तो एक बुरी आदत है, [illegible]
मुझसे सिर्फ गलती होती है। [illegible]
यार जो मालिनी को बुरा लगेगी।...." [illegible]

"मालिनी जी, देखता हूँ, आपको [illegible]" [illegible]
हुए जवाब दिया।

"नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं। [illegible]
है...।" हेमन्ती [illegible]
सी लाज-भरी आँखों से देखा, [illegible]
की बात तो [illegible] [illegible]

रही है, शायद अप पैसेंजर गाड़ी आ गई। चाय पीते-पीते बाकी अवसाद भी जैसे दूर होता जा रहा था। अवनी ने एक बार और उसे चीज-वस्त लाने और ट्रेन की बात समझाकर कह दी। यहां से एक गाड़ी जाएगी, बिस्तर-बक्से, यह-वह ले आएगी, लाकर सारा सामान बस-ऑफिस में रख दिया जाएगा, बिजली बाबू माल मत्ते को संभालकर सारा इन्तजाम कर देंगे। और अवनी तीसरे पहर तक जाएगा गुण्डिया, जाकर हैमन्ती को ले आएगा। शाम की ही गाड़ी से जाने का इन्तजाम हुआ है, एकदम तड़के गाड़ी हावड़ा पहुंचेगी। वह गाड़ी अवश्य फास्ट पैसेंजर है, लेकिन हर दृष्टि से सुविधाजनक है, रिजर्वेशन मिल जाएगा, हैमन्ती सोये-सोये कलकत्ता पहुंच जाएगी। इसके अलावा उस गाड़ी में बिजली बाबू का परिचित आदमी जा रहा है, वह देखभाल करेगा, खोज-खबर लेगा। सुबह की गाड़ी में कुछ दिक्कतें थीं, वरना दिन में जाया जा सकता था! अवनी कल एक टेलीग्राम कर देगा गगन को।

अवनी ने और भी थोड़ी-सी चाय ली। हैमन्ती ने चीनी मिलाकर प्याला अवनी के हाथ में दे दिया और अपने लिए भी थोड़ी-सी चाय ली फिर। अब जंभाई नहीं आ रही थी, शरीर का अवसाद भी मर चुका है। अभी अच्छा लग रहा था। ठंडी भीनी-भीनी हवा बह रही है, बगीचे के पेड़-पौधों और फूलों की एक मिश्रित गंध आ रही थी। क्रमशः अन्धकार जमा होने को आया।

अवनी ने कहा, "आपको कोई जल्दी तो नहीं न है?"

"नहीं," सिर हिलाया हैमन्ती ने, "जल्दी अब काहे की रहेगी। अभी तो मेरे लिए समय बिताना ही मुश्किल है।"

"कलकत्ता वापस जाकर आप क्या करेंगी?"

"देखूं।"

"कहीं नौकरी-चाकरी करेंगी क्या?"

"कुछ सोचा नहीं है। पर चुपचाप घर में बैठा रहना भी तो मुश्किल है। देखूं, क्या करती हूं। नौकरी करने को जी नहीं करता। फिर नौकरी मिलेगी भी भला कहां।...बल्कि मेरी जान-पहचान की दुकान-बुकान है—वहीं कहीं बैठा करूंगी थोड़ी देर।" अन्तिम वाक्य हैमन्ती ने थोड़ा-सा हंसकर ही कहा।

"आप अपने ही घर में एक चैम्बर खोल डालिए," अवनी ने हंसकर कहा।

"घर का जोगी जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध!" हैमन्ती ने हंसकर जवाब दिया, "आंखें भी देखनी पड़ेंगी, पैसा भी नहीं मिलेगा; ऊपर से बदनामी होगी।"

"बदनामी क्यों होगी?"

"वो होती है! औरतों से आंख दिखाने पर लोगों को विश्वास ही नहीं होगा।" हैमन्ती ने मुंह के सामने से प्याले को हटाकर नीचे रखा।

अवनी बोला, "तब तो देखता हूं, यहीं आपकी कद्र ज्यादा थी।"

"सो तो थी।"

सिगरेट सुलगाई अवनी ने। बरामदा बड़ा अंधेरा हो गया है। बत्ती जलाने को उठने का मन नहीं कर रहा था। फिर भी उठा और बगल वाली बत्ती जलाई, बरामदे में थोड़ी-सी रोशनी हुई।

वापस आकर कुर्सी पर बैठते-बैठते अवनी ने लघु स्वरों में कहा, "यहां जो

आपने बहुत यश कमाया था, इसमें सन्देह नहीं। उस दिन सुरेश्वर बाबू ने आपकी बड़ी तारीफ की।"

हैमन्ती ने ताका; पर कुछ बोली नहीं।

अवनी कुछेक क्षण मौन रहा, फिर बोला, "सुरेश्वर बाबू के घर वालों के साथ आपका मेल-जोल था?"

"नहीं—" हैमन्ती ने सिर हिलाया धीरे से, "माँ ने एकाध बार उनके मां-बाप को देखा था, माँ के दूर के रिश्ते की बहन लगती थी उनकी माँ। मैंने उन्हें नहीं देखा था। बस, एक बार मैंने उनके पिता को कलकत्ता में अपने घर में देखा था। बचपन में। पर उनका चेहरा भूल गया है।"

अवनी स्थिर आँखों से निहार रहा था, सुन रहा था। अवनी को यह जानने का कौतूहल हो रहा था कि सुरेश्वर की माँ ने आत्महत्या क्यों की थी? पति के चलते? पति की उपपत्नी के प्रति ईर्ष्या व विद्वेषवश? आप क्या सुरेश्वर बाबू के पिता का परिचय जानती हैं? आपने उस लड़के की बात सुनी है?

अवनी बोला, "मेरी धारणा थी कि सुरेश्वर बाबू का जीवन बड़े सुख-चैन से बीता है, पर शायद ऐसी बात नहीं है—।" अवनी ने कुछ इस ढंग से कहा ताकि लगे कि भले ही वह स्पष्ट रूप में कुछ न पूछ रहा हो, पर अस्पष्ट रूप से कुछ पूछ रहा है।

हैमन्ती ने अवनी के मुंह की ओर कई पल ताककर दूसरी ओर आँखें फेरी, उसके बाद बगीचे की तरफ निहारती रही। गरदन की बगल से साड़ी के आँचल को अन्यमनस्क भाव से सहेजा जरा सा, फिर कुर्सी से और भी उठेंगी। उसका चेहरा देखकर कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

अवनी मानो प्रतीक्षा कर रहा था, अन्त में कहा, "यह अन्धाश्रम खोलने के पीछे उनका जैसे कुछ हो! उन्होंने यह अन्धाश्रम शौक से खोला है, ऐसा मुझे अब नहीं लगता। अच्छा, आपको क्या लगता है?"

भले ही हैमन्ती ने तुरन्त जवाब नहीं दिया, पर बाद में जवाब दिया, "क्या पता, मैं नहीं जानती।"

अवनी कुछ सोच रहा था, कहा, "फिर भी क्या लगता है आपको?"

हैमन्ती को यह प्रसंग अच्छा नहीं लग रहा था। अर्थात् वह ऐसा कुछ नहीं सोचना चाहती है, जिससे मन कष्ट पा हो। बोली, "मुझे तो कुछ भी नहीं लगता है। आदमी को तरह-तरह का खयाल आता है। किसे क्या खयाल आता है, क्यों आता है, मुझे यह जानने से क्या फायदा।"

अवनी यह समझ पाया कि हैमन्ती विरक्त हो रही है, हंस कर बोला, "जाते समय आपका मन धुल-पुंछ कर साफ हो गया है, फिर यहीं भला यह झिझक क्यों रख रही हैं।"

"झिझक?"

'कोई गुस्सा-वुस्सा है, कोई विरक्ति है?"

"नहीं -" हैमन्ती ने सिर हिलाया, कहा, "बच्चों की तरह गुस्सा क्यों करूंगी! यह उम्र मेरी नहीं रही। मैं गुस्सा लिए नहीं जा रही हूं। मगर मैं भक्ति लिए भी नहीं जा रही हूं। ··लेकिन आप तो जैसे सुरेश-महाराज के बहुत बड़े भक्त होते जा रहे हों। आखिर बात क्या है?"

अवनी हंसा। हंसते-हंसते कहा, "पर मुझ-जैसा भक्त सुरेश-महाराज भी पसन्द नहीं करेंगे।"

हेमन्ती अवनी को गौर से देख रही थी। देखते-देखते बोली, "लेकिन मुझे तो लग रहा है कि आपका मन उधर ढला है।" कहकर हेमन्ती होंठ दबाकर हंसी।

सरल गले से अवनी ने जवाब दिया, "मैंने तो आपसे पहले भी कहा है कि किसी-किसी मामले में वे बुरे लगते हैं, तो भी वैसे वे मुझे अच्छे ही लगते हैं।—"

हेमन्ती ने न जाने कैसी परेशानी महसूस की; यद्यपि अवनी ने उससे कुछ पूछा नहीं, फिर भी उसे लगा कि अवनी जैसे उसकी भी किसी प्रकार की राय चाहता हो। अर्थात् कहना चाहता है कि वह जो अच्छा आदमी है, क्या आप अस्वीकार करेंगी? आज जाते समय अवनी के आगे सुरेश्वर के सम्बन्ध में कोई तिक्तता प्रकट करके जाने की इच्छा उसकी नहीं थी। अभी तक उसने न ऐसा कुछ किया है, न कहा है कि जिससे उसके मन का पुंजीभूत आक्रोश, उसकी घृणा, विरक्ति, विफलता और निराशा की तीव्रता व गहराई अवनी जान सके। अवनी ने जितना जाना है उसे छिपाने लायक संयम न उसमें था, न है। बाकी सभी कुछ अवनी ने आंखें खोलकर देखा है और अनुमान लगाया है। पर उसका अनुमान गलत नहीं है, बस, इतना ही।

हेमन्ती ने अपनी परेशानी दूर करने की खातिर हंसकर कहा, "आप लोगों के सुरेश-महाराज को बुरा कहेगा कौन!" कहकर जरा रुकी, फिर बोली, "वे तो देवतुल्य व्यक्ति हैं···"

"आप मजाक करती हैं?"

"नहीं नहीं, सच कहती हूं।···आप लोग तो उसे निःस्वार्थ अच्छे कहते हैं, और हमारा तो स्वार्थ था।"

"स्वार्थ?"

"हां, स्वार्थ—" हेमन्ती ने माथा झुकाया धीरे से, कहा."हमारा स्वार्थ था। एक समय उसने हमारे लिए बहुत कुछ किया था।"

अवनी मौन रहा। उसने सुरेश्वर के बारे में कुछ जानना चाहा था, बस, इससे ज्यादा नहीं। हालांकि जैसे लग रहा हो कि हेमन्ती को उसने अप्रसन्न व विरक्त कर डाला है। अप्रिय प्रसंग को दबा देने के लिए अवनी व्यग्र हुआ। गलती से बेवकूफों की तरह सुरेश्वर की बात आखिर उसने क्यों उठायी! बल्कि अवनी मन-ही-मन जो बात कहने के लिए आज व्यग्र है, उत्कंठित है, जो कहने के लिए वह कातर है, अपनी वह बात क्यों नहीं कह रहा है!···तो क्या—, अवनी को क्षण भर के लिए सन्देह हुआ, वह हेमन्ती को परख रहा है? यह देख रहा है कि सुरेश्वर के बारे में हेमन्ती में कहीं कोई कमजोरी है या नहीं? अवनी ने परेशानी महसूस की। जैसे कोई बात नहीं हो, किसी महत्वपूर्ण विषय पर वे लोग बात नहीं कर रहे हैं—कुछ ऐसे ढंग से प्रसंग को बदलने की खातिर अवनी ने हल्के से कहा, "जाने दीजिए। उस तरह से देखा जाए, तो दुनिया में सभी कुछ स्वार्थ है। आप जो यहां आयी थीं, यह भी तो उनका स्वार्थ है।"

"उसका स्वार्थ तो है ही! मेरा कुछ नहीं है," हेमन्ती बोली। "फिर भी, किसी दिन, कुछ कहा तो नहीं जा सकता है—हो सकता है, हमारे स्वार्थ की बात भी आप जान सकें। तब, शायद लगे कि हम—कम-से-कम मैं बड़ी कृतघ्न हूं।"

अवनी हेमन्ती के गले का स्वर सुनकर समझ पा रहा है। "'''उसकी कृपा से मैं बची थी।" हेमन्ती झोंक में आकर जैसे हठात् गोपनीय कुछ प्रकट कर रही हो। प्रकट करने में न उसमें कुंठा है, न दीनता; बोली, "तब मेरी उम्र कम थी, मेरे परिवार की हालत उतनी अच्छी नहीं थी, मुझे बीमारी हुई। तब उसने दौड़-धूप की थी, मुझे डॉक्टर को दिखाया था, अस्पताल में भर्ती कराया था; बाहर टी. बी. अस्पताल में मैं डेढ़ेक साल तक पड़ी हुई थी, उसके बाद भी उसने मेरी हिफाजत, हिफाजत की थी।'''मेरे लिए उसका समय, रुपया-पैसा कुछ कम नहीं गया था। इस कृपा के लिए हम आप लोगों के सुरेश-महाराज के कृतज्ञ हैं।"

अवनी ने कल्पना भी नहीं की थी कि मामूली-सी बात से इतना कुछ घटेगा। जैसे कहीं गिरे, बुझते अंगारे से गलती से पल भर में ऐसा कांड घट गया। विह्वल नहीं हुआ अवनी, किन्तु लज्जा और संकोच से फंसा काठ का मारा-सा होकर बैठा रहा। असह परेशानी के बीच वह अनुभव कर पाया कि सुरेश्वर और हेमन्ती के जीवन का एक अति एकान्त व गुप्त हिस्सा जैसे प्रकट हो गया हो। उसे लगा, गगन ने एक बार प्रसंगवश प्रकारान्तर से बीमारी की चर्चा की थी, लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आया था, न कुछ समझने ही दिया था गगन ने। तो क्या सुरेश्वर व हेमन्ती के सम्बन्ध का वही आदि था? जीवन मिला था, इसलिए क्या हेमन्ती ने सुरेश्वर को अपना सब कुछ देना चाहा था? या कि सुरेश्वर ने जीवन दिया था, इसीलिए हेमन्ती को अपने काम से पाना चाहा था? यह तो लगभग कर्ज रफा-दफा करने जैसा है। हो सकता है, ऐसी बात न हो। हो सकता है, सुरेश्वर ने अधिकार नहीं चाहा था, साथी चाहा था; हो सकता है, हेमन्ती ने साथ चाहा था, गृहस्थी चाही थी; सुरेश्वर का वैराग्य नहीं चाहा था। कौन जाने! अवनी ने न जाने क्यों आज एक अद्भुत वेदना बोध की, उसकी इस वेदना में भागीदार हैं ये दोनों ही – सुरेश्वर और हेमन्ती। उसकी समझ में नहीं आया कि हेमन्ती ने किस आवेगवश अपने जीवन की यह गोपनीयता प्रकट की। निरी उत्तेजना में उसने ऐसा नहीं किया होगा। हेमन्ती अत्यन्त धून्नी, संयत, शिष्ट और धीर है। तो उत्तेजना से ज्यादा और भी कुछ क्या है!

हेमन्ती बुत बनी बैठी हुई थी, स्थिर है, बगीचे की तरफ नजरें हैं, एक हाथ गले के पास है, गाल से उंगली छुनी हुई है। चेहरा अभी भी जैसे तपा हुआ हो।

कुछ समय इसी तरह से बीता, किसी ने कोई बात नहीं की। उमस महसूस हो रही थी। अवनी काठ का मारा-सा है, परेशान है, हेमन्ती मौन है, स्थिर है, बुत-सी है। आखिरकार अवनी ने मृदु गले से कहा, "मेरा ही दोष है, मैंने आपको अकारण असन्तुष्ट किया। खैर, जाने दीजिए।" कहकर थोड़ी देर रुका, जैसे हेमन्ती का कोई क्षोभ या ग्लानि पोंछ देने की कोशिश कर रहा हो बोला, "मेरी धारणा है, आपने अपने बूते भर कोशिश की है, इससे ज्यादा कुछ नहीं किया जा सकता है। दुनिया में सभी को सुरेश्वर बनना होगा, ऐसी बात नहीं।"

हेमन्ती कुछ बोली नहीं, लेकिन दीर्घ निःश्वास की आवाज सुनाई पड़ी। थोड़ी-सी हिली, गाल के पास से हाथ उतारा।

अवनी ने अन्यमनस्क भाव से फिर सिगरेट सुलगायी। बोला, "ना क्या आप अभी भी गुस्सा किए हुए हैं?" कहने में मानो पछतावे और संकोच का भाव था।

हेमन्ती ने माथा हिलाया। "नहीं तो। आप पर गुस्सा क्यों करूंगी!"

"यह बात मुझे नहीं उठानी चाहिए थी।"

"यह बात उठाकर आपने अच्छा ही किया है।" हैमन्ती ने जैसे कलेजे का बोझ हल्का करने की तरह नि:श्वास छोड़ा, जरा तनकर बैठी, अन्त में फिर कहा, "अपनी तरफ से मैं हल्की हुई।"

अन्त में अवनी उठा, बोला, "चलिए, थोड़ी-सी चहलकदमी करें बगीचे में—बड़ी अच्छी हवा चल रही है···"

हैमन्ती भी उठी।

बगीचे में आकर थोड़े-से आगे-पीछे होकर दोनों चहलकदमी करने लगे। शाम हो गई है, हवा चंचल व स्निग्ध है। पत्तों की गन्ध उठ रही थी, तीसरे पहर बगीचे को सींचा है माली ने, एक सोंधी गन्ध आ रही थी। केले के पेड़ की डालियों को अभी-अभी छांटा गया है, लाल हरसिंगार का पेड़ फूलों से लदा हुआ है, गुच्छे-के-गुच्छे गेंदे एक ओर हैं, कुछ सूखे मौसमी फूल हैं।

एक समय बगलगीर होकर चलने लगे दोनों, मन्थर कदमों से।

अवनी बोला, "आदमी के मन का कुछ ठीक नहीं।" यह बात उसने अचानक कही।

हैमन्ती कुछ समझ नहीं पाई, गरदन घुमाकर ताका।

अवनी ने हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "आप जब तक यहां रहीं तब तक लगता था कि आप अकारण क्यों पड़ी हुई हैं; बुरा ही लगता था। अब चली जा रही हैं, इसलिए लग रहा है—मजे में तो थीं आप।"

हैमन्ती का मन बहुत कुछ शान्त होता जा रहा था। म्लान हंसी हंसकर जवाब दिया, "ऐसी बात है!···पर इधर तो मुझे भगाने के लिए आप हाथ धोकर पड़ गए थे।"

"जाते समय एक ऐसी बदनामी फैलाकर जा रही हैं!" अवनी हंसा।

"छि:-छि:, बदनामी क्यों फैलाऊंगी! बल्कि आपकी तो तारीफ ही करूंगी।" हैमन्ती ने बदन का आंचल ढीला कर दिया, हंसी, हवा में सिल्क की साड़ी का आंचल लहरा रहा था। बाद में बोली, "मुझे कृतघ्न समझने पर सचमुच ही मुझे कष्ट होता है। आप लोगों से मुझे क्या कम मिला!···सरसी दीदी आज पूछ रही थीं कि यहां से चले जाने में मुझे बुरा नहीं लग रहा है? मैंने कहा, बहुत बुरा लग रहा है। सचमुच मुझे बुरा लग रहा है।"

हैमन्ती के गले में वेदना और दु:ख की कैसी एक गहराई थी। अवनी यह वेदना अनुभव कर रहा था। बोला, "हम लोग शायद प्राय: ही आपकी चर्चा करेंगे।"

हैमन्ती ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया; स्टेशन की तरफ एक मालगाड़ी आ रही है शायद—गुम-गुम की आवाज गूंज रही थी। वह आवाज हैमन्ती के कलेजे में लग रही थी।

अवनी थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर बोला, "याद किए रखने लायक अच्छा दिन हमारे जीवन में कोई खास नहीं आता है। कम-से-कम मेरे जीवन में तो नहीं आया है। आप आई थीं, आपसे परिचय हुआ था, दोस्ती हुई थी—यह मेरा सौभाग्य है। मैं इसे याद रखूंगा।"

हवा से हैमन्ती का खुला आंचल उड़कर अवनी के हाथ में लग रहा था। अभी

आया, मालगाड़ी की गुम-गुम की आवाज और भी स्पष्ट हो गई है, जैसे मालगाड़ी स्टेशन के नजदीक चली आई हो, फूल के पौधों की मिट्टी की थोड़ी-सी भीनी-भीनी सोंधी महक आ रही है, किसी फूल की मृदु सुगन्ध तिर रही है हवा में। हैमन्ती खड़ी हो गई।

अवनी ने सिगरेट का टोटा दूर फेंक दिया। हैमन्ती का चिकनी बनावट का अंडाकार चेहरा, गड्ढेदार नरम ठोढ़ी, फटी-फटी पलकें, सुन्दर, गहरी, निर्मल दो आंखें, माथे के पतले, तनिक रूखे रेशम-जैसे बालों और उसकी स्थिर, थोड़ी शिथिल, अवनत देह के चारों ओर एक अव्यक्त माया की जैसे सृष्टि हुई थी। अवनी को लगा, उसके जीवन में मानो यह एक अन्य क्षण है, जो पहले कभी भी नहीं आया था—न भविष्य में ही आएगा। सम्मोहित की भांति हृदय के किसी आश्चर्यजनक निर्देश से वह हैमन्ती की ओर अपलक निहारता रहा।

हैमन्ती ने एक समय मुंह उठाया, मुंह उठाकर अवनी को देखा।

"याद रखने लायक मेरे लिए भी कुछ रहा," हैमन्ती ने अस्पष्ट गले से कहा।

थोड़ी देर तक फिर कोई बात नहीं हुई, दोनों ही मौन रहे, मालगाड़ी आकर चली गई, फिर भी उसका कम्पन जैसे वहां की धरती पर हो। कलेजा कांप रहा था हैमन्ती का।

किसी तरह से अपने आपको संयत करके हैमन्ती ने कहा, "आप कब कलकत्ता जाएंगे ?"

अवनी थोड़ा-सा सचेत हुआ। "अगले महीने।"

"क्यों जा रहे हैं, यह तो आपने नहीं बताया ?···"

अवनी ने कई क्षण सोचा, "बताऊंगा।···आपको मुझे बताना चाहिए।"

हैमन्ती कुछ समझ नहीं पाई, निहारती रही।

अवनी ने सोचकर देखा था कि उसकी यदि कोई प्रत्याशा हो, यदि प्रत्याशा अधूरी भी रहे, तो भी बात उसे बताना जरूरी है। हैमन्ती उसे जितना जानती है, जितना पहचाना है, उससे ज्यादा पहचानना जरूरी है। ग्लानि और मन का क्षोभ, डर और संकोच रखने से लाभ नहीं। हैमन्ती के सामने से किसी दिन अपनी लाज बचाने की खातिर दोनों हाथों से मुंह ढककर चले जाने की उसकी इच्छा नहीं होती है। इससे तो अच्छा है कि मैं जैसा हूं, तुम मुझे उसी तरह से देखो। अपना कोई दुराव-छिपाव मैं नहीं रखूंगा, लज्जा-ग्लानि छिपाने की कोशिश में धिक्कार का पात्र बनने का मेरा जी नहीं चाहता। दुराव-छिपाव से क्या फायदा !

अवनी ने कहा, "कलकत्ता जाकर मुझे एक बार वकील—मुख्तार, कोर्ट-कचहरी करनी होगी।"

हैमन्ती की समझ में कुछ नहीं आया, हंसकर बोली, "सम्पत्ति-सम्पत्ति है क्या आपकी ?"

"नहीं; सम्पत्ति तो नहीं है।···सम्पत्ति होने लायक सम्भ्रान्त मैं नहीं हूं।"

"सम्पत्ति न होने पर सम्भ्रान्त नहीं होता है ?" हैमन्ती ने अन्तरंग सुर में मजाक किया।

अवनी ने जैसे दो पल देखा हैमन्ती को, उसके बाद कहा, "नहीं, मैं सम्भ्रान्त नहीं हूं। रेस्पेक्टिबिलिटी मुझमें नहीं है।···खैर, यह तो बात है, बाद में

लकत्ता में मेरी बेटी है।" अवनी बोला, गले का स्वर कांपा नहीं।

हैमन्ती निर्वाक् है, निश्चल है; गरदन घुमाकर जिस तरह से नजरें उठाए हार रही थी उसी तरह से निहारती रही, जैसे सांस नहीं ले रही हो, विस्मय या नहीं, यह भी समझ में नहीं आता है।

अवनी को लगा, उसके कलेजे के अन्दर से कोई यंत्रणा ऊपर आना चाह रही , कलेजा मुंह को आ रहा है, जीवन की कोई विफलता शायद सीसे की तरह भार नी हुई है हृदय पर। मुंह वा कर सांस ली अवनी ने, सिर के दोनों ओर कपाल पास बराबर जलन हो रही थी। आंखों से जैसे स्पष्ट रूप से कुछ दिखाई नहीं ड़ रहा हो। बोला, "मेरे जीवन में नापसन्द करने लायक बहुत कुछ है; वह सब, सकता है, आप को अच्छा न लगे।—मेरी पत्नी थी, उससे मेरा कोई संबंध हीं है, न रहेगा। बेटी को मैं अपने पास लाऊंगा।...कलकत्ता जाकर कुछ काम रना है। देखूं, क्या होता है...!"

हैमन्ती स्तब्ध होकर खड़ी रही। हवा से उसके खुले आंचल का बहुत बड़ा हिस्सा उड़कर अवनी के बदन में लग रहा था। न जाने कब चांदनी खिल उठी ी।

एक समय अवनी ने कहा, "रात हो जाएगी, आपको पहुंचा आऊं।...जरा हरिए, मैं आता हूं।"

अवनी ने वापस आकर देखा, हैमन्ती कदम्ब के पेड़ के पास खड़ी होकर ाकाश देख रही है। गाड़ी केले के बाग की ओर खड़ी की हुई थी। अवनी गाड़ी ुमाकर हैमन्ती के सामने लाया और बुलाया, "आइए!"

हैमन्ती चढ़ गई।

## तैंतीस

अप-प्लेटफार्म पर स्टेशन के ऑफिस के निकट से गाड़ी आने की घंटी जी, पहली घंटी, गाड़ी आने में अभी भी थोड़ी देरी है।

डाउन प्लेटफार्म पर यात्रियों की भीड़ जमा हो उठी थी; अभी भी लोग आ हे हैं। ओवर ब्रिज से होकर। शेड के नीचे भीड़ ज्यादा है; टीन के सूटकेसों काठ के बक्सों, गठरी-मोटरियों, बोरों और लाठी-सोंटों को अगोरे देहाती लोग बैठे हैं; क ओर कुछ डेली-पैसेंजरों का जमघट है, बीड़ी का धुआं, खांसी, एक विचित्र जन तिर रहा है। चायवाले, पानवाले हांक लगाए जा रहे थे। गाड़ी आने की हली घंटी से चंचलता जगी।

ओवर ब्रिज के नीचे, खुली जगह में, हैमन्ती का माल-असबाब इकट्ठा किया आ है। थोड़ी दूर पर ब्रेकवैन में चढ़ाने के लिए कुली सब्जी की टोकरियां, आलू बोरे, यह-वह जमा कर रहे थे। बिजली बाबू बस-ऑफिस के कई हमालों को कर हैमन्ती के माल-असबाब के पास खड़े होकर जान-पहचान के लोगों से गप- प कर रहे थे। अवनी नजदीक ही चहलकदमी कर रहा था।

थोड़ी दूर पर घुंघची के पेड़ के नीचे सीमेंट की बेंच पर हैमन्ती इतनी देर

तक बैठी हुई थी, उसके बाद जैसे अधीर होकर या बैठे-बैठे थक गई, तो उठकर खड़ी हो गई थी और प्लेटफार्म पर चहलकदमी करते-करते आखिरी छोर तक जाकर फिर लौट रही थी।

सुरेश्वर खुली जगह पर खड़ा होकर एक परिचित अधेड़ व्यक्ति से बात कर रहा था बहुत देर से, गाड़ी आने की पहली घंटी के बज जाने के बाद बात-चीत खत्म करके इधर आया, आकर हैमन्ती के समीप खड़ा हो गया।

अप और डाउन प्लेटफार्म के बीच रेल लाइन पर कहीं मालगाड़ी खड़ी नहीं है; उस पार की रोशनी इस पार आ रही थी, इस पार रोशनी कम है। उस ओर सुनसान-सा है; टी-स्टाल के पास दो एक आदमी खड़े होकर चाय पी रहे हैं, मालगोदाम की तरफ से कोलतार और चूने की गंध तिरती आ रही थी। बीच-बीच में, अल्हड़ हवा चल रही थी।

हैमन्ती के समीप आकर, गम्भीर होकर चलते-चलते सुरेश्वर ने कहा, "तुम्हारी गाड़ी ने आज बीस-पच्चीस मिनट देरी की।" कहकर कुछ सोचकर फिर बोला, "मैं जिनसे बात कर रहा था वे यहां के स्टेशन मास्टर हैं।" जैसे स्टेशन मास्टर से ही गाड़ी की खबर लाया हो सुरेश्वर।

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी आने में देरी कर रही है, यह वह जानती है। जब वह बैठी हुई थी तब अवनी ने आकर उसे बताया था, बिजली बाबू भी एक बार बता गए थे। आज, अभी, स्टेशन आने के बाद वह देख रही है कि उसका ज्यादातर समय अकेले गुजरा, या तो अकेले या अति तुच्छ बातों में। अवनी उसके सामने या बगल में ज्यादा देर नहीं रहता था, कभी आता था, बैठता था, जरा-सा, या खड़ा रहता था। दो-चार साधारण बातें कीं, फिर चला गया उस ओर, सुरेश्वर भी कई बार पास आया था, बातें की थीं, जान-पहचान का आदमी देख तो उठकर गया था फिर। ट्रेन पर चढ़ने के बाद हैमन्ती अकेले रहेगी, सारे रास्ते वह अकेले रहेगी, इस आखिरी वक्त में उसका अकेले रहने को जी नहीं चाह रहा था। हालांकि बहुत देर तक उसे अकेले रहना पड़ा।

चलते-चलते दोनों ओवर ब्रिज के निकट तक आए, तो खड़ी हो गई हैमन्ती। अवनी मुंह की सिगरेट से एक दूसरी सिगरेट सुलगा रहा है। बिजली बाबू कुलियों को कुछ समझाकर कह रहे हैं, पेड़ के नीचे यात्रियों ने उठना शुरू किया है। हैमन्ती कुछेक क्षण उधर निहारती रही, फिर मुंह फेरा, मुंह फेरकर धीरे-धीरे चलने लगी।

कुछेक कदम चलकर आई, तो हैमन्ती रुकी। इधर नीम-अंधेरा है, बगल में प्लेटफार्म के नीचे रेल लाइन की गिट्टियां कहीं-कहीं छोटे-छोटे टीले-सी पड़ी हुई हैं, गुच्छे-के-गुच्छे छाया के फूल हों जैसे। अंधेरे में घुंघची का पेड़ हवा से कांप रहा था। आज अभी भी चांद नहीं उगा है, चांद के उगने का समय होने को आया।

सुरेश्वर बोला, "कोई गरम कपड़ा नहीं लिया है तुमने ?"

हैमन्ती ने दूसरी ओर ताकते हुए माथा एक ओर झुकाया और कहा, "लिया है।"

"गाड़ी में उसे पहन लेना; रात को ठंड पड़ेगी।"

हैमन्ती ने कोई जवाब नहीं दिया। ये सब तुच्छ बातें उसे अच्छी नहीं लग रही थीं।

"तुम्हारी गाड़ी एकदम तड़के हावड़ा पहुंच जाएगी। गगन समय प
पहुंचे, तो अच्छा हो।···वह समय पर न पहुंचे, तो भी तुम्हें कोई दिक्कत
होगी, साथ में आदमी है, सामान उतरवाकर थोड़ी देर इन्तजार करना ग
लिए।"

हैमन्ती दूर निहारती रही : सिगनल की रोशनी देख रही थी जैसे।

देखते-देखते प्लेटफार्म पर चंचलता बढ़ गई है और एक कलरव ज
जंगल की तरफ से रात की हवा आ रही है, ठंडी, जंगल की गंध-भरी। स्टेश
बस-स्टैंड की तरफ एक गाड़ी लगातार हॉर्न बजा रही है, किसी को बुला
शायद; ओवर ब्रिज पर कई लोग भाग रहे हैं। गाड़ी आने की दूसरी घं
गई, सामने का एक सिगनल हरा हुआ।

गाड़ी आ गई। सुरेश्वर बोला, "चलो आ रही है।"

हैमन्ती लौटने लगी। प्लेटफार्म पर कलरव बढ़ गया है, माल-मत्ता मा
उठा रहे हैं कुली लोग, थोड़ी-सी भाग-दौड़ हो रही है। गाड़ी आ रही है,
सुनाई पड़ रही है। इंजन की आवाज, एकाएक, रोशनी आकर पड़ी, लाइ
आवाज गूंज रही थी, चारों ओर प्रकम्पित हो जैसे।

सुरेश्वर ओवर ब्रिज के पास आकर एकाएक बोला, "मैंने कलकत्ता
लिख दी है, हेम। तुमसे कोई कुछ नहीं पूछेगा।" सुरेश्वर रुका, उसके बा
सोचकर फिर बो ।,—"दुनिया में तुम जो चाहती हो, ज्यादातर आदम
चाहता है : मैं इसमें कोई दोष नहीं देखता, अवज्ञा भी नहीं करता।···तुम
होओ हेम; शान्ति मिले तुम्हें।"

हैमन्ती ने आंखें उठाकर ताका। उसकी जानने की इच्छा हो रही थी,
लिखा है तुमने मां को! कौन-सी बात? जानने की इच्छा हुई, तो भी हैम
कुछ नहीं पूछा लगा, बात अभी स्पष्ट रूप से जानने पर, हो सकता है, व
शानी में पड़े। इंजन की रोशनी प्लेटफार्म को प्रकाशित करके तिरछी
लाइन पर पड़ी। केबिन को पार करके गाड़ी प्लेटफार्म में घुस पड़ी है, प्ले
कांप रहा था।

गाड़ी रुकी। बिजली बाबू ने जहां माल-असबाब इकट्ठा करके र
उससे कई हाथ की दूरी पर हैमन्ती का डिब्बा है। अवनी चढ़ गया था; क
ने एक-एक करके माल-असबाब चढ़ा दिया, डिब्बे के दूसरी ओर एक गैर-ब
दम्पति है, एक बच्चा है, हैमन्ती का माल-असबाब करीने से रखा गया
शायद लगेज वैन में भी देना पड़ा है। बिजली बाबू ने सब कुछ तर्त
सहेज दिया और नीचे उतरकर खड़े हो गए : साथ में जा रहे हैं दास बाबू,
भान करके बगल के किसी डिब्बे में चले गए।

गाड़ी छूटने में अभी थोड़ी-सी देरी है। बिछाए हुए बिस्तर पर हैमन्त
की बार बैठी, अवनी खड़ा था इतनी देर तक, अब उतरा, उतरकर बाहर
वाजा बन्द किया और खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया।

हैमन्ती बोली, "वे लोग चले गए?"

"कौन लोग?"

"कुली लोग।"

अवनी ने इधर-उधर देखा। "नहीं गए हैं। हैं।···पर क्यों?"

"उन्हें कुछ रुपए देने हैं।" हैमन्ती बैग खोलकर रुपया निकालने लगी।

अवनी ने एक कुली को बुलाया। कुली पास आया, तो हैमन्ती ने उसके हाथ में एक दस रुपए का नोट दिया, कहा, "तुम सब बाट लेना।" कुली ने हाथ पसारकर रुपया लिया और खुश होकर चला गया, जाने के पहले कपाल से हाथ छुआया।

अवनी ने इस बार चुहल के बहाने कहा, "मेरे नसीब में भी कुछ बख्शीश है क्या ?"

हैमन्ती ने हंसने की कोशिश की। पर हंस नहीं सकी।

सुरेश्वर आगे बढ़ आया था; बिजली बाबू भी आए हैं। गाड़ी छूटने में अब शायद देरी नहीं है। अवनी ने इंजन की तरफ ताका : सिगनल हरा हुआ है।

सुरेश्वर खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। डिब्बे को देखा एक बार "अच्छा ही हुआ है, तुम्हें साथी मिल गया है। उन्हें कितनी दूर जाना है ?"

"पता नहीं।" हैमन्ती बोली।

बिजली बाबू बगल में आ गए हैं, बोले, "वे लोग भी कलकत्ता जा रहे हैं।"

"तब तो अच्छा ही है," सुरेश्वर बोला। "और थोड़ी देर बाद खिड़कियां बंद कर देना। रात की ठंड मत खाना।"

"दरवाजे को वे अन्दर से लॉक कर देंगे—मैंने उनसे कहा—" बिजली बाबू ने गैर-बंगाली सज्जन को इशारे से दिखाकर सुरेश्वर से कहा। —"आप निश्चिन्त होकर सोए-सोए पहुंच जाएंगी।" अन्तिम वाक्य उन्होंने हैमन्ती से कहा।

'कोई गरम कपड़ा पहन लेना," सुरेश्वर ने कहा।

हैमन्ती ने सिर झुकाया, "बाद में पहनूंगी।"

गार्ड ने सीटी बजाई।

"अच्छा बहन जी, गाड़ी छूटी—" बिजली बाबू विदा जताकर हंसे, "फिर मुलाकात होगी—" कहते-कहते उन्होंने दोनों हाथ कपाल से छुआकर नमस्कार किया।

हैमन्ती ने नमस्कार किया। "गरमी दीदी को लेकर एक बार कलकत्ता आइएगा। उनसे मेरी बात कहिएगा। दीदी को नमस्कार दीजिएगा।"

बिजली बाबू मुस्कराते हुए दो कदम पीछे हट आए।

सुरेश्वर रुंधे, मृदु गले से बोला, "कलकत्ता पहुंचकर चिट्ठी देना।…"

हैमन्ती ने धीरे से सिर एक ओर झुकाया। दूंगी, चिट्ठी पहुंचकर। धीमे स्वर में बोली, "तुम्हारे यहां अभी भी बीमारी-सीमारी है, सावधानी से रहना।"

अचानक इंजन की सीटी बजी, उसके बाद गाड़ी हिल उठी। बिजली बाबू थोड़े से पीछे हट गए, सुरेश्वर हटकर खड़ा हो गया। गाड़ी ने चलना शुरू किया है, अवनी गाड़ी के साथ चलने लगा, बगलगीर होकर, हैमन्ती का सिर थोड़ा-सा झुक गया है, बालों और ठोड़ी के एक ओर रोशनी पड़ रही है, प्लेटफार्म की एक बत्ती को पारकर गया डिब्बा, थोड़ा-सा अंधेरा है। अवनी अंधेरे में चल रहा है। चलते-चलते खिड़की पकड़ ली।

"तो चलती हूं…"

"बड़ा बुरा लग रहा है।"

"यह क्या बचपना है…।" हैमन्ती ने हंसने की कोशिश की। "फिर तो भेंट

हो रही है···"

"क्या पता !"

"वाह ! क्या पता क्या···" हैमन्ती और भी झुक पड़ी, उसकी छाती खिड़की पर है, उसका दाहिना हाथ एकाएक अवनी के हाथ पर आकर पड़ा, मानो किसी रुलाई को दबाने की कोशिश कर रही हो। मुंह छिपाकर, अवनी के हाथ पर हाथ रखकर छाती झुकाई और माथा नीचा किया। उसका कपाल और बाल नजर आ रहे थे। हैमन्ती बोली, "कलकत्ता आकर मेरे घर ठहरना। ठहरोगे न ?"

अवनी बोला, "ठहरूंगा।"

उसके बाद दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला, हैमन्ती ने मुंह उठाने के बाद अपना हाथ हटा लिया, डिब्बा पल भर में बहुत दूर आगे बढ़ गया। उसके बाद अंधेरा था, खिड़की पर छाया-सी हैमन्ती थी थोड़ी देर, दूसरे क्षण विलीन हो गई, फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ा। रेल के पहियों की आवाज सुनाई पड़ रही थी, रोशनी की दो-एक कौंध दिखाई पड़ रही थी, देखते-देखते गाड़ी प्लेटफार्म को पारकर गई, गाड़ी के डिब्बे के पीछे की लाल रोशनी दिखाई पड़ रही थी, क्रमशः वह रोशनी निष्प्रभ, छोटी व अंत में बिन्दुवत होकर अदृश्य हो गई, अन्धकार में चांद निकला है, धुंधली चांदनी में सामने का जंगल सुनसान व सोया-सा दीख रहा था, गाड़ी उसके बीच जाने कहां खो गई है, अवनी को अब दिखाई नहीं पड़ा।

कुछेक क्षण जंगल की तरफ ताककर अवनी ने निःश्वास छोड़ा, हैमन्ती का गरम हाथ व उरोजों का स्पर्श अनुभव करने के लिए अपना दाहिना हाथ मुंह के सामने उठा लिया और धीरे-धीरे लौटने लगा।

प्लेटफार्म सूना हो गया था, दो-एक रेल-बाबुओं के अलावा खास कोई नहीं था; सुरेश्वर, बिजली बाबू और अवनी लौट रहे थे। ओवर ब्रिज की सीढ़ियां चढ़ते समय बिजली बाबू ने न जाने क्या कहा, सुरेश्वर ने संक्षेप में जवाब दिया। अवनी कुछ नहीं बोला। लकड़ी की सीढ़ियों पर पैरों की आहट को छोड़कर और कोई भी आवाज बहुत देर तक सुनाई नहीं पड़ी।

ओवर ब्रिज को पार करके आए, तो सीढ़ियां उतरते-उतरते बिजली बाबू ने सुरेश्वर से कहा, "आज की रात आप यहीं ठहरते, तो अच्छा होता, महाराज।"

सुरेश्वर ने माथा हिलाया। "नहीं, बिजली बाबू।"

"तो फिर चलिए, लास्ट बस आपको उतार कर जाएगी।"

अवनी का इतनी देर बाद जैसे बात पर ध्यान गया। बोला, "आप बस से क्यों जाएंगे ! मैं आपको पहुंचा आऊंगा।"

"नहीं-नहीं, फिर आप क्यों जाएंगे !" सुरेश्वर ने आपत्ति की।

"चलिए; थोड़ी दूर तो है; मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी।"

"और कितनी बार जाइएगा-आइएगा ? तीसरे पहर गए थे, अभी फिर··"

"कोई बात नहीं। चार-पांच मील दूर जाने में कोई दिक्कत नहीं होगी··"

अवनी के गले के स्वर से लग रहा था कि उसके लिए जैसे अभी यह सफर जरूरी है। सुरेश्वर ने अवनी को लक्ष्य किया। ओवर ब्रिज के नीचे मुसाफिर खाने की तरफ अवनी की जीप खड़ी हुई है। अवनी ने गाड़ी की ओर पग बढ़ाए।

बिजली बाबू की तरफ ताका सुरेश्वर ने, "चलेंगे क्या ?"

"नहीं महाराज, मेरे लिए उपाय नहीं। मैं ऑफिस में कैश छोड़ आया हूं···" बिजली बाबू ने हंसकर कहा, "मुझे कैश लेना होगा, कई फुटकल काम भी हैं। मित्तिर सा'ब आपको बल्कि पहुंचा आएं।"

सुरेश्वर बोला, "तो फिर आज चलता हूं बिजली बाबू।"

"अच्छा, जाइए।···मैं एक दिन आऊंगा।···मित्तिर सा'ब, तो मैं आगे बढ़ता हूं।"

बिजली बाबू चले गए। सुरेश्वर अवनी का बगलगीर होकर चलकर गाड़ी के पास आया। अवनी ने गाड़ी पर चढ़ने के पहले एक सिगरेट सुलगाई।

"कितना बजा?" सुरेश्वर ने पूछा।

अवनी ने घड़ी देखी, "लगभग आठ बजे हैं।"

सुरेश्वर बगल में चढ़कर बैठा, अवनी चढ़ गया है।

गाड़ी स्टार्ट की अवनी ने; हेडलाइट जलाई, उसके बाद सामने की ओर थोड़ी दूर आगे बढ़कर बाईं तरफ जाने वाला रास्ता पकड़ा।

स्टेशन के इस तरफ की बस्तियों, बाजार, लोगों, दुकानों और शिव मन्दिर को जैसे कई पलों के अन्दर पार करके एकाएक गाड़ी को निर्जनता व अन्धकार के बीच ले आया, अवनी; पेड़-पौधों के बीच से होकर थाना आया, थाने के उस ओर शायद रामलीला लगी हुई है, बत्तियां जल रही हैं मैदान में, एक छोटा-सा शामियाना ताना हुआ है, थाने को पार करके बिलकुल खुली जगह में आ गया। आबादी नाम की अब कोई चीज नहीं है, सुनसान, निस्तब्ध मैदान है, झींगुरों की झीं-झीं सुनाई पड़ रही है, चांदनी छाई हुई है बाट-घाट में, बासन्ती हवा चल रही थी, हवा में थोड़ी-सी सरसराहट हो रही थी।

अवनी इतनी देर तक कैसी एक आच्छन्नता के बीच था। सन्नाटे, निर्जन और स्तब्धता में आकर जैसे उसकी वह नींद से जाग उठने-जैसी खुमारी क्रमशः दूर होती जा रही थी। आंखें खोलकर अवनी बाट-घाट, मैदान इस बार जैसे देख पा रहा था। थोड़ी देर पहले भी उसे कोई खयाल नहीं था। आदत और बहुत कुछ जैसे मशीन की तरह वह गाड़ी को चलाकर लाया हो। इतने अन्य-मनस्क भाव से गाड़ी चलाने की वजह से मुसीबत आ सकती थी। आश्चर्य है, हैमन्ती की गाड़ी के प्लेटफार्म छोड़कर चले जाने के बाद उसने इतनी देर तक क्या किया है, क्या कहा है, कुछ भी उसे स्पष्ट रूप से याद नहीं आ रहा था—मानो जो कुछ घटा है सभी कुछ किसी खुमारी में घटा हो, कोई स्वाभाविक चेतना नहीं थी। भूले हुए सपने की नाईं मात्र उसका मामूली-सा दाग लगा हुआ है। अवनी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा; कुछ देर तक मन-ही-मन हैमन्ती को देखा: ट्रेन की खुली खिड़की पर मुंह रखे अंधेरे की ओर निहारती बैठी हुई है, कोयले का बुरादा जमा हो रहा है चेहरे पर।

सामने के रास्ते में उछलकर रोशनी की एक कौंध ऊपर आई। विपरीत दिशा में गाड़ी आ रही है। अवनी ने स्वाभाविक दृष्टि से बाट-घाट को लक्ष्य करने की कोशिश की, सतर्क हुआ। ढलान में ऊंचाई पर चढ़ी थी वह गाड़ी—अब मोटे तौर पर समतल भूमि में होकर आ रही है। वह गाड़ी नजदीक आ गई। अवनी अपनी गाड़ी की हेडलाइट बुझाकर रास्ते के किनारे थोड़ा-सा हट गया, एक लॉरी बगल से होकर चली गई पल भर में। हेडलाइट जलाकर अवनी गाड़ी

को फिर बीच रास्ते पर लाया।

इतनी देर तक उसने प्राय: कोई भी बात नहीं की थी, सुरेश्वर ने न जाने क्या एकाध बात कही थी, अवनी ने जवाब दिया था या नहीं, यह भी उसे याद नहीं आया। अब की बार अवनी ने कहा, "वे यहां कितने दिन रहीं ?"

"यही कोई आठ-नौ महीने," सुरेश्वर ने जवाब दिया।

"पर ऐसा लगता है कि वे यहां बहुत दिन रहीं—।" अवनी के गले का स्वर उदास है।

"वर्षा के शुरू में आई थी।"

"और वसन्त के शुरू में चली गई—" अवनी ने एकाएक कैसे हल्के से कहने की कोशिश की। उसके बाद थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर बोला, "आने के दिन की बात मुझे याद है।"

सुरेश्वर ने सहज गले से कहा, "हां···आपने हमें लट्ठा के मोड़ से पहुंचा दिया था।"

अवनी चुप रहते-रहते जैसे हंसकर बोला, "उस बार आपके आश्रम, इस बार स्टेशन।"

सुरेश्वर भी जैसे हंसा जरा-सा।

गाड़ी को धीमी करके अवनी ने अबकी बार स्वाभाविक रूप से एक सिगरेट सुलगाई। कुछ देर तक फिर कोई बात नहीं की, दो-चार लम्बे कश लगाए। बोला, "आपसे कई बातें पूछने को जी चाहता है; अगर आप बुरा न मानें तो···"

"भला इसमें बुरा मानने की क्या बात है !"

"नहीं, फिर भी—" अवनी ने आना-कानी करते हुए कहा, "हो सकता है, आपको ऐसा लगे कि मैं आपकी व्यक्तिगत बातें पूछ रहा हूं···।"

"आप क्या जानना चाहते हैं, मैं तो नहीं जानता।"

अवनी ने सीधे कुछ नहीं कहा। सोच रहा था। सुरेश्वर के बारे में उसका आग्रह और कौतूहल विभिन्न कारणों से बढ़ा है; अवनी बहुत-सी बातें जानने का आग्रह बोध करता है, जैसे सुरेश्वर की मां की बात, अथवा पिता की बात; जानने का मन करता है कि सुरेश्वर के इस जीवन के साथ उसका कोई सम्बन्ध है कि नहीं ! हैमन्ती से सुरेश्वर के रिश्ते की शुरुआत कहां हुई थी, और क्यों वह खत्म हुआ—यह भी उसके कौतूहल का विषय है। ऐसा भी नहीं लगता कि निर्बोध की भांति, अथवा धुन में आकर सुरेश्वर ने हैमन्ती को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाना चाहा था। आखिर सुरेश्वर ने क्या चाहा था ? क्या आशा की थी ? क्यों लाया था उसे ? ऐसा नहीं लगता कि यह सभी कुछ एक मामूली गलती है। अपने नाना प्रश्नों व सन्देह के बावजूद अवनी ने इस प्रकार की बात नहीं उठाई। उसे नहीं लगा कि सुरेश्वर अपनी इन सब व्यक्तिगत व निजी बातों का पूछा जाना पसन्द करेगा।

आखिरकार अवनी बोला, "आज आपको अफसोस नहीं हो रहा है ?"

सुरेश्वर ने थोड़ा-सा मुंह फेरा, अवनी को देखा। "अफसोस ! ···"

अवनी की समझ में नहीं आया कि सुरेश्वर बात को टाल जाने की कोशिश करेगा या नहीं। बोला, "मैंने सोचा कि मन-ही-मन आप अफसोस करेंगे।"

"हेम लौट गई इसलिए—"

अवनी कुछ नहीं बोला।

सुरेश्वर थोड़ी देर तक मौन रहा, उसके बाद बोला, "हेम को मैं अपने स्वार्थ से लाया था, स्वार्थ को ठेस लगने पर आदमी को चोट पहुंचती है।"

"मैं ठीक स्वार्थ की बात नहीं कह रहा हूं—" अवनी बोला, "स्वार्थ के अलावा भी तो कुछ हो सकता है।···खोने का अफसोस भी तो आदमी को होता है।"

सुरेश्वर ने जैसे कुछेक क्षण सोचा, कहा, "क्या पता, खास कोई अफसोस मुझे नहीं है।" कहकर थोड़ी देर रुका, फिर बोला, "हेम को यहां लाकर मैं कुछ भी नहीं दे सका, यह दुःख मुझे रहेगा।"

उसकी बात अवनी की समझ में कुछ आई, कुछ नहीं आई। सुरेश्वर शायद यह नहीं समझता है कि हेमन्ती उसकी प्राप्त वस्तु थी, अथवा प्राप्य वस्तु इसीलिए खोने का प्रश्न भी उसके लिए अप्रासंगिक है।

अवनी ने कुछ सोचकर कहा, "आपने ऐसा जो क्यों किया यह मेरी समझ में हरगिज नहीं आता है। उन्हें तो आप पहचानते थे, समझते थे···।" अवनी के गले के स्वर में हार्दिकता व घनिष्ठता थी। थोड़ी देर तक उसने फिर कोई बात नहीं की, बाद में बोला "आपने उन्हें जो दिया था, उसे आपने जरूर वापस नहीं मांगा था।"

"हेम को मैंने कुछ नहीं दिया था।"

"एक समय उनकी बीमारी में आपने काफी कुछ किया था।"

सुरेश्वर ठक्-से रह गया। "यह आपसे किसने कहा?"

"उन्हीं ने कहा।"

सुरेश्वर ने जैसे परेशानी महसूस की। "इस तुच्छ बात को हेम ने क्यों इस तरह से याद रखा है, मैं नहीं जानता।"

"यह तो उनकी कृतज्ञता है।"

सुरेश्वर व्यथित हुआ। कहा, "पर मैं क्या इस वजह से उसे यहां ला सकता हूं।"

"मुझे भी ऐसा नहीं लगता कि यह सब हिसाब आप समझते हैं।"

सुरेश्वर अन्यमनस्क है, कुछ सोच रहा था। बोला, "बीमारी के समय हेम की उम्र कम थी। वह उस उम्र में संसार में ऐसी जगह में जा पहुंची थी जहां है शोक, दुःख, कष्ट, असहायता। मुझे लगता था, हेम दुःख को अपने जीवन के द्वारा दिन-पर-दिन पहचानती जा रही है। उसमें तब मैंने कितनी ममता देखी थी, कितना प्यार देखा था। सोचा था उसे दुःख का बोध हुआ है। पर उसे दुःख का बोध नहीं हुआ था। मुझे भी नहीं हुआ था। उसके बाद वह चली गई, घर आकर बाहर का दुःख भूल गई।···मैं भी, हो सकता है, भूल जाता, मगर दूसरी आई, जिसने मुझे भूलने नहीं दिया; वह मुझे कहां जो हाथ थामे ले गई···पर रही नहीं···मुझे छोड़कर चली गई···" सुरेश्वर का गला भर आया था, मानो कुछ नहीं, उसका हृदय कुछ कह रहा हो।

अवनी मुंह घुमाकर सुरेश्वर को देख रहा था, देखते-देखते उसने अनुभव किया कि कोई अद्भुत विषण्णता उसे निगल रही है। यह विषण्णता दुःख की नहीं है, फिर भी किसी आश्चर्यजनक जादू-टोने से जैसे उसने इस सम्मोहन में प्रवेश

किया हो। अन्यमनस्क भाव से अवनी ने गाड़ी प्रायः खड़ी कर डाली थी, और इतने धीरे-धीरे गाड़ी जा रही थी, मानो इस निस्तब्ध प्रान्तर में किसी पशु की भांति चल रही हो, न उसका कोई गन्तव्य है, न आश्रय।

गाड़ी खड़ी की अवनी ने। अन्यमनस्कता और इस सम्मोहन को उसने दूर करने की कोशिश की। चारों ओर घूर-घूर कर देखा। वे लोग बहुत दूर चले आए हैं, दाहिनी ओर एक बरगद के पेड़ के नीचे टीले जैसा सफेदी किया हुआ मन्दिर है, उससे लगे बांस में बांधा हुआ लाल सालू उड़ रहा है, कहीं एक भी आदमी नहीं है, उस ओर हर झुरमुट पर जुगनू उड़ रहे हैं, बगल में शायद नहर है, चांदनी से नहाये प्रान्तर की छाती पर यह नहर घाव का निशान बनकर पड़ी हुई है। मैदान में हवा भाग रही थी, सांय-सांय की आवाज हो रही थी।

अवनी ने लम्बा-सा निःश्वास छोड़ा, कई पल चुप रहा, उसके बाद जेब टटोल कर सिगरेट निकाली और सुलगाई। हैमन्ती अभी कितनी दूर गई होगी, अवनी ने जैसे मन-ही-मन सोचा एक बार।

गाड़ी ने फिर चलना शुरू किया, तो अवनी बोला, "बाहर का दुःख ही क्या जीवन का सब कुछ है?"

सुरेश्वर अन्यमनस्क था, सुन नहीं पाया था। बोला, "कुछ कहा आपने?"

"मैं कह रहा था कि बाहर का दुःख ही क्या जीवन का सब कुछ है?"

"अपना-अपना खयाल है।···हेम के लिए उसका अपना दुःख ही बड़ा है।"

"आपके दुःख के साथ उसके दुःख का मेल नहीं है?"

"नहीं।"

"लेकिन आदमी अपना सुख-दुःख ही तो पहले समझता है।"

"बहुत समय एकमात्र उसे ही समझता है, पहले जैसा समझता है—बाद में भी वैसा ही समझता है। मेरे पिताजी ने अपने जीवन में सिर्फ अपना सुख समझा था, एकमात्र अपने अभाव का ही उन्हें बोध था।

"अच्छा, तो आपकी मां ने आत्महत्या क्यों की थी?"

"अपने दुःख से उसे कोई सांत्वना नहीं मिली थी शायद।"

अवनी ने और कुछ नहीं कहा। उसे नहीं लगा कि बेकार की किसी दूसरी बात की जरूरत है। सुरेश्वर अपनी बात भूलना चाहता है, अपने सुख-दुःख को वह अस्वीकार नहीं करता है, हैमन्ती के साथ उसका कहीं कोई मेल नहीं है, कहीं नहीं। क्यों जो अवनी को अपनी मां की, ललिता की और अपनी बात याद हो आई, यह उसकी समझ में नहीं आया। मां ने तो सिर्फ आत्मतृप्ति चाही थी, उस आत्मतृप्ति की क्या भद्दी परिणति हुई थी! और ललिता ने क्या चाहा था, क्या चाहती है? सिर्फ आत्मसुख, सन्तुष्टि, भोग। खुद उसने भी ललिता से इससे ज्यादा कुछ नहीं चाहा था। अवश्य इससे कुछ प्रमाणित करना नहीं चाह रहा है अवनी; फिर भी उसे याद आ रहा है। हो सकता है, वह यह देखना चाह रहा था कि सुरेश्वर की बातों में कितनी सच्चाई है।

लट्ठा के मोड़ के नजदीक गाड़ी पहुंच गई। दाहिनी ओर कुछेक खपरैल घर नजर आ रहे थे, फाग शुरू हुआ है, हवा में एक सुरीला शोर और डफली की आवाज तिर रही थी। क्रमशः लट्ठा का मोड़ आया। थोड़ी-सी रोशनी है, दो-एक छोटी-मोटी दुकानें हैं, दो-चार आदमी हैं।

सट्टा के मोड़ से गाड़ी को कच्चे रास्ते पर उतार लिया अवनी ने; उसके बाद मैदान है; आंवले और शाल की पोरों के झुरमुट पर जुगनू टिमटिमा रहे थे, सूखी मिट्टी की सोंधी गन्ध आ रही है। सुनसान प्रान्तर में आकर गाड़ी ऊंचे-नीचे रास्ते पर हिचकोले खाते-खाते चली जा रही थी।

अवनी ने बहुत देर तक कोई बात नहीं की थी। अब की बार, निश्वास छोड़कर, अचानक सुरेश्वर को पुकारा।

सुरेश्वर ने जवाब दिया।

अवनी ने कहा, "तो आप अपना तमाम जीवन इसी जंगल में खत्म कर देना चाहते हैं ?"

सुरेश्वर कुछ बोला नहीं, जैसे विनीत हंसी हंसने की कोशिश की, थोड़ी-सी आवाज हुई।

"यहां आपको क्या मिला है ?"

"इतनी जल्दी—!" सुरेश्वर इस बार हंसा, शान्त, निर्मल ध्वनि थी हंसी की।

"तो आप कुछ पाने की प्रतीक्षा में हैं ?" अवनी भी परिहास करके हंसा।

"हो सकता है, मैं कुछ पाने की प्रतीक्षा में होऊं।"

"मिलेगा ?"

"क्या पता; हो सकता है, मिले।···बैठे रहने से ही क्या मिलता है !"

अवनी ने सुरेश्वर के चेहरे को लक्ष्य किया। बोला, "तो आप क्या ईश्वर-दर्शन की आशा में बैठे हुए हैं ?"

"नहीं," सुरेश्वर ने माथा हिलाया।

अवनी भौचक्का रह गया। "आप ईश्वर में विश्वास नहीं करते ?"

"किस प्रकार के ईश्वर में ?"

अवनी कैसी गड़बड़ी में पड़ा। उसकी समझ में नहीं आया कि वह सुरेश्वर के प्रश्न का क्या जवाब दे सकता है। कैसा ईश्वर ? क्यों, आस्तिक जिसे ईश्वर कहते हैं वैसा ईश्वर। अवनी बोला, "ईश्वर का भला कोई प्रकार होता है क्या ?··· क्या पता, मैं तो नहीं जानता, सा'ब।"

सुरेश्वर ने फौरन कोई जवाब नहीं दिया। बाद में कहा, "मेरा अपना ईश्वर है।"

"मैंने समझा नहीं···।"

"समझाने लायक कुछ नहीं है।" सुरेश्वर ने संयत गले से कहा, "मेरे ईश्वर को लेकर बड़ी-सी बहस नहीं की जा सकती।···जगत् और जीव के परे वह ईश्वर नहीं रहता।"

"किन्तु मेरी धारणा थी कि ईश्वर नामक वस्तु इन दोनों के परे है—सम-थिंग एल्स···"

"उस ईश्वर में मेरा विश्वास नहीं है।···मेरे घेरे के बाहर जो ईश्वर है उसे लेकर मैं क्या करूंगा !"

अवनी समझ नहीं पाया। बोला, "आपका ईश्वर क्या है ?"

"कल्पना।"

"तमाम ईश्वर ही तो कल्पना है।"

"मेरा ईश्वर मनुष्य की बोध-बुद्धि से अगम्य, अज्ञेय, अनुभवहीन कल्पना नहीं है।···मनुष्य का हृदय जो अनुभव करता है अपने ईश्वर की मैंने उसी के द्वारा कल्पना की है। मनुष्य जो बनना चाहता है हालांकि बन नहीं सकता है, जो बन पाने पर, वह सोचता है कि वह सार्थक होता, पूर्ण होता, मेरा ईश्वर उससे अधिक नहीं है।"

अवनी ने आगा-पीछा करते हुए कहा, "तो उसमें देवत्व नहीं है?"

"नहीं; उस रूप में नहीं है।" सुरेश्वर ने संक्षेप में कहा।

गाड़ी चल रही है या नहीं चल रही है, कुछ समझ में नहीं आता है, आवाज कानों में घुली-मिली हुई है, फागुन की चांदनी में सुनसान प्रान्तर को कैसी अलौकिक मग्नता मिली है, झींगुरों के स्वर में यहां का सन्नाटा भरा हुआ है।

सुरेश्वर ने मृदु स्वर में कहा, "मनुष्य अपने तमाम अभावों, विफलताओं, अपूर्णताओं और अक्षमताओं की बात खुद जितना जानता है आकाश का भगवान उतना नहीं जानता है। ईश्वर मेरे लिए मनुष्य के तमाम काम्य व प्रार्थित गुणों की समष्टि है। मेरा ईश्वर निर्गुण नहीं है।" सुरेश्वर कुछेक क्षणों के लिए रुका, बाद में बोला, "मनुष्य ने अपनी दया, माया, ममता, प्रेम, शौर्य, सौन्दर्य—तमाम कुछ की चरम कल्पना ईश्वर पर आरोपित की है; इसीलिए मनुष्य ईश्वर से अधिक ममतामय, प्रेममय और किसी चीज को नहीं मानता। अपूर्ण मनुष्य की धारणा में इसीलिए ईश्वर ही पूर्ण है।···यह देवत्व मनुष्य ने सिर्फ ईश्वर को ही दिया है, कारण, उसने सोचा है कि यह देवत्व शायद उसे प्राप्त होने वाला नहीं है। शायद, मेरी धारणा है कि इस देवत्व की अभिज्ञता उसे हो सकती है। संसार में जो लोग महान हैं, जो लोग साधक हैं, हो सकता है, उन्हें इस देवत्व की अभिज्ञता होती हो।"

अवनी बोला, "तो क्या आप देवता बन जाना चाहते हैं?"

"कितना बन सकता हूं, इसकी कोशिश करने में दोष कहां है! यदि ईश्वर की ममता मेरी ही कल्पना हो, यदि कहूं कि ईश्वर से अधिक सहिष्णु और कोई चीज नहीं है, तो मेरे लिए अपनी कल्पना के ईश्वर-जैसा ममतामय और सहिष्णु बनने की कोशिश करने में दोष कहां है!"

अवनी ने जैसे कुछ सोचा। कहा, "आपके ईश्वर में पाप नहीं है?"

"नहीं। पाप क्या मनुष्य का गुण है?"

"लेकिन पाप तो मनुष्य में है।"

"इसीलिए तो पवित्रता हमारी कल्पना है।"

अवनी कुछ नहीं बोला फिर। सुरेश्वर का ईश्वर जो थोड़ा-सा बेतरतीब है, सीधा-सादा है, इसमें उसे सन्देह नहीं हुआ। शायद, अवनी को लगा, ईश्वर को रखना हो, तो जरूरत से रखना चाहिए, नहीं तो, नहीं रखना चाहिए। सुरेश्वर ने जरूरत से ईश्वर को रखा है। वह निर्बोध है। फिर भी अवनी को कहीं जैसे सुरेश्वर के प्रति सहानुभूति व ममता हो रही थी।

गाड़ी अन्धाश्रम के नजदीक आ गई थी। अब थोड़ी ही देर बाद आश्रम में पहुंच जाएगी। कैसा एक अवसाद बोध कर रहा था अवनी। अवसन्न भाव से सिगरेट सुलगाई, लम्बा-सा कश लगाया। थोड़ी देर तक और कोई बात नहीं हुई। दोनों ही मौन रहे।

अन्त में अवनी बोला, "आप यह अन्धाश्रम खोलने क्यों आए ? दुनिया में तो और भी बहुत-से काम थे।"

सुरेश्वर ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा, "यही काम मुझे अच्छा लगा।"

"अन्धों दु:खियों की सेवा करना ?"

"हां, दु:खियों की सेवा करना।...आखिर मैं भी तो अन्धा हूं।" सुरेश्वर थोड़ी देर रुका, बोला, "एक बार मैं एक देहाती मेले में गया था। यह मेला लगता है माघ महीने की पूर्णिमा में सोन नदी के किनारे। हरिद्वार की गंगा में जैसे लोग शाम के वक्त दीया बहाते हैं—उसी तरह इस मेले में भी बहुत-से लोग मिट्टी का दीया बहाने आते हैं। सोचते हैं, यह पुण्य काम है। उस बार एक बूढ़ा आया था। दीया बहाते समय वह न जाने कैसे नदी में गिर पड़ा। उसे खींच-खांच ऊपर किया लोगों ने। बूढ़ा अन्धा था। मैंने कहा, तुम खुद अन्धे हो, फिर भी इस तरह से अकेले दीया बहाने क्यों आए ? जवाब में बूढ़े ने कहा,—बेटा, मैं जनम का अन्धा हूं, मैं छोटा हूं, फिर भी जब इस रत्ती भर मिट्टी के दीये में एक बूंद रोशनी डालकर नदी में बहा देता हूं, तो समझ पाता हूं कि मेरा यह छोटा-सा दीया हजारों लोगों के दीयों के साथ नदी के घाट से बहते-बहते न जाने कहां चला गया। जीवन को इसी तरह जाने दो।"

अवनी बहुत देर तक चुप रहा, फिर बोला, "तो क्या आपको कोई चीज मिलेगी ? अन्धों को तो रास्ता नहीं मिलता।"

"मानव-जीवन का एक पहलू ऐसा ही है। दुःख के जगत् में, यंत्रणा के जगत् में हम जन्मे हैं। वैसे देखा जाए, तो विफलता ही मनुष्य की नियति है।...फिर भी..."

अवनी इन्तजार किए रहा।

सुरेश्वर बोला, "फिर भी—जगत् के साथ, जीवन के साथ जो कर्म से जुड़ा हुआ है उसे सांत्वना है। मैं निष्क्रिय होकर जी नहीं सकता, विश्राम करके, परे हटकर, भागकर अगर जिया जा सकता, तो मैं जीता।"

"ऐसे जीने में क्या कुछ है ?"

"मैं सोचता हूं, है। मर्यादा है, सांत्वना है।"

आश्रम के सामने आकर गाड़ी ठहरी। गड्ढा था वहीं। अवनी ने ब्रेक दबाया, उसके बाद आश्रम के अन्दर घुस गया। अन्य दिनों की तरह ही उसने गाड़ी को हैमन्ती के कमरे के नजदीक मैदान में रखा। हो सकता है, उसे खयाल नहीं था, अथवा आदतन।

सुरेश्वर उतरा, अवनी भी उतर पड़ा।

सुरेश्वर बोला, "आप उतरे ? बैठेंगे थोड़ी देर ?"

"नहीं। मैं आपको थोड़ी दूर पहुंचा दूं। पैरों को सनासनाल कर ले रहा हूं,

कहा, "वह जो गाना है : जितनी वार दीप जलाना चाहता हूं, बुझ जाता है बार-बार—मेरा भी वही हाल है। मैं अपने-आपको जलाना चाहता हूं, फिर खुद ही न जाने कहां बुझा डालता हूं।"

अवनी ने सुरेश्वर को देखा। सुरेश्वर शान्त कदमों से सामने की ओर निगाह रखे चला जा रहा है। उसका शरीर कहीं झुका हुआ नहीं है, न चाल में तेजी है, हालांकि वह नम्र है, विनीत है। लगता है कि वह किसी चीज को लक्ष्य नहीं कर रहा है, हालांकि वह लक्ष्य कर रहा है।

कमरे के सामने आकर सुरेश्वर दाहिनी ओर से और भी थोड़ी दूर आगे बढ़ गया, आगे जाकर हर्रे के पेड़ के नीचे सीमेंट की एक छोटी-सी वेदी के सामने खड़ा हो गया। बोला, "मैं तो बैठूंगा थोड़ी देर। आप बैठेंगे ?"

"नहीं, अब मैं नहीं बैठूंगा।" अवनी ने माथा हिलाया। सुरेश्वर जो अभी अकेले एकान्त में निस्तब्धता के बीच दो पल बैठा रहना चाहता है, अवनी यह अनुभव कर पा रहा था। अब इन्तजार नहीं किया जा सकता है। अवनी बोला, "तो मैं चलता हूं, रात होती जा रही है···"

"जाइए।···फिर आइएगा।"

"आऊंगा," अवनी ने अन्यमनस्क भाव से कहा, "अच्छा, तो चलता हूं।"

लौटने लगा अवनी। सुरेश्वर के कमरे के सामने से होकर चला आया। और भी कई कदम आगे बढ़कर खड़ा हो गया : सुरेश्वर को देखने की इच्छा हो रही थी। पीछे मुड़कर ताका : सीमेंट की वेदी के ऊपर पालथी मारे सुरेश्वर बैठा हुआ है, बगल में हर्रे का पेड़ है। लगा, सुरेश्वर का मुंह आकाश की ओर है। फागुन की भीनी-भीनी हवा व कोमल चांदनी में वह अभी बहुत दूर का-सा लग रहा था। दीर्घ निःश्वास छोड़कर अवनी फिर लौटने लगा।

मैदान से होकर अन्यमनस्क भाव से अवनी चल रहा था : घास शायद थोड़ी-सी ओस पड़ने की वजह से नम हुई है, कनेर का झुरमुट बीच-बीच में कांप रहा था, शायद किसी के गले का स्वर तिरता हुआ आ रहा है, दो-एक बत्तियां जल रही हैं, कहीं। अवनी ने कुछ लक्ष्य नहीं किया; सीधे आकर गाड़ी के पास खड़ा हो गया।

अन्यमनस्क भाव से अवनी गाड़ी पर चढ़ा, चढ़कर आदत के मुताबिक गियर पर हाथ रखा। स्टार्ट करने के बाद मानो आवाज ने आकर उसे सचेत किया। हेड लाइट जलाई अवनी ने। रोशनी की लहरें जैसे मामूली-सी रुकावट को पल भर में पार कर गईं, पार करके हैमन्ती के कमरे की ओर पछाड़ खाकर गिरीं। क्षण भर के लिए कैसा विभ्रम हुआ, उसके बाद अवनी को लगा; हैमन्ती नहीं है, उसका कमरा सूना पड़ा हुआ है। सूना, रीता और बेसहारा-सा प्रतीत हुआ अपने आपको; कलेजे में कहीं जैसे कुछ नहीं हो—सब कुछ कैसा सन्न और सूना-सूना-सा है